जोधपुर के महाराजा मानसिंह और उनका काल

(१८०३-१८४३ ई० सन्)

लेखिका

कुमारी (डॉक्टर) पद्मजा शर्मा

एम.ए., पी-एच.डी.

व्याख्याता—इतिहास विभाग,

राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

प्राक्कथन

डॉक्टर आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव

एम.ए., पी-एच. डी., डी. लिट्. (लखनऊ), डी. लिट्. (आगरा)

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

जयपुर-४

जोधपुर के महाराजा मानसिंह और उनका काल

(१८०३-१८४३ ई० सन्)

लेखिका

कुमारी (डॉक्टर) पद्मजा शर्मा

एम.ए., पी-एच.डी.

व्याख्याता—इतिहास विभाग,

राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

प्राक्कथन

डॉक्टर आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव

एम.ए., पी-एच. डी., डी. लिट्. (लखनऊ), डी. लिट्. (आगरा)

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

जयपुर-४

शिक्षा तथा समाज-कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार की विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रन्थ-निर्माण योजना के अन्तर्गत राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित :

प्रथम-संस्करण—१९७४

मूल्य : १५.००

© सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन

प्रकाशक
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
ए-२६/२, विद्यालय मार्ग, तिलक नगर
जयपुर-४

मुद्रक
अणिमा प्रिंटर्स,
पुलिस मेमोरियल,
जयपुर-४

समर्पण

राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर के संस्थापक-निदेशक
एवं तरुण शोधकर्ता विद्वानों के लिए प्रेरणा-स्रोत
'स्वर्गीय श्री नाथूराम खड्गावत'
लेखिका जिनकी आजन्म गहन ऋणी रहेगी।
उनकी पावन स्मृति को श्रद्धा सहित समर्पित।

प्रस्तावना

भारत की स्वतंत्रता के बाद इसकी राष्ट्रभाषा को विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रश्न राष्ट्र के सम्मुख था। किन्तु हिन्दी में इस प्रयोजन के लिए अपेक्षित उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकें उपलब्ध नहीं होने से यह माध्यम-परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। परिणामतः भारत सरकार ने इस न्यूनता के निवारण के लिए "वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दावली आयोग" की स्थापना की थी। इसी योजना के अन्तर्गत १९६९ में पाँच हिन्दी-भाषी प्रदेशों में ग्रंथ-अकादमियों की स्थापना की गई।

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी हिन्दी में विश्वविद्यालय स्तर के उत्कृष्ट ग्रन्थ-निर्माण में राजस्थान के प्रतिष्ठित विद्वानों तथा अध्यापकों का सहयोग प्राप्त कर रही है और मानविकी तथा विज्ञान के प्रायः सभी क्षेत्रों में उत्कृष्ट पाठ्य-ग्रन्थों का निर्माण करवा रही है। अकादमी चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अंत तक १५० से भी अधिक ग्रन्थ प्रकाशित कर सकेगी, ऐसी हम आशा करते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक इसी क्रम में तैयार करवायी गई है। हमें आशा है कि यह अपने विषय में उत्कृष्ट योगदान करेगी। इस पुस्तक की समीक्षा के लिए अकादमी डॉ० दशरथ शर्मा, निदेशक राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के प्रति आभारी है।

खेतसिंह राठौड़
अध्यक्ष

गौ० शं० सत्येन्द्र
निदेशक

प्राक्कथन

यह उत्साहवर्धक बात है कि राजस्थान ने ऐतिहासिक शोध की भावना को अपना लिया है, और पिछले डेढ़ दशाब्द में कुछ विद्वानों ने प्रदेश के पूर्ववर्ती राजतंत्री राज्यों के इतिहास सम्बन्धी मूल्यवान इतिहास-ग्रन्थों की रचना की है। डॉक्टर कुमारी पद्मजा शर्मा की "जोधपुर के महाराजा मानसिंह और उनका काल" वैसी ही एक विद्वत्तापूर्ण पुस्तक है।

जोधपुर के महाराजा मानसिंह और उनका काल (१८०३-१८४३ ई० सन्) केवल एक जीवन चरित्र ही नहीं है वरन् वह उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम अर्द्ध शताब्दी का मारवाड़ का इतिहास है। प्रतिभा-सम्पन्न लेखिका ने विषय का प्रतिपादन विद्वत्ता-पूर्ण ढंग से भारत के राष्ट्रीय अभिलेखागार और राजस्थान राज्य के अभिलेखागार में प्राप्त अभिलेखागारीय प्रलेखों तथा समकालीन सामग्री के आधार पर किया है। वे मानसिंह के प्रति केवल समालोचनात्मक ही नहीं रही हैं वरन् उन्होंने उसके प्रति अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण भी रखा है। मानसिंह के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि वह एक सफल शासक या प्रशासक था, ऊँची क्षमता का राजनीतिज्ञ तो वह था ही नहीं। मानसिंह का बाह्यरूप प्रभावशाली था परन्तु उसका व्यक्तित्व असाधारण नहीं था। वह नाथ सम्प्रदाय की धार्मिक बन्धुता के नेताओं का विशेष रूप से अनुगामी था। उसने नाथ-नेताओं को स्वयं अपने ऊपर ही अनुचित प्रभाव डालने की छूट नहीं दे रखी थी वरन् राज्य के दैनिक प्रशासन में हस्तक्षेप करने की भी छूट उन्हें दे दी थी। कुख्यात कृष्णाकुमारी-काण्ड में जो उसका हिस्सा रहा और जिसके कारण निर्दोष राजकुमारी की दुखद मृत्यु हुई, वह किसी भी प्रकार नैतिक दृष्टि से श्लाघनीय नहीं था और कुख्यात लुटेरे अमीरखाँ से, जो बाद में पूर्वकालीन टोंक राज्य का संस्थापक बन गया था, उसके सम्बन्धों के कारण भावी पीढ़ियों के मन में उसके लिए ऊँचे आदर की भावना नहीं रही। परन्तु महाराजा अंग्रेजों का इतना अधिक अनुगामी नहीं था और उनके आदेश को स्वीकार करने की अपेक्षा उसने अधिकार का त्याग कर देना पसंद किया।

जोधपुर के महाराजा मानसिंह और उनका काल

कुमारी पद्मजा ने मानसिंह की जीवन-कथा का विस्तार से वर्णन किया है। उनकी शैली स्पष्ट है और सब मिलाकर उनके निष्कर्ष संतुलित हैं। आशा है कि राजस्थान की एक प्रतिभाशाली महिला की लेखनी से लिखे गए इस मूल्यवान शोध-निबन्ध का भारत और विदेशों की विद्वत् मंडली में स्वागत होगा।

आगरा

आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव

भूमिका

डॉक्टर गौरीशंकर हीराचंद ओझा तथा पंडित विश्वेश्वर नाथ रेऊ के स्मरणात्मक महान ग्रन्थों के होते हुए भी उन घटनाओं और शक्तियों के अध्ययन की; जिन्होंने ई० सन् १८०३ से १८४३ तक मारवाड़ के भाग्य का निर्माण किया आज तक आवश्यकता अनुभव की जाती है और जिसका तत्काल उत्तर अपेक्षित है। इस दीर्घ-कालीन आवश्यकता ने शोधकर्ता को उन शक्तियों और घटनाओं का परीक्षण करने तथा महाराजा मानसिंह और उनके काल के इतिहास को चित्रित करने के लिए प्रेरित किया। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम अर्ध भाग में मारवाड़ झंझावातों और परेशानी के काल में से होकर निकला। उसने एक नए युग का प्रारम्भ किया और उस प्रक्रिया को निश्चित रूप दिया जिसने अंग्रेजों को इस प्रदेश पर अपना आधिपत्य जमाने में सहायता दी। महाराजा मानसिंह के प्रारम्भिक जीवन-काल में उसे जालौर के दीर्घ-कालीन घेरे के कष्टों को झेलना पड़ा। उसके विरुद्ध एक शक्तिशाली गुट बन जाने तथा उसके चारों ओर भयंकर संघर्ष छिड़ जाने से विषाद और निराशा का वाता-वरण जो उसे घेरे हुए था और भी अधिक गहन हो गया। उसके उपरान्त कृष्णा-कुमारी के पाणिग्रहण सम्बन्धी विवाद के परिणामस्वरूप अत्यन्त जटिल समस्याएँ उत्पन्न हो गईं। जयपुर और जोधपुर में युद्ध हुआ जिसके कारण गिंगोली का अनर्थ हुआ और जोधपुर की घेराबन्दी हुई। यद्यपि मानसिंह उस गड़बड़ी की अवस्था से बाहर निकलने में सफल हो गया और उसने अमीरखाँ की सहायता से अपने प्रति-रोधियों के षड़यंत्रों को विफल भी कर दिया। तथापि मारवाड़ को एक सिद्धान्तहीन साहसिक सैनिक से सहायता लेने का जो भारी मूल्य चुकाना पड़ा और उसने जो विध्वंस और विनाश किया उसने मारवाड़ को बरबाद कर दिया।

इन सभी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं का सम्मिलित प्रभाव यह हुआ कि मारवाड़ में क्रान्ति और हतबुद्धि की स्थिति उत्पन्न हो गई। उन्होंने मारवाड़ में अंग्रेजों के प्रवेश करने के लिए अनुकूल स्थिति उत्पन्न कर दी और उसके प्रारब्ध को कुप्रभावित किया। अस्तु, उनका क्रमबद्ध वर्णन और मारवाड़ पर उनका क्या प्रभाव पड़ा इसकी पूरी जाँच-पड़ताल और सूक्ष्म निरीक्षण की आवश्यकता है।

भूमिका

दूसरी ओर अंग्रेजों ने इस बात का सतत् प्रयत्न किया कि वे मारवाड़ में अपना सैनिक अड्डा स्थापित करलें जिससे कि वे सिन्ध और अफगानिस्तान में सैनिक कार्य-वाही कर सकें। मानसिंह ने उनके प्रयत्न का कभी सफलतापूर्वक और कभी असफलता-पूर्वक प्रतिरोध किया परन्तु उसने कभी भी पराजय की भावना को स्वीकार नहीं किया। इसके अतिरिक्त उसने नाथ-गुरुओं को अपना तन, मन और धन अर्पण कर दिया और अपने राज्य के प्रशासन में उनको अपना वर्चस्व स्थापित करने की छूट दे दी। उसकी ब्रिटिश-विरोधी भावनाओं के प्रकाश में इन दोनों नीतियों की पुनः व्याख्या करने की आवश्यकता है।

राज्य की विभिन्न प्रशासनिक संस्थाएँ; उन राजनीतिक घटनाओं, षड़यंत्रों, प्रतिस्पर्द्धाओं, कपट-प्रबन्धों तथा अन्य विभिन्न जटिलताओं की अव्यवस्थित प्रतिक्रि-याओं के परिणामस्वरूप जो उन पर प्रभाव पड़ा उससे पर्याप्त मात्रा में बदल गई। उनके परिणामस्वरूप महाराजा मानसिंह का शासनकाल भी वित्तीय दिवालियापन से अत्यधिक प्रभावित हुआ। सैनिक साहसिकों और नाथों की सीमारहित माँगों ने राज्य के खजाने का अत्यधिक दोहन किया। अतएव राज्य के प्रशासनिक संगठन और उसके साथ आर्थिक ढाँचे की गहरी जाँच-पड़ताल होने की आवश्यकता थी। इसमें बहुत प्रकार के प्रभाव मिल गए जिनमें से प्रत्येक की समाज के ढाँचे पर तीव्र प्रति-क्रिया हुई। परिणाम यह हुआ कि सामाजिक मूल्यों में तेजी से गिरावट आने के कारण अधिकांश सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाएँ उसके विनाशकारी परिणाम से नहीं बच सकीं।

इन शक्तियों में से प्रत्येक शक्ति का और उनके प्रभाव का उचित मूल्यांकन होना अपेक्षित था। इसके अतिरिक्त उसके व्यक्तित्व का और दीर्घकाल तक कष्टमय जीवन व्यतीत करने का उस पर जो प्रभाव पड़ा उसका भी आलोचनात्मक विश्लेषण करना आवश्यक था।

इन सभी घटनाओं, शक्तियों, राजनीतिक धाराओं और विरोधी प्रवृत्तियों का वर्णन और उनका विश्लेषण केवल उस सामग्री की सहायता से ही किया जा सकता था जो विभिन्न प्रकार के अनेक स्रोतों से एकत्रित करनी पड़ी है। इस बात की पूरी सावधानी रखी गई है कि घटनाओं का सही यथातथ्य सम्पूर्ण विवरण दिया जाए। यह केवल ब्रिटिश राजनीतिज्ञों अथवा अन्य योरोपियन यात्रियों का हमारे समाज और हमारी जीवन पद्धति के सम्बन्ध में दिये गए वर्णनों का सारांश मात्र नहीं है। परन्तु यह राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली एवं राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर में सुरक्षित अप्रकाशित हस्तलिखित अभिलेखों पर आधारित है। इसके अतिरिक्त जोधपुर और बीकानेर के हस्तलिखित पांडुलिपियों के पुस्तकालयों में जो भी अभिलेखागार विहीन सामग्री उपलब्ध है उसका भी अध्ययन किया गया जिससे कि शोध-ग्रन्थ

जितना भी सम्भव हो सके विस्तृत आधार वाला बन सके ।

यह पेचीदा और उलझा हुआ विषय यद्यपि अत्यन्त रोचक है परन्तु उसने शोध-कर्ता को अभी तक जिन स्रोतों का उपयोग नहीं किया गया था उनका अध्ययन करने का अवसर प्रदान किया । इस सम्बन्ध में मैं अपने विद्वान गुरु और मार्ग-दर्शक डॉक्टर गोपीनाथ शर्मा की अत्यन्त आभारी हूँ । उन्होंने न केवल मुझे इस महत्त्वपूर्ण विषय को चुनने की प्रेरणा दी वरन् उन्होंने तत्सम्बन्धी सामग्री को जो कि इस विषय पर उपलब्ध थी उसको एकत्रित करने और उसका मूल्यांकन करने में पूरी सहायता की । उन्होंने अपने स्वभावजन्य सूक्ष्मता और ध्यान से पूरे शोध-ग्रन्थ को पढ़ा । मेरे शोध पर्यवेक्षक होने के अतिरिक्त उन्होंने मुझे जो सहज स्नेह और संरक्षण प्रदान किया उसने मुझे उस विपुलमात्रा में जो सामग्री मैंने एकत्रित करली थी उसमें से महत्त्वपूर्ण विचारों को खोज निकालने में सहायता पहुँचाई । मैं राष्ट्रीय अभिलेखागार, राजस्थान राज्य अभिलेखागार तथा अन्य रेकर्ड आफिसों तथा पुस्तकालयों के अधिकारियों की अनुग्रहीत हूँ जिन्होंने उनके संरक्षण में रखी हुई बहुमूल्य सम्पत्ति (सामग्री) अध्ययन करने की सभी उचित सुविधाएँ मुझे उपलब्ध कर दीं । मैं श्री नाथूराम खड़गावत, निदेशक, राजस्थान अभिलेखागार की उनके मार्गदर्शन और उन्होंने जो सुविधाएँ जब मैं अभिलेखागार में काम कर रही थी, मुझे दी उनके लिए उनकी अत्यधिक ऋणी हूँ । अन्त में मैं अपने पिता श्री शंकरसहाय जी सक्सेना के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने मुझे व्यक्तिगत तथा अन्य सभी प्रकार की बाधाओं पर विजय प्राप्त करने में सहायता दी । उनके सतत् प्रोत्साहन के बिना मेरे लिए शोधकार्य को पूरा कर लेना वास्तव में कठिन होता । मैं राजस्थान विश्वविद्यालय और राजस्थान सरकार के प्रति अपना आभार प्रदर्शन करना चाहती हूँ जिन्होंने शोध छात्रवृत्ति के रूप में मुझे इस कार्य के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की ।

जयपुर, १९७० **पद्मजा शर्मा**

अनुवाद की भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक राजस्थान विश्वविद्यालय की पी-एच.डी. उपाधि के लिए अंग्रेजी में लिखे मेरे 'शोध-ग्रन्थ' 'महाराजा मानसिंह ऑफ जोधपुर एण्ड हिज टाइम्स' का हिन्दी अनुवाद है। राजस्थान विश्वविद्यालय के नियम के अनुसार उस समय शोध-ग्रन्थ केवल अंग्रेजी भाषा में ही लिखा जा सकता था। हर्ष की बात है कि अब राजस्थान विश्वविद्यालय ने नियम में परिवर्तन कर हिन्दी में भी शोध-ग्रन्थ लिखने की छूट दे दी है।

अस्तु, जब मेरा शोध-ग्रन्थ प्रकाशित हुआ तो मेरी हार्दिक इच्छा हुई कि उसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हो। अतएव मैंने 'राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी' से हिन्दी अनुवाद को प्रकाशित करने की प्रार्थना की जिसे अकादमी ने स्वीकार कर लिया, मैं इसके लिए अकादमी की अत्यन्त आभारी हूँ। अकादमी की कृपा से ही हिन्दी में यह पुस्तक प्रकाशित हो सकी अन्यथा उसका प्रकाशित हो सकना कठिन था क्योंकि सामान्य प्रकाशक शोध-ग्रन्थों को प्रकाशित करने की जोखिम नहीं उठाते।

जहाँ तक इस शोध-ग्रन्थ की विषय सामग्री का प्रश्न है, इसमें उस काल का ऐतिहासिक और प्रामाणिक चित्रण किया गया है जबकि भारत में चरम सीमा की राजनीतिक अस्थिरता, अव्यवस्था, अशान्ति और लूटपाट का साम्राज्य था। मुग़ल साम्राज्य का विघटन हो चुका था, मुग़ल साम्राज्य के प्रतीक स्वरूप मुग़ल सम्राट् दिल्ली के सिंहासन पर अवश्य आसीन था परन्तु वह अत्यन्त शक्तिहीन और असहाय था। मराठों की सेनाएँ समस्त भारत को पदाक्रान्त कर रही थीं, उनके अनुचर पिंडारी विध्वंस, विनाश और लूटपाट कर रहे थे। ईस्ट इंडिया कंपनी का बहुत बड़े क्षेत्र पर वर्चस्व स्थापित हो चुका था और वह सार्वभौम सत्ता के रूप में क्रमशः उभर रही थी। राजपूताने के विभिन्न राज्य परस्पर युद्धों में फँस कर अपनी शक्ति को नष्ट कर रहे थे और मराठों और पिंडारियों को अपनी सहायता के लिए आमंत्रित कर उनके शोषण का शिकार बन रहे थे। वीर और स्वाभिमानी राजपूत जाति पतन की ओर अग्रसर हो रही थी, जिसका ज्वलन्त और लज्जाजनक उदाहरण हमें कृष्णा-कुमारी काण्ड में देखने को मिलता है।

जोधपुर के महाराजा मानसिंह और उनका काल

अवश्य ही भारत के राजनीतिक जीवन का यह अत्यन्त अन्धकारमय काल था। भारत अनजाने में अपनी स्वतंत्रता को खोकर ब्रिटिश दासता के जुए को अपने कंधों पर रखने की तैयारी कर रहा था। इस शोध-ग्रन्थ में उसी काल का अप्रकाशित मूल स्रोतों से प्राप्त ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर सही और प्रामाणिक चित्र उपस्थित किया गया है।

जयपुर, १९७३ — पद्मजा शर्मा

विषय-सूची

अध्याय		पृष्ठ संख्या
१.	मानसिंह के प्रारम्भिक वर्ष और उसका राज्याभिषेक	१
२.	कृष्णा कुमारी काण्ड	३२
३.	अमीरखाँ और मारवाड़	७५
४.	मानसिंह के अंग्रेजों से सम्बन्ध	९७
५.	मानसिंह और नाथ	१३७
६.	प्रशासन भाग—१	१७१
७.	मानसिंह के शासनकाल में मारवाड़ की वित्तीय स्थिति	२०१
८.	समाज और संस्कृति	२३४
९.	उपसंहार	२६२
	शब्दावली	२८३
	चुने हुए संदर्भ-ग्रन्थों की सूची	२९३
	परिशिष्ट	३०१

संक्षिप्त शब्द-संकेत

ऐनल्स	:	ऐनल्स एण्ड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ राजस्थान—टॉड
डी. एच. जे.	:	दफ्तर हजूरी जोधपुर
डी. के.	:	ढ़ोलियों का कोठार रेकर्ड
एफ. पी.	:	फारेन पोलीटिकल (वैदेशिक राजनीतिक)
एफ. एस.	:	फारेन सीक्रेट (वैदेशिक गोपनीय)
पी. आर. सी.	:	पूना रेजीडेंसी कर्सपोंडेंस (पूना रेजीडेंसी का पत्र-व्यवहार)
आर. ए.	:	राजपूताना एजेंसी
आर. ए. आर.	:	राजपूताना एजेंसी रेकर्ड
आर. एस. ए. बी.	:	राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर
एस. बी. एल.	:	सरस्वती भण्डार लाइब्रेरी (सरस्वती भण्डार पुस्तकालय)
एस. पी. डी.	:	सिलैक्शन्स फ्रॉम पेशवा दफ्तर (पेशवा दफ्तर से संग्रहीत)
वि. सं.	:	विक्रम सम्वत्
एफ.	:	अप्रकाशित पुस्तकों के पृष्ठ (फोलियो)
संख्या	:	क्रम संख्या
उ. लिखित	:	जिस पुस्तक का नाम पहले दिया जा चुका है।
कान्स	:	कन्सलटेशन्स (परामर्श सम्बन्धी पत्र-व्यवहार की फाइल)

विषय प्रवेश

मानसिंह के शासन-काल के पूर्व राजपूताने की राजनीतिक स्थिति का संक्षिप्त सर्वेक्षण

मुगलों का पतन और उसका राजपूताने पर प्रभाव :

उस समय जबकि सम्पूर्ण भारत में राजनीतिक परिवर्तन विशाल स्तर पर प्रभावी हो रहे थे, राजपूताने के राजे-महाराजे केवल अपने आपको समाप्त करने में व्यस्त थे।[1] यद्यपि ये लोग प्राचीनकाल से परम्परागत रूप में सम्मानित थे तथापि वे किसी महान शक्ति की छत्र-छाया में पड़े रहने के अभ्यस्त थे। जब तक मुग़ल साम्राज्य की सत्ता रही और वह शक्तिशाली रहा तब तक मुग़ल सम्राटों द्वारा राजपूतों की सैनिक प्रतिभा का उपयोग किया जाता रहा। इस प्रकार वे मुग़ल-मनसबदार की हैसियत से साम्राज्य के राज्यकार्यों में महत्त्वपूर्ण भाग लेते रहे और साम्राज्य उनकी अनियंत्रित युद्धप्रियता पर पर्यवेक्षण तथा नियंत्रण भी रखता रहा। क्योंकि वे साम्राज्य के नियंत्रण से स्वतंत्र रहकर कार्य करने के अभ्यस्त नहीं थे, अतः साम्राज्य के उत्तरोत्तर पतनशील होने पर, वे अपने आन्तरिक झगड़ों और कलह में प्रवृत्त होने लगे।[2]

मुग़ल-शक्ति के पतन से राजपूताने के राजनीतिक जीवन में भी एक प्रकार की शून्यता आगई। अट्ठारहवीं शताब्दी में राजपूताना किसी ऐसे रचनात्मक प्रतिभाशाली व्यक्ति को उत्पन्न करने में असफल रहा जो कि एक नए साम्राज्य के निर्माण की कल्पना कर सकता। अधिकांश नरेशों में चरित्र और राजनीतिक दूरदर्शिता का सर्वथा अभाव था। मेवाड़ के महाराणा जगतसिंह द्वितीय (१७३४-१७५२) अत्यन्त आरामतलब और निर्बल थे, कुछ ठोस कार्य कर सकना उनके लिए सम्भव नहीं

---

१. मैटकाफ की रिपोर्ट, २५ सितम्बर १८१६ (पूना रेकॉर्ड)

२. सरकार : फाल ऑफ मुग़ल एम्पायर भाग १, पृष्ठ १३१-३२

था।[3] मारवाड़ के अजीतसिंह और अभयसिंह अपने चरित्र तथा अस्थिर नीति के कारण मुगलों के पतन से लाभ नहीं उठा सके। उनके उत्तराधिकारी बख्तसिंह, रामसिंह और विजयसिंह अपने आन्तरिक कलह तथा संघर्षों में ही उलझे रहे।[4] सवाई जयसिंह यद्यपि असाधारण मानसिक और बौद्धिक गुणों का धनी था तथा कला, वास्तुकला, ज्ञान, कूटनीति और नागरिक प्रशासन में उसकी गहन रुचि थी तथापि उसमें एक राजपूत सैनिक की हिम्मत और अग्नि नहीं थी।[5] उसके दो पुत्र ईश्वरीसिंह और माधोसिंह अधिकतर अपने उत्तराधिकार के झगडे में ही व्यस्त रहे।[6] कोटा और बूंदी के शासक प्रथम तो सर्वोच्चता के झगड़े के शिकार हो गए और उसके उपरान्त राजपूताने की सामान्य अव्यवस्था में उलझ गए।[7] तब तक राजपूताने के सामन्त भी अपने पूर्व तेज और शक्ति को बहुत कुछ खो चुके थे। शिक्षा और उचित प्रशिक्षण के अभाव में वे अपनी जागीरों का कुशलतापूर्वक प्रशासन करने में असफल थे। उनकी पारस्परिक शत्रुता ने उन्हें समाज के एक भयंकर व्रण (फोड़े) का रूप दे दिया था।[8] सम्पूर्ण उत्तर-भारत में अन्य कोई ऐसी शक्ति नहीं थी जो इस रिक्तता को भर सकती।[9]

मराठों का अन्तः प्रवेश :

इन परिस्थितियों में मराठों के लिए राजपूताने में अपना पैर जमाना किंचित भी कठिन नहीं था। जहाँ तक साहस और युद्ध करने की क्षमता का प्रश्न था, राजपूत मराठों से सम्भवतः श्रेष्ठ थे। परन्तु जहाँ राजपूतों में प्राचीनता के अभिमान के अतिरिक्त और कोई ऊँचा राजनीतिक आदर्श नहीं था, मराठों को उनके आदर्श 'हिन्दू पदपादशाही' की प्रेरणा ने, भले ही वह आदर्श केवल एक अस्पष्ट भावनामात्र ही

---

३. टॉड : एनल्स भाग १, पृष्ठ ३३८

४. २२ जुलाई १८२२ का लिखा हुआ, विल्डर का आक्टरलोनी को पत्र। पुरानी जोधपुर फाइल सं० ५, आर० ए० आर०, टॉड का विचार था कि विजयसिंह की असफलता का कारण उसकी निर्बलता और असामरिक आदतें थीं। (टॉड उल्लिखित भाग २, पृष्ठ १०३)

५. वंशभास्कर, पृ० ३२२२; टॉड : भाग २, पृष्ठ २८८—२८९, सरकार : उल्लिखित भाग १, पृष्ठ १३५

६. सरकार : उल्लिखित भाग १, पृष्ठ १३३—३४ और १५८—५९

७. सरकार : उल्लिखित भाग १, पृष्ठ १३३

८. सरकार : उल्लिखित, भाग ४, पृष्ठ ७२, ७४

९. बनर्जी : लेक्चर्स ऑन राजपूत हिस्ट्री, पृष्ठ १३८

था, उन्हें द्विगणित बल से आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया था।[10] जिन परिस्थितियों के फलस्वरूप मराठों का हस्तक्षेप हुआ वे अंशतः सवाई जयसिंह की अविचारपूर्ण नीतियों और अंशतः कतिपय राज्यों में व्याप्त अत्यधिक अव्यवस्था की स्थिति का परिणाम थीं। मारवाड़ राज्य की शक्ति औरंगजेब के विरुद्ध उस संघर्ष के कारण क्षीण हो चुकी थी जो १६७६ में जसवन्तसिंह की मृत्यु के तुरन्त बाद आरम्भ हो गया था।[11] उसके पुत्र अजीतसिंह के १७०८ में सम्राट के पुनः कृपापात्र बन जाने[12] और १७१२,[13] १७१४[14] एवं १७१६[15] में गुजरात का सूबेदार नियुक्त हो जाने पर भी वे उस सर्वोच्च गरिमा को प्राप्त न कर सके जो उसके पिता को प्राप्त थी।[16] यहाँ तक कि उसका पुत्र अभयसिंह भी, जो १७३० में[17] गुजरात और अजमेर का सूबेदार नियुक्त किया गया, अपनी उस नियुक्ति से मुख्यतः अपने पारिवारिक झगड़ों में फँसे रहने के कारण कोई लाभ न उठा सका।[18] १७४० ई० में बीकानेर के विरुद्ध चढ़ाई करने के कारण उसे जयपुर से एक नए युद्ध में उलझना पड़ा। युद्ध के प्रारम्भिक दौर में (१७४१ ई० में) गंगवाना के स्थान पर वह कछवाहों को परास्त करने में सफल भी हो गया, परन्तु यदि उसका अन्तिम विश्लेषण करें तो विदित होगा कि उस सम्पूर्ण उपद्रव से उसको कोई सुविधा या लाभ प्राप्त

---

१०. फारेस्ट : सैलेक्शन्स फ्राम दी स्टेट पेपर्स ऑफ गवर्नर जनरल ऑफ इंडिया, वारेन हेस्टिंग्स, भाग २, पृष्ठ ५८

११. परिहार : मारवाड़ एण्ड दी मराठाज़ पृष्ठ १२, जगजीवन राम भट्ट : अजितोदय, कैन्टो १३, श्लोक १३–१४ और कैन्टो १४, श्लोक १८–२७, कैन्टो १५, अजीत-ग्रन्थ, पृष्ठ ३१५–३५६, वीरभान : राजरूपक प्रकाश १७, श्लोक २८, ५६, पृष्ठ २६७, ३०५

१२. अजितोदय, कैन्टो १७, श्लोक ११

१३. अख़बारात तारीख २५, शव्वाल १ (१२ नवम्बर १७२१), जगजीवन द्वारा महाराजा जयपुर की रिपोर्ट—वि० सं० १७६९ मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष की नवमी (११ नवम्बर १७१२)

१४. वि० सं० १७७०, कार्तिक मास कृष्ण पक्ष की पंचमी की जगजीवन द्वारा महाराजा जयपुर की रिपोर्ट।

१५. खफीखाँ, मुन्तखाब-उल-लुबाब भाग २, पृष्ठ ८०४

१६. बनर्जी : उल्लिखित पृष्ठ १३६

१७. वि० सं० १७८७, कार्तिक मास शुक्ल पक्ष द्वादशी (१० नवम्बर १७३०) का अभयसिंह का अमरसिंह को पत्र।

१८. सरकार : उल्लिखित भाग प्रथम, पृष्ठ १३५–१३६, बनर्जी उल्लिखित पृ० १३६

नहीं हुआ।[१९] १७४९ ई० में उसकी मृत्यु ने मारवाड़ को उसके भाई बख्तसिंह और उसके पुत्र रामसिंह के मध्य होने वाले उत्तराधिकार के झगड़े की अग्नि में झोंक दिया।[२०] वस्तुत: गद्दी के लिए किए गए इस संघर्ष के साथ मारवाड़ में न केवल कलह और विनाश ही आया वरन् उसके कारण मारवाड़ को चरमसीमा का अपमान भी सहना पड़ा। बख्तसिंह अपनी सहायता और समर्थन के लिए शाही मीरबख्शी सलाबतजंग को लाया और रामसिंह ने मल्हारराव होल्कर से सहायता माँगी।[२१] फलत: मराठों के प्रवेश ने मारवाड़ के प्रारब्ध को प्रतिकूल ढंग से प्रभावित करना आरम्भ कर दिया।

जयपुर के शासकों की भी स्थिति खेदजनक हो गई। जो उच्च पद-स्थिति उन्होंने तब तक प्राप्त करली थी उसको अधिक दृढ़ और शक्तिशाली बनाने के स्थान पर उन्होंने अपने को मुग़ल साम्राज्य के विघटन से उत्पन्न होने वाली जटिलताओं और उलझनों में फँसा दिया। सवाई जयसिंह में अपने प्रपितामह मिर्जा राजा जयसिंह जैसी न तो हिम्मत ही थी और न उद्यम और कूटनीतिज्ञता ही। सम्राट के प्रति उसकी निष्ठा और स्वामिभक्ति भी संदेह के परे नहीं थी।[२२] उसकी मराठों के प्रति विश्वासघाती अधीनता, उसका बूंदी के मामले में हस्तक्षेप, और मारवाड़ तथा बीकानेर के झगड़े में फँसना, जिसका परिणाम हुआ गगवाना की पराजय जैसा अनर्थ आदि—इन सब कारणों से उसकी कठिनाइयों में वृद्धि हुई और उसकी स्थिति कमज़ोर होगई। यथार्थ यह है कि यह उसके वश की बात नहीं थी कि वह मराठों का उत्तर की ओर बढ़ना रोक सकता और यह भी यथार्थ है कि वह अकेला ही उन परिणामों के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता जो कि मराठों के आक्रामक प्रवाह के कारण उत्पन्न हुए परन्तु यह सत्य है कि उसकी गलत नीति ने अवश्य ही मराठों को राजपूताने में प्रवेश कर सकने में सहायता पहुँचाई जिसके परिणामस्वरूप अन्ततोगत्वा राजपूताने के विभिन्न राज्य मराठों के आक्रमण के शिकार हो गए।[२३]

---

१९. राठौर दानेश्वर वंशावली, पृ० २८३, वंशभास्कर, पृष्ठ ३३०४–१२, बनर्जी, उल्लिखित पृष्ठ १३६

२०. हिनगने दफर भाग २, पृ० ८, विजय विलास, कैन्टो ६, श्लोक १०३, राठौर दानेश्वर वँशावली, पृष्ठ २९५, दयालदास ख्यात भाग २, एफ ७२–७३, मारवाड़ ख्यात भाग २, एफ १७२

२१. एस० पी० डी० भाग २, १६, २१, २५, २७, ३५ मारवाड़ ख्यात भाग २, एफ० एफ० (१७१–७२ १ ५) टॉड : ऐनल्स भाग २, पृष्ठ २८८–८९

२२. बनर्जी : उल्लिखित, पृष्ठ १३७–३८

२३. वंशभास्कर, पृष्ठ ३५४२–३५४७, ३२८५

बूंदी खंड :

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, सवाई जयसिंह ने १७२९ ई० में राव राजा बुद्धसिंह को हटाकर अपने व्यक्ति दलेलसिंह को, जिसका बूंदी के राजसिंहासन पर कोई कानून-सम्मत अधिकार नहीं था, बिठाने का प्रयत्न किया। बूंदी को अपना अधीन राज्य बनाने की मोहासक्ति में उसने एक ऐसा विवाद खड़ा कर दिया जिसने उन्नीस वर्षों से अधिक समय तक (१७२९-४८) कोटा, बूंदी और जयपुर को आत्म-घातक युद्ध की लपटों में फँसाये रखा। उस अवधि में बुद्धसिंह और उसके पुत्र उम्मेदसिंह ने भयंकर युद्ध किया। युद्ध में वे कभी सफल हुए तो कभी असफल; परन्तु उन्होंने कभी पराजय स्वीकार नहीं की। बुद्धसिंह की कछवाही रानी ने मल्हार राव होल्कर को अपनी सहायता के लिए आमंत्रित कर लिया और उसके परिणाम-स्वरूप जो भयंकर उपद्रव उठ खड़ा हुआ उसने सभी युद्धरत पक्षों का सम्पूर्ण विनाश कर दिया।[२४]

राजपूतों द्वारा एकता स्थापित करने में असफलता :

सन् १७३४ में होल्कर और सिंधिया की सम्मिलित सेनाओं ने जब बूंदी पर आक्रमण किया तब प्रथम बार राजपूताने के नरेश उस खतरे के प्रति सावधान हुए। उस समय सवाई जयसिंह ने राजपूत राजाओं को संगठित करने का प्रयत्न किया, परन्तु वह व्यर्थ रहा। राजपूत दीर्घकाल से एकाकी रहने के अभ्यस्त हो चुके थे और उनके लिए यह सम्भव नहीं था कि वे मराठों को आगे बढ़ने से रोकते।[२५] उनकी इस असफलता पर प्रकाश डालते हुए सर जदुनाथ सरकार ने लिखा है कि मुगलशाही कुलीनवर्ग का पतन हो जाने पर उनके सहयोग के अभाव में वे दक्षिणी आक्रमण-कारियों से अपनी पितृभूमि की रक्षा नहीं कर सके।[२६] पुनः जब पेशवा बाजीराव १७३६ ई० में मेवाड़ आया तब जगतसिंह के पास इसके अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं था कि वह उसे एक लाख साठ हजार रुपये वार्षिक (अधिकर) दे और उसकी अदायगी के लिए बनेड़ा का परगना उसको अर्पण करदे।[२७]

जयपुर के उत्तराधिकार का विवाद :

१७४३ में सवाई जयसिंह की मृत्यु के उपरान्त जब उसके पुत्रों—ईश्वरीसिंह

२४. वही पृष्ठ ३२२७

२५. सरकार : उल्लिखित भाग १, पृष्ठ १४०

२६. यह रकम तीन हिस्सों रु० ५३३३३-०-४ में बँट जाती थी और वह होल्कर, सिंधिया और पाऊर को दे दी जाती थी (टॉड : उल्लिखित—भाग १, पृ० १४६

२७. सरकार : उल्लिखित भाग पृष्ठ १३३

और माधोसिंह—के बीच उत्तराधिकार का युद्ध जयपुर में भी प्रारम्भ हो गया तब मराठों के हस्तक्षेप का स्वरूप और भी अधिक भयंकर और विनाशकारी हो गया। सवाई जयसिंह ने मेवाड़ के महाराणा जगतसिंह की पुत्री से विवाह करते समय यह वचन दे दिया था कि उससे उत्पन्न होने वाला पुत्र ही उसका उत्तराधिकारी होगा। क्योंकि ईश्वरीसिंह जो अन्य महारानी से उत्पन्न था मेवाड़ की राजकुमारी के पुत्र माधोसिंह से ज्येष्ठ था, अतएव उसने गद्दी पर अपने उत्तराधिकार का दावा किया।[२८] उदयपुर के महाराणा ने माधोसिंह के पक्ष का समर्थन किया और उसकी ओर से मल्हारराव होल्कर की सहायता चाही।[२९] इस विवाद का कालान्तर में ऐसा अशोभनीय स्वरूप बन गया कि दोनों पक्षों को मराठों से सैनिक सहायता माँगने हेतु विवश होना पड़ा और उस सहायता का बहुत ऊँचा मूल्य चुकाना पड़ा। अन्त में जब ईश्वरीसिंह अपने मराठा मित्रों की वित्तीय माँगों को पूरा करने में असफल रहा तो उसको आत्महत्या करनी पड़ी।[३०] इसके उपरान्त मल्हारराव होल्कर ने १७५० ई० में माधोसिंह को जयपुर की गद्दी पर बिठाया। यद्यपि माधोसिंह को भी होल्कर की धन की माँग को पूरा करना कठिन प्रतीत हुआ तथापि उसने झूठे वायदे तथा षडयंत्रों के द्वारा मराठों को दूर रखा।[३१]

महाराणा प्रतापसिंह के राजत्वकाल में, जो कठिनाई से तीन वर्ष (१७५२ से १७५४ तक) का था, मेवाड़ के द्वारा मराठों को और भी अधिक रकम चुकानी पड़ी।[३२] उसके उपरान्त महाराणा राजसिंह द्वितीय के शासनकाल (१७५४–६१) में पुनः मराठों की लूटमार ने मेवाड़ की भयंकर दुर्दशा करदी।[३३] मारवाड़ में भी जब १७५२ में बख्तसिंह की मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्र विजयसिंह और उसके भतीजे रामसिंह में उत्तराधिकार का एक नया युद्ध छिड़ गया, तब मराठों के हस्तक्षेप ने भी अनर्थकारी स्वरूप अपना लिया। राठौड़ों को जयआपा सिंधिया की हत्या का, जो

---

२८. एस० पी० डी० भाग २, संख्या २२–२६ संख्या २६, सरदेसाई : ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार भाग—२, पृष्ठ ६८

२९. एस० पी० डी० भाग २, पृष्ठ ३१, वंशभास्कर पृष्ठ ३६०८–३६११

३०. वंशभास्कर पृष्ठ ३६२२, एस० पी० डी० भाग २७, संख्या ६४–६५

३१. टॉड : उल्लिखित भाग १, पृष्ठ ३३६, मेवाड़ में सतवाजी, जनकौजी, रघुनाथ राव आए (टॉड, उल्लिखित पृष्ठ ३३६ एफ० एन० १)

३२. टॉड : उल्लिखित भाग १, पृष्ठ ३३६, एस० पी० डी० २१, १६७–१७२

३३. चहार-गुलजार ४०० बी० सारदेसाई : ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार १३६–१४१ एस० पी० डी० भाग २ संख्या ४८, भाग २७ संख्या १३६ शाहियाँ इतिहासाँची साधने, बनर्जी उल्लिखित पृ० १४१

१७५५ में की गई थी, बहुत ऊँचा मूल्य चुकाना पड़ा।[३४] उसका परिणाम केवल यही नहीं हुआ कि अजमेर को मराठों के अधिकार में दे देना पड़ा वरन् मारवाड़ सिंधिया की लूटमार का केन्द्र ही बन गया।[३५]

मराठों को निकाल बाहर करने में राजपूतों की असफलता :

१७६१ में पानीपत के तृतीय युद्ध में हुए भयंकर विनाश के कारण मराठे बहुत निर्बल होगये थे। राजपूत उनकी उस स्थिति का अवश्य ही लाभ उठा सकते थे। परन्तु, ऐसा करने के लिए न तो उनमें साहस ही था और न क्षमता ही थी। जयपुर के माधोसिंह ने उत्साह रहित भाव से ही उनको निकाल बाहर करने का प्रयत्न f या। उसने १७५५ में विजयसिंह और सूरजमल की सहायता से मराठा विरोधी संघ का संगठन किया था। उसने अहमदशाह अब्दाली, शाहआलम द्वितीय, नजीबखाँ रुहेला, और अन्य राजपूत राजाओं से भी सहायता चाही थी पर न तो विजयसिंह के लिए ही यह सम्भव हो सका कि वह उसके कार्य में सहायक होता और न मेवाड़ का महाराणा ही उसके बचाव के लिए आ सका। मेवाड़ गृहयुद्ध के कारण पहले ही शक्ति हीन और नष्ट हो चुका था, मराठों की लूटमार ने उसको वित्तीय दृष्टि से दिवालिया बना दिया था, और मारवाड़ भी गृहयुद्ध की अग्नि की लपटों में घिरा हुआ था। अस्तु, माधोसिंह का यह अधूरे उत्साह से किया गया प्रयत्न २९ नवम्बर १७६१ को असफल हो गया, क्योंकि मंगरोल के युद्ध में मल्हारराव होल्कर की सेना ने जयपुर की सेना को परास्त कर दिया। उसके उपरान्त १७६९ में

---

३४. एस० पी० डी० २१–७०, ८२–८३ दो० ५४, ५६, ६५, २७, १२६ बनर्जी उल्लिखित पृ० १४१, सारदेसाई ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार।

३५. एस० पी० डी० २७, ११२, ११९, ११७, २७५, २१, ७१, ७३, ७७, ७६, ८०, २, ४९, ५५ (जोकि २१ ७४ से पूरा होता है) ५१, ५३, ५४, ८७ (२७ का उत्तर—सं० ११२) एस० पी० डी० २, संख्या ५–६, २१, ९२–९४, २९, २७, टॉड का कथन है कि इस युद्ध को (जिसे वह भटवारा का युद्ध कहता है) एकमात्र जालिमसिंह और कोटा की सेना ने जीता था। मल्हारराव ने केवल कछवाहों के शिविर को लूटा भर था। (टॉड—उल्लिखित २, पृ० ४७७), परन्तु नितान्त समकालीन मराठा लेखों से यह कहानी असत्य सिद्ध होती है। कोटा की ढ़ाई हज़ार सेना कछवाहों की दस हजार अश्वारोही सेना को जो तोपखाने, भुतरनाल और राकेट से लैस थी, भगा नहीं सकती। नौ घंटे तक मल्हारराव उस भयंकर युद्ध में लड़ता रहा—उससे पता चलता है कि मराठों ने प्रथम युद्ध का सारा भार वहन किया और जालिमसिंह का हिस्सा उसमें कम था (फालके—शिंदेशाही इतिहासांचे साधने भाग दो, पृष्ठ ६५)

अरिसिंह प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उदयपुर में उत्तराधिकार का युद्ध आरम्भ हो गया। उसके कारण मराठों को हस्तक्षेप के लिए अवसर मिल गया। होल्कर और महादाजी सिंधिया दोनों ने ही उदयपुर पर १७६९ में आक्रमण किया और महाराणा अरिसिंह को उन्हें ६४ लाख रुपए देने पड़े। क्योंकि मेवाड़ की स्थिति इतनी बड़ी रकम चुकाने की नहीं थी, अस्तु जावद, जिरन और नीमच के ज़िलों को सिंधिया के प्रशासनिक नियंत्रण में दे दिया गया। होल्कर ने निम्बाहेड़ा को अपने नियत्रण में ले लिया। इस प्रकार मेवाड़ के अंगों को काट-काट कर मराठों को दिया जाने लगा।[३६] इसके उपरान्त महाराणा हमीरसिंह के राजत्वकाल (१७७३–७८) में आन्तरिक विद्रोहों को दबाने के लिए अत्यधिक फौज खर्च देकर मराठों से पुन: सहायता प्राप्त की गई। दिल्ली में महादाजी सिंधिया के उत्कर्ष से उसकी स्थिति राजपूताने में और भी दृढ़ हो गई। जून १७९० में पाटन[३७] और सितम्बर १७९० में मेड़ता[३८] की डी-बौयगनों की विजयों ने राजपूताने में सिंधिया के असंदिग्ध प्रभुत्व को स्थापित कर दिया और राजपूतों को यह अनुभव करा दिया कि तूंगा में जुलाई १७८७ में उनको जो विजय प्राप्त हुई थी वह आकस्मिक परिस्थितियों के कारण थी। १७९० से १७९३ तक के तीन वर्षों के काल में सिंधिया और होल्कर में भयंकर शत्रुता रही और उत्तर भारत में अपना अधिकार जमाने के लिए उनमें जो संघर्ष छिड़ गया उससे राजपूताने के राज्यों को केवल आकस्मिक चैन मिला।[३९] राजपूत शासकों की दृष्टि में वह युद्ध दो जंगली हाथियों के मध्य का युद्ध था और वे उससे तनिक भी लाभ उठाए बिना नितान्त उदासीनता से उसको देखते भर रहे। उनका संतोष केवल इस बात में निहित था कि जब तक उनका युद्ध चलता रहता तब तक वे मराठों को उनका वार्षिक देय देना बन्द कर सकते थे, और शान्तिपूर्वक तब तक प्रतीक्षा कर सकते थे जब तक कोई एक दूसरे पर अपना प्रभुत्व स्थापित न कर लेता।[४०] इस दीर्घकालीन संघर्ष का परिणाम जून १७९३ में लाखेरी के उस युद्ध ने घोषित कर दिया जिसमें सिंधिया अपनी विजय पताका फहराता हुआ विजयी होकर निकला।[४१]

---

३६. एम० पी० डी० भाग २९, संख्या ८७, २२३ से २४४ तक, टॉड : उल्लिखित भाग प्रथम, पृष्ठ ३४४

३७. टॉड : उल्लिखित भाग प्रथम, पृष्ठ ३४५

३८. सरदेसाई जी० एस०, हिस्टारिकल पेपर्स रिलेटिंग टू महादाजी सिंधिया, सं० ५७४, डी० बाग्ने—मेमायर्स डी० बी०, पृष्ठ ८५, सरकार : उल्लिखित भाग ४, पृष्ठ २३–२४

३९. सरकार : उल्लिखित भाग ४, पृष्ठ ३१–३७

४०. वही पृष्ठ ७०

१. सरकार : उल्लिखित भाग ४, पृष्ठ ७०

यह भाग्य की विडम्बना ही कही जायगी कि राजपूतों ने अपनी स्वभावजन्य आराम-तलबी और मूर्खता से उस अनुकूल अवसर को भी अपने हाथ से निकल जाने दिया। सिंधिया के सेनापति डी-बागने और पैरों इसके उपरान्त शीघ्र ही राजपूत राज्यों से अपने देय की वसूली करने के लिए वापस आ पहुँचे।[४२] राजपूताने के नरेशों को अपनी भूल का अनुभव बहुत देर के पश्चात् हुआ। उन्होंने होल्कर के झगड़े से सिंधिया के मुक्त हो जाने के बहुत समय उपरान्त अपना संघ बनाया। जयपुर और जोधपुर की सम्मिलित सेनाओं को मालपुरा में अप्रैल १८०० में भयंकर पराजय मिली जिसके परिणामस्वरूप सिंधिया का राजपूताने पर प्रभुत्व एक वास्तविक तथ्य बन गया।[४३]

मराठा लूट का प्रभाव :

इस प्रकार १७०७ से १८०० तक राजपूताना, राज्यों में परस्पर शत्रुता, उत्तराधिकार के झगड़ों, तथा एक समूह द्वारा दूसरे समूह पर प्रधानता अथवा प्रभुत्व स्थापित करने के अशोभनीय संघर्षों में फँसा रहा। प्रत्येक राज्य में प्रतिस्पर्द्धी प्रार्थी और विरोधी दावेदारों ने अपनी सहायता के लिए मराठों को आमंत्रित किया। १७४८ में अभयसिंह ने अपने भाई बख्तसिंह के विरुद्ध सहायता के लिए होल्कर से प्रार्थना की। वह उसे प्रतिदिन ग्यारह हजार रुपये देने को तैयार था।[४४] १७५१ में रामसिंह ने सिंधिया को दो मास का दस से बारह हजार सेना का व्यय पेशगी देकर उसकी सहायता चाही थी।[४५] बख्तसिंह को भी होल्कर को दो लाख रुपये देने पड़े।[४६] मराठों का मूल स्वार्थ कभी एक के विरुद्ध सैन्य-संचालन करना तो कभी दूसरे के विरुद्ध चढ़ाई करने, अनेक युद्ध लड़ने और वीभत्सपूर्ण निर्दयता के कार्य करने में था। इस प्रकार उत्तराधिकार के युद्धों और राज्यों की पारस्परिक शत्रुता ने मराठों का राजपूत राज्यों में केवल प्रवेश और वहाँ अपना प्रभाव क्षेत्र स्थापित कर लेना ही सम्भव नहीं बना दिया वरन् वहाँ से जितना धन वे बलपूर्वक खींच सकते थे उतना ले लेना भी सम्भव बना दिया। पिंडारियों ने, जो कि मराठों के पदचिह्नों पर चल रहे थे उन्होंने, और भी विनाश की स्थिति उत्पन्न करदी। ये नियमित युद्ध तथा घेराबंदी की सैनिक सामग्री लेकर घूमते थे और इस प्रकार राजाओं और सत्ताधारियों

४२. गुलगुले दफ्तर होल्कर कैफियत ६४, पारसनिस, डी० बी० महेश्वर दरबाराची बातमी, पत्र संख्या २४१, पी० आर० सी० भाग आठ, भूमिका पृष्ठ ३

४३. बनर्जी : उल्लिखित पृष्ठ १४३

४४. मारवाड़ ख्यात भाग दूसरा, एफ १०

४५. खरे जी० एच० हिन्गाने दफ्तर-भाग प्रथम, पृष्ठ ५९

४६. राठौर दानेश्वर वंशावली, पृष्ठ ३६६

को भयभीत कर उनके भयभीत होने का लाभ उठाते थे। वे उन पर इस प्रकार का आतंक जमाते थे जिस प्रकार का आतंक कि कोई शक्तिशाली और क्षमतावान सेना ही जमा सकती थी; इस विधि से वे उनसे धन तथा अन्य प्रकार के लाभ ऐंठते थे।[४७] इसके अतिरिक्त सिंधिया और होल्कर की प्रतिद्वन्द्विता और उनके युद्धों के परिणामस्वरूप होने वाले विध्वंस ने राजपूताने को विनाश के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया। वे अपनी सहायता का इतना अधिक मूल्य माँगते थे कि राजपूताने के प्रशासकों को उनकी माँग की पूर्ति करना कठिन प्रतीत होता था। १७६० में मेड़ता के युद्ध के उपरान्त महादाजी सिंधिया ने जो खर्चे की माँग की उसमें फौज-खर्च, दरबार खर्च, खासा खर्च, बराड़, और बोलानी के खर्च सम्मिलित थे। कुल खर्चों की रकम साठ लाख रुपये थी।[४८] इनके अतिरिक्त बापूजी सिंधिया ने होली, दशहरा और गणेश चौथ के पर्वों पर क्रमशः होली भेंट, दशहरा भेंट, और गणेश चौथ भेंट और ली।[४९] कई अवसरों पर उन्होंने घोरी बराड़ भी वसूल की।[५०] जब विजयसिंह इस भारी व्यय को चुकाने में असफल रहा तो उसे अन्ततः विवश होकर मेड़ता, डीडवाना, और नावा के परगने १७ सितम्बर १७९२ को मराठों को सौंप देने पड़े।[५१] अट्ठारहवीं शताब्दी के समाप्त होने तक राजपूताने के राज्यों की दुर्दशा चरम सीमा पर पहुँच गई और परस्पर के घातक युद्धों के कारण उनका प्रशासन अस्तव्यस्त हो गया जिससे उस क्षेत्र के प्रत्येक व्यवसाय और धंधे को क्षति होने लगी। आर्थिक विनाश इतना अधिक हुआ कि राजपूताने के लगभग सभी राज्य वित्तीय दृष्टि से दिवालिए हो गए।[५२] अस्तु, अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त से बहुत पहले ही राजपूताने के राज्यों का भ्रम नष्ट हो गया। बीकानेर और जैसलमेर के दो राज्यों को छोड़कर, जोकि शेष राजपूताने से भौगोलिक एकान्त स्थिति के कारण दूर तथा मराठा प्रभाव की सीमा के बाहर थे, समस्त राजपूताना मराठा-कर उगाहने वालों की एड़ियों के नीचे कराहने लगा। उनका निरन्तर बढ़ने

---

४७. प्रिंसेप : हिस्ट्री आफ दी पोलीटिकल ट्रैन्जैक्शन्स इन इंडिया भाग प्रथम, पृष्ठ ४६

४८. महादाजी सिंधिया का विजयसिंह को पत्र पौष शुक्ल-पक्ष परवा (५ जनवरी १७९१), पोर्टफोलियो फाइल सं० ६

४९. विल्डर का आक्टरलोनी को पत्र २५ सितम्बर १८२२, ओल्ड जोधपुर फाइल सं० ५ आर० ए०

५०. वि० सं० १८१७ बस्ता सं० ५८ भंडार सं० १ कोटा रेकार्ड

५१. फाइल-जमा खर्च के बाबत स० ४४ (डी० के)

५२. वही।

वाला लोभ उन्हें पहले से ही उजड़े हुए राजपूताना के प्रदेशों से जितना भी धन वे बलपूर्वक ले सकते थे लेने के लिए प्रेरित करता था। राजपूताने के राजे केवल दबाव के कारण ही उनकी इन अनाप-शनाप ऊँची माँगों को पूरा करना स्वीकार करते थे। मराठा उनके राज्यक्षेत्र को पूरे दलबल सहित दबा लेते थे। वे केवल भूमि को ही नहीं उजाडते थे वरन् भोजन और चारे तक को भी नष्ट कर देते थे। कभी-कभी वे व्यापारियों की वस्तुओं को बलपूर्वक अपने अधिकार में ले लेते थे और उनको अपने अधिकर (कर) की बकाया रकम चुकाने हेतु विवश करते थे। जब उनकी माँगें पूरी नहीं की जाती थीं तो वे भूमि को उजाड़ते थे।[५३] इन भुगतानों को इतना जरूरी माना जाता था कि प्रशासक अपने साहूकारों को उनकी बकाया रकम चुका देने के लिए कहते थे,[५४] अथवा वे अपने हाथियों, ऊँटों, घोड़ों, बैलों, आभूषणों, बहुमूल्य वस्त्रों और जवाहरातों को बेच कर मराठों को संतुष्ट करते थे।[५५] राज्य के खजाने पर इतना अधिक भार राज्यों के बढ़ते हुए दिवालिएपन में अनिवार्य रूप से और अधिक दिवालिएपन की वृद्धि करता था तथा राजे निस्सहाय होकर उन साहसी आक्रमणकारियों को कर चुकाने के लिए उचित और अनुचित सभी उपाय काम में लाते थे। १७९४ में उदयपुर के महाराणा को अपनी उस बहिन के विवाह हेतु उपहार खरीदने के लिए जिसका विवाह जयपुर के महाराजा से होने वाला था, मराठा सेनापति से पचास हजार रुपये उधार लेने पड़े।[५६] और जब जसवन्तराव होल्कर ने महाराणा को चालीस लाख रुपये देने के लिए विवश कर दिया तो सम्पूर्ण महल में विद्यमान ऐसी सभी वस्तुएँ जो सोने में परिवर्तित की जा सकती थी ले ली गँई, यहाँ तक कि रनिवास की महिलाओं के पास जो विलासिता या आराम की वस्तुएँ थीं वे भी उनसे ले ली गईं। परन्तु इतना सब कुछ करने पर भी आवश्यक रकम एकत्रित नहीं हो सकी और उदयपुर नगर पर सभी प्रकार के कानूनी और गैरकानूनी अंशदान लगाने पर भी महाराणा बारह लाख रुपये से अधिक एकत्रित नहीं कर सका। शेष रकम की जमानत के रूप में उसे अपने राजपरिवार तथा प्रमुख नागरिकों के परिवारों के सदस्यों को बंधक के रूप में होल्कर

५३. विजयसिंह का महादाजी सिंधिया को पत्र वि० सं० १८३२ पौष शुक्ल पक्ष की सप्तमी। अर्जी बही संख्या ४ एफ ३५

५४. जमाखर्च के बाबत-फाइल संख्या ४४ (डी० के)

५५. ५ जनवरी १७९२ को ४ हाथी जिनका मूल्य दस हजार रुपए था, ४७७ ऊँट प्रत्येक का मूल्य २०० रुपये था और ४७७ जोडी बैल प्रति जोडी १२५ रुपये महादाजी को भेजे गए (जमाखर्च की बाबत फाइल संख्या ४४, ढ़ोलिया का कोठार) ?

५६. टॉड : उल्लिखित भाग, पृष्ठ ३५६

को देने का अत्यन्त कठोर कदम उठाना पड़ा।[५७] इसी प्रकार एक दूसरे अवसर पर महाराणा राजसिंह को राठौड़ राजकुमारी से विवाह करने के लिए एक मराठा ब्राह्मण से आर्थिक सहायता लेनी पड़ी।[५८] १७६० में जब महाराजा विजयसिंह को ६० लाख रुपये मराठों को देने पड़े तो उसकी वित्तीय स्थिति दिवालिएपन की चरम सीमा पर पहुँच गई। इससे पूर्व ऐसे अवसरों पर जब कभी उसे इस प्रकार की अप्रत्याशित स्थिति का सामना करना पड़ता था तो वह जागीरदारों से प्रति हजार रुपये की आय पर १५० रुपये रेख के रूप में लेता था। परन्तु इस बार अर्थात् १७६० में उसके दिवालिएपन ने उसे प्रति हजार रुपये की आय पर ५०० रुपये की रेख लेने पर विवश कर दिया।[५९] यह भार किस सीमा तक अत्यधिक सिद्ध हुआ, यह इस तथ्य से आँका जा सकता है कि महाराजा तख्तसिंह बहुत समय उपरान्त उन्नीसवीं शताब्दी में जबकि राज्य के खजाने का दिवालियापन अपनी चरम-सीमा पर पहुँच चुका था केवल अस्सी रुपये प्रति हजार पर रेख वसूल कर सका।[६०] मराठा-कर उगाही करने वालों की अत्यधिक ऊँची माँगों को पूरा करने के लिए विजयसिंह को अपने सामन्तों से दुगनी दर पर हुक्मनामा वसूल करने के लिए विवश होना पड़ा था।[६१] महाराजा भीमसिंह के राज्यकाल में मुत्सद्दियों को भी जागीरदारों द्वारा चुकाई गई रेख में से भुगतान किया जाने लगा, और उसके लिए दीवान सिंघवी जोधराज ने पाँच प्रतिशत की एक अतिरिक्त लाग 'मुत्सद्दी-खर्च' के नाम से लगादी। उस आय में से तीन प्रतिशत दीवान को और दो प्रतिशत अहलकारों को दी जाती थी।[६२]

जयपुर का महाराजा ईश्वरीसिंह मुख्यतः अपने दीवान हरगोविन्द नाटाणी की थैली पर निर्भर रहता था। वह आये दिन हर बार मराठों को भारी रकम देकर उन्हें दूर रखता था। किन्तु अन्ततः नाटाणी की मराठों को खरीदने की शक्ति समाप्त हो गई और जब वह मल्हारराव होल्कर की अत्यधिक ऊँची माँगों को पूरा करने के लिए धन इकट्ठा करने में असफल रहा तब महाराजा के लिए १२ दिसम्बर को

---

५७. वही पृष्ठ ३६३

५८. वही पृष्ठ ३३९

५९. मारवाड़ की प्रशासनिक रिपोर्ट (१८८३–८४), पृष्ठ ३५४१ जमाखर्च की बाबत फाइल सं० ४४ ढोलिया का कोठार।

६०. मारवाड़ की प्रशासनिक रिपोर्ट (१८८३–८४), पृष्ठ ३५६।

६१. एफ पी० सितम्बर २६, १८२६, संख्या ३६, मारवाड़ की प्रशासनिक रिपोर्ट (१८८३–८४) पृष्ठ ४४१

६२. वही

आत्महत्या करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं रहा।[६३]

धन की इतनी अधिक कमी का अवश्यम्भावी परिणाम यह हुआ कि राज्यों की वित्तीय स्थिति अस्तव्यस्त हो गई और शासकों को सभी प्रकार की उचित और अनुचित लागें लगानी पड़ीं। जहाँ राजपूतों की स्वतंत्रता के उस युद्ध के कारण जो मारवाड़ में १६७९ के उपरान्त लड़ा गया था तागीरात तथा अन्य प्रकार की अनेक लागें लगाई गईं[६४] वहाँ मराठों की इस लूट के कारण मारवाड़ के शासकों को अंगा, बराड़, घासमारी, घरबाब, सवार खर्च, दाना, और फौजबल लागों को लगाने पर विवश होना पड़ा।[६५] एक सबसे अधिक कष्टदायक लाग 'किवाड़ी' नामधारी थी, जिसे विजयसिंह को विवश होकर लगाना पड़ा, जिसका लोगों ने कड़ा विरोध भी किया।[६६] मेवाड़, जयपुर, जोधपुर और कृष्णगढ में मालगुजारी आधी दर से एकत्रित की जाने लगी और प्रत्येक राज्य में बजटों को संतुलित कर सकना लगभग असम्भव हो गया।[६७]

इसका स्वाभाविक परिणाम प्रशासनिक कुशलता पर बुरा पड़ा और उसके कारण एक विशेष प्रकार की लूट की प्रणाली का उदय हुआ जिसमें शासक से लेकर नीचे से नीचा अधिकारी तक प्रत्येक व्यक्ति जितना भी धन लोगों से ऐंठ सकता था उतना ऐंठ लेने में विश्वास करने लगा। परोक्ष रूप में इसके कारण राजनीतिक शक्ति या प्रभाव का केन्द्र सेना से हट कर उनके पास आगया जो उचित अथवा अनुचित साधनों से धन इकट्ठा कर सकते थे।

मारवाड़ की समस्त राजस्व की आय उन इजारेदारों को अभिहस्तांकित की जाने लगी जो अनुबन्धित राजस्व की रकम पेशगी चुका देते थे और उसके उपरान्त जनता से निर्दयतापूर्वक देय वसूल करते थे। १७९२ में विजयसिंह ने दरीबों की आय भी आठ लाख रुपयों के पेशगी भुगतान के बदले लोढ़ा ज्ञानमल को अभिहस्तांकित करदी।[६८] १७९४ में ६ लाख रुपयों के पेशगी भुगतान के बदले मोहता ज्ञानमल को कचहरियों की लागती रकम की आय अभिहस्तांकित करदी गई।[६९] कृष्णगढ़ में राज्य की समस्त मालगुजारी मोहता विजयसिंह को जो शासक को चार

६३. बनर्जी : उल्लिखित पृष्ठ १४१

६४. मारवाड़ की प्रशासनिक रिपोर्ट (१८८३–८४), पृष्ठ ४४१

६५. जमाखर्च के बाबत फाइल संख्या ४४ (ढ़ोलिया का कोठार)

६६ टॉड : उल्लिखित भाग दूसरा, पृष्ठ १३२

६७. मेघसिंह : तवारीख राज—बीकानेर, पृष्ठ १७७

६८. जमाखर्च की बाबत फाइल सख्या ४३ (ढ़ोलिया का कोठार)

६९. वही

लाख रुपये की रकम वार्षिक चुकाता था, दे दी गई।[७०] इसका परिणाम यह हुआ कि दीवानों और हाकिमों की नियुक्ति की शनैः शनैः एक ऐसी अवांछनीय प्रणाली उत्पन्न हो गई जिसमें उनकी नियुक्ति केवल उन्हीं व्यक्तियों में से की जाती थी जिनकी एकमात्र योग्यता यही थी कि वे वित्त को पेशगी इकट्ठा कर सकते थे, चाहे वे उसे अनुचित तरीके से ही क्यों न एकत्रित करते हों। जयपुर में राजा द्वारा आयामल, विद्याधर तथा अन्य अत्यन्त योग्य और कुशल अधिकारियों की तुलना में हरगोविन्द नाटाणी को प्राथमिकता दी गई, क्योंकि वे लोग शासक को पेशगी समुचित कोष देने की व्यवस्था नहीं कर सकते थे।[७१]

सामन्ती अराजकता :

नितान्त अव्यवस्था की यह दशा केवल गद्दी के प्रतिद्वन्द्वी दावेदारों के पारस्परिक संघर्ष और मराठों की लूट के कारण ही नहीं थी वरन् सामन्तों के प्रतिद्वन्द्वी गुटों के द्वारा अपना प्रभुत्व स्थापित करने के संघर्ष के कारण भी थी। वे उत्तराधिकार के युद्धों में एक या दूसरे दावेदार के सहायक के रूप में परस्पर विरोधी दलों में खड़े होने लगे। इसके परिणामस्वरूप मेवाड़ में उन दो गुटों—चूंडावतों और शक्तावतों का उदय हुआ जो एक दूसरे के शत्रु थे।[७२] उनकी शत्रुता महाराणा अरिसिंह द्वारा चूंडावत सरदार की हत्या किए जाने के कारण आरम्भ हुई।[७३] शक्तावतों ने जो चूंडावतों के विरोधी थे महाराणा हमीर के अल्पवयस्कताकाल (१७७२–७८) में राजमाता का समर्थन किया।[७४] इस विरोध के कारण जो अशान्ति और अव्यवस्था उत्पन्न हुई उसे केवल अस्थायी रूप में मराठों की सहायता से दबाया जा सका और उसके लिए उनको बहुत ऊँची कीमत चुकानी पड़ी। इसके उपरान्त चूंडावतों ने १७८६ में सोमचंद गांधी को मरवा दिया। इस अपराध के कारण एक दूसरा ही संघर्ष उठ खड़ा हुआ जो तब तक अबाध गति से चलता रहा जब तक कि १७९१ में महादाजी सिंधिया ने चूंडावतों को दबा नहीं दिया।[७५] महाराणा भीमसिंह (१७७८–१८२८) के दीर्घकालीन शासन में चूंडावतों और शक्तावतों की यह चिर-स्थायी कटु शत्रुता ही अव्यवस्था और अराजकता के लिए उत्तरदायी थी। इस

---

७०. जमाखर्च बही, संख्या ७, कृष्णगढ़

७१. विल्डर का मैटकाफ को पत्र ७ जुलाई १८१८, ओल्ड जोधपुर फाइल संख्या १, आर० ए०

७२. रेऊ : मारवाड़ का इतिहास भाग पहला, पृष्ठ ३५९–६०

७३. टॉड : एनल्स भाग पहला, पृष्ठ ३४०

७४. टॉड : उल्लिखित भाग पहला, पृष्ठ ३४६

७५. टॉड : उल्लिखित भाग पहला, पृष्ठ ३५२

शत्रुता के कारण जो अशान्ति और अव्यवस्था उत्पन्न होगई वह मुख्यत: मराठों की लूटपाट के रूप में मेवाड़ राज्य को अवर्णनीय हानि पहुँचा सकी।[७६]

मारवाड़ में विशेषकर महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के उपरान्त सामन्त लोग उस समय बहुत शक्तिशाली हो गए जबकि उन्हें अपने अल्पवयस्क महाराजा अजीतसिंह के नाम पर दीर्घ-काल तक युद्ध करना पड़ा। मारवाड़ को औरंगज़ेब के विरुद्ध दीर्घ-काल तक जो स्वतंत्रता का युद्ध लड़ना पड़ा, उसके परिणामस्वरूप मारवाड़ के सामन्तों की शक्ति बहुत बढ़ गई। परम्पराओं और प्रथाओं के द्वारा उनके अधिकारों पर जो प्रतिबंध लगे हुए थे उनमें से अधिकांश धीरे-धीरे लुप्त हो गए और पच्चीस वर्षों से अधिक समय तक शासक के अधिकार एक सीमा तक व्यवहार में नहीं आए; वे सामन्तों के बढ़े हुए प्रभाव से ढक गए।[७७] इसके उपरान्त भी अजीतसिंह अथवा उसके उत्तराधिकारियों के लिए यह सम्भव नहीं था कि वे अपने सामन्त वर्ग पर पुन: अपना नियंत्रण स्थापित कर सकते, क्योंकि उसके सदस्य तब तक अत्यन्त शक्तिशाली हो गए थे।[७८] अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम अर्द्ध भाग में जबकि मारवाड़ में गृह युद्ध हो रहा था, पहले बख्तसिंह और रामसिंह के मध्य युद्ध हुआ, और उसके उपरान्त रामसिंह और विजयसिंह में युद्ध होता रहा, उस समय मारवाड़ के सामन्तों का आचरण नौकरशाही के अनुत्तरदायित्वपूर्ण पदाधिकारी की भाँति रहा और प्रतिद्वन्द्वी दावेदारों के प्रति उनकी निष्ठा और भक्ति बँटी रही। पोकरण के ठाकुर यह दावा करने लगे कि वे मारवाड़ की प्रभुसत्ता को अपनी तलवार की म्यान में लेकर चलते हैं। रास के केसरीसिंह ऊदावत, निमाज के कल्याणसिंह, असोप के कानीराम कुम्पावत, आउवा के कुशालसिंह चम्पावत, जो आरम्भ से अन्त तक लगातार रामसिंह का पक्ष-समर्थन करते रहे थे, उससे क्रुद्ध हो गए और बख्तसिंह की ओर चले गए। इसी प्रकार पोकरण के देवीसिंह चम्पावत और पाली के पेमसिंह ने भी उसका पक्ष छोड़ दिया, और बख्तसिंह की ओर से लड़ना आरम्भ कर दिया। १७५० में जब पीपार का युद्ध हुआ तब रियाँ के ठाकुर शेरसिंह ने रामसिंह का समर्थन किया जबकि आउवा के ठाकुर बख्तसिंह की ओर से लड़े।[७९]

जयपुर में माछेरी के प्रतापसिंह ने १७८० में अलवर में अपने लिए एक स्वतंत्र

---

७६. बनर्जी : उल्लिखित पृष्ठ ११९–२०

७७. पेपर संख्या ७, मारवाड़ के संबंध में १४ अ १८३० संख्या १ बनर्जी : उल्लिखित पृष्ठ १२२–१२३, मारवाड़ की प्रशासनिक रिपोर्ट (१८८३–८४) पृष्ठ ४४१

७८. केविन्डिश का अल्वेज को पत्र २७ सितम्बर १८३१, ओल्ड जोधपुर फाइल संख्या ५, आर० ए०

७९. रेऊ : मारवाड़ का इतिहास भाग पहला, पृष्ठ ३५९, ३६०, ३६१

राज्य स्थापित कर लिया।[८०] कोटा में जालिमसिंह ने कोटा के महाराव को केवल नगण्य ही नहीं बना दिया वरन् अपने उत्तराधिकारियों के लिए कोटा राज्य में से एक नया राज्य भी झालावाड़ में बना दिया।[८१] अन्य राज्यों में भी स्थिति इसी प्रकार की थी।

भाड़े के सैनिकों को नौकर रखना और उसके अप्रत्यक्ष परिणाम :

जो जागीरें सामन्तों अर्थात् ठिकानेदारों को दी गई थीं उनके बदले सामान्यत: सामन्तों की ओर से शासक को एक निर्धारित संख्या में आश्रित सैनिक दिए जाना आवश्यक था। परन्तु अब उन्होंने (सामन्तों ने) पूर्ण अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न करना आरम्भ कर दिया। शासक भी उनके द्वारा भेजे गए आश्रित सैनिकों की निष्ठा पर अब भरोसा नहीं कर सकते थे। इसके अतिरिक्त, उन्हें उनकी (आश्रित सैनिकों) की विद्रोहात्मक कार्यवाहियों को दबाने के लिए परदेसी सेना रखने के लिए अतिरिक्त व्यय भी करना पड़ता था।[८२] मारवाड़ राज्य ने रुहेला और अफगान पैदल सेना को नौकर रक्खा। उस सेना के पास तोपें थीं और एक साथ कार्य कर सकने के लिए यथेष्ट अनुशासन था। इन परदेसी सैनिकों के अतिरिक्त लड़ाकू संन्यासियों का एक ब्रिगेड भी तैयार किया गया था। महाराजा विजयसिंह एक भाड़े की सेना रखते थे जिसमें ग्यारह हजार सैनिक थे।[८३] उदयपुर के महाराणा अरिसिंह ने एक मुस्लिम साहसी योद्धा को पच्चीस हजार रुपये वार्षिक नकद भुगतान के अतिरिक्त दो लाख रुपये की आय वाली पीपली की जागीर भी दी थी। उसने उत्तराधिकार के युद्ध में रतनसिंह के विरुद्ध इस सिंधी सेनापति की सेवाओं का उपयोग किया था।[८४] जयपुर ने भी भाड़े के सैनिकों को नौकर रखने की पद्धति अपना ली। १८०३ में जयपुर के परदेसी सेना विभाग में लगभग तेरह हजार सैनिक थे। वे परदेसी सैनिक दस बटालियनों में बँटे हुए थे। उनके पास चार सौ नागाओं की एक सैनिक टुकड़ी थी और तोपें भी थीं। जयपुर की भाड़े की उस सेना में जागीरदारों द्वारा सैनिक सेवा के रूप में दिए हुए चार हजार कुशल अश्वारोही सैनिक सम्मिलित

---

८०. बनर्जी : पूर्व उल्लिखित, पृष्ठ १५२

८१. ऐचिसन : ट्रीटीज, ऐन्गेजमेंट्स एण्ड सनदस् भाग तीसरा, पृष्ठ २२२ और २२३

८२. पालेट का एजेंट टू दी गवर्नर जनरल को पत्र ११ सितम्बर १८७५, राजपूताना एजेंसी फाइल संख्या एल २५–१८७५ की।

८३. टॉड : एनल्स भाग दूसरा, पृष्ठ १३४

८४. टॉड : ऐनल्स भाग पहला, पृष्ठ ३४२–४३

नहीं थे ।[८५] बीकानेर में परदेसी अश्वारोही सैनिकों की तीन टुकड़ियाँ थीं ।[८६] जैसलमेर में, शासक परदेसी भाड़े के सैनिकों पर प्रति वर्ष पचहत्तर हजार रुपए व्यय करते थे ।[८७] कोटा का जालिमसिंह, दलेल खाँ, और मेहराब खाँ के नायकत्व में परदेसी सेना रखता था और वे दोनों उसके सैनिक सलाहकार थे । जालिमसिंह ने किलाबंदी का कार्य करवाया और अपनी परदेशी पैदल सेना को प्रशंसनीय रूप से अनुशासित, कुशल तथा क्षमतायुक्त बनाया ।[८८] भाडे के सैनिकों को नौकर रखने की यह नीति मुख्यत: सामन्तों को वश में रखने और उन पर अंकुश रखने के लिए अपनानी पड़ी । परदेसी सेनाओं में पुरबिया राजपूत अथवा सिंधी तथा अरब अथवा रुहेला सैनिक होते थे । उनको सीधे नरेशों से उनके मुतसद्दियों के द्वारा आज्ञा प्राप्त होती थी और वे अपने स्वामी नरेश के कार्य के प्रति निष्ठावान रहते थे ।[८९] इस नीति से जागीरदार-वर्ग के सदस्यों में रोष उत्पन्न होना स्वाभाविक था, अत: इसको लेकर राजा और उसके सामन्तों में एक नया संघर्ष उठ खड़ा हुआ ।

परदेसी सैनिकों का उस राज्य के प्रति जिसकी वे सेवा करते थे अथवा उस शासक के प्रति जिसने उनको नौकर रक्खा था कोई अनुराग, भक्ति, अथवा भावात्मक संबंध नहीं था । वे, क्योंकि शुद्ध भाड़े के सैनिक थे, अस्तु, उन्हें केवल अपने उस पारिश्रमिक की चिन्ता रहती थी जो उन्हें मिलता था; और उनकी निष्ठा अथवा भक्ति को सदैव क्रय किया जा सकता था । जब कभी राजे उनके वेतन का बकाया नहीं चुका पाते थे तो वे लूटपाट करते थे और घोर अव्यवस्था उत्पन्न कर देते थे । क्योंकि अधिकांश शासक दिवालिया-जैसी स्थिति में थे अत: वे बहुधा उनका पारिश्रमिक नहीं दे पाते थे । जयपुर में भी, १७८२ में परदेसी सैनिक निराशा के कारण दुस्साहसी हो गए और उन्होंने मालपुरा को लूट लिया ।[९०] कृष्णगढ़ में उन्होंने

---

८५. इरविन : आर्मी ऑफ दी इंडियन मुग़ल्स, पृष्ठ १६४, टॉड एनल्स भाग दूसरा, पृष्ठ ३५१

८६. बीकानेर फौज बही वि० सं० १८४७, टॉड के अनुसार वहाँ सत्रह सौ पैदल, ६०० अश्वारोही सैनिक और ३१ तोपें थीं, जिनका सेनापतित्व पाँच परदेसी अफसर करते थे (टॉड : एनल्स भाग दो, पृष्ठ २२८)

८७. लक्ष्मीचन्द : तवारीख राज जैसलमेर, पृष्ठ १६८ टॉड एनल्स भाग २, पृष्ठ २२८

८८. बनर्जी : उपरोक्त उल्लिखित पृष्ठ १४५, सीगा मुतफरकात, बस्ता संख्या ६४ भंडार सं० १६, कोटा रेकार्ड ।

८९. टॉड : एनल्स भाग दो, पृष्ठ ६८

९०. वि० सं० १८६५ की अर्जदास्त-आयमल की जगतसिंह को, जयपुर रेकार्ड ।

राजधानी के उन व्यापारियों से १७९८ में अपना देय बलपूर्वक वसूल कर लिया जिनके पास उनकी (परदेसी सैनिकों की) एड़ी के नीचे दबे रहकर कराहने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं था।[९१] मारवाड़ में परदेसी सैनिकों के वेतन का बिल बहुत भारी होता था। क्योंकि विजयसिंह उनके वेतन की बकाया राशि चुकाने में असफल रहा अतएव उन्हें बहुत बड़ी मात्रा में भूमि देनी पड़ी।[९२] महाराणा अरिसिंह अपने परदेसी सैनिकों को नकदी में वेतन नहीं चुका सके अत: उसे उन्हें विभिन्न प्रकार के विशेषाधिकार प्रदान करने पड़े, यहाँ तक कि उनके सेनापति को दरबार में स्थान और सब प्रकार से सादड़ी के सामन्त के समकक्ष पद देने पड़े।[९३] कोटा के जालिम सिंह ने भी परदेसी सैनिकों का वेतन बकाया में रख रक्खा था।[९४] बीकानेर में परदेशी सैनिकों को तीन वर्षों तक पारिश्रमिक नहीं दिया जा सका और एतदर्थ १७७८ में महाराजा को अपनी महारानी से आठ लाख रुपये उधार लेने पड़े।[९५] १७८३ में जैसलमेर में सिहबंदियों ने महल की घेराबन्दी करली तथा मोदीखाने को लूट लिया,[९६] और लूटी हुई वस्तुओं को वापस लौटाना तब तक अस्वीकार कर दिया जब तक कि महाराजा ने उनकी ६ लाख रुपये की बकाया रकम नहीं चुका दी।[९७] अस्तु, भाड़े के परदेसी सैनिकों के दलों को नौकर रखना उतना ही विनाशकारी सिद्ध हुआ जितना कि मराठों को अपनी सहायता के लिए आमंत्रित करना विनाशकारी सिद्ध हुआ था। भाड़े के वे सैनिक कभी महलों की घेराबन्दी कर लेते थे, कभी दीवानों के घरों को लूट लेते थे और कभी वे लुटेरे बन जाते थे।

निरर्थक व्यय (फिज़ूल खर्च) :

प्रत्येक राज्य में निरर्थक व्यय की और भी अनेक मदें थीं। राज्य के शासकों को राजकीय साज-सामान रखना पड़ता था तथा दरबारों, जुलूसों, अनेक प्रकार के उत्सवों और समारोहों पर अनावश्यक व्यय करना पड़ता था। जोधपुर के विजयसिंह को प्रतिवर्ष इन उत्सवों और समारोहों पर सात लाख रुपये व्यय करने पड़ते थे।[९८]

---

९१. जियसिह का वि० सं० १८५५ शुक्ल पक्ष पंचमी का असगर अली को पत्र, कृष्णगढ़ रेकार्ड।

९२. हथबही संख्या ३

९३. टॉड : एनल्स भाग पहला, पृष्ठ २३३–३४

९४. बनर्जी : पूर्व उल्लिखित, पृष्ठ १४५

९५. रानी रानावत की वि० सं० १८३३ की जमा खर्च बही।

९६. लक्ष्मीचन्द : तवारीख राज जैसलमेर, पृष्ठ १७४

९७. वि० सं० १८४१ फाल्गुन शुक्ल पक्ष तृतीया की पाली की खबर।

९८. जमाखर्च के सम्बन्ध की फाइल संख्या ४३, ढ़ोलिया का कोठार

जयपुर का प्रतापसिंह राज्य की आय का ३५ प्रतिशत विभिन्न प्रकार के दरबारों पर व्यर्थ नष्ट कर देता था।[९९] मेवाड़ में व्यय की मुख्य मदें धर्मादा, उत्सव, समारोह आदि थीं।[१००] बीकानेर में महाराजा सुजानसिंह अपनी चालीस प्रतिशत आय कतिपय उन कारखानों पर व्यय करता था जिनका मुख्य कार्य ऐसे खेमे, पोशाकें, और आभूषण बनाना तथा उन हाथियों और पालकियों की देखभाल करना था जिनकी आवश्यकता मुख्यतः जुलूसों और उत्सवों के समय पड़ती थी।[१०१]

जहाँ एक ओर राजत्व की संस्था अत्यधिक अपव्यय का एक स्रोत बन गई थी वहाँ दूसरी ओर दरबारियों और पिछलग्गुओं की एक बहुत बड़ी भीड़ राज्य की आय का एक बड़ा भाग खा जाती थी। एक शासक के निजी और महलों के खर्चे पर खालसा की आय का पचास प्रतिशत व्यय हो जाता था। सम्पूर्ण खालसा की आय सत्रह से बीस लाख रुपये के बीच होती थी। उसमें से मारवाड़ का शासक लगभग दस लाख रुपये राजकीय रनिवास (हरम) के रख-रखाव तथा निजी व्यय की अन्य मदों पर व्यय कर देता था।[१०२] उसमें विवाह, मृत्यु तथा अन्य असाधारण समारोहों पर होने वाला व्यय सम्मिलित नहीं था। उसे पूरा करने के लिए अतिरिक्त लागें लगाई जाती थीं।[१०३] इसके अतिरिक्त कुछ महारानियों, पासवानों तथा शासक की वैध और अवैध संतानों के नाम, उनके व्यय को पूरा करने के लिए, पृथक् जागीरें प्रदान कर दी जाती थीं। मारवाड़ में चौरासी गाँवों से होने वाली आय पासवानों और उनकी संतानों के नाम करदी गई थी।[१०४] बीकानेर में जो गाँव गोलों, चेलों, चाकरों और डावरियों को दे दिए गए थे केवल उनकी संख्या चौबीस थी।[१०५] धार्मिक संस्थाओं को दिया जाने वाला दान तथा धर्मादा पर होने वाला व्यय, विभिन्न कोतवाली चबूतरों, सायरों और दरीबों से होने वाली सीधी आय को खा जाता था।[१०६] पुनः ५२ गाँवों से होने वाली आय बीकानेर के मंदिरों तथा तीर्थ स्थानों पर व्यय हो जाती थी।[१०७] मारवाड़ में ४०० गाँव धार्मिक स्थानों तथा मंदिरों को अभिहस्तांकित

९९. वि. सं० १८२४ की हासिल बही।

१००. वि० सं० १८३७ की पड़ाखा, उदयपुर हिसाब दफ्तर, उदयपुर रेकार्ड

१०१. आँकड़ा बही, बड़ा कारखाना वि० सं० १८४२ बीकानेर

१०२. जमा खर्च सम्बन्धी फाइल संख्या ४३, ढोलिया का कोठार

१०३. जमाखर्च सम्बन्धी फाइल संख्या ४२, ढोलिया का कोठार

१०४. हजूरी दफ्तर जमाखर्च बी वि० सं० १८४२, बीकानेर रेकार्ड।

१०५. आँकड़ा बही वि० सं० १८३९

१०६. १३ मई १८३२ को ईडन का अलवेज को पत्र, राजपूताना एजेंसी फाइल संख्या २१, जयपुर

१०७. वि० सं० १८३९ की आँकड़ा बही, बीकानेर रेकार्ड।

कर दिए गए थे और कभी-कभी सायरों और राहदारी की आय भी उनको दे दी जाती थी।[१०८]

इस प्रकार का अपव्यय राज्य के खज़ानों पर इतना अधिक भारी सिद्ध हुआ कि राजपूताने के लगभग सभी राज्यों की स्थिति दयनीय हो उठी। आय के स्रोत और व्यय की मदों का संतुलन बिठाने के स्थान पर लगभग सभी राज्यों ने खज़ाने पर पड़े इस अत्यधिक खर्चे के भार को वहन करने के लिए बढ़ी हुई दरों से आय को वसूल करने का प्रयत्न किया। बीकानेर में महाराजा सुजानसिंह ने पैदावार की आधी अर्थात् पचास प्रतिशत की दर से मालगुजारी वसूल की।[१०९] महाराजा सूरतसिंह ने लगभग एक सौ अतिरिक्त लागें लगाईं और चिरायतों को विवश किया कि वे प्रत्येक ऐसे व्यापारी से जो उनके क्षेत्र में होकर निकले सामान्य दरों से दस गुनी राहदारी वसूल करें।[११०] जैसलमेर में कुओं और यहाँ तक कि सब्जी पैदा करने वालों पर भी अतिरिक्त लागें लगाई गई थीं।[१११] महाराजा विजयसिंह ने अंगा, घासमारी और विभिन्न प्रकार के करों को बढ़ी हुई दरों से वसूल करना प्रारम्भ कर दिया जिसके कारण कचहरियों की लागती रकम चार लाख रुपयों से बढ़कर ७ लाख ५० हजार रुपए हो गई।[११२] और एक नई लागत 'किवारी' के नाम से लगाई गई। जयपुर, कोटा और कृष्णगढ़ के शासकों को विवश होकर भलमंमी तथा बराड़ नामक एक प्रकार का सम्पत्ति-कर लगाना पड़ा। लगभग सभी राज्यों में जागीरदारों को हुक्मनामा सामान्य से दुगनी दरों से देना पड़ता था।[११३] अन्ततोगत्वा इन करों का भार इतना अधिक हो गया कि जनसाधारण उनके असह्य भार से कराहने लगा, परन्तु उसका कोई उपाय नहीं थी। राजाओं को विवश होकर अपने राज्यों की घटी हुई आय को सबसे ऊँची बोली लगाने वाले को पहले ही अभिहस्कतांकित कर देना पड़ता था और एक विशेष प्रकार की इजारा पद्धति को अपनाने पर विवश होना पड़ता था जिसमें ऐसे असंख्य सम्बद्ध खतरे थे जिनके कारण अत्यन्त नीचे दर्जे का भ्रष्टाचार पनपता था और राज्य की समस्त अर्थव्यवस्था नष्ट हो जाती थी।[११४]

१०८. जमा खर्च सबंधी फाइल संख्या ४२, ढ़ोलिया का कोठार।

१०९. हासिल बही वि० सं० १८२४।

११०. सायर गे रोजनामो वि० सं० १८५९, बीकानेर रेकार्ड।

१११. लक्ष्मीचंद : तवारीख राज जैसलमेर, पृष्ठ १७२

११२. हज़ूर दफ्तर जमाखर्च बही वि० सं० १८३२।

११३. पाअलेट का एजेंट टू दी गवर्नर जनरल को पत्र, ११ सितम्बर १८५७ का राजपूताना एजेंसी फाइल संख्या १९, १८७५ की।

११४. २२ मई १८२१ का विल्डर का आक्टरलोनी को पत्र। राजपूताना एजेंसी फाइल संख्या २२. इजारा संबंधी फाइल वि० सं० १८३२, ढ़ोलिया का कोठार।

नैतिक पतन :

जिस समय मानसिंह गद्दी पर बैठा उस समय जैसलमेर और बीकानेर को छोड़ कर राजपूताने के लगभग सभी राज्य मराठों की लूटमार और पिंडारियों की अर्थ-लोलुपता के कारण उजड़ चुके थे। बीकानेर और जैसलमेर की वित्तीय दशा भी पूर्ण रूप से नष्टप्राय हो चुकी थी। प्रत्येक राज्य के आन्तरिक एवं पारस्परिक युद्धों तथा जागीरदारों के विद्रोहों ने गम्भीर अव्यवस्था उत्पन्न करदी थी और प्रत्येक राज्य में प्रशासनिक ढाँचा सर्वथा समाप्त हो चुका था।[११५]

महाराजा भीमसिंह ने अपनी असफलता-जनित गहन निराशा को व्यर्थ के तमासों, उच्छृङ्खलतापूर्ण मनोविनोदों, और अनियमित उदारता जनित द्वारा भूलने का प्रयत्न किया। कालान्तर में वे पूर्णतया स्त्रियों के प्रभाव के अधीन हो गए।[११६] विजयसिंह गुलाबराय को अपनी राधा मानते थे और उन्होंने उसको प्रशासन का नियंत्रण करने की आज्ञा प्रदान करदी थी।[११७] जयपुर का राजा सवाई प्रतापसिंह स्त्रियों जैसी वेशभूषा पहनता था। वह अपने पैरों में घुंघरू बाँधता और अपने रनिवास की महिलाओं के साथ नाचता था। वह पूरी तरह सुरा-पान, नृत्य, तथा अन्य ऐयाशी के मनोरंजन में लग गया।[११८] उसके उत्तराधिकारी जगतसिंह ने अन्य सभी नरेशों को दुराचार की इस दौड़ में पीछे छोड़ दिया, और रसकपूर को अपने आधे राज्य की औपचारिक रूप से विधिवत् रानी बनाया।[११९] अठारहवीं शताब्दी का अन्त होते-होते राजपूताना के प्रशासक नैतिक गिरावट के शिकार हो गए और उनके दुर्गुणों को उनके सामन्त और मुत्सद्दी भी अपनाने लगे।[१२०] कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय नैतिक पतन और भौतिक विनाश लगभग पूर्णता को पहुँच गए थे।

मानसिंह के पूर्व का वह काल वास्तव में संक्रान्ति का काल था, जबकि महान मुगल साम्राज्य के टुकडे होना आरम्भ हो गया था और अनेक प्रकार के साहसी

---

११५. सरकार : उल्लिखित भाग ४, पृष्ठ ६८–७०

११६. टॉड : एनल्स भाग पहला पृष्ठ ३८।

११७. सरकार : पूर्व उल्लिखित भाग चौथा, पृष्ठ ५३–५७

११८. सरकार : पूर्व उल्लिखित भाग तीसरा, पृष्ठ २३७–३८

११९. टॉड : पूर्व उल्लिखित भाग दो, पृष्ठ ३०३–३०४

१२०. सरकार को मराठा राजनेताओं के पत्रों से यह जानकर खेद और आश्चर्य हुआ कि बहुत से राजपूत राजे, सामन्त और मंत्री गंदी व न बताई जा सकने वाली बीमारियों से ग्रसित थे। वह घोर स्वेच्छाचारिता की प्रकृति द्वारा दी गई सजा थी (सरकारः पूर्व उल्लिखित भाग चार, पृष्ठ ७२)

सैनिक योद्धा बड़े पैमाने पर सक्रिय हो गए थे। वह काल ऐसा सकटपूर्ण था कि उसमें प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्रकार की अप्रत्याशित विफलता-जनित निराशा का अनुभव कर रहा था।[१२१]

अस्तित्वहीन सस्थाएँ और पुराने अस्त्र-शस्त्र :

यद्यपि मारवाड़ में सामन्तवाद बहुत पहले ही अस्तित्वहीन हो चुका था, और जागीरदारों ने शासक को निर्धारित आश्रित सैनिक देना बन्द कर दिया था, तथापि सत्तासी प्रतिशत भूमि उनके पास थी। सम्पूर्ण राजपूताना में विभिन्न धार्मिक संस्थाएँ तब भी उन जागीरों की आय का उपभोग करती थीं जो उन्हें अभिहस्तांकित की जा चुकी थीं, जबकि उस समय उनका कोई उपयोग नहीं रह गया था। वे उन मिथ्या भ्रान्तियों का केवल दिखावा मात्र थीं जो टूट चुकी थीं। भौमिया लोग यथेष्ट भूमि की आय का उपभोग करते थे और उनके पास करने को कोई काम नहीं था।[१२२] बीकानेर के परम्परागत फौज बख्शी जिनका अब कोई उपयोग नहीं था, अपना वेतन आदि यथावत् प्राप्त करते थे, जबकि राज्य की सेनाओं का सेनापतित्त्व वे नहीं, किन्तु परदेशी अधिकारी करते थे।[१२३]

बाहर से बुलाए गए अधिकारियों की नियुक्ति के उपरान्त भी उनके स्थानीय प्रतिरूप जिनका नाम मात्र के लिए अस्तित्त्व था उस आय का उपयोग करते थे जो उनको दे दी गई थी।[१२४] राज्य के करों को उगाहने का कार्य इजारेदार करते थे, फिर भी हाकिम और उनके अहलकार राज्य की आय का एक बड़ा भाग हथिया लेते थे।[१२५] इसके अतिरिक्त इन राजाओं की सेनाएँ पुराने हथियारों का उपयोग करती थीं, युद्ध की आधुनिक तकनीक के बारे में उन्हें तनिक भी जानकारी नहीं थी, और सैनिक व्यवस्था की प्रवृत्तियों से वे नितान्त अनभिज्ञ थीं। जबकि राजपूताने के आस-पास का क्षेत्रफल प्रशासनिक और सैनिक संगठन की दृष्टि से धीरे-धीरे बदल रहा था, राजपूताने के राज्य असंख्य कठिनाइयों के विरुद्ध अपने पुराने और भद्दे हथियारों से कठिन संघर्ष कर रहे थे।[१२६]

---

१२१. टॉड : एनल्स भाग दो, पृष्ठ ३०३–३०४

१२२. ४ अक्टूबर १८४३ को जैक्सन का सदरलैंड को पत्र, पुरानी जोधपुर फाइल संख्या ५, आर० ए०

१२३. बीकानेर फौज बही, वि० सं० १८३७

१२४. १३ फरवरी १८०७ का बारलो का नोट, गोपनीय परामर्श।

१२५. वही

१२६. आक्टरलोनी का गवर्नर जनरल को पत्र ४ सितम्बर १८२३ का, ओल्ड जोधपुर फाइल संख्या ५, आर० ए०

साधारण पर्यवेक्षण :

इस प्रकार के वातावरण में राजपूताना के नरेश प्रशासनिक प्रणाली के उन मुख्य संचालक सूत्रों को संचालित करने में असफल रहे जिन्होंने शताब्दियों तक अपने समीपवर्ती सभी असंगत शक्तियों को मिलाकर उनको गतिमान बनाने की क्षमता प्रदान की थी। ऐसा कर सकने में असफल होने के कारण विघटन की शक्तियाँ अधिक प्रबल हो गईं। उनमें से प्रत्येक शक्ति अपने निज के संकीर्ण क्षेत्र में ही क्रियाशील होने लगी और एकीकरण करने वाली एकमात्र उस शक्ति के जो पहले राजा के व्यक्तित्व में सन्निहित थी क्रमशः निर्बल हो जाने से केन्द्र-विमुख शक्तियाँ राजपूताने के प्रत्येक भाग में उठ खड़ी हुईं।[१२७] यद्यपि मराठों की लूटमार के आक्रमण एक बड़ी सीमा तक इस विघटन को लाने के लिए जिम्मेदार थे, तथापि स्वयं राजाओं और उनके सामन्तों के गंभीर दोषों की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती।[१२८] राजपूत राज्यों का गोत्र पर आधारित सामन्ती संगठन उन राज्यों के लिए न केवल उपयोगिता खो चुका था वरन् उस समय वह निर्बलता का कारण भी बन गया था। एक ओर राजपूतों की नैतिक गिरावट ने सम्पूर्ण राजपूताना के राजनीतिक और सामाजिक जीवन को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था और दूसरी ओर मराठों ने बाहर से आक्रमण करना आरंभ कर दिया था। स्पष्ट था कि राजपूत राज्य इस दोहरी चुनौती का सामना करने में असफल रहते।[१२९]

यद्यपि औसत राजपूत तब भी रणभूमि में दुस्साहसपूर्ण वीरता प्रदर्शित करने की क्षमता रखता था तथापि उस युग में, जबकि सैनिक संगठन की सम्पूर्ण तकनीक का योरोपीयकरण हो रहा था, इस प्रकार के व्यक्तिगत साहस के प्रदर्शन का कोई उपयोग नहीं था। युग के पाठ की ओर से अपनी आँख बन्द कर लेने के कारण राजपूताना के शासक हानि-लाभ के सम्बन्ध में बिना समझे-बूझे अपने वीरों को डी बोगने की तोपों की अग्नि से भुनने के लिए रणभूमि में झोंक देते थे।[१३०]

सैनिक संगठन की शैली में होने वाले परिवर्तन से सामंजस्य बिठाने में राजपूतों के असफल होने से भी अधिक विनाशकारी स्वयं शासकों का स्नायु-दौर्बल्य का रोग था। अपने शक्तिशाली उच्च अधिकारियों और षडयंत्रकारी मुत्सद्दियों के प्रति शँकाशील रहने के कारण वे नाइयों, दर्जियों, हाथियों के पीलवानों, और जल लाने वालों को अपने विश्वास में लेने लगे। टॉड के शब्दों में, "हत्या कर देना एक स्वीकृत

१२७. टॉड : एनल्स भाग पहला, पृष्ठ १००–१०५
१२८. बनर्जी : पूर्व उल्लिखित, पृष्ठ १५५
१२९. सरकार : पूर्व उल्लिखित भाग चौथा, पृष्ठ, ६८–६९
१३०. बनर्जी : पूर्व उल्लिखित पृष्ठ १५५

राजनीतिक हथियार बन गया और राजपूताना धराशायी होने के किनारे पर आ गया।[131] सम्पूर्ण वातावरण इतना अधिक भ्रष्ट और कुचक्रपूर्ण था कि प्रत्येक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति राज्य में दूसरे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के विरुद्ध षडयंत्र करता दिखलाई देता था और उन्होंने असहाय लाखों व्यक्तियों को मराठा-कर वसूल करने वालों के विवेकहीन आक्रमण द्वारा निगले जाने के लिए छोड़ दिया था।[132] इस प्रकार के युग में मानसिंह का जन्म हुआ और भाग्य ने उसे कूटनीतिक षडयंत्र की टेढ़ी-मेढ़ी गलियों में थका देने वाले मार्ग पर चलने के लिए विवश किया।

---

१३१. टॉड : एनल्स भाग पहला, पृष्ठ १०१

१३२. बनर्जी : पूर्व उल्लिखित, पृष्ठ १५५

१

मानसिंह के प्रारम्भिक वर्ष और उसका राज्याभिषेक

महाराजा विजयसिंह और उनकी राजनीतिक विरासत :

१७५२ में विजयसिंह के राज्याभिषेक के समय मारवाड़ भावी अशान्त काल का सामना करने के लिए तैयार नहीं था, यद्यपि उसके भाग्य में दीर्घकाल तक अर्थात् ४१ वर्ष (१७५२–६३) तक राज्य करना लिखा था। उसका राजत्वकाल अपने भाई-बान्धवों से निरन्तर युद्धों और संघर्षों से पूरित रहा। अपने राज्यकाल के आरम्भ में उसे अपने चचेरे भाई रामसिंह के विरुद्ध युद्ध करना पड़ा। मारवाड़ के राज्यसिंहासन को अपने लिए सुरक्षित रखने हेतु उसको (महाराजा को) अपने उत्तराधिकार के युद्ध में मराठों, जयपुर के महाराजा, और मारवाड़ के सिंहासन-च्युत शासक रामसिंह के संयुक्त तथा शक्तिशाली गुट के विरुद्ध युद्ध करना पड़ा। विजयसिंह के इन शत्रुओं[1] के संगठन को मारवाड़ के जिन शक्तिशाली सरदारों की सहायता और उनका पृष्ठपोषण प्राप्त था उनमें पोकरण, रास, असोप, और निमाज[2] के ठाकुर प्रमुख थे।[3]

१७७२[4] ई० में रामसिंह की मृत्यु हो जाने पर भी विजयसिंह को संघर्ष से विश्राम नहीं मिला। मराठों के निरन्तर हस्तक्षेप, उनके जल्दी-जल्दी होने वाले

---

१. विजय विलास, एफ ११३
रेऊ : मारवाड़ का इतिहास, भाग २ के अनुसार

२. 'पोकरण' जोधपुर से ८५ मील दूर फलोदी परगने में जागीर थी, 'रास' जयतारण में जोधपुर से ६४ मील; 'असोप' जोधपुर के उत्तरपूर्व में है; 'निमाज' भी जयतारण में है। वह जोधपुर से लगभग ५० मील दूर है।

३. वीर विनोद, भाग २, पृष्ठ ८५३–५४

४. विजयसिंह का महाराजा पृथ्वीसिंह को पत्र वि० सं० १८२६ (सन् १७७२) शुक्ल पक्ष की एकादशी का, खरीता जात हिन्दी; रियासत जोधपुर बन्डल संख्या ७

आक्रमण,[५] उनकी लूटपाट एवं उनके द्वारा अनिच्छुक विजयसिंह पर लगाये गए उपकरों के[६] असह्य भार के कारण राज्य की वित्तीय स्थिति दयनीय हो गई। देश की स्थिति अस्त-व्यस्त होने के कारण राजकोष रिक्त हो गया, खालसा भूमि बिना जुती पड़ी रही तथा व्यापार और वाणिज्य को गहरा धक्का लगा। इस अस्त-व्यस्त दशा में सरदारों के असन्तोष, और राजधानी व मुख्य नगरों के समीप उनके द्वारा लूटपाट से मारवाड़ के सिंहासन[७] के लिए एक गंभीर खतरा पैदा हो गया। ऐसे समय में महाराजा विजयसिंह की पासवान गुलाबराय के प्रति आसक्ति एवं उसका राज्यकार्य में बढ़ता हुआ प्रभाव और अधिकार उसके लिए सबसे महान संकटपूर्ण सिद्ध हुए। राज्य के शासन-कार्य में, स्वेच्छा से कार्य करने वाले सरदारों को उसका हस्तक्षेप रुचिकर नहीं हुआ। इसके अतिरिक्त, गुलाबराय के कहने पर विजयसिंह द्वारा मानसिंह को सिंहासन का उत्तराधिकारी घोषित[८] करने का प्रयत्न इस टकराव में असन्तोष की चरम सीमा था।[९] इस स्थिति के परिणामस्वरूप सरदारों ने खुला विद्रोह कर दिया। इन्होंने उस समय भीमसिंह[१०] के पुत्र भोमसिंह को मारवाड़ की गद्दी[११] पर बैठाने का दुष्प्रयत्न किया।

मानसिंह के प्रारम्भिक वर्ष :

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मानसिंह का जन्म १३ फरवरी १७८३ को हुआ।[१२] वह महाराजा के पाँचवें पुत्र गुमानसिंह का पुत्र तथा विजयसिंह का पौत्र था। बाल्यकाल का सुखी और सन्तुष्ट जीवन उसके भाग्य में नहीं था। जब वह केवल ६ वर्ष का बालक था तब उसकी माता की मृत्यु हो गई, और वह जब १० वर्ष का था,[१३] उसके पिता गुमानसिंह का भी स्वर्गवास २६ सितम्बर

५. "मारवाड़ ख्यात" भाग ३, एफ ३४—३७ परिहार जी० आर०, "मारवाड़ और मराठा" पृष्ठ १०४

६. अम्बाजी इंगले का सवाईराम को पत्र, वि० सं० १८३६, श्रावण शुक्ल पक्ष की पड़वा, खरीता फाइल संख्या ३, रियासत इंदौर, बंडल-संख्या ७, बापूजी होल्कर का विजयसिंह को पत्र वि० सं० १८४७ पौष शुक्ल पक्ष की द्वादशी, पोर्ट फोलियो फाइल संख्या ४

७. वीर विनोद, भाग २, पृष्ठ ८५४

८. मानसिंह महाराजा का पौत्र और गुमानसिंह का पुत्र था।

९. हकीकत बही बीकानेर, संख्या १६, एफ ४०—४२, टॉड उल्लिखित पृष्ठ १०४

१०. भीमसिंह भी महाराजा का पौत्र था।

११. जोधपुर राजावां रा बडेरा री ख्यात, एफ २२२

१२. तवारीख मानसिंह एफ, मारवाड़ ख्यात, भाग ३ एफ,

१३. जालंधर चन्द्रोदय, एफ ४३, रेऊ : मारवाड़ का इतिहास, भाग १, पृष्ठ ३९४

१७६१ को हो गया ।

विजयसिंह की प्रिय पासवान गुलाबराय जिसका महाराजा पर असीम प्रभाव था भीमसिंह से नाराज थी, क्योंकि उसने एक पूर्व अवसर पर गुलाबराय के पुत्र तेजसिंह को यह कहकर अपमानित किया था कि वह एक पासवान से उत्पन्न है। उसी दिन से उसने भीमसिंह को अपना समर्थन देना बन्द कर दिया और वह अपने पुत्र तेजसिंह की मृत्यु के बाद मानसिंह में रुचि लेने लगी।[१४] उसने मानसिंह को अपने संरक्षण व देखरेख में लिया और अपने निवास स्थान महलाबाग[१५] में शेरसिंह[१६] के साथ रख दिया। वह मानसिंह को अपने दत्तक पुत्र की भाँति मानती थी। उसने उसे माता का प्रेम और स्नेह दिया।[१७] वस्तुतः मानसिंह को जो भी शिक्षा, प्रशिक्षण और बौद्धिक उपलब्धि प्राप्त थीं वे बहुत कुछ गुलाबराय की देन थीं। गुलाबराय ने उसका पालनपोषण किया और यथा सम्भव उत्तम ढंग से उसको प्रशिक्षण दिया। वह मानसिंह को इतना अधिक स्नेह करती थी कि उसने उसको अपने भतीजे की पुत्री सुखसेजराय को अपनी उपपत्नी बनाने के लिए प्रोत्साहित किया।[१८] गुलाबराय से प्रोत्साहन पाकर मानसिंह के हृदय में सुखसेजराय के प्रति सुकुमार भावना उत्पन्न हो गई। मानसिंह उसमें इतना अधिक आसक्त हो गया कि एक बार वह उसे अपनी वैध पत्नी घोषित करने के लिए भी तैयार हो गया।[१९] जब लोगों को यह ज्ञात हुआ कि उसका ऐसा विचार है तो सभी ओर से उसका घोर विरोध हुआ। उसके इस आचरण से उसका न केवल विरोध ही हुआ बल्कि उसकी स्थिति हास्यास्पद भी हो गई।[२०] इस कड़े विरोध के कारण मानसिंह को सुखसेजराय को वह पद देने का अपना विचार छोड़ देने पर विवश होना पड़ा और उसे रनिवास में उपपत्नी की भाँति रखकर ही सन्तोष करना पड़ा।[२१]

१४. जोधपुर राजावां रा बड़ेरां री ख्यात, यफ २२१, ओझा : राजपूताने का इतिहास भाग ४, खंड २, पृष्ठ ७५५
१५. शेरसिंह विजयसिंह का पुत्र था।
१६. हकीकत बही बीकानेर संख्या १७, यफ १६, २४ तवारीख मानसिंह यफ १, मारवाड़ ख्यात भाग ३, यफ १
१७. हकीकत बही बीकानेर संख्या १७, यफ १८, २४ तवारीख मानसिंह यफ १
१८. हकीकत बही बीकानेर संख्या १७, यफ ३२, ४२
१९. हकीकत बही बीकानेर संख्या १७, यफ ६२, ६४, ६७
२०. वही, यफ ७२–७८, ८२–८४
२१. सुखसेजराय की अर्जी मानसिंह को (तारीख रहित), सुखसेजराय की मानसिंह को अर्जी वि० सं० १८८६ आश्विन कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, हकीकत बही बीकानेर, संख्या १७ यफ ७२–७८, ८२–८४

गुलाबराय ने मानसिंह के पक्ष को प्रस्तुत किया :

सुखसेजराय से प्रणय-सम्बन्ध होने के कारण मानसिंह गुलाबराय के बहुत ही निकट आ गया। एक दूरदर्शी महिला होने के कारण गुलाबराय ने यह अनुभव किया कि उत्तराधिकार के प्रश्न को तय करने का अब समय आ गया है। वह अपने प्रभाव और अधिकार को स्थायी बनाने के लिए मारवाड़ की गद्दी पर अपनी इच्छा का उत्तराधिकारी बिठाना चाहती थी। क्योंकि वह अपने विपक्षी सरदारों के प्रत्याशी भीमसिंह से नाराज थी, इसलिए उसने मानसिंह को चुना। उससे वह अपनी इच्छानुसार कार्य करवा सकती थी। इसीलिए उसने मानसिंह को औपचारिक रूप से अपना दत्तक पुत्र बनाया और उसे सिंहासन का उत्तराधिकारी घोषित करने के लिए महाराजा विजयसिंह को तैयार कर लिया।[२२] महाराजा विजयसिंह ने गुलाबराय के परामर्श के अनुसार १७९२ में मानसिंह को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।[२३]

महाराजा की इस घोषणा का सरदारों द्वारा ऐसा प्रबल विरोध किया गया कि वह अपने इस मन्तव्य को कार्यरूप में परिणत नहीं कर सका। राठौड़ सरदार यह पसन्द नहीं करते थे कि राज्य पर गुलाबराय का प्रभाव और अधिकार स्थायी हो जाय।

मानसिंह के पक्ष की पराजय :

गुलाबराय अपने प्रत्याशी मानसिंह के विरुद्ध सरदारों की विद्वेष भावना से मानसिंह और उसके चाचा शेरसिंह के जीवन के प्रति शंकाशील हो गई। इसलिए उसने महाराज की सहमति से उन दोनों को अपने विश्वसनीय व्यक्तियों[२४] के साथ १७९२ में सुरक्षा के लिए अपनी जागीर जालौर[२५] में भेज दिया।

---

२२. सुखसेजराय की मानसिंह को अर्जी वि० सं० १८६६ आश्विन कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, गहलोत जे० एस० : हिस्ट्री आफ मारवाड़, पृष्ठ १८१

२३. हकीकत बही बीकानेर, संख्या १७ एफ ३२–४२, टॉड उल्लिखित भाग २, पृष्ठ १०४

२४. हकीकत बही बीकानेर सं० १७, एफ ३२–४३, तवारीख मानसिंह एफ १ खांप दवेचा ३/१०१, एफ ३९–४० बाला री ख्यात २४/१०१ एफ २३३–२४२

२५. महाराज विजयसिंह ने जालौर का पट्टा गुलाबराय को १७९१ में दिया, देखिए ओझा : राजपूताने का इतिहास जिल्द ४, खण्ड २, पृष्ठ ७५४ तवारीख मानसिंह एफ १
मारवाड़ ख्यात भाग ३, एफ १

पासवान के प्रभाव को समाप्त करने के लिए कुंपावत, चांपावत, मेड़तिया, और उदावत सरदारों ने कड़ा विरोध खड़ा कर दिया और महाराजा की सत्ता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। उन्होंने विरोध स्वरूप १७९२[२६] में जोधपुर छोड़ दिया तथा वे मालकोसनी[२७] चले गये।

विजयसिंह सरदारों को सन्तुष्ट करने और उन्हें वापस जोधपुर लाने के लिए स्वयं फरवरी १७९२ में मालकोसनी गया।[२८] उनकी अनुपस्थिति में भीमसिंह ने सरदारों की सक्रिय सहायता से पोकरण के ठाकुर सवाईसिंह के नेतृत्व में जोधपुर के किले और नगर पर अधिकार कर लिया तथा १३ अप्रेल १७९२ को अपने को मारवाड़ का शासक घोषित कर दिया। तीन दिन के पश्चात् अर्थात् १६ अप्रेल १७९२ को, भीमसिंह की सहमति से पोकरण के सवाईसिंह और ठाकुर नवलसिंह ने धोखे से गुलाबराय की हत्या करदी। इस प्रकार गुलाबराय जो मानसिंह की मुख्य शक्ति और प्रबल सहायक थी दुर्भाग्य से दीर्घ जीवन नहीं पा सकी और परिणामतः मानसिंह ११ वर्ष की सुकुमार आयु में अपने अधिकारों के लिए अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों, राजनैतिक षडयन्त्रों, और शक्तिशाली विरोध के मध्य संघर्ष करने के लिए अकेला रह गया। सरदार अत्यन्त शक्तिशाली हो गये तथा विजयसिंह उनके हाथ में मात्र कठपुतली की भाँति रह गया। वह मानसिंह की सहायता नहीं कर सका। इस प्रकार गुलाबराय की हत्या के साथ मानसिंह का पक्ष निर्बल हो गया।

इसी बीच विजयसिंह ने अपने सरदारों को सन्तुष्ट कर लिया और वह २७ अप्रेल १७९२ को जोधपुर लौट आया। लेकिन जब उसने देखा कि किला भीमसिंह के अधिकार में है और उसकी प्रिय पासवान की हत्या कर दी गई है, उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। कुछ समय के लिए वह बालसमन्द में ठहरा। इसी बीच कुचामन, मीठड़ी, बलुंदा, रींया और चन्डावल के ठाकुरों ने स्थिति को संभाल लिया[२९] भीमसिंह को यह परामर्श दिया गया कि वह किला छोड़ दे, साथ ही उसको शपथ-पूर्वक यह आश्वासन भी दिया गया कि विजयसिंह के उपरान्त सिंहासन पर उसके

२६. विजयसिंह का महाराजा प्रतापसिंह को खरीता वि० सं० १८४८ माघ शुक्ल पक्ष ६, ७–१८० खरीते जात हिन्दी, रियासत जोधपुर, बन्डल सं० ७, जोधपुर रा राजावां रा बड़ेरा री ख्यात एफ २२२, टॉड : ऐनल्स भाग २, पृष्ठ १०४

२७. जोधपुर से ४० मील दूर बिलाड़ा में एक गाँव

२८. जोधपुर राजावां रा बडेरा री ख्यात एफ २२२; रेऊ : मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृष्ठ ३९०–९१

२९. जोधपुर राजावां रा बड़ेरा री ख्यात, एफ २२३
रेऊ : मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृष्ठ ३९१

अधिकार को स्वीकार किया जायेगा। इसलिए वह अपनी जागीर सिवाणा को चला गया और ३० मार्च १७९३ को वह किला महाराजा को पुनः मिल गया।[३०] यद्यपि विजयसिंह पुनः जोधपुर का स्वामी हो गया तथापि वह अधिक समय तक अपने शासकीय अधिकारों को न भोग सका। उसके जीवन का शेष भाग दलगत कलह वश उत्पन्न आपसी वैमनस्य के कारण अशान्त बना रहा। इस स्थिति को उसकी बीमारी ने और भी बिगाड़ दिया।

मानसिंह का जोधपुर आगमन :

जब महाराजा की बीमारी का समाचार जालौर पहुँचा तो सिंघवी जीतमल ने मानसिंह को सलाह दी कि वह जोधपुर जाकर रुग्ण महाराजा को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करे[३१] उसके परामर्श पर मानसिंह और शेरसिंह २–३ हजार सैनिकों की एक बड़ी सेना लेकर जोधपुर गए।[३२] उनका प्रकट उद्देश्य मृत्युशय्या पर पड़े महाराजा के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करना था, पर यह भी संभव था कि वे अपने उत्तराधिकार के अवसर का मूल्यांकन करने के उद्देश्य से जोधपुर गए हों।[३३] ऐसा प्रतीत होता था कि महाराजा विजयसिंह भी मानसिंह की सुरक्षा के सम्बन्ध में सशंकित था, पर वह नितान्त असमर्थ था। थोड़े समय बाद ही, ८ जुलाई १७९३ को विजयसिंह की मृत्यु हो गई।[३४] क्योंकि मानसिंह को यह परामर्श दिया गया था कि वह किले में प्रवेश न करे, इसलिए उसने अपनी फौज के मुसाहब लोढ़ा शाहमल तथा अपने चाचा जालिमसिंह के साथ शेखावत के तालाब पर डेरा डाला। उसने अपने शिविर से उन दरबारियों और सरदारों[३५] को जो उस समय किले की व्यवस्था कर रहे थे, यह संदेश भेजा कि वे उसे किले में प्रवेश करने की आज्ञा दें जिससे कि वह दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित कर सके। लेकिन उस परिस्थिति में सरदारों ने उसको

---

३०. वही

३१. मुदियार ख्यात (मानसिंह) बस्ता संख्या ४०, एफ ५ जोधपुर राजावां रा बड़ेरा री ख्यात, एफ २२५

३२. वही

३३. मुदियार ख्यात (मानसिंह) बस्ता संख्या ४०, एफ ५, जोधपुर राजावां रा बड़ेरा री ख्यात, एफ २२५

३४. हकीकत बही बीकानेर संख्या १८ एफ २००, मुदियार ख्यात (मानसिंह) बस्ता संख्या ४० एफ ५, रेऊ : मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृष्ठ ३९२

३५. जोधपुर राजावां रा बड़ेरा री ख्यात, एफ २२५, मुदियार ख्यात (मानसिंह) बस्ता संख्या ४० एफ ५

शोक मनाने की औपचारिक रस्म भी पूरी नहीं करने दी।[३६]

भीमसिंह का राज्यसिंहासन पर बैठना :

उस समय भीमसिंह के समर्थकों—धाभाई शम्भूदान, बख्शी सिंघवी अखयराज तथा दूसरों ने इस बात पर बल दिया कि जब भीमसिंह को जोधपुर छोड़ देने और महाराजा के लिए राजसिंहासन खाली कर देने हेतु तैयार किया गया था तब सभी ने शपथपूर्वक यह वचन दिया था कि महाराजा विजयसिंह की मृत्यु पर उसको (भीमसिंह को) महाराजा बनाया जायेगा। अतएव अब सभी सरदारों ने उसको मारवाड़ का शासक बनाने का निश्चय किया। किन्तु उस समय भीमसिंह जोधपुर में नहीं था। वह अपने शक्तिशाली सहायक—पोकरण के सवाईसिंह—के साथ जैसलमेर अपने विवाह के लिए गया हुआ था।[३७] अतः सरदारों के निश्चय के अनुसार भीमसिंह को महाराजा की मृत्यु की सूचना दी गई और उसको शीघ्र ही जोधपुर आने के लिए कहा गया। मानसिंह और जालिमसिंह उस समय जोधपुर में मौजूद थे और वे शेखावतों के तालाब पर डेरा डाले हुए थे। परन्तु उन्हें किले में नहीं घुसने दिया गया।[३८]

जैसे ही १२ जुलाई १७९३ को जैसलमेर में भीमसिंह को सूचना मिली, वह सवाईसिंह के साथ १७ जुलाई १७९३ को जोधपुर पहुँच गया। भीमसिंह के जोधपुर पहुँचने पर दीवान बख्शी सिंघवी अखयराज और धाभाई शम्भूदान तथा अन्य सभी सरदारों ने किले के फाटक खोल दिए और उसकी अपने शासक के रूप में अभ्यर्थना की। २० जुलाई १७९३ को वह मारवाड़ के सिंहासन पर बैठा।[३९]

मानसिंह का भीमसिंह के विरुद्ध अभियान :

इस प्रकार उस समय मानसिंह का अभियान पूर्ण रूप से असफल रहा और वह अत्यन्त निराश हो गया। वह अपनी फौज के बख्शी लोढ़ा शाहमल, जूसी के कुम्पावत रतनसिंह और अपने अन्य समर्थकों के साथ जोधपुर से चल दिया तथा जालौर के मार्ग में, उसने मारवाड़ के गाँवों को लूटना आरम्भ कर दिया।[४०]

---

३६. वही
३७. जोधपुर राजावां रा बड़ेरा री ख्यात, एफ २२५, मुदियार ख्यात बस्ता संख्या ४० एफ ६, रेऊ : मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृष्ठ ३९६
३८. जोधपुर राजावां रा बड़ेरा री ख्यात, एफ २२५
३९. हकीकत बही बीकानेर, संख्या १८ एफ २१०, मुदियार ख्यात, बस्ता संख्या ४०. एफ ६, रेऊ : मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृष्ठ ३९६
४०. जोधपुर राजावां रा बड़ेरा री ख्यात, एफ २२५

मारवाड़ के राजसिंहासन पर बैठते ही भीमसिंह को मानसिंह तथा उसके उन साथियों से निबटना पड़ा जो राज्य में अव्यवस्था उत्पन्न कर रहे थे और मारवाड़ के पश्चिमी भाग में गाँवों को लूट रहे थे। वे मेड़ता तथा उसके समीपवर्त्ती प्रदेश को अपने अधिकार में लेना चाहते थे।[४१] उसने बख्शी सिंघवी बनराज के नेतृत्व में एक सेना मानसिंह और उसके फौज-बख्शी जालिमसिंह का पीछा करने के लिए भेजी। सिंघवी पहले मेड़ता पहुँचा और उसकी रक्षा के लिए उसने शीघ्रतापूर्वक तैयारी की। लोढ़ा शाहमल ने मेड़ता की घेराबन्दी की परन्तु वह परास्त हो गया। फिर उसने ६ सितम्बर १७९३ को बलून्दा पर आक्रमण किया[४२] और कस्बे को लूट लिया, क्योंकि बलून्दा के ठाकुर चन्दावत फतहसिंह से उसकी पुरानी शत्रुता थी। उस युद्ध में लोढ़ा शाहमल के बहुत से आदमी मारे गए।[४३] उसी समय जालिमसिंह ने अपनी सेना सहित स्वयं को शाहमल से पृथक् कर लिया और मेड़ता तथा बिलाड़ा के बीच सिरयासी नामक गाँव में अपना डेरा डाल दिया। किन्तु शाहमल अपने भाई मेहकरण, ठाकुर रतनसिंह तथा अन्य लोगों के साथ जयतारण के मार्ग से बिलाड़ा की ओर बढ़ा और भीमसिंह की सेना के विरुद्ध नई योजना बनाने के लिए बिलाड़ा ठहर गया।[४४] बख्शी सिंघवी अखयराज और चंडावल ठाकुर बिशनसिंह एक बड़ी सेना लेकर शाहमल का पीछा करने के लिए बिलाड़ा पहुँचे। दूसरे दिन दोनों सेनाएँ एक दूसरे से भिड़ गईं और शाहमल को पीछे ढ़केल दिया गया।[४५] महाराजा की सेनाओं ने बिलाड़ा पर पुनः अधिकार कर लिया और उस युद्ध में मेहकरण को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। अखयराज से पराजित होकर शाहमल कुम्पावत असोप, ठाकुर रतनसिंह आदि के साथ सोजत और गोडवार के मार्ग से भागकर मेवाड़ चला गया।[४६] मानसिंह भी मेड़ता, बलून्दा और बिलाड़ा के उन निरर्थक युद्धों के उपरान्त जालौर के सुदृढ़ किले में चला गया।[४७] क्योंकि वह भीमसिंह के मारवाड़ का शासक बनने से प्रसन्न नहीं था, अतएव उसने अपने को मारवाड़ का

---

४१. हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८५४, एफ ५२

४२. बलून्दा बिलाड़ा तहसील में एक गाँव है।

४३. जोधपुर राजावां रा बड़ेरा री ख्यात, एफ २२५, बाराली ख्यात २४/१०१ एफ २३३-२४२, ओझा : राजपूताने का इतिहास भाग ४, खंड २, पृष्ठ ७६५

४४. मुदिआर ख्यात, बस्ता संख्या ४०, एफ ८, जोधपुर राजावां रा बड़ेरा री ख्यात, एफ २२५

४५. वही

४६. जोधपुर राजावां रा बड़ेरा री ख्यात, एफ २२५

४७. मुदियार ख्यात, बस्ता संख्या ४० एफ ८

शासक घोषित कर दिया और भीमसिंह के विरुद्ध संघर्ष करने की तैयारियाँ करने लगा।[४८]

जालौर का घेरा : भीमसिंह मानसिंह संघर्ष :

मारवाड़ के सिंहासन पर बैठने की सम्भावनाएँ धूमिल होने पर मानसिंह जालौर के किले में चला आया।

यहाँ जालौर के किले का संक्षिप्त इतिहास दे देना असंगत नहीं होगा। यह प्रसिद्ध और प्राचीन दुर्ग अरावली की एक शाखा सोना-गिरी पहाड़ी पर स्थित है। यह अपने चारों ओर की भूमि से १२०० फीट की ऊँचाई पर है जहाँ से चारों ओर फैले हुए मैदान दिखलाई देते हैं। यह दुर्ग ८०० गज लम्बा और ४०० गज चौड़ा है। इसका निर्माण परमार शासकों ने ईसवी सन् के प्रारम्भिक वर्षों में करवाया था। यह एक ऐसा ऐतिहासिक दुर्ग है जो भूतकाल में अनेक वीरता-पूर्ण घेरों और युद्धों का सामना करने के लिए प्रसिद्ध रहा है। इसका परकोटा अत्यन्त सुदृढ़ और बहुत बड़ा है तथा उत्तम जाति के गढ़े हुए मजबूत पत्थरों से बना हुआ है। यह दुर्ग जोधपुर नगर के दक्षिण में ७५ मील की दूरी पर स्थित है। इसकी स्थिति सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस दुर्ग को यह असाधारण सुविधा प्राप्त है कि इसमें बहुत उत्तम मीठे जल के दो बड़े तालाब हैं जो कि लम्बे घेरे के समय सेना के उपयोग में आ सकते हैं। राठौर शासक जालौर दुर्ग को सदैव से अपना सुदृढ़ सैनिक आधार केन्द्र मानते आए थे। ऐसा कहा जाता था कि मारवाड़-शासकों का सुरक्षित कोष आपत्तिकाल में उपयोग के लिए उस दुर्ग में सुदृढ़ पहरे में रक्खा जाता था। उस दुर्ग की सुदृढ़ दीवारों के पीछे रहकर मानसिंह भीमसिंह के विरुद्ध खड़ा हुआ (संघर्षरत हुआ)।[४९]

भीमसिंह और उसकी प्रारम्भिक कठिनाइयाँ :

भीमसिंह के अधीन नई सरकार को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ा वे कठिन और अनेक थीं। राजधानी के विभिन्न दलों और गुटों में जो झगड़ा था उससे महाराजा की स्थिति निर्बल हो गई थी। जालौर से मानसिंह मारवाड़ के

---

४८. महाराजा मानसिंह का खरीता महाराजा सूरतसिंह को वि० सं० १८५४ चैत्र शुक्ला चतुर्थी का पत्र, मानसिंह का खरीता महाराणा भीमसिंह को वि० सं० १८५२ वैशाख कृष्ण पक्ष की पड़वा, का पत्र, वीर विनोद, भाग २, पृष्ठ १५७४

४९. वाल्टर : गजेटियर आफ मारवाड़ मालानी और जैसलमेरी (१८७७) पृष्ठ ४३–४४, इम्पीरियल गजेटियर आफ इंडिया, प्राविंशियल सीरीज, राजपूताना (१९०८) पृष्ठ १९५

शासक की सत्ता की खुले रूप में अवहेलना करता रहा था[५०] और भाटी, बाला और चौहान गोत्रों के सरदार सिंघवी शम्भूमल, आनन्दमल, जीतमल, फतहमल और सूरजमल के साथ मानसिंह के पक्ष का समर्थन कर रहे थे,[५१] जबकि पोकरण सिंघवी अखयराज, इन्द्रराज, बनराज, गुलराज तथा भीमराजोत अपना समर्थन भीमसिंह को दे रहे थे।[५२] उसके चाचाओं—शेरसिंह, सावन्तसिंह, जालिमसिंह-और उसके चचेरे भाई सूरसिंह ने विजयसिंह की मृत्यु के उपरान्त उसके प्रति अपने समर्थन को वापस ले लिया था। उदाहरण के लिए जालिमसिंह ने गोड़वाड़ को अपने अधीन कर लिया और मेवाड़ से संधि कर ली।[५३] इस प्रकार शासक परिवार के राजकुमार परस्पर विरोधी शिविरों में बँट गए थे और वे अपनी महत्वाकाँक्षाओं को छिपाते भी नहीं थे।

इस स्थिति का सामना करने के लिए भीमसिंह ने १७९६ में गोड़वाड़ को अपने अधीन कर लिया और जालिमसिंह को परास्त कर दिया।[५४] इसी प्रकार उसने १७९४ में अपने चाचाओं—शेरसिंह तथा सावन्तसिंह और चचेरे भाई सूरसिंह को मरवा कर उनसे अपना छुटकारा कर लिया।[५५] अपने सभी प्रतिद्वन्द्वियों को परास्त करके अथवा मरवा कर धराशायी कर देने के उपरान्त उसने तुरन्त मानसिंह की ओर अपना ध्यान दिया।

गोल का युद्ध :

मानसिंह ने खीची रामसिंह और बारहट पीरदान को जैसलमेर के कुंवर भगवानसिंह और उसके पुत्र कुशलसिंह के पास यह प्रार्थना लेकर भेजा कि वे उसका

---

५०. जोधपुर राजावां रा बड़ेरा री ख्यात, एफ २२५, मुदियार ख्यात, बस्ता संख्या ४०, एफ १०

५१. मानसिंह का सिंघवी फतहमल को खास रुक्का वि० सं० १८५१ आश्विन कृष्ण पक्ष की पड़वा, मानसिंह का जीतमल, फतहमल, आनन्दमल, केसरीमल को खास रुक्का वि० सं० १८५२ भाद्रपद कृष्णपक्ष की द्वादशी, बस्ता संख्या ७६ जालौर गढ़ घेरा री हाजरी री बही, वि० सं० १८६० जोधपुर।

५२. हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८५४ एफ ५२ जोधपुर राजावान रा बड़ेरा री ख्यात, एफ २२५, मारवाड़ ख्यात ३ एफ।

५३. वीर विनोद, भाग २, पृष्ठ ८५८

५४. रेऊ: मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृष्ठ ३९७

५५. तवारीख मानसिंह एफ २, ओझा : राजपूताने का इतिहास भाग ४, खंड २ पृष्ठ ७९९, टॉड : एनल्स भाग २, पृष्ठ १०९

साथ दें। ऐसा करके उसने अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने का प्रयत्न किया।[५६] अपने प्रतिरोध को प्रभावकारी बनाने के लिए मानसिंह ने सिंघवी जीतमल, सूरजमल, कुशलसिंह और जोरावरमल को पालनपुर नवाब से सैनिक सहायता प्राप्त करने के लिए भेजा। शत्रु के विरुद्ध मानसिंह ने तीन हज़ार अरब सैनिकों की सेना को भाड़े पर भी रख लिया।[५७] जब अरब सेना गोल पहुँची और उसने जालौर जाने के लिए वहाँ डेरा डाला तब जालौर की घेराबन्दी करने वाली जोधपुर की सेना को उसका समाचार मिला और तभी उसने अरबों पर आक्रमण कर दिया। जोधपुर की सेना ने अरबों को जालौर में मानसिंह से नहीं मिलने दिया और उनको पीछे हटने के लिए विवश कर दिया। इस कड़े संघर्ष में ठाकुर मोकमसिंह, ज़ोरावरसिंह, सूरजमल, कुशलसिंह इत्यादि अभूतपूर्व वीरता और साहस से लड़े तथा उन्होंने जोधपुर की सेनाओं के आक्रमण को विफल कर दिया।[५८] इस अवसर पर मानसिंह ने सूरजमल और कुशलसिंह के प्रति उनकी उस वीरता और दृढ़ता के लिए जिससे उन्होंने उसके पक्ष का समर्थन किया था हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की और उनको वचन दिया कि जब कभी वह इस स्थिति में होगा उनके इस ऋण को चुकायेगा।

जालौर परगने पर अधिकार :

दो वर्ष के विराम के बाद १८९७ में भीमसिंह ने पुनः एक बड़ी सेना सिंघवी अखयराज के सेनापतित्व में जालौर दुर्ग की घेराबन्दी करने वाली सेना को अधिक सशक्त करने के लिए भेजी।[६०] मानसिंह ने उस तात्कालिक संकट को और अपने स्वामिभक्त सरदारों को खास रुक्के भेजकर अपनी सहायता के लिए आमन्त्रित किया।[६१] लेकिन सिंघवी अखयराज ने मानसिंह पर भारी दबाव डाला तथा जालौर

---

५६. भाटी रावलोता री ख्यात भाग २, २३/१०१ यफ ४२६

५७. भाटी रावलोता री ख्यात भाग २, २३/१०१ यफ ५४४.

५८. गोल, जालौर के उत्तर-पश्चिम में दस मील की दूरी पर सिवाना के परगने में एक गाँव है।

५९. भाटी रावलोता री ख्यात भाग २, २३/१०१ यफ ४२६

६०. मानसिंह का देवरा हिन्दूसिंह को खास रुक्का वि० सं० १८५४ ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष की पड़वा, मानसिंह का प्रतापसिंह और अभयसिंह को खास रुक्का वि० सं० १८५४ ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष की पड़वा, बाला री ख्यात २४/१०१ एफ १२३–१२६, १३६–१४५, भाटी शिवसिंह और जसकरण को खास रुक्का वि० सं० १८५४ ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष की पड़वा, ख्यात भाटी भाग २, २३/१०१ एफ ५२५–५६०

६१. जोधपुर राजावां रा बड़ेरा री ख्यात एफ २२५, रेऊ : मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृष्ठ ३९७

परगने के अधिकांश भाग पर अधिकार कर लिया।[६२] अब केवल जालौर नगर और दुर्ग ही मानसिंह के अधिकार में बच रहे।[६३] अपनी सफलता से प्रोत्साहित होकर सिंघवी अखयराज ने जालौर पर आक्रमण कर दिया। यह समाचार सुनकर मानसिंह ने बीकानेर के महाराजा सूरतसिंह से सैनिक सहायता चाही और उस सहायता के बदले, जोधपुर का शासक हो जाने पर उसे फलौदी देने का वचन दिया। मानसिंह ने गुजरात और सिंध से भी सहायता माँगी।[६४] उसने मेवाड़ के महाराणा से भी सैनिक सहायता माँगी और वचन दिया कि यदि इस समय मेवाड़ की सेनाएँ उसका साथ देंगी तो वह गोड़वाड महाराणा को दे देगा।[६५] इस प्रार्थना के उत्तर में महाराणा भीमसिंह ने मानसिंह के चाचा जालिमसिंह को अम्बाजी की सेना के साथ जालौर भेजा। लेकिन जालिमसिंह को बनराज के नेतृत्व में जोधपुर की सेनाओं ने मेवाड़ के एक गाँव कच्छ बाली में रोक दिया। वहाँ कुछ दिनों बाद ३ जून, १७९८ को जालिमसिंह की मृत्यु हो गई।[६६]

इस प्रकार अखयराज ने जालौर परगने के अधिकांश भाग को भीमसिंह के लिए जीत लिया और मानसिंह तथा उसके अनुयायियों को जालौर नगर में धकेल दिया। इसके उपरान्त वह जालौर नगर की ओर बढ़ा, जहाँ उसको रोक दिया गया। मानसिंह ने अपनी सक्रियता और लगन से अपनी सेना की एकता को बनाये रखा। अखयराज ने यह अनुभव किया कि वह मानसिंह की सेनाओं के विरुद्ध अधिक आगे नहीं बढ़ सकता। आगे सैनिक कार्यवाही करने के लिए कुमुक प्राप्त न होने की आशंका के कारण अखयराज संधि के लिए उत्सुक हो गया। जालौर परगने में भारी

---

६२. मानसिंह का हिम्मतसिंह को खास रुक्का वि० सं० १८५४ ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की परवा, खाँप दवेचा, ३/१०१, एफ १३३; रेऊ : मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृष्ठ ३९७

६३. खास रुक्का मानसिंह का हिम्मतसिंह को वि० सं० १८५४ ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की परवा, खाँप दवेचा ३/१०१ एफ १३३; रेऊ : मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृष्ठ ३९७

६४. मानसिंह का खरीता महाराणा भीमसिंह को वि० सं० १८५४ चैत्र शुक्ल पक्ष की तृतीया।

६५. मानसिंह का खरीता महाराणा भीमसिंह को वि० सं० १८५४ वैशाख कृष्ण पक्ष की परवा; वीर विनोद, भाग २, पृष्ठ १५७४, मानसिंह का खरीता सूरत सिंह को वि० सं० १८५४ वैशाख कृष्ण पक्ष की छट।

६६. ओझा : राजपूताने का इतिहास भाग ४, खण्ड २, पृष्ठ ७६८; वीर विनोद भाग २, पृष्ठ १५७४

क्षति उठाने के उपरान्त मानसिंह भी ऐसी संधि करने के लिए कुछ कम उत्सुक न था, जिससे उसको भविष्य में लाभ होने की संभावना हो। अस्तु, उसने अखयराज को अपने पक्ष में कर लिया।[६७] अखयराज का विपक्ष में चला जाना भीमसिंह के लिए दुर्भाग्यपूर्ण था। अतः उसने उस विश्वासघाती अधिकारी को किसी प्रकार जोधपुर बुलवाकर कैद कर लिया।[६८]

यद्यपि अखयराज को वापस बुलवा लिया गया तथापि मारवाड़ की सेनाएँ उस प्रदेश से पूर्णतया नहीं हटाई गईं। सिंघवी बनराज और सिंघवी चैनकरण जो अपनी सेनाओं के साथ जालौर परगने की विभिन्न चौकियों पर तैनात थे, सतर्क थे। मानसिंह को यह भलीभाँति ज्ञात था कि यह विश्राम केवल अस्थाई है और जोधपुर की सेना अधिक शक्ति से पुनः आक्रमण करेगी। इसलिए उसने सभी सरदारों को खास रुक्के भेज कर अपनी जमियत के साथ जालौर आने व जालौर की सेना को अधिक सबल बनाने के लिए बुला भेजा,[६९] जिससे कि तात्कालिक संकट का सामना किया जा सके। उसने सिंघवी फतहमल और शम्भुमल को अरब, पठान और सिंधी सैनिक अपने साथ लाने के लिए पालनपुर भेजा[७०] उसी समय उसने सूरतसिंह से भी नागौर के समीप दूसरा मोर्चा खोलने का प्रस्ताव किया, जिससे कि जोधपुर के शासक का ध्यान बँट जाय और उस पर दबाव कम हो जाय। इस सहायता के बदले उसने सूरतसिंह को पेशगी खर्चा देने का प्रस्ताव किया।[७१]

अन्य लड़ाइयाँ :

पालनपुर से जालौर की ओर आने वाले सिंधी और पठान सैनिकों को बनराज और चंडावल ठाकुर बिशनसिंह ने कड़े प्रतिरोध द्वारा भीनमाल,[७२] मंडलोई

६७. मानसिंह का सूरतसिंह को खरीता, वि० सं० १८५५ भाद्रपद शुक्ल पक्ष की आठवीं।

६८. जोधपुर राजावां रा बड़ेरा री ख्यात एफ २२५; रेऊ : मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृष्ठ ३९८

६९. मानसिंह का खास रुक्का ठाकुर राजसिंह को, वि० सं० १८५५ चैत्र कृष्ण पक्ष की नवमी, बाला री ख्यात, २४/१०१ एफ २५३

७०. मानसिंह का सिंघवी फतहमल को खास रुक्का वि० सं० १८५५ श्रावण शुक्ल पक्ष की पंचमी, मानसिंह का सूरतसिंह को खरीता वि० सं० १८५५ श्रावण शुक्ल पक्ष की एकादशी, ओझा : राजपूताने का इतिहास भाग ४, खंड २, पृष्ठ ७६८

७१. मानसिंह का सूरतसिंह को खरीता वि० सं० १८५५ भाद्रपद की आठवीं

७२. मानसिंह का सूरतसिंह को खरीता वि० सं० १८५५ श्रावण शुक्ल पक्ष की एकादशी

और महलावास में २६ जून १७९८ के लगभग रोक दिया।[७३] यद्यपि ठाकुर राजसिंह, रतनसिंह, अभयसिंह, जोरावरसिंह, फतहसिंह और अरब सेना ने भयंकर वेग से युद्ध किया तथापि वे सब बनराज के विरुद्ध आगे बढ़ने में असफल रहे। अरबों को भी विवश होकर भागना पड़ा। यह लड़ाई मानसिंह के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हुई। ठाकुर जोरावरसिंह और अभयसिंह गंभीर रूप से घायल हो गये तथा ठाकुर ओपसिंह राजसिंह के कुछ आदमियों के साथ मारे गये। सिंघवी बनराज और चंदावल ठाकुर बिशनसिंह जो कि घायल हो गये थे, मानसिंह की पराजित सेना का पीछा करने में असफल रहे। उस प्रदेश में घोर वर्षा हो जाने के कारण कुछ समय के लिए युद्ध बन्द रहा।

२४ जुलाई १८०१ को साकदड़ा में युद्ध :

१७९८ के जून मास का अन्त भीमसिंह के लिए आशाजनक प्रतीत होने लगा। यह सत्य है कि वह जालौर नहीं ले पाया लेकिन उसको छोड़कर जालौर का अधिकांश परगना उसके हाथ में था। उस समय भीमसिंह ने वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा अपनी स्थिति को और सुदृढ़ करने की योजना बनाई। वह १० मई १८०१ को जयपुर के महाराज प्रतापसिंह की बहिन से विवाह करने के लिए पुष्कर गया[७४] मानसिंह ने राजधानी से उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाया तथा एक बड़ी सेना लेकर अपनी वित्तीय स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए पाली को लूटा। उसने पाली के व्यापारियों को कैद कर लिया और उन्हें अपने छुटकारे के लिए ६० हजार रुपये की रकम देने को विवश किया।[७५] जब मानसिंह पाली से लौट रहा था तब जोधपुर के सेनापतियों—सिंघवी चैनकरण और चण्डावल बहादुरसिंह—ने उसका मार्ग रोक दिया। गोडवाड़ में साकदड़ा ग्राम के पास दोनों सेनाओं का आमना-सामना हुआ। सिंघवी चैनकरण ने मानसिंह को संदेश भेजा कि वह महाजनों को तुरन्त छोड़ दे और जालौर चला जाय। मानसिंह इस चुनौती से क्रुद्ध हो गया और उसने अपने शत्रुओं का वीरता से मुकाबला किया। घमासान युद्ध हुआ जिसमें भयंकर रक्तपात हुआ। दोनों दलों के योद्धा इतने निकट आ गये थे कि इस बात की संभावना हो गई कि मानसिंह या तो कैद हो जायेगा या मारा जायगा। वास्तव में,

---

७३. जोधपुर राजावां रा बड़ेरा री ख्यात, एफ २२५, बालारी ख्यात २४/१०१ १०१–१७, ओझा : राजपूताने का इतिहास भाग ४, खण्ड २ पृष्ठ ७६९

७४. भीमसिंह का जयपुर के प्रतापसिंह को खरीता वि० सं० १८५७ ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी, चौहाना री ख्यात १७/१०१ एफ २५६

७५. मुदियार ख्यात बस्ता संख्या ४० एफ ११, ख्यात भाटी २३/१०१, भाग २ एफ ५४४ रेऊ : मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृष्ठ ३९८

उसके शत्रु की तलवार उसके साफे पर लगी। पर तुरन्त ही चम्पावत हेमसिंह और अखयसिंह उसकी रक्षा के लिए आ गए और उसे बचा लिया गया। किन्तु इस संघर्ष में अखयसिंह मारा गया। हेमसिंह ने उसके शव को मानसिंह के समक्ष प्रस्तुत किया। उसके इस वीरतापूर्ण कार्य पर अत्यन्त प्रसन्न हो कर मानसिंह ने उसे ५००० रु० के मूल्य का पट्टा देकर सम्मानित किया।[७६] मानसिंह के विरुद्ध कठिन परिस्थिति देखकर उसके स्वामिभक्त सरदार भाटी जोधसिंह ने उसे रणक्षेत्र छोड़कर जालौर चले जाने के लिए तैयार किया।[७७] अतएव वह अपने शौर्य और शस्त्रों की निपुणता के द्वारा घोड़े पर सवार होकर जालौर चला गया। ठाकुर सलेहसिंह शेखावत ने जो युद्ध में गंभीर रूप से घायल हो गया था, अपने जख्मों के बावजूद मानसिंह को जालौर के किले में पहुँचा दिया। मानसिंह ने उसकी सेवाओं की सराहना के रूप में उसको जालौर परगने में एक गाँव दे दिया।

साकदड़ा के इस भयंकर युद्ध में दोनों पक्षों के अनेक व्यक्तियों ने अपने प्राणों की आहुति दी। मानसिंह के स्वामिभक्त सरदार जोधसिंह भाटी, मानसिंह मेड़तिया, जालिमसिंह उदावत, रणछोड़दास डूंगरोजी, सादुलसिंह मेड़तिया तथा अन्य अनेक सरदार इस युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए। इस अवसर पर बड़ी संख्या में ठाकुर घायल भी हुए।[७८]

जालौर नगर का अन्तिम घेरा :

जब भीमसिंह अपने विवाह के लिए जोधपुर से पुष्कर गया था तब उसकी अनुपस्थिति में मानसिंह द्वारा किए गए पाली को लूटने के प्रयत्न के कारण वह अत्यन्त क्रुद्ध हो गया। उसने मानसिंह को नष्ट कर देने का अन्तिम निर्णय किया और इस बार फिर जालौर की घेराबन्दी की जो १८०१ से १८०३ तक, उसकी मृत्यु पर्यन्त निरन्तर बनी रही। यह जालौर का अन्तिम घेरा सिद्ध हुआ। १८०१ में महाराजा भीमसिंह ने पुनः बनराज की अध्यक्षता में एक बड़ी सेना भेजी। बनराज ने सोरखाना द्वार के सामने एक स्थान पर अधिकार कर लिया।[७९] वह अपनी सेना को जालौर नगर की ओर ले गया और उस पर उसने सफलतापूर्वक

७६. बन्दगी व बिगत, बस्ता संख्या ७६

७७. ख्यात भाटी १६/१०१ एफ २१; रेऊ : मारवाड का इतिहास भाग १ पृष्ठ ३९६

७८. बन्दगी व बिगत, बस्ता संख्या ७६, भाटी रावलोतां री ख्यात २३/१०१ भाग २, एफ २८८, बाला री ख्यात, २४/१०१ एफ १२

७९. बन्दगी व बिगत, बस्ता संख्या ७६, ख्यात भाटी १६/१०१ एफ २१ जालौर गढ़ घेरा री हाजरी री बही, वि० सं० १८६० जोधपुर।

अधिकार कर लिया। इस घोर संकट और कठिनाई के समय उसके प्रमुख सरदारों—लखधीरसिंह, जालिमसिंह, जोरावरसिंह, दौलतसिंह, राजसिंह, भगवानसिंह (जैसलमेर रावल का पुत्र), सूरजमल और कुशलसिंह—ने मानसिंह की जन-धन और अन्य साधनों से सहायता की।[८०] किन्तु शत्रु का घेरा इतना कड़ा हो गया कि मानसिंह को अपनी सफलता में संदेह होने लगा। अतएव उसने एक गुप्त मार्ग से अपने रनिवास और कुंवर छत्रसिंह को सवाईसिंह बीदावत, तेजसिंह तथा स्वामिभक्त सरदारों के साथ पहले सिरोही और बाद में मेवाड़ भेज दिया। कुछ समय तक वे सिरोही के पर्वतीय प्रदेश स्थित अरठवाड़ा और चूली गाँवों में रहे और बाद में मेवाड़ के पर्वतीय प्रदेश के एक ग्राम पदराड़ा में चले गये।[८१] घेरा निरन्तर बढ़ती हुई तीव्रता से चलता रहा। घेराबन्दी करने वाली सेना की शक्ति में वृद्धि करने के उद्देश्य से भीमसिंह ने सिंघवी इन्द्रराज मूलराज और भण्डारी गंगाराम को बनराज की सहायता के लिए भेजा। इनके अतिरिक्त उसने जीवन शेख, मोसम अली और हिंदालखाँ के सम्मिलित नेतृत्व में एक भाड़े की सेना भी भेजी। सिंघवी इन्द्रराज, गुलराज और गंगाराम ने जोधपुर तथा पठानों की सेना के साथ जालौर पर सब ओर से एक साथ आक्रमण करने की योजना बनाई। नींबारे दरवाजे पर जमकर भीषण युद्ध हुआ जिसमें जोधपुर की सेना नगर की रक्षा करने वालों को पीछे हटाने में सफल हो गई; और उसने २६ जुलाई १८०३ को जालौर नगर पर अधिकार कर लिया।[८२] इस भयंकर युद्ध में दोनों ओर के बड़ी संख्या में सैनिक मारे गये और हताहत हुए। सिंघवी बनराज एक गोली से रणक्षेत्र में ही मारा गया।[८३] इस घेरे के युद्ध में मानसिंह के भी अनेक प्रमुख सरदार मारे गये, जिनमें भाटी रतनसिंह, गोविन्दसिंह, सवाईसिंह, संग्रामसिंह, मानसिंह, बांकीदास चौहान शिवसिंह और मोकमसिंह तथा उसके १५ आदमी भी थे।[८४]

---

८०. बन्दगी व बिगत, बस्ता संख्या ७६, भाटी रावलोतां री ख्यात २३/१०१, भाग २, एफ २८५, बाला री ख्यात, २४/१०१ एफ १२

८१. बन्दगी व बिगत, बस्ता संख्या ७६, बाला री ख्यात, २४/१०१, एफ २६३–६५

८२. भीमसिंह का बड़ी मांजी देवगढ़ की चूंडावतजी को पत्र, वि० सं० १८६० भाद्रपद शुक्ल पक्ष अष्टमी, ख्यात भाटी, १६/१०१, एफ १८; रेऊ : मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृष्ठ ३९९

८३. बन्दगी व बिगत, बस्ता संख्या ७६

८४. बन्दगी व बिगत, बस्ता संख्या ७६, असैधा री ख्यात, १९/१०१, एफ १०१–१०२, जालौर गढ़ घेरा री हाजरी री बही, वि० सं० १८६० जोधपुर।

जालौर दुर्ग का घेरा :

जालौर नगर के पतन के उपरान्त संघर्ष का दृश्य किले पर केन्द्रित हो गया और मानसिंह अपने आदमियों के साथ किले की चारदीवारी में घिर गया। उसकी खाद्य सामग्री बहुत कम हो गई थी। २६ जुलाई से अक्टूबर १८०३ तक दीर्घकालीन घेरे के कारण दुर्ग में खाद्य सामग्री, पेयजल और अन्य आवश्यक वस्तुओं का अत्यधिक अभाव हो गया था। विपत्ति के उन दिनों में जबकि सेना को जल की भारी कमी सता रही थी, उसके कुछ स्वामिभक्त सरदार, भाटी पृथ्वीराज और संग्रामसिंह किसी प्रकार दुर्ग से बाहर निकले और घिरी हुई सेना के लिए जल ले गये।[८५] युद्ध करते रहने के लिए मानसिंह ने वे बहुमूल्य वस्तुएँ जो उसे गुलाबराय से मिली थीं बेच दीं।[८६] उस भीषण आवश्यकता के समय जालौर दुर्ग के समीप स्थित जलंधरनाथ-मंदिर के पुरोहित आयसदेवनाथ ने मानसिंह को अपनी सेवाएं अर्पित कीं और गाँवों में घूमघूम कर उसके लिए कोष, अनाज, घोड़े और आदमी एकत्रित किये।[८७] दूसरी ओर, सिंघवी इन्द्रराज और गंगाराम ने जो कि घेरे वाली सेना का नेतृत्व कर रहे थे, घेरे को असाधारण दृढ़ता से कड़ा करना आरम्भ कर दिया। अब और अधिक प्रतिरोध कर सकना मानसिंह के लिए लगभग असंभव हो गया। अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों से सामना होने पर जबकि मानसिंह अत्यन्त असहाय और निराश अवस्था में था उसने सूरजमल को इन्द्रराज और गंगाराम के पास घेरे को ढ़ीला करने की प्रार्थना लेकर भेजा जिससे कि कुछ दिनों में वह दुर्ग को छोड़कर जा सके।[८८]

आरम्भ में इन्द्रराज उस प्रस्ताव को स्वीकार करने में हिचकिचाया, क्योंकि एक पूर्व अवसर पर भी मानसिंह अधिक समय प्राप्त करने के उद्देश्य से इसी प्रकार का प्रस्ताव लेकर उपस्थित हुआ था। अब उसने किला खाली करने की निश्चित तिथि बतलाने का आग्रह किया, तब मानसिंह ने वचन दिया कि वह दीपावली के दिन दुर्ग को निश्चित रूप से छोड़ देगा।[८९]

---

८५. चौहाना री ख्यात १७/१०१, एफ ४०६, ख्यात भाटी १६/१०१, एफ ३३६

८६. सुखसेजराय की मानसिंह को अर्जी, वि० सं० १८८६ कार्तिक शुक्ल पक्ष की पन्द्रहवीं, हकीकत बही बीकानेर, संख्या १७, एफ १२५, १३०, १४५ और १४७

८७. हकीकत बही बीकानेर, संख्या १७, एफ १६०, १६३, १६५

८८. तवारीख मानसिंह, एफ २, मारवाड़ ख्यात भाग ३, एफ १; ख्यात भाटी २३/१०१, भाग २, एफ २८८

८९. तवारीख मानसिंह, एफ २, मुदियार ख्यात, बस्ता संख्या ४०, एफ २६

किन्तु अपने गुरु से दैवी सहायता का आश्वासन पाने पर उसने पूर्व निर्धारित तिथि को दुर्ग खाली नहीं किया। घटना इस प्रकार घटी कि उसके आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक आयसदेवनाथ ने भविष्यवाणी की कि कार्तिक शुक्ल पक्ष की छट (२१ अक्टूबर १८०३) तक वह राज्य का शासक बन जायेगा। इस आश्वासन ने उसको नैतिक बल दिया और इसी कारण वह डटा रहा।[९०] आयसदेवनाथ की भविष्यवाणी सत्य हुई, क्योंकि १९ अक्टूबर १८०३ को भीमसिंह की मृत्यु हो गई (वि० सं० १८६० कार्तिक शुक्ल पक्ष चतुर्थी)।[९१]

भीमसिंह की मृत्यु की सूचना जालौर पहुँचते ही इन्द्रराज ने २० अक्टूबर १८०३ को घेरा उठा लिया।[९२]

मानसिंह के लम्बे प्रतिरोध के कारण :

जिन कारणों से मानसिंह दृढ़ निश्चयात्मक घेरे का इतने लम्बे समय तक सामना कर सका उसकी व्याख्या करना आवश्यक है। प्रथम, जालौर के दुर्ग की भौगोलिक स्थिति और अभेद्यता के कारण मानसिंह दीर्घकाल तक शत्रु का सामना कर सका। दूसरा, प्रतिकूल परिस्थितियों ने उसके हृदय में धैर्य, सतत प्रयत्न, साहस, और दृढ़ निश्चय की भावना उत्पन्न कर दी। अपने बाल्यकाल में जिस वातावरण में उसने अपना जीवन व्यतीत किया था उसने उसे एक दृढ़ चरित्र और जीवन-दर्शन प्रदान किया। इसके परिणाम स्वरूप वह साकदड़ा के युद्ध में और जालौर की घेराबन्दी के समय में अपने सैनिकों का नेतृत्व कर सका। वह अपने उन अनुयायियों की सेवाओं की सराहना करने से कभी नहीं चूका जिन्होंने उसकी शक्ति की नींव को दृढ़ बनाया था।[९३] उसके मस्तिष्क और हृदय के इन गुणों ने उसके समर्थकों को

---

९०. तवारीख मानसिंह, एफ २, मारवाड़ ख्यात, जिल्द ३, एफ २; रेऊ : मारवाड़ का इतिहास, जिल्द १, पृष्ठ ३९९

९१. हकीकत बही बीकानेर वि० सं० १८६०, एफ ७८; रेऊ : मारवाड़ का इतिहास जिल्द १, पृष्ठ ३९९

९२. हकीकत बही बीकानेर वि० सं० १८६०, एफ ७९, तवारीख मानसिंह, एफ ३ टॉड : एनल्स जिल्द २, पृष्ठ १०७
धाभाई शम्भूदान, भण्डारी शिवचन्द और मुहनौत ज्ञानमल ने इन्द्रराज को जोधपुर से जालौर संदेश भेजा कि महाराजा की मृत्यु हो गई है और देरावरी रानी गर्भवती हैं। उन्हें सवाईसिंह के पोकरण से जोधपुर आ जाने तक घेरा बन्दी जारी रखने को कहा गया।

९३. मानसिंह का सिंघवी जीतमल, फतहमल, आनन्दमल, केसरीमल को खास रुक्का, वि० सं० १८५२ भाद्रपद कृष्ण पक्ष की द्वादशी, मानसिंह का सिंघवी फतहमल

पूर्ण स्वामिभक्ति और विश्वास अर्जित करने में सहायता दी। यही कारण था कि बहुसंख्यक सरदार घेरे की कठिनाइयों के होते हुए भी उसके साथ रहे। उन्होंने बिना किसी हिचक के उसके लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी और अपने समस्त साधनों को देकर युद्ध के लिए आवश्यक वित्त का प्रबन्ध किया। जालिमसिंह, फतहसिंह, राजसिंह, सवाईसिंह, बाला मुहब्बतसिंह, अमरसिंह, जवानसिंह, जुझारसिंह—जैसे सरदारों ने अनेक बार सेना के लिए धन और खाद्य सामग्री उपलब्ध की। इनमें से कुछ ने अपने घर के आभूषणों को भी बेचकर उसके खर्चे के लिए धन दिया।[९४] उसकी सहायता के लिए आयसदेवनाथ ने भी कोष, अन्न, घोड़े व सशस्त्र सैनिक एकत्रित किये।[९५]

मानसिंह केवल अपने समर्थकों की निष्ठा और भक्ति ही प्राप्त करने में सफल नहीं हुआ वरन् उसकी एक कुशल गुप्तचर व्यवस्था भी थी, जिसके द्वारा उसको भीमसिंह के शिविर में जो कुछ होता था उसकी पूरी सूचना मिलती रहती थी। इस कार्य के लिए कीरतसिंह, रतनसिंह और तेजसिंह को भेजा गया था।[९६] उसने भीमसिंह के सरदारों में व्याप्त असन्तोष का लाभ उठाने का भी प्रयत्न किया। उसने अखयराज को अपने साथ मिलाने में सफलता प्राप्त की।[९७] उसने अन्य महत्त्वपूर्ण राज्यों से भी सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया। यद्यपि वह उन राज्यों को इस संघर्ष में सम्मिलित करने में सफल नहीं हुआ तथापि उसने उन राज्यों को अपने विरुद्ध भीमसिंह के साथ सम्मिलित होने से दूर रखा।

भीमसिंह की निष्क्रियता और चतुरता की कमी एक सीमा तक मानसिंह को सफल बनाने के लिए उत्तरदायी थी। अकुशलता, जोधपुर के सेनापतियों की निष्ठाहीनता और भीमसिंह का अपने सरदारों के प्रति व्यवहार आदि कुछ ऐसे निर्णयात्मक

[पिछले पृष्ठ का शेष]

को खास रुक्का, वि० सं० १८५१ आश्विन कृष्ण पक्ष की पड़वा (प्रथमा) मानसिंह का सिंघवी जीतमल को खास रुक्का, वि० सं० १८५४ आश्विन कृष्ण पक्ष की द्वादशी, बन्दगी व बिगत, बस्ता संख्या ७६

९४. बन्दगी व बिगत, बस्ता संख्या ७६, बाला री ख्यात २४/१०१, एफ १२, ख्यात भाटी, २३/१०१, भाग २, एफ ४७२; भायालान री ख्यात ६/१०१, एफ २६, खाँप धवेचा ३/१०१, एफ १३–१४

९५. हकीकत बही बीकानेर, संख्या १७, एफ १६०, १६३ और १६५

९६. बाला री ख्यात, २४/१०१, एफ ८६

९७. मानसिंह का सूरतसिंह को खरीता, वि० सं० १८५५ भाद्रपद शुक्ल पक्ष क अष्टमी, मुंशी हरदयाल; तवारीख मारवाड़ भाग २, एफ ३७४

कारण थे जिन्होंने इन युद्धों के समय मानसिंह के पक्ष को सबल बना दिया।[९८]

मानसिंह का राज्याभिषेक और उसकी प्रारम्भिक कठिनाइयाँ :

भीमसिंह निस्संतान मरा। यह स्वाभाविक था कि जब मानसिंह मृत राजा का एकमात्र जीवित उत्तराधिकारी था तो जालौर स्थित जोधपुर की सेना के सेनापति इन्द्रराज और गंगाराम ने मानसिंह के विश्वासपात्र ललवानी, अमरचन्द, अनाड़सिंह चंपावत और ओसियां के जोरावरसिंह के द्वारा मानसिंह को कहलवाया कि वह जोधपुर चले और राज्य सरकार की बागडोर अपने हाथ में ले।[९९] लेकिन मानसिंह के मन में अपनी स्थिति के बारे में अब भी संदेह था। अतएव उसने उनसे पूछा कि यह क्या उनका व्यक्तिगत प्रस्ताव है अथवा सरदारों और नागरिकों की सर्वसम्मत राय है?[१००] इसके उत्तर में उन्होंने उसको विश्वास दिलाया कि उसको अपने मन में तनिक भी शंका नहीं करनी चाहिए। उन्होंने उसके पक्ष में अपनी पूर्ण स्वामिभक्ति प्रदर्शित की और उसको तुरन्त जोधपुर चलने तथा जोधपुर के प्रमुख व्यक्तियों को खास रुक्का भेजकर उनके साथ उचित व्यवहार करने एवं उनके अधिकार और सुविधाओं को अक्षुण्ण रखने का आश्वासन देने का परामर्श भी दिया।

मानसिंह ने इन्द्रराज और गंगाराम को खास रुक्का भेजकर उनकी स्वामिभक्ति की सराहना की।[१०१] उसने धाभाई शंभूदान, अन्य खास पासवानों और मुत्सद्दियों को खास रुक्के भेजकर अपने संरक्षण का आश्वासन दिया; और इस प्रकार सरदार वर्ग को अपने विरुद्ध जाने से रोक लिया।[१०२] जब यह ज्ञात हुआ कि मानसिंह को राज्य का शासक स्वीकार कर लिया गया है तब धाभाई शंभूदान व अन्य लोग जो मानसिंह के विरुद्ध थे अपने को असहाय अनुभव करने लगे, विशेषकर क्योंकि जोधपुर की सेना मानसिंह के साथ मिल गई थी और पोकरण के ठाकुर

---

९८. भंडारी गंगाराम सिंघवी इन्द्रराज, का पुत्र सिंघवी फतहराज को वि० सं० १८६० आश्विन कृष्ण पक्ष की छट (ढ़ोलिया का कोठार), मुंशी हरदयाल; तवारीख मारवाड़, भाग २, एफ ३७४, टॉड : ऐनल्स भाग २, एफ ३७४

९९. खास रुक्का मानसिंह का भंडारी गंगाराम सिंघवी, इन्द्रराज और गुलराज को वि० सं० १८६० कार्तिक शुक्ल पक्ष की नवमी का। उस पत्र में इन्द्रराज आदि की प्रार्थना का उल्लेख है। हकीकत बही बीकानेर, एफ ७९, टॉड : ऐनल्स भाग २, पृष्ठ १०७

१००. तवारीख मानसिंह, एफ ४–५

१०१. मानसिंह का सिंघवी इन्द्रराज, भंडारी गंगाराम और गुलराज को खास रुक्का, वि० सं० १८६० कार्तिक शुक्ल पक्ष की नवमी।

१०२. मारवाड़ ख्यात, भाग ३, एफ ५

सवाईसिंह सहित सभी प्रमुख सरदार राजधानी से दूर थे।[१०३]

सरदारों और मुत्सद्दियों के एक समूह की इस प्रकार की धारणा की परवाह किये बिना, सिंघवी इन्द्रराज, भंडारी गंगाराम, और अपने विश्वसनीय सरदारों को साथ लेकर मानसिंह २० अक्टूबर १८०३ को जोधपुर की ओर चल पड़ा और सालावास पहुँचा,[१०४] जहाँ पोकरण के सवाईसिंह सहित सब राठौड़ सरदार अपनी राजनिष्ठा प्रदर्शित करने के लिए एकत्रित थे[१०५] सालावास से मानसिंह ने समस्त राठौड़ सरदारों और राज्य के उच्च अधिकारियों को साथ लेकर एक जुलूस के रूप में जोधपुर की ओर कूच किया। उसने नगर के बाहर 'राई का बाग' में डेरा डाला जहाँ मुत्सद्दियों ने उसके प्रति अपनी राजनिष्ठा प्रकट की। तदुपरान्त ५ नवम्बर १८०३[१०६] की रात्रि में मानसिंह ने जोधपुर के दुर्ग में विजय-प्रवेश किया। तुरन्त ही वहाँ एक दरबार लगा जहाँ सवाईसिंह के नेतृत्व में सभी सरदारों ने नये महाराजा के प्रति अपनी स्वामिभक्ति की शपथ ग्रहण की।[१०७]

प्रारम्भिक कठिनाइयाँ :

यद्यपि मानसिंह को मारवाड़ का शासक स्वीकार कर लिया गया था तथापि उसके समक्ष एक कठिन परिस्थिति खड़ी थी। वास्तव में, उसे अपने राज्यारोहण के दिन से ही भीमसिंह के समर्थकों के विरोध का सामना करना पड़ा। उनमें पोकरण का ठाकुर सवाईसिंह सबसे अधिक शक्तिशाली सरदार था, जिसके सहायक वे अन्य सरदार और प्रमुख मुत्सद्दी थे जो स्वर्गीय महाराजा के प्रबल समर्थक थे। वे मानसिंह के शासक बन जाने से न तो सन्तुष्ट थे और न हृदय से प्रसन्न थे।[१०८] वस्तुस्थिति यह थी कि सवाईसिंह, सिंघवी इन्द्रराज और गंगाराम के प्रति जिन्होंने मारवाड़ के सिंहासन को बिना उससे परामर्श किये मानसिंह को देने का प्रस्ताव रखा था, अपने क्षोभ को छिपा नहीं सका।[१०९] अतएव उसको उनके विरुद्ध

१०३. मारवाड़ ख्यात, भाग ३, एफ ४

१०४. हकीकत बही जोधपुर, (वि० सं० १८५६–६०) संख्या ८, एफ ४३७, सालावास जोधपुर के दक्षिण में जोधपुर से दस मील की दूरी पर है।

१०५. मारवाड़ ख्यात, भाग ३, एफ ५

१०६. मानसिंह का जगतसिंह को खरीता, वि० सं० १८६० पौष कृष्णपक्ष की छट, खरीता बही, संख्या ८, एफ ८३, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८५६–६०) संख्या ८, एफ ४३७, तवारीख मानसिंह, एफ १

१०७. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८५६–६०), संख्या ८, एफ ४३७

१०८. तवारीख मानसिंह, एफ ७, जोधपुर राजावां रा बड़ेरा री ख्यात, एफ २३५

१०९. जोधपुर राजावां रा बड़ेरा री ख्यात, एफ २३५, मारवाड़ ख्यात भाग ३, एफ ५

शिकायत रही और उसने उनसे प्रतिशोध लेने का निश्चय किया। दरबार के दिन सवाईसिंह ने राजनिष्ठा की शपथ ली थी, उसने पहले से ही अर्थात् मानसिंह के आने के पाँच दिन पूर्व ही, स्वर्गीय महाराजा भीमसिंह की विधवा व गर्भवती रानी देरावरी को रानी तंवर जी की देखरेख में धाभाई रामकिशन व अन्य लोगों के साथ १ नवम्बर १८०३ को चौपासनी भेजने की सतर्कता बर्त ली थी।[११०]

ज्योंही मानसिंह ने शासन का भार संभाला त्योंही उसके समक्ष देरावरी रानी के गर्भवती होने का गंभीर प्रश्न उपस्थित हो गया। इस प्रश्न पर सरदारों और प्रमुख मुत्सद्दियों में घोर मतभेद था।[१११] जब मानसिंह को यह ज्ञात हुआ कि उसके आने से पूर्व ही देरावरी रानी दुर्ग छोड़कर चौपासनी चली गई है तो उसने ७ नवम्बर १८०३ को रानी के पास एक संदेश भेजा और उसको जोधपुर आने के लिए आमन्त्रित किया।[११२] क्योंकि वह गर्भवती थी और शिशु को जन्म देने वाली थी,[११३] अत: उस आमन्त्रण पर सन्देह किया गया और उसके समर्थकों ने इस दृष्टिकोण का प्रचार किया कि मानसिंह की रानी के प्रति दुर्भावना है तथा वह उसको मार देना चाहता है। इस दुर्भावना के प्रचार किए जाने के कारण जोधपुर में दो दल हो गये। दलबंदी, संदेह और षडयन्त्र साधारण बात हो गई और सारा वातावरण अफवाहों से विषाक्त हो गया। इस प्रतिकूल और विरोधी वातावरण के कारण मानसिंह के सामने गंभीर संकट उपस्थित हो गया।[११४]

मानसिंह ने देरावरी रानी से वापस जोधपुर दुर्ग में आने का आग्रह किया, जिसे देरावरी रानी ने अस्वीकार कर दिया। इस पर सवाईसिंह और अन्य सरदारों नें मानसिंह के सामने यह प्रस्ताव रक्खा कि यदि देरावरी रानी के पुत्र उत्पन्न हो तो वह (मानसिंह) जालौर वापस चला जाये और नवजात पुत्र को मारवाड़ के सिंहासन पर बैठाये और यदि पुत्री उत्पन्न हो तो उसका उदयपुर अथवा जयपुर के राजघराने में विवाह किया जाये। उनका यह भी कहना था कि प्रसव के समय तक देरावरी रानी चौपासनी में ही रहे। तनाव को कम करने के लिए मानसिंह ने इस

---

११०. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८५६–६०), संख्या ८, एफ ४३६, हकीकत बही बीकानेर, संख्या १८, एफ २६५

१११. हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८५४, एफ १०८; तवारीख मानसिंह, एफ ७, राठौरां री ख्यात, एफ ३१६

११२. हकीकत बही बीकानेर, संख्या १८, एफ २६५

११३. वही, एफ २६७

११४. वही; तवारीख मानसिंह, एफ ६

आशय का एक लिखित आश्वासन १० नवम्बर १८०३ को दे दिया।[११५] यह लिखित आश्वासन चौपासनी के गोस्वामी को दिया गया जिसकी देखरेख और संरक्षकता में उस समय देरावरी रानी रह रही थी। बाद में देरावरी रानी चौपासनी से हटकर तलहटी के महल में आ गई।[११६] देरावरी रानी द्वारा दुर्ग में रहने से मना करने के कारण मानसिंह के मन में शंका उत्पन्न हो गई। इसलिए उसने उसके निवास स्थान पर अपने सैनिक नियुक्त कर दिये। यदि बीकानेर हकीकत के लेख पर विश्वास किया जाय तो मानना होगा कि मानसिंह ने उसकी हत्या करवाने की भी योजना बनाई थी।[११७] किन्तु सरदार सतर्क थे; अतः उन्होंने उसकी रक्षा करने का पूरा प्रयत्न किया। उसकी रक्षा के लिए सवाईसिंह और अन्य सरदारों की समस्त सेना तलहटी महल पर तैनात कर दी गई।[११८]

मानसिंह का राज्याभिषेक

जब मानसिंह रानी को अपने रास्ते में से हटाने में असफल हो गया तब उसने उस परिस्थिति का सामना करने के लिए अपने राज्याभिषेक का समारोह आयोजित करके मारवाड़ की गद्दी पर अपने दावे को विधिसम्मत बनाने का निश्चय किया। १७ जनवरी १८०४ का शुभ दिन राज्याभिषेक के लिए छाँटा गया। समृद्धि के देवता गणेश (विनायक) की पूजा की गई और प्रचलित रीति-रस्मों के साथ जोधपुर के किले में श्रृंगार चौकी में उसका राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ।[११९]

राज्याभिषेक के समारोह से पूर्व मानसिंह ने जगन्नाथ की पूजा की, यज्ञ मंडप में प्रवेश किया और तलवार व ढ़ाल की पूजा की। रात्रि में उसने राज्याभिषेक से सम्बन्धित अन्य धार्मिक रस्मों को सम्पन्न किया। सूर्योदय के पूर्व, राज्याभिषेक

---

११५. वि० सं० १८६० मार्गशीष कृष्ण पक्ष की ग्यारस का समझौता, राजपूताना एजेंसी रेकर्ड सूची १,४३ मारवाड़, १८३८, संख्या ४२, हकीकत बही बीकानेर, संख्या १८, एफ २६७, तवारीख मानसिंह, एफ ८, दयालदास ख्यात, देश दर्पण, एफ २७

११६. हकीकत बही बीकानेर, संख्या १८, एफ २७२; तवारीख मानसिंह, एफ ८

११७. हकीकत बही बीकानेर, संख्या १८, एफ २७२, धौंकलसिंह की कैफियत, राजपूताना एजेंसी रेकार्ड सूची १, ४३, मारवाड़ १८३८, संख्या ४२

११८. हकीकत बही बीकानेर, संख्या १८, एफ २७२

११९. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८५६–६०), संख्या ८, एफ ४५२, तवारीख मानसिंह, एफ ९

की पवित्र घड़ी में बगड़ी के पट्टेदार राठौड़ केसरीसिंह जैतावत[१२०] ने महाराजा के मस्तक पर तिलक किया और अपनी तलवार उसके बाँध कर अभिवादन किया।[१२१]

परम्परा के अनुसार सर्वप्रथम पोकरण के सवाईसिंह ने महाराजा को नजर भेंट की, और उसके उपरान्त आऊवा के ठाकुर,[१२२] अन्य सरदारों, दीवान, मुत्सद्दियों और पासवानों ने नजर भेंट की। मारवाड़ के सभी परगनों से महाराजा को खजाने भेंट किए गए।[१२३] भेंट की रस्म पूरी हो जाने पर सभी सरदार अपने परम्परागत पद के अनुसार महाराजा के दाहिनी अथवा बाईं ओर बैठे। इस हर्ष के अवसर पर चारण बानसुर जुगता को लाखपसाव[१२४] और पारतू नामक गाँव दान में दिए गए। राज्याभिषेक की घोषणा दुर्ग पर से तोपें दाग कर की गई और इसी हेतु परगनों-मुख्यालयों में भी तोपें दागी जाने की आज्ञा निकाली गई।[१२५]

मानसिंह के महाराजा होने की स्वीकारोक्ति स्वरूप अन्य राज्यों से टीके प्राप्त हुए। सबसे पहला टीका २२ दिसम्बर १८०३[१२६] को होल्कर की ओर से आया। राज्याभिषेक के समय नए शासक के लिए अपने नाम के पूर्व स्वर्गीय महाराजा का नाम जोड़ना रीति के अनुसार आवश्यक था, और भाट द्वारा प्रशस्तिगान में उसको घोषित भी कर दिया गया। वंश परम्परागत यह कार्य मुदियार के बारहट

---

१२०. बगड़ी का ठाकुर जो जैतावत गोत्र का मुखिया है, नए महाराजा के उनके सिंहासन पर बैठते समय अपने अंगूठे से रुधिर निकालकर उससे मस्तक पर तिलक करता है और महाराजा के तलवार बाँधता है। रूलिंग प्रिंसेज, चीफ्स एण्ड लीडिंग परसोनेजेज्, पृष्ठ १०४ के अनुसार।

१२१. हकीकत बही जोधपुर, (१८५६–६०), संख्या ८, एफ ४५३

१२२. 'आऊवा' सोजत के परगने में एक ठिकाना था।

१२३. हकीकत बही जोधपुर (१८५६–६०), संख्या ८, एफ ४५३

१२४. लाख पसाव एक प्रकार का पुरस्कार था जो भाटों और चारणों को दिया जाता था। 'लाख पसाव' का शाब्दिक अर्थ था एक लाख रुपये के बराबर। किन्तु वह नकदी में नहीं दिया जाता था। वह हाथी तथा अन्य पशुओं, आभूषणों और खिलअत आदि के रूप में दिया जाता था। जे० एस० गहलोत; हिस्ट्री आफ मारवाड़, पृष्ठ १६२ के अनुसार और हकीकत बही जोधपुर (१८५६–६०), संख्या ८, एफ ४५४ के अनुसार।

१२५. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८५६–६०), संख्या ८, एफ ४५४

१२६. वही, एफ ४४७

करते थे ।[127] क्योंकि मानसिंह स्वर्गीय महाराजा भीमसिंह के नाम को अपने नाम के साथ जोड़ना नहीं चाहता था वह यह कर्तव्य करने के लिए तैयार नहीं हुआ । अतएव बारहट जुगता को यह कार्य करने के लिए कहा गया । उसके द्वारा स्वर्गीय महाराजा का नाम जोड़ने के स्थान पर उसके पिता गुमानसिंह का नाम मानसिंह के नाम के पूर्व जोड़ा गया, जिसको सरदारों ने पसंद नहीं किया ।[128]

राज्याभिषेक के उपरान्त मानसिंह ने प्रमुख सरदारों और मुत्सद्दियों के बीच समझौते के उद्देश्य से उन्हें महत्त्वपूर्ण पद दिए । उसने सवाईसिंह, भण्डारी गंगाराम, और इन्द्रराज की पदोन्नति करके उन्हें क्रमशः प्रधान, दीवान, और मुसाहिब के पदों पर नियुक्त किया ।[129] इस अवसर पर मानसिंह उन लोगों को पारितोषिक देना भी नहीं भूला जिन्होंने उसके बुरे दिनों में जालौर के घेरे के समय उसका साथ दिया था । जालौर में जिन लोगों ने उसको अपनी सेवाएँ दी थीं उन्हें भी जागीरें प्रदान की गईं । ठाकुर संग्रामसिंह, दीपसिंह, राजसिंह भाटी, अमानसिंह, रतनसिंह, मालमसिंह, केशरीसिंह और श्यामसिंह आदि को गाँव देने के अतिरिक्त सिरोपाव, पालकी तथा कुरब बांह पसाव[130] देकर सम्मानित किया गया । भावसिंह को महाराजा ने सोना

१२७. मुदियार गाँव का बारहट शासक के विवाह और सिंहासनारोहण पर दैवी अनुकम्पा की कामना करता है और इस सेवा के बदले उसे दरबार से एक खिलअत और हाथी मिलते हैं । रूलिंग प्रिंसेज, चीफ्स एण्ड लीडिंग परसोनेजेज्, पृष्ठ १०४ के अनुसार ।

१२८. हकीकत बही जोधपुर (१८५६–६०), संख्या ८, एफ ४५३, बंदगी व बिगत, बस्ता संख्या ७६, तवारीख मानसिंह, एफ ६, असोपा—मारवाड़ का मूल इतिहास, पृष्ठ २५६

१२६. हकीकत बही जोधपुर (१८५६–६०), संख्या ८, एफ ४५५, बंदगी व बिगत, बस्ता संख्या ७६

१३०. हथबही (१८४८–५५), संख्या ३, एफ १–२४, बन्दगी व बिगत, बस्ता संख्या ७६, ख्यात भाटी, १६/१०१, एफ १८, सिसोदियों री ख्यात, एफ ३२१, बस्ता संख्या १०१; रतनसिंह भाटी जालौर में लड़ते हुए मारे गए, उसके पुत्रों-कुशलसिंह व सबलसिंह को कोरदी, और लाचियाँ गाँव दिये गए और उन्हें कुरब बाँह पसाव की विशेष प्रतिष्ठा भी दी गई । जिस व्यक्ति को यह सम्मान मिलता है वह महाराजा के वस्त्र का किनारा छूता है । महाराजा सरदार के कंधे पर हाथ रख कर अभिवादन स्वीकार करते हैं । इसकी दो श्रेणियाँ होती हैं—दोहरी और इकहरी ताजीम । प्रिंसेज, चीफ्स एण्ड लीडिंग परसोनेजेज्, पृष्ठ १०४; और मुंशी हरदयाल : तवारीख जागीरदारान राज मारवाड़, पृष्ठ ४

दिया[131] और अहोर[132] ठाकुर अनारसिंह को एक लाख वार्षिक आय के गाँवों का पट्टा प्रदान किया।[133] मेड़तिया रतनसिंह को पंद्रह हजार रुपए वार्षिक आय के कई गाँव जागीर में दिए गए। मानसिंह ने आऊवा, नीमाज, और रास के ठाकुरों को उनकी जागीरें वापस दे दी जो महाराजा भीमसिंह ने छीन ली थीं।[134]

दूसरी ओर, उन सभी को जिन्होंने भीमसिंह की सेवा की थी या उसका साथ दिया था, उनको पूर्व दिए गए आश्वासनों के विरुद्ध वह अपने वचन से पलट गया और उनको दंड दिया। जो लोग भीमसिंह के कहने के अनुसार सूरसिंह, सावन्तसिंह और शेरसिंह को मरवाने के लिए उत्तरदायी थे वे निर्दयतापूर्वक मार डाले गये। अहीर नग्गा को उसके सिर में लोहे की कीले ठोंक कर मार डाला गया और पंवार नरसिंहदास को हाथी के पैर से बांध कर गलियों में खिचवाया गया।[135] उसने भंडारी शिवचन्द, धाभाई शम्भूदान और सिंघवी ज्ञानमल को जिन्होंने भीमसिंह की मृत्यु पर सिंघवी इन्द्रराज और गंगाराम को घेरा न उठाने के लिए लिखा था, कैद कर लिया।[136]

धौंकलसिंह का जन्म :

प्रतिद्वन्द्वियों को दबाने के इन कार्यों ने देरावरी रानी के समर्थकों और सम्बन्धियों को चौकन्ना तथा सतर्क कर दिया। बीकानेर के महाराजा ने नाजर हरकरन के अधीन कुछ सवार रानी के महल की चौकसी करने के लिए ३० मार्च को भेजे। उसी दिन किशनगढ़ के शासक ने देरावरी रानी के महल की देखरेख रखने के लिए कोठारी बुलाकीदास के अधीन पचास सवार भेजे।[137]

जब मानसिंह का देरावरी रानी को अपने मार्ग से हटा देने का षडयन्त्र असफल हो गया तब उसने नीच उपायों का सहारा लिया। उसने गोलों और नाइयों

---

१३१. मारवाड़ में केवल वे ही पैर में सोना पहिन सकते थे जिन्हें महाराजा ने यह विशेष अधिकार दिया हो।

१३२. अहोर जालौर से दस मील दूर स्थित एक ठिकाना है।

१३३. तवारीख मानसिंह, एफ १८, मारवाड़ ख्यात, भाग ३, एफ ११

१३४. तवारीख मानसिंह, एफ १७–१८; ओझा : राजपूताने का इतिहास भाग ४, खण्ड २, पृष्ठ ७८२

१३५. तवारीख मानसिंह, एफ १५, मारवाड़ ख्यात, भाग ३, एफ १५, ओझा : राजपूताने का इतिहास, भाग ४, खण्ड २, पृष्ठ ४०४, वीर विनोद, भाग २, पृष्ठ ८६१

१३६. तवारीख मानसिंह, एफ १६, मारवाड़ ख्यात भाग ३, एफ १५

१३७. हकीकत बही बीकानेर, संख्या १८, एफ २७२

को चौपासनी के गोस्वामी के सामने ३ मई १८०४ को रानी पर व्यभिचारिणी अथवा व्यभिचार में रत होने का दोषारोपण करने के लिए उकसाया। इसके अतिरिक्त उसने नौकरानियों, पासवानों और पातरों को भी वैसा ही करने के लिए विवश किया।[१३८] जोधपुर में घटने वाली इन घटनाओं की सूचना बीकानेर के महाराजा सूरतसिंह के पास नियमित रूप से भेजी जाती थी। वह जोधपुर के समाचारों से अत्यन्त परेशान हो गया और उसने पचास-साठ सवारों, अनेक दाइयों और अपने रनिवास की अनुभवी स्त्रियों को १७ मई १८०४ को तथ्यों की जाँच करने और इन दुरभिसंधियों को असफल करने के लिए खवास परतु, चेला ठाकुरदास और अपनी सबसे विश्वसनीय पासवान मृगजोत को भेजा। मानसिंह ने मृगजोत के पूर्व प्रेमी भगवानदास को उसे (मृगजोत को) जोधपुर से दूर रखने के लिए रिश्वत दी। उसके अनुसार भगवानदास मृगजोत से जोधपुर के मार्ग में मिला और उसने उसको पन्द्रह दिन तक नागौर में ठहरने के लिए तैयार कर लिया, जहाँ उसकी हत्या करवा दी गई।[१३९] परन्तु सवाईसिंह ने जिस उत्साह और दृढ़ता से रानी का पक्ष किया उसके कारण मानसिंह के नीचतापूर्ण प्रयत्न असफल रहे। उसने रानी के निवास की कड़ाई से निगरानी की। जिस उद्देश्य की प्राप्ति का उसने निश्चय किया था उसके लिए व्यक्तिगत सुख-सुविधा के सभी लालचों को उसने तिलांजली दे दी।[१४०] उसने तब सन्तोष की सांस ली जब देरावरी रानी और उसके नवजात पुत्र धौंकलसिंह को २८ मई १८०४ को सुदूर खेतड़ी भेज दिया।[१४१] उसके उपरान्त वह अपनी जागीर में मानसिंह के विरुद्ध नया मोर्चा बनाने के लिए चला गया।[१४२] जब सवाईसिंह जोधपुर से पोकरण चला गया तब मानसिंह अत्यन्त परेशान हो गया।[१४३] उसे यह

१३८. हकीकत बही बीकानेर, संख्या १८, एफ २८०, धौंकलसिंह की कैफियत, राजपूताना एजेन्सी रेकार्ड सूची १, ४३ मारवाड़ १८३८, संख्या ४२

१३९. वही, एफ २९६

१४०. हकीकत बही बीकानेर, संख्या १८, एफ २९६, तवारीख मानसिंह, एफ १३

१४१. लेक का मारक्विस वैलेजली गवर्नर जनरल-इन-काउन्सिल को पत्र, १४ जून १८०४, संख्या ५५, एफ एस, हकीकत बही बीकानेर, संख्या १८, एफ ३०७, तवारीख मानसिंह, एफ ९, १३, कैफियत धौंकलसिंह, राजपूताना एजेन्सी रेकार्ड सूची, १,४३ मारवाड़ १८३८, संख्या ४२

१४२. हकीकत बही बीकानेर, संख्या १८ तवारीख मानसिंह, एफ १४, राठौरां री ख्यात, एफ ३१६; जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग ३, एफ २७–३०

१४३. हकीकत बही बीकानेर, संख्या १८, राठौरां री ख्यात, एफ ३१६, तवारीख मानसिंह, एफ १४

सत्य ही सन्देह हुआ कि अन्य विद्रोही सरदार भी उसके (सवाईसिंह के) साथ सम्मिलित हो सकते हैं और धौंकलसिंह को सिंहासन का सही दावेदार स्वीकार कर सकते हैं। अस्तु, अपने विरोध के अवसरों को कम से कम करने के लिए वह उन सरदारों को दण्डित करने लगा जिनकी स्वामिभक्ति संदिग्ध थी। मानसिंह मारोठ के ठाकुर महेशदान के खेतड़ी घराने से वैवाहिक सम्बन्ध करने के कार्य से प्रसन्न नहीं हुआ। इसलिए उसने उसको यह सम्बन्ध न करने पर विवश करने के लिए मोहता साहिबचन्द की अधीनता में एक सेना जून १८०४ में भेजी।[१४४]

सिरोही पर आक्रमण :

अपने विरोधी सरदारों को दंडित कर चुकने के उपरान्त उसने अपना ध्यान उन पड़ोसी राज्यों की ओर फेरा जिन्होंने उसका उस समय पक्ष नहीं लिया था जिस समय वह भीमसिंह से युद्ध कर रहा था। १८०१ में जालौर के घेरे के समय अपने पुत्र छतरसिंह और रनिवास की सुरक्षा के बारे में सशंक हो उठने पर उसने उनको सुरक्षा की दृष्टि से सिरोही भेज दिया था। सिरोही के राय बारीसाल ने उनको आश्रय नहीं दिया।[१४५] उन्हें सिरोही के पर्वतीय प्रदेश स्थित अर्थवाड़ा और चूली-गाँवों में जाकर रहना पड़ा। प्रतिशोध की भावना से मानसिंह ने राव के विरुद्ध १८०४ में ज्ञानमल के पुत्र नवलमल और मोहता सूरजमल की अधीनता में दस हजार सैनिकों की एक सेना भेजी। असोप, नीमाज, रास, लाम्बिया एवं बलून्दा के ठाकुर भी सेना के साथ थे और वह सेना तोपखाने से भलीभाँति सुसज्जित थी।[१४६] घोरी, कालेड़ी और बुवारों गाँवों में सिरोही और जोधपुर की सेनाओं के बीच कई मुठभेड़ें हुईं। अन्त में जोधपुर की सेना सिरोही की सेना पर टूट पड़ी और उसने उसको पूरी तरह परास्त कर दिया। उसके उपरान्त जोधपुर की विजयी सेना ने सिरोही की ओर कूच किया तथा उसको नष्ट-भ्रष्ट करके सिरोही के राव को भीत-रोट के परगने की ओर भाग जाने पर विवश कर दिया। सिरोही पर ८ अक्टूबर

---

१४४. हकीकत बही बीकानेर, १८६१, एफ १३, तवारीख मानसिंह, एफ १६, रेऊ : मारवाड़ का इतिहास, भाग २, पृ० २०५

१४५. तवारीख मानसिंह, २३–२४, मेड़तिया री ख्यात, बस्ता संख्या १०१, एफ १३३३, वीर विनोद, भाग २, पृष्ठ १११४

१४६. तवारीख मानसिंह, एफ २३–२४, खांप धवेत्रा, ४/१०१, एफ २१, मेड़तिया री ख्यात १०१, एफ १३३३, कुम्पावत री ख्यात ७/१६१, एफ १४८६, चम्पावत री ख्यात २६/१०१, एफ ३२२

१८०४ को जोधपुर की सेना का अधिकार हो गया।[१४७] इस मुठभेड़ में ठाकुर सोहनसिंह, जालिमसिंह का भाई खूमसिंह और भरतसिंह मारे गए।[१४८]

घानेराव का घेरा :

सिरोही पर अधिकार कर लेने के उपरान्त शीघ्र ही मानसिंह ने घानेराव के राव को परास्त करने की योजना बनाई। जालौर के घेरे के समय मानसिंह ने घानेराव के राव दुर्जनसिंह से सहायता चाही थी। परन्तु ठाकुर ने उसकी प्रार्थना पर कोई ध्यान नहीं दिया। उसके कारण उसी दिन से मानसिंह अपने मन में उसके विरुद्ध द्वेष भावना पोषित कर रहा था। अतएव उसने १८०४ में साहिबचन्द, चन्दावत तेजसिंह, हनवतसिंह, बदनसिंह, अभयसिंह तथा अन्य अनेक सरदारों के साथ एक बड़ी सेना घानेराव के विरुद्ध भेजी।[१४९]

जोधपुर-सेना के कूच की सूचना पाकर दुर्जनसिंह का पुत्र जो मेवाड़ में था, घानेराव की ओर चल पड़ा। उसके चाचा विक्रमदेव ने घानेराव की प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिए जोधपुर की सेना से युद्ध किया। घानेराव का घेरा एक महीने तक चला। इस घेरे के समय बचाव करने वाली सेना ने साहस और दृढ़ता से युद्ध किया। जब शत्रु थक गया तब जोधपुर की सेनाओं ने उस पर भीमवेग से आक्रमण किया। मानसिंह की सेना के सशक्त आक्रमण के विरुद्ध घानेराव का शौर्य असफल सिद्ध हुआ। परिणामस्वरूप भयानक नरसंहार हुआ और ८ जून १८०४ को दुर्ग का पतन हो गया।[१५०]

---

१४७. मानसिंह का ठाकुर मालसिंह को खास रुक्का, वि० सं० १८६१ मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, मेड़तिया री ख्यात भाग २, १/१०१, एफ ६३०, राव बैरीसाल का मानसिंह को पत्र वि० सं० १८६२ शुक्ल पक्ष की तृतीया, पोर्ट फोलियो फाइल सख्या २५, बैरीसाल का मानसिंह को पत्र वि० सं० १८६१ माघ शुक्ल पक्ष की तृतीया, पोर्ट फोलियो फाइल संख्या २५, बन्दगी व बिगत, बस्ता संख्या ७६, तवारीख मानसिंह, एफ २३–२४

१४८. बन्दगी व बिगत, बस्ता संख्या ७६

१४९. बन्दगी व बिगत, बस्ता संख्या ७६, तवारीख मानसिंह, एफ २३–२५, कुम्पावत री ख्यात, ७/१०१, एफ १७२७, १८४४

१५०. सिंघवी जीतमल की महाराजा मानसिंह को अर्जी वि० सं० १८६१ मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष की अष्टमी १/३, अर्जियां री फाइल, संख्या ७१, ढ़ोलियो का कोठार, हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८६१, एफ १३

धौंकलसिंह के समर्थकों द्वारा डीडवाना पर अधिकार :

जैसा कि पूर्व में ही कहा जा चुका है, धौंकलसिंह को सुरक्षित खेतड़ी पहुँचा दिया गया था। शेखावतों ने उसकी माता की ओर से उससे सम्बन्ध होने के कारण उसके लिए डीडवाने पर अधिकार कर उसके दावे को प्रभावशाली बनाया। खेतड़ी, झुँझनू, नवलगढ़, सीकर और फतहपुर के सभी शेखावतों ने चार-पाँच हजार की संख्या में, भाटी छतरसिंह और मदनसिंह के नेतृत्व में जुलाई १८०५ में धौंकलसिंह के नाम से डीडवाने पर अधिकार करने में हाथ बँटाया।[१५१] डीडवाना नगर लूट लिया गया और डीडवाने का हाकिम भागकर दौलतपुरा चला गया। डीडवाने पर अधिकार किए जाने की सूचना जब जोधपुर पहुँची तो मानसिंह ने तीस हजार सैनिकों की एक बहुत बड़ी सेना दीवान मुहनौत ज्ञानमल और कुचामन के ठाकुर शिवनाथ सिंह के सेनापतित्व में डीडवाना भेजी और उसके साथ मीठड़ी, मारोठ और बूडसू के ठाकुरों और आठ मिसलों के सारे सरदारों को भेजा।[१५२] जोधपुर से आई हुई अत्यन्त शक्तिशाली सेना को सम्मुख देखकर शेखावत भाग खड़े हुए और जोधपुर की सेनाओं ने पुनः डीडवाना नगर अपने अधिकार में कर लिया।[१५३] डीडवाना पर पुनः अधिकार कर लेने के उपरान्त रावराजा सीकर से शाहपुरा ले लिया गया और ११ सितम्बर १८०५[१५४] को मोहनसिंह को दे दिया गया।

अवश्य ही मानसिंह ने अपने सरदारों में से अधिकांश को दमन अथवा धमकियों द्वारा पराभूत कर दिया, परन्तु उन उपायों के काम में लाने से उनके मन में उसके प्रति दुर्भावना उत्पन्न हो गई। उसने सरदारों और मुत्सद्दियों के प्रति

---

१५१. हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८६१, एफ १४८, बन्दगी व विगत, बस्ता संख्या ७६, तवारीख मानसिंह, एफ ३०, ओझा : राजपूताने का इतिहास, भाग ४, खण्ड २, पृष्ठ ७८६

१५२. जब एक शासक किसी जागीरदार को अपने किसी ओर भी बैठने का सम्मान देता था तो उसे 'मिसल' कहते थे। मिसल दो प्रकार की थी—जीवनी और दावी मिसल। मुंशी हरदयाल : तवारीख जागीरदारान राज मारवाड़, पृ० ५

१५३. तवारीख मानसिंह, एफ ३१, ओझा : राजपूताने का इतिहास, भाग ४, खण्ड २, पृ० ७८७

१५४. मोहनसिंह की कबूलीयत, वि० सं० १८६२ आश्विन कृष्ण पक्ष की तृतीया, हथबही, संख्या ३, एफ ३५, हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८६१, एफ १४८

असहिष्णुता का व्यवहार कर उनको अपना विरोधी बना दिया। यह उसका बुद्धिमानी का कार्य नहीं था। यदि वह अधिक दूरदर्शी होता तो उनमें से इतने अधिक सरदार विरोधी शिविर में नहीं चले जाते और धौंकलसिंह का प्रश्न उभर कर सामने नहीं आता। यह मानसिंह नहीं देख सका कि असंतुष्ट सरदारों ने धौंकलसिंह के प्रश्न को सिंहासन पर आघात करने का एक अस्त्र बना लिया।

२

कृष्णा कुमारी काण्ड

उदयपुर, जयपुर और जोधपुर के हितों का परीक्षण :

जैसा कि पूर्व परिच्छेद में इंगित किया जा चुका है गद्दी पर बैठने के उपरान्त मानसिंह के समक्ष एक कठिन परिस्थिति उठ खड़ी हुई थी। सवाईसिंह के नेतृत्व में राठौड़ सरदारों के एक वर्ग ने महाराजा भीमसिंह के मरणोपरान्त उत्पन्न पुत्र धौंकलसिंह के प्रश्न को लेकर इस बात का दावा किया कि वह मारवाड़ के सिंहासन का न्यायोचित अधिकारी है। उदयपुर की राजकुमारी कृष्णा कुमारी राजपूताने में सबसे अधिक सुन्दर होने की दृष्टि से प्रसिद्ध थी। उसके प्रस्तावित विवाह के प्रश्न को लेकर उसकी कठिनाइयाँ और अधिक बढ़ गईं। कृष्णा कुमारी के विवाह के प्रश्न ने राजपूताने के प्रमुख राज्यों—जयपुर, जोधपुर और उदयपुर को एक दीर्घकालीन और कड़े संघर्ष में उलझा दिया।

कृष्णा कुमारी उदयपुर के महाराणा भीमसिंह की पुत्री थी। १७९९ में उसकी सगाई जोधपुर के महाराजा भीमसिंह से हुई थी।[1] परन्तु भीमसिंह की १८०३ में मृत्यु हो गई और उसका विवाह संस्कार नहीं हो सका। जोधपुर के महाराजा भीमसिंह की मृत्यु के उपरान्त नवम्बर १८०३ में मानसिंह मारवाड़ के सिंहासन पर बैठा। तब उदयपुर के महाराणा भीमसिंह ने ६ जनवरी १८०४ को मानसिंह को पहली बार सूचित किया कि वह राजकुमारी से विवाह करे, क्योंकि वह भीमसिंह का उत्तराधिकारी था और भीमसिंह से कृष्णा कुमारी की सगाई हो

---

१. दीवानजी (महाराणा उदयपुर) का खास रुक्का जोधपुर के महाराजा मानसिंह को, वि० सं० १८६० माघ कृष्ण पक्ष की नवमी का, खरीता-बही, संख्या १२, एफ ४ (मेवाड़ में प्राचीन परम्परा के अनुसार राज्य को मेवाड़ राजवंश के आराध्य देव भगवान एकलिंग का माना जाता था और महाराणा को दीवान जी कहा जाता था) रेऊ: मारवाड़ का इतिहास, भाग २, पृष्ठ ४०५, वीर विनोद में यह तारीख १७९८ ईसवी सन् दी हुई है (भाग २, पृष्ठ १७३६)

चुकी थी ।[२] मानसिंह ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया ।[३]

कुछ समय उपरान्त मानसिंह ने घाणेराव के विरुद्ध एक सेना भेजी जिसने जून १८०४ में ठिकाने पर अधिकार कर लिया और घाणेराव के ठाकुर को जो कि उदयपुर राजघराने का दूर का सम्बन्धी था[४] निष्कासित कर दिया । मानसिंह के इस कार्य से महाराणा अप्रसन्न हो गया तथा उसने १८०५ में जयपुर के महाराजा जगतसिंह से कृष्णाकुमारी के विवाह की चर्चा प्रारंभ की ।[५] जगतसिंह ने कृष्णा कुमारी के आकर्षक सौन्दर्य और लावण्य की प्रशंसा सुन रखी थी, जिससे वह उसकी ओर प्रेमासक्त हो गया था । अतएव उसने महाराणा के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया और एक सेना के साथ अपने दरोगा कुशलसिंह को टीका सम्बन्धी अन्तिम व्यवस्था करने के लिए भेजा ।[६]

जैसाकि पहले बताया जा चुका है, पोकरण के ठाकुर सवाईसिंह का मानसिंह से विरोध हो गया था और वह जयपुर-महाराजा जगतसिंह की धोकलसिंह के पक्ष में सहायता प्राप्त करने के लिए आया हुआ था । उसने जगतसिंह को उदयपुर राजघराने से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित करने में प्रमुख भाग लिया जिससे उसे महाराजा मानसिंह और जगतसिंह के बीच झगड़ा उत्पन्न कराने में सहायता मिली । यही उसका प्रमुख उद्देश्य था ।[७]

इसी उद्देश्य से उसने ३ जुलाई १८०५ को महाराजा जगतसिंह से गठबन्धन किया । जगतसिंह ने धोंकलसिंह के पक्ष का समर्थन करना दो शर्तों पर स्वीकार किया : (१) सवाईसिंह सम्पूर्ण सैनिक व्यय वहन करेगा; तथा सांभर जयपुर को दे दिया जायेगा, (२) मारवाड़ के सिंहासन को धोंकलसिंह के लिए जीत लेने में

---

२. खास रुक्का दीवान जी का महाराजा मानसिंह को, वि० सं० १८६० माघ कृष्ण पक्ष की नवमी खरीता बही, संख्या १२, एफ ४

३. मानसिंह का भीमसिंह को पत्र, वि० सं० १८६० चैत्र कृष्णा पक्ष की नवमी, खास रुक्का मानसिंह का भीमसिंह को, वि० सं० १८६१ आश्विन कृष्ण पक्ष की अष्टमी, खरीता बही, संख्या ६, एफ १४

४. तवारीख मानसिंह, एफ २४–२५, मैमॉयर्स आफ अमीर खाँ, पृष्ठ २६६

५. मैमॉयर्स आफ अमीर खाँ, पृष्ठ २६६, वीर विनोद, भाग २, पृष्ठ १७३६

६. जगतसिंह का भीमसिंह को पत्र, वि० सं० १८६२ श्रावण शुक्ल पक्ष की नवमी, खरीता जात हिन्दी रियासत जयपुर, संख्या ३/२३१, बण्डल संख्या ७, मैमॉयर्स आफ अमीर खाँ, पृष्ठ २६६

७. हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८६२, एफ ८४, ८६; ख्यात भाटी, भाग २, २३/१०१, एफ २८८

जगतसिंह की सहायता करने के लिए बीकानेर के महाराजा सूरतसिंह को तैयार कर लिया जायेगा।[८] उस समझौते के अनुसार जो महाराजा जगतसिंह और सवाईसिंह के बीच ४ नवम्बर १८०५ को हुआ था, सवाईसिंह जगतसिंह का पत्र लेकर सूरतसिंह के पास गया, और उसे फलौदी के ८४ गाँव देने की शर्त पर इस कार्य के लिए उसकी सहायता प्राप्त करने में सफल हो गया।[९]

उसी समय पोकरण के सवाईसिंह ने अपनी पौत्री (सालमसिंह की पुत्री) का विवाह महाराजा जगतसिंह से तय कर दिया। यह निश्चित हुआ कि विवाह संस्कार पोकरण के स्थान पर जयपुर में होगा। जब मानसिंह को इस प्रकार की व्यवस्था के बारे में ज्ञात हुआ तो उसने पोकरण के कामदार को कहा कि वह सवाईसिंह को इस बात पर बल देने के लिए संदेश भेजे कि जगतसिंह पोकरण आकर उसकी (सवाईसिंह की) पौत्री से विवाह करे, क्योंकि पोकरण ठाकुर के लिए यह प्रतिष्ठा की बात नहीं है कि वह जयपुर में विवाह करे।[१०] पोकरण ठिकाने की प्रतिष्ठा की हानि का मानसिंह द्वारा इस छिपे हुए संकेत के उत्तर में सवाईसिंह ने तुरन्त यह ताना दिया कि जयपुर में गीजगढ़ का ठिकाना उसके भाई का है इसलिए जयपुर में अपनी पौत्री का विवाह सम्पन्न करना उसकी प्रतिष्ठा के विरुद्ध नहीं है। इसके विपरीत महाराजा मानसिंह को कृष्णा कुमारी के जयपुर भेजे जाने वाले टीके की ओर ध्यान देना चाहिए जिससे निश्चय पूर्वक जोधपुर के राजघराने की प्रतिष्ठा को धक्का लगेगा।[११]

इस प्रकार चतुर सवाईसिंह ने मानसिंह को जगतसिंह से विग्रह करने के लिए उकसाया। साथ ही वह जगतसिंह को निरन्तर प्रोत्साहित करता रहा कि वह उस सुन्दर और बहुतों द्वारा इच्छित राजकुमारी से विवाह करने का अवसर न खोये। मानसिंह को उदयपुर और जयपुर के विरुद्ध भड़काने में सवाईसिंह का वास्तविक उद्देश्य यह था कि प्रमुख राजपूत राज्यों में संघर्ष छिड़ जाय जिससे कि

---

८. हरकारा फैजकरन की अर्जी, वि० सं० आषाढ शुक्ल पक्ष की द्वितीया, हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८६२, एफ ८४, ८६

९. कैफियत वि० सं० १८६२, कार्तिक शुक्ल पक्ष की द्वादशी, हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८६२, एफ ८४–८६, राठौरां री ख्यात, भाग २, पृष्ठ ३१६

१०. तवारीख मानसिंह, एफ ३२, ओझा : राजपूताने का इतिहास भाग ४, खण्ड २, पृष्ठ ७८८

११. तवारीख मानसिंह, एफ ३२, ओझा : राजपूताने का इतिहास भाग ४, खण्ड २, पृष्ठ ७८८; मैमॉयर्स आफ अमीर खाँ पृष्ठ २९८

धोंकलसिंह का पक्ष प्रबल हो सके।

अत्यन्त भावुक होने के कारण, सवाईसिंह के उस छिपे ताने से मानसिंह का अन्तर छू गया और वह सगाई के उस प्रस्ताव से अप्रसन्न हो गया। क्योंकि इससे पहले ६ जनवरी १८०४ को महाराणा ने मानसिंह को लिखे अपने पत्र में अपनी पुत्री की स्वर्गीय महाराजा भीमसिंह से हुई सगाई का उल्लेख करते हुए मानसिंह से सगाई का प्रस्ताव किया था,[12] इसलिए उसने उस प्रस्तावित कार्य को भीमसिंह का दोहरा व्यवहार माना तथा उसे अपना व्यक्तिगत अपमान और जोधपुर के राठौड़ घराने का असम्मान समझा। इस कार्य के विरोध में उसने जोधपुर के वकील सिताबराय को खरीता सहित २२ नवम्बर १८०५ को महाराजा जगतसिंह के पास यह इंगित करते हुए जयपुर भेजा कि कृष्णा कुमारी की सगाई का प्रस्ताव स्वीकार करना एक गलत कार्य है, क्योंकि उसकी सगाई पहले ही जोधपुर घराने में की जा चुकी है।[13] उसने उदयपुर के महाराणा को भी जयपुर महाराजा के साथ इस प्रस्तावित विवाह के विषय में एतराज़ करते हुए इस पृष्ठभूमि पर लिखा कि यह विवाह जोधपुर शासक के साथ पहले ही तय हो चुका है।[14]

लेकिन उदयपुर के महाराणा और महाराजा जगतसिंह ने मानसिंह द्वारा किये गये इस सम्बन्ध के विरोध और उसकी नाराज़गी पर कोई ध्यान नहीं दिया। उदयपुर से जगतसिंह के लिए भेजा जाने वाला टीका जयपुर के दस हज़ार सैनिकों की उस सेना के साथ भेजा गया जो उसकी रक्षा के लिए पहले ही उदयपुर पहुँच गई थी।[1]

संघर्ष का आरम्भ :

महाराणा उदयपुर और महाराजा जयपुर दोनों का उसके प्रति अवज्ञापूर्ण दृष्टिकोण होने से मानसिंह अत्यन्त क्रुद्ध हो गया। उनके विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए उसने बल-प्रयोग करने का निश्चय किया। १९ जनवरी १८०६ को उसने

१२. खास रुक्का दीवान जी (महाराणा) का मानसिंह को, वि० सं० १८६० माघ कृष्ण पक्ष की नवमी, खरीता बही, संख्या १२ एफ ४, मैमायर्स ऑफ अमीरखाँ, पृष्ठ २२६

१३. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–१८७०) संख्या ६, एफ ३१, तवारीख मानसिंह, एफ ३२

१४. तवारीख मानसिंह, एफ ३२; रेऊ : मारवाड़ का इतिहास, भाग २, पृष्ठ ४०६, ओझा : राजपूताने का इतिहास भाग ४, खंड २, पृष्ठ ७८८

१५. सी० मरसर का ऐडमान्स्टन को पत्र, २२ मार्च १८०६, पी० आर० सी० भाग ६, संख्या १५५, बैवरिज : कॉम्प्रिहैन्सिव हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग ३, पृष्ठ ५४

शीघ्रतापूर्वक कूच किया तथा भावी संघर्ष के लिए तैयारी की।[१६] ज्ञानमल को जो उस समय शेखावाटी में था, आज्ञा भेजी गई कि वह अपनी सेना के साथ मेड़ता आ जाय। सिरोही स्थित जोधपुर की सेना को भी निर्देश दिया गया कि वह सिरोही को राव के सुपुर्द कर दे व मेड़ता के लिए कूच करे। अन्य ठाकुरों और सरदारों को संदेश भेजा गया कि वे अपनी सेना के साथ मेड़ता पहुँचें।[१७] इस प्रकार एक पखवाड़े में मेड़ता में ५०,००० सैनिकों की एक बड़ी सेना एकत्रित की गई।[१८] इस अवसर पर मानसिंह ने अन्य राजपूत राज्यों किशनगढ़, जैसलमेर और बूँदी से भी सैनिक सहायता माँगी।[१९] इसके साथ ही उसने महाराणा भीमसिंह और जगतसिंह पर भिन्न-भिन्न स्रोतों से यह दबाव डलवाने का भरसक प्रयत्न किया कि वे उस प्रस्तावित विवाह-सम्बन्ध को न करें। यद्यपि वह एक संदेश वाहक के साथ अपना खरीता महाराजा जगतसिंह के पास २० जनवरी १८०६ को भेज चुका था,[२०] तथापि उसने एक दूसरा खरीता और एक रुक्का महाराणा के पास भेजा और खास रुक्के देवगढ़, सलूम्बर और कुरावड़ के सरदारों के पास भेजे, क्योंकि पूर्व अवसर पर चूड़ावतों के माध्यम से ही भीमसिंह ने मानसिंह के पास विवाह का प्रस्ताव भेजा था। उसकी प्रार्थना के उत्तर में चूड़ावतों ने महाराणा पर उसके पक्ष में दबाव डालकर उसकी सहायता करने का वचन दिया।[२१]

---

१६. तवारीख मानसिंह, एफ ३२, मारवाड़ ख्यात भाग ३, एफ २७; रेऊ : मारवाड़ का इतिहास भाग २, पृष्ठ ४०६

१७. महाराजा मानसिंह का पत्र परबतसिंह को, वि० सं० १८६२ चैत्र शुक्ल पक्ष की पड़वा, खरीता बही, संख्या ६, एफ ५३, तवारीख मानसिंह, एफ ३२–३३

१८. तवारीख मानसिंह, एफ ३३, मारवाड़ ख्यात, भाग ३, एफ २७

१९. (उस अवसर पर सैनिक सहायता के सम्बन्ध में) महारावल जैसलमेर का मानसिंह को खास रुक्का, वि० सं० १८६२ फाल्गुन शुक्ल पक्ष की पड़वा (प्रथमा) खरीता बही, संख्या १२ एफ, हकीकत बही जोधपुर, (वि० सं० १८६२–७०) संख्या ६, एफ ४७

२०. मानसिंह का जगतसिंह को खरीता, वि० सं० १८६२ माघ शुक्ल पक्ष की पड़वा, खरीता संख्या ७/२३३, बण्डल संख्या ७, हकीकत बही जोधपुर, वि० सं० १८६२–७० संख्या ६, एफ ४७

२१. मानसिंह को चूड़ावतों की अर्जी, वि० सं० १८६२ वैशाख कृष्ण पक्ष की द्वादशी, खरीता बही, संख्या ६, एफ ६, देवगढ़ के रावल गोकुलदास की अर्जी मानसिंह को वि० सं० १८६२, खरीता बही, संख्या १२, एफ ४–५, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०) संख्या ६, एफ ४७

जिस समय मानसिंह उदयपुर और जयपुर के शासकों पर कूटनीतिक दबाव डाल कर यह प्रयत्न कर रहा था कि वे उस वैवाहिक सम्बन्ध को न करें उसी समय उसने सिंधिया और होल्कर से भी सहायता की याचना की ।[२२]

शाहपुरा से टीका वापस लौटा दिया गया :

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मानसिंह ने जयपुर और उदयपुर के इस वैवाहिक सम्बन्ध को तोड़ने के लिए कोई प्रयत्न उठा नहीं रखा । इस वैवाहिक सम्बन्ध को समाप्त करने के लिए उसने जो भी कदम उठाये उन सबके बावजूद भी टीका जयपुर मार्ग में शाहपुरा के समीप खारी नदी के तट पर पहुँच गया था । इसकी सूचना जब मानसिंह के पास पहुँची तो उसने आक्रोश में आकर जयपुर टीका ले जाने वाले उदयपुर के दल के विरुद्ध स्वयं कूच करने का निश्चय किया, क्योंकि वह सशस्त्र युद्ध के लिए पूर्ण रूप से तैयार था । उस समय स्वयं मानसिंह द्वारा आक्रमण का नेतृत्व किए जाने के अनौचित्य की ओर संकेत करते हुए सिंघवी इन्द्रराज ने अपनी सेवाएँ अर्पित कीं । मानसिंह ने इन्द्रराज की प्रार्थना स्वीकार कर ली और फरवरी १८०६ में उसे टीका आगे बढ़ने देने से रोकने का कार्यभार सौंप दिया गया ।[२३]

महता सूरजमल, आउवा, आसोपा, कुचामन व अन्य सरदारों के साथ तीस हज़ार सेना लेकर टीका ले जाने वाले दल का सामना करने के लिए सिंघवी इन्द्रराज आगे बढ़ा और उसने खारी नदी के तट पर स्थित धनोपग्राम में अपना शिविर लगाया,[२४] बाद में १४ अप्रेल १८०६ को मानसिंह ने भण्डारी गंगाराम के साथ एक सेना सिंघवी इन्द्रराज के साथ सम्मिलित होने के लिए और भेजी ।[२५]

सिंघवी इन्द्रराज शत्रुसेना के समीप पहुँचा और उसने टीका ले जाने वाली उदयपुर की सेना को जिसमें केवल १० हजार सैनिक थे ललकारा । अपने से बहुत बड़ी सेना का सामना होने से उदयपुर की सेना आगे नहीं बढ़ सकी और उसने शाहपुरा में शरण ली ।[२६] जोधपुर और उदयपुर की सेनाओं में संघर्ष अवश्यम्भावी

२२. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०) संख्या ६, एफ ४७, ४६, ५०, ५७ तवारीख मानसिंह, एफ ३३, पी० आर० सी भाग ६, पृष्ठ १३

२३. सरजेराव घाटके का मानसिंह को पत्र, वि० सं० १८६२ फाल्गुन कृष्ण पक्ष की पंचमी, खरीता बही, संख्या १२, एफ ।

२४. हकीकत बही जोधपुर, (वि० सं० १८६२–७०) संख्या ६, एफ ६२, तवारीख मानसिंह,. एफ ३३, मुदियार ख्यात, बस्ता संख्या ४०, एफ ८०

२५. वही, एफ ५६

२६. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ ६२, तवारीख मानसिंह, एफ ३३

जानकर शाहपुरा (मेवाड़) के राजा ने सिंघवी इन्द्रराज को यह आश्वासन दिया कि टीका वापस उदयपुर भेज दिया जायेगा। उसने इस आशय का लिखित आश्वासन भी दिया।[२७]

इस प्रकार शाहपुरा के राजा के हस्तक्षेप के कारण बिना एक भी गोली चलाये दोनों सेनाएँ वापस लौट गईं। जब टीका वापस भेज दिया गया तो सिंघवी इन्द्रराज ने मानसिंह को आलनियावास[२८] (मेड़ता के समीप एक गाँव) के शिविर में जहाँ वह फरवरी १८०६ में मेड़ता से चलकर आ गया था, सारा विवरण बताया।[२९]

जयपुर और जोधपुर समझौता :

इस प्रकार जयपुर और जोधपुर में होने वाले युद्ध का खतरा कुछ समय के लिए टल गया और दोनों पक्षों को सैनिक तनाव से अस्थायी विश्राम मिल गया। जो संधि-वार्ता दोनों शासकों के मध्य चल रही थी उसके प्रभावकारी होने के लिए यह अनुकूल स्थिति थी।[३०] कृष्णा कुमारी के विवाह के प्रश्न को लेकर जो मतभेद दोनों शासकों के मध्य उठ खड़ा हुआ था उसको दूर करने के उद्देश्य से २१ अप्रेल १८०६ को जयपुर के प्रमुख सरदार मानसिंह से बातचीत करने के लिए मिले।[३१]

जिस समझौते के सम्बन्ध में बातचीत चल रही थी उसको अधिक सुदृढ़ तथा अधिक स्थायी बनाकर उसे एक बाध्यकारी संधि का रूप देने के अभिप्राय से सिंघवी इन्द्रराज ने ललवानी अमीरचन्द को दीवान रामचन्द से इस सम्बन्ध में बात कर और उसके मन पर यह प्रभाव डालने के लिए जयपुर भेजा कि यदि उस प्रश्न पर दानों राज्यों में युद्ध हुआ तो उसके परिणाम दोनों के लिए गम्भीर होंगे।[३२]

---

२७. तवारीख मानसिंह, एफ ३३, मारवाड़ ख्यात-भाग ३, एफ २८, मुदियार की ख्यात, बस्ता संख्या ४, एफ ८०

२८. आलनियावास मेड़ता से लगभग बीस मील दूर है

२९. हकीकत बही जोधपुर, (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ ४७, बन्दगी व बिगत, बस्ता संख्या ७६

३०. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), सं० ६, एफ ६०, याददाश्त वि० सं० १८६२ (१८६३) वैशाख शुक्ल पक्ष की द्वितीया का एक समझौता, मुकाम सवाई जयपुर, खरीता बही सं० ६, एफ ३५

३१. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०) सं० ६, एफ ६०, खत्री राय रतनलाल, ईसरदा के राजा अभयसिंह, चौमू के राव रावल बैरीसाल, डिग्गी के खंगारोत, दूदू के खंगारोत जीवनसिंह, फतहसिंह तथा अन्य, कुल मिलाकर अठारह सरदार थे।

३२. तवारीख मानसिंह, एफ ३४, मारवाड़ ख्यात भाग ३, एफ २८

अन्त में सिंघवी इन्द्रराज और दीवान रामचंद का बुद्धिमत्तापूर्ण परामर्श २६ जून १८०६ को दोनों राज्यों में समझौता कराने में सफल हो गया।[33]

समझौता :

(१) इस समझौते के अनुसार दोनों ही महाराजाओं ने कृष्णा कुमारी से विवाह न करना स्वीकार किया। इसके अतिरिक्त, दोनों ने परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने का निश्चय किया। तदनुसार जयपुर के महाराजा से मानसिंह की पुत्री का और मानसिंह का जगतसिंह की बहिन से विवाह होना निश्चित हुआ।

(२) दोनों पक्षों से टीका एक ही दिन भेजे जाने का निश्चय हुआ।

(३) दोनों शासकों का परस्पर मित्रता के बंधन में बंधना निश्चित हुआ और यह भी निश्चित हुआ कि एक के मित्र और शत्रु दूसरे के भी मित्र और शत्रु होंगे।

जैसा कि समझौते में तय हुआ था, परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए १० जुलाई १८०६ को दोनों ओर से टीकों का विनिमय हुआ अर्थात् टीके भेजे गए।[34]

इस अवसर पर मराठा आक्रमण का स्वरूप :

जिस समय मानसिंह उदयपुर और जयपुर के शासकों पर उक्त वैवाहिक सम्बन्ध को न करने के लिए कूटनीतिक दबाव डाल रहा था उसी समय उसने दौलतराव सिंधिया को उस विवाद में मध्यस्थता करने के लिए आमंत्रित किया।[35] सिंधिया ने जो कि राजपूताने में अपने प्रभाव का विस्तार करने के लिए इस प्रकार के अवसर की ताक में था मध्यस्थ बनना स्वीकार कर लिया और वह जयपुर की सेना को उदयपुर से हटा देने के लिए महाराणा को तैयार करने हेतु अपनी सेना के

३३. याददाश्त वि० सं० १८६२ (१८६३) आषाढ़ शुक्ल पक्ष ग्यारस के समझौते की, मुकाम गाँव नाँद, खरीता बही सं० १२, एफ ४८–४९, ज्ञानमल भंडारी, दीवान गंगाराम, सिंघवी इन्द्रराज, मेहता अखयचन्द और मेहता सूरजमल की महाराजा जगतसिंह को अर्जी वि० सं० १८६३, मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष चतुर्दशी, खरीताबही सं० ९, एफ ५३, तवारीख मानसिंह, एफ ३४

३४. मानसिंह का जगतसिंह को पत्र, वि० सं० १८६३ द्वितीय श्रावण कृष्ण पक्ष की नवमी, तवारीख मानसिंह, एफ ३४

३५. सरजेराव घाटके की मानसिंह को अर्जी, वि० सं० १८६२ फाल्गुन कृष्ण पक्ष की नवमी, खरीता बही, संख्या १२, एफ १, मैमॉयर्स आफ अमीरखाँ, पृष्ठ २९७, पी० आर० सी भाग ९, पृष्ठ १३

साथ फरवरी १८०६ में उदयपुर की ओर बढ़ा।[३६] उसने महाराजा जगतसिंह को लिखा[३७] कि वह मानसिंह के विरुद्ध कूच करके युद्ध को न भड़काए। उस समय महाराणा जयपुर के प्रभाव में था, और क्योंकि जयपुर की सेनाएँ उदयपुर में थीं अतः उसने अपने विचार को बदलना स्वीकार नहीं किया। महाराणा ने जयपुर की सेनाओं को तब तक हटाना स्वीकार नहीं किया जब तक कि सिंधिया उज्जैन के लिए रवाना नहीं हो गया।[३८] अपने प्रभाव को बनाये रखने और जयपुर तथा जोधपुर में होने वाले संघर्ष को टालने के लिए सिंधिया ने यह प्रस्ताव रखकर समझौता करवाने का भरसक प्रयत्न किया कि वे दोनों ही नरेश राजा की एक-एक पुत्री से विवाह कर लें अथवा उस समय अपने दावों को छोड़ दें, और अन्त में किसी पड़ोसी राजा को इस विषय में पंच बनाना स्वीकार कर लें।[३९]

सिंधिया द्वारा मित्रतापूर्ण समझौता कराने के सभी प्रयत्न विफल हो गये, क्योंकि महाराणा पर जयपुर के उन अधिकारियों का प्रभाव था जो वहाँ जयपुर की सेना के साथ रह रहे थे। अपनी स्थिति के सुदृढ़ होने का भान होने के कारण जगतसिंह ने भी समझौता करना स्वीकार नहीं किया।[४०] सिंधिया इस तथ्य से भलीभाँति अवगत था कि यदि जयपुर की सेनाएँ उदयपुर में जमी रहीं तो राजपूताना के उस भाग में उसका प्रभाव कम हो जायगा, अतः अपने प्रभाव और शक्ति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए तथा इसलिए कि महाराणा जयपुर की सेनाओं को हटा दें, वह महाराणा पर दबाव डालने का सतत प्रयत्न करता रहा। इसके साथ ही, एक विशेष स्थिति में सिंधिया स्वयं कृष्णा कुमारी से विवाह करने का इच्छुक था। इस तथ्य की पुष्टि सी० मरसर द्वारा गवर्नर जनरल बार्लो को लिखे गये उस पत्र से होती है, जिसमें उसने लिखा था, मेरा विचार है कि सिंधिया के उदयपुर आगमन का मुख्य

---

३६. मानसिंह ने होल्कर को भी अपनी सहायतार्थ आने हेतु एक आवश्यक प्रार्थना भेजी। प्रत्युत्तर में होल्कर ने मानसिंह को सूचना भेजी कि वह शीघ्र ही उसकी सहायता के लिए आयेगा, हकीकत बही जोधपुर (१८६२–७०) के अनुसार संख्या ६, एफ ४७, ५७ तवारीख मानसिंह, एफ ३३

३७. जगतसिंह को दौलतराव सिंधिया का पत्र, वि० सं० १८६२ फाल्गुन कृष्ण पक्ष की सप्तमी, संख्या ८/२२२, बण्डल संख्या।

३८. सी० मरसर का ऐडमान्सटन को पत्र, २२ मार्च १८०६, पी० आर० सी० भाग ११, संख्या १५५

३९. सी० मरसर का गवर्नर जनरल बार्लो को पत्र, २२ अप्रेल १८०६, पी० आर० सी० भाग ११, संख्या १६२

४०. मैमॉयर्स आफ अमीर खाँ, पृष्ठ २६७

उद्देश्य यह प्रयत्न करना था कि वह राणा की पुत्री से स्वयं विवाह करने की स्वीकृति पा सके।[४१] अन्त में महाराणा ने जयपुर की सेना को उदयपुर से हटा दिया। जून १८०६ में दौलतराव सिंधिया उदयपुर से चला गया और बाद में जुलाई के अन्त में मालवा के लिए प्रस्थान कर गया।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, होल्कर ने मानसिंह को कहला भेजा था कि वह जयपुर के विरुद्ध झगड़े में उसकी (मानसिंह जी) सहायता के लिए शीघ्र ही आयेगा लेकिन अपने कथन के विपरीत, वह देरी से अजमेर के समीप नाँद स्थान में २३ जून १८०६ को पहुँचा। उसके आगमन का समाचार मिलने पर नींमाज, आऊवा और रींया के ठाकुरों के साथ मानसिंह स्वयं उससे नाँद में मिलने गया[४२] वहाँ १० मई १८०६ को मानसिह ने कृष्णा कुमारी को अपने लिए प्राप्त करने में होल्कर से सहायता प्राप्त करने सम्बन्धी सन्धि की [४३] जयपुर और जोधपुर के मंत्रियों द्वारा शांति चर्चा प्रारंभ की जाने के कारण कृष्णा कुमारी की सगाई के प्रश्न पर जयपुर और जोधपुर के मध्य संभावित युद्ध का खतरा उस समय तक टल चुका था।[४४] जसवंतराव होल्कर को जब शांतिचर्चा के सम्बन्ध में बताया गया तो वह कुछ समय तक नाँद में रहकर दक्षिण की ओर चला गया, क्योंकि उस समय मानसिंह को उसकी सहायता की आवश्यकता नहीं थी। फिर उसने मानसिंह को यह आश्वासन दिया कि जब भी उसकी आवश्यकता होगी वह उसकी सहायता के लिए आयेगा।[४५]

जयपुर के विरुद्ध युद्ध :

संघर्ष की पुनरावृत्ति : यद्यपि जोधपुर और जयपुर के शासक परिस्थितियों के दबाव के कारण संधि में बंध गये थे तथापि वे अपने अन्तर में अप्रसन्न थे और न उन्हें

---

४१. सी० मरसर का गवर्नर जनरल बार्लो को पत्र, २६ मई १८०६, पी० आर० सी० भाग ११, संख्या १७२, पी० आर० सी० भाग १, पृष्ठ १३, रघुवीरसिंह : पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृष्ठ २४२

४२. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ ७४–७७, फुटकर बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–६४), एफ १७, तवारीख मानसिंह, एफ ३५

४३. मानसिंह और जसवन्तराव होल्कर में संधि, वि० सं० १८६२ (१८६३) ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष त्रयोदशी, खरीता बही, संख्या १२, एफ २६४

४४. एक सन्धि की याददाश्त, वि० सं० १८६२ (१८६३) वैशाख शुक्ल पक्ष की द्वतीया, खरीता बही, संख्या १२, एफ ३५, सिंधिया का मानसिंह को पत्र, वि० सं० १८६३ आषाढ़ कृष्ण पक्ष की दसवीं का, खरीता बही, संख्या १२, एफ १८

४५. तवारीख मानसिंह, एफ ३५, रेऊ : मारवाड़ का इतिहास भाग २, पृष्ठ ४०६

यह विश्वास था कि यह सन्धि स्थाई होगी। महाराजा जगतसिंह इस लिए अप्रसन्न था कि टीका वापस भेज दिया गया, जिसका अर्थ था कि राठौड़ों के हाथों उसका अपमान हुआ और उसकी प्रतिष्ठा को धक्का लगा। इसके अतिरिक्त, कृष्णा कुमारी से विवाह करने की उसकी इच्छा नष्ट कर दी गई।[४६] उसने सन्धि करना स्वीकार कर लिया, क्योंकि वह उस समय पूरी तरह तैयार नहीं था और एक बडे सैनिक संघर्ष का खतरा नहीं ले सकता था। जहाँ तक मानसिंह का प्रश्न था, उसकी बात रह गई थी और उसकी प्रतिष्ठा कम नहीं हुई थी। परन्तु उसको भी इस बात का निश्चय नहीं था कि शाहपुरा में दोनों पक्षों में जो समझौता हुआ था वह स्थायी सिद्ध होगा। इस कारण न तो वह जोधपुर लौटा और न उसने अपनी सैनिक तैयारी के प्रयत्नों को ही शिथिल किया। इन परिस्थितियों वश होने वाले विश्राम काल में निकट भविष्य में युद्ध छिड़ने के सभी संकेत निहित थे। यद्यपि जयपुर के साथ उस समय संघर्ष छिड़ने की संभावनाएँ टल गई थीं तथापि मानसिंह के सामने जो खतरा था वह समाप्त नहीं हुआ था। सवाईसिंह जो मारवाड़ के सिंहासन पर धौंकलसिंह को बिठाने का षडयन्त्र कर रहा था, पुनः सक्रिय हो गया और दोनों राज्यों में हुई सन्धि को भंग करने में लग गया।[४७]

सवाईसिंह के कार्य :

जब दोनों पक्षों में युद्ध की संभावना का भय बना हुआ था तब सवाईसिंह धौंकलसिंह के पक्ष में अनुकूल सम्मति बनाने में लगा हुआ था। इसलिए मानसिंह ने डोढ़ीदार नथकरण के द्वारा सवाईसिंह को मेड़ता बुला भेजा, पर वह नहीं आया।[४८] इसके विपरीत उसने बदलू के ठाकुर सादूलसिंह, रास के जीवनसिंह, और अन्य राठौड़ सरदारों के साथ मिलकर षडयन्त्र रचा और अपने उद्देश्य के पक्ष में उनकी सहायता प्राप्त की। ठाकुर सादूलसिंह के माध्यम से, वह बीकानेर के महाराजा सूरतसिंह का समर्थन प्राप्त करने में सफल हो गया। सवाईसिंह ने महाराजा जगतसिंह को भी भड़काया कि वह मानसिंह द्वारा किए गए अपने अपमान का बदला ले; और उसने अपने भाई गीजगढ़ के ठाकुर उमेदसिंह के द्वारा जयपुर की सहायता की जाने का वचन दिया।[४९] जगतसिंह के निमन्त्रण पर सवाईसिंह जयपुर गया और

---

४६. पी० आर० सी० भाग १, संख्या २०४, २०८ अनुसार, जगतसिंह ने पुनः कृष्णा कुमारी से विवाह करने की इच्छा प्रकट की और उसके लिए राणा को नवम्बर १८०६ में द्रव्य भेजा।

४७. पी० आर० सी० भाग ११, पृष्ठ १४

४८. तवारीख मानसिंह, एफ ३६, मारवाड़ ख्यात भाग ३, एफ ३१

४९. तवारीख मानसिंह, एफ ३७

जगतसिंह को मानसिंह के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए तैयार करने में सफल हो गया।

ऐसे संकट काल में मानसिंह सिंघवी इन्द्रराज[५०] और भंडारी गंगाराम के सत्-परामर्श से वंचित हो गया, क्योंकि वे दरबारियों के षडयन्त्र के परिणाम स्वरूप उसकी आज्ञा से कैद कर लिए गये थे।[५१]

मानसिंह की युद्ध की तैयारियाँ :

मेड़ता में जब मानसिंह ठहरा हुआ था तब उसको यह स्पष्ट विदित हो गया कि उसके विरुद्ध षडयन्त्र गहन होता जा रहा है और उसको जयपुर तथा धौंकलसिंह के समर्थकों की सम्मिलित सेनाओं के कड़े विरोध का सामना करना होगा। अतएव उसने भी इस संकट का सामना करने के लिए तैयारियाँ आरम्भ कर दीं, और उन सबसे जिनसे वह सहायता की आशा कर सकता था, सम्बन्ध स्थापित किया। ११ दिसम्बर १८०६ को मानसिंह ने महाराजा सूरतसिंह, जैसलमेर के रावल, ग्वालियर के सवाई मानसिंह (जो जयपुर के सिंहासन के दावेदार थे) और अलवर के राव राजा से प्रार्थना की कि वे उसकी सहायता के लिए आयें, क्योंकि जयपुर से संघर्ष होने की तत्काल संभावना थी।[५२] मानसिंह ने सिंधिया और होल्कर से भी सैनिक सहायता चाही।[५३]

जब वह विभिन्न क्षेत्रों से सहायता माँग रहा था तब उसको सूचना मिली कि जयपुर की सेनाएँ कूच कर रही हैं। अतएव वह २१ जनवरी १८०७ को मेड़ता से

---

५०. बही याददाश्त, एफ १२७, ठाकुर पोकरण का रेकर्ड, मुदियार की ख्यात, एफ ६५

५१. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०) संख्या ६, एफ ८१, तवारीख मानसिंह, एफ ३८

५२. मानसिंह का सूरतसिंह को खास रुक्का वि० सं० १८६३ मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की पड़वा, खरीता बही, संख्या ६, एफ १६४, मानसिंह का रावल जैसलमेर को खास रुक्का वि० सं० १८६३ मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की द्वितीया, खरीता बही ६, एफ २२७, मानसिंह का खरीता ग्वालियर के सवाई मानसिंह को, वि० सं० १८६३ पौष कृष्ण पक्ष की तृतीया, खरीता बही, संख्या ६, एफ १२८, सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र २८ दिसम्बर १८०६, कान्स १५ जनवरी, संख्या ६, एफ पी।

५३. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र २८ दिसम्बर १८०६, कान्स १५ जनवरी १८०७, संख्या ६, एफ पी, पी० आर० सी० भाग ११, संख्या २०८, २०६, मुदियार ख्यात, बस्ता संख्या ४०, एफ ६५

चलकर परबतसर आ गया।[५४] परबतसर से उसने फरवरी १८०७ में चूरू के राठौड़ कुशलसिंह और किशनगढ़ के राठौड़ प्रतापसिंह को खास रुक्का भेजकर अपनी स्थिति को दृढ़ करने के लिए उनसे प्रार्थना की।[५५] साथ ही, उसने ईडर, सीतामऊ, और रतलाम के राजाओं से भी सहायता की याचना की।[५६]

मराठों, राठौड़ों और राजपूताने तथा मालवा के अन्य राजपूत शासकों से सहायता की याचना करने के अतिरिक्त मानसिंह ने ब्रिटिश सत्ता की सहायता प्राप्त करने का भी सतत प्रयत्न किया। इसके लिए उसने जनवरी १८०७ में अपने वकील फतहराम व्यास को और बाद में ठाकुरदास को उनके पास यह प्रस्ताव लेकर भेजा कि यदि वे जगतसिंह के विरुद्ध उसकी सहायता करेंगे तो वह उसके बदले में साँभर, डीडवाना के परगने और दो अन्य जिले उन्हें दे देगा।[५७] परन्तु मानसिंह को अंग्रेजों से कोई सहायता नहीं मिल सकी, क्योंकि उस समय उनकी नीति राजपूत राज्यों में हस्तक्षेप न करने की थी।

जगतसिंह की युद्ध की तैयारियाँ :

क्योंकि महाराजा जगतसिंह और बीकानेर के महाराजा सूरतसिंह ने धौंकलसिंह

---

५४. मानसिंह का खास रुक्का जैसलमेर के रावल को, वि० सं० १८६३ पौष शुक्ल पक्ष की द्वादशी, खरीता बही, संख्या ८, एफ २२८, खांप भाटी भाग २,२३/१०१ एफ २८८

५५. मानसिंह का खास रुक्का राठौड़ कुशलसिंह चूरू के पटेल को, वि० सं० १८६३ माघ कृष्ण पक्ष की पंचमी, खरीता बही, संख्या ८, एफ २२२, मानसिंह का खरीता, किशनगढ़ के राठौड़ प्रतापसिंह को, वि० स० १८६३ माघ शुक्ल पक्ष की द्वतीया, खरीता बही, संख्या ८, एफ २२७

५६. मानसिंह का ईडर के राजा को खास रुक्का, वि० सं० १८६३ माघ शुक्ल पक्ष की चौथ, खरीता बही संख्या ८, एफ ३१३, मानसिंह का खरीता सीतामऊ के महाराजा लक्ष्मणसिंह को वि० सं० १८६३, माघ शुक्ल, पक्ष की चौथ, खरीता बही, ८, एफ २८६, मानसिंह का खरीता रतलाम के प्रतापसिंह को वि० सं० माघ शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी का, पोर्ट फोलियो फाइल संख्या १५

५७. सियेटन का ऐडमान्सन को पत्र १८ जनवरी १८०७, कान्स ५ फरवरी १८०७, संख्या १२६ एफ पी, सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र ८ फरवरी १८०७, कान्स २६ फरवरी १८०७, संख्या २६ एफ पी, सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र २० फरवरी १८०७, कान्स १२ मार्च १८०७, संख्या २६ एफ पी, सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र १८ मार्च १८०७, कान्स २ अप्रेल १८०७, संख्या ६१, एफ पी।

का समर्थन करने का वचन पहले ही दे दिया था[५८] अतः उन्होंने पोकरण के ठाकुर से मिलकर मानसिंह के विरुद्ध युद्ध की तैयारियाँ आरम्भ कर दीं।[५९] दिसम्बर १८०६ में जगतसिंह अमीरखाँ की सहायता प्राप्त करने में सफल हो गया, क्योंकि वह मानसिंह से इस लिए अप्रसन्न था कि उसने उसकी आशा के अनुसार उसे प्रतिष्ठा और सम्मान प्रदान नहीं किया।[६०] इसके अतिरिक्त जगतसिंह उसको बहुत अधिक सम्मान देकर और उसकी अभ्यर्थना करके उसकी सिद्धान्त हीनता के कारण एक लाख रुपये में उसकी सेवाएँ खरीद सका[६१] इसके साथ ही जगतसिंह ने अपनी सहायता के लिए सिंधिया से भी प्रार्थना की, और उसके सैनिक सहायता देने पर उसकी सेनाओं के नियमित खर्चे के अतिरिक्त उसे एक बड़ी रकम देना भी स्वीकार किया।[६२] इसके परिणाम स्वरूप सिंधिया ने उसकी सहायता के लिए अपने सेनापति बालाराव की अधीनता में एक डिविज़न सेना भेजी। उस समय जबकि जगतसिंह मानसिंह के विरुद्ध जितने मित्र प्राप्त कर सकता था उतने प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा था; होल्कर ने अपने वकील भाऊ भास्कर को जयपुर भेजकर उसे जोधपुर के विरुद्ध युद्ध करने से मना किया।[६३] होल्कर ने उदयपुर के महाराणा को भी परामर्श दिया कि वे जगतसिंह को उसकी कन्या से विवाह करने के लिए उत्साहित न करें।[६४] क्योंकि जगतसिंह युद्ध के लिए दृढ़ निश्चयी था, अतः उसने होल्कर के परामर्श की अवहेलना की और उसके विपरीत, भावी संघर्ष में दिसम्बर

---

५८. जगतसिंह का सूरतसिंह को पत्र, वि० सं० १८६३ पौष शुक्ल पक्ष की एकादशी, उसमें धौंकलसिंह के वचन का उल्लेख है कि यदि उसे जोधपुर के सिंहासन पर बैठा दिया गया तो वह एक लाख रुपये और फलौदी का परगना दे देगा। उसी के अनुसार महाराजा सूरतसिंह ने विक्रम सं० १८६३ के फाल्गुन कृष्ण पक्ष की तृतीया को सांभर पर अधिकार कर लिया। हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८६३, एफ १७० और राठौड़ां री ख्यात भाग २, एफ ३१६ के अनुसार।

५९. पी० आर० सी० भाग ११, संख्या २०८, बही याद्दाश्त एफ १२७, पोकरण ठाकुर का रेकर्ड।

६०. मैमॉयर्स आफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३००

६१. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र ६ मार्च १८०७, कान्स १९ मार्च १८०७, संख्या २१ एफ पी, मैमॉयर्स आफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३०७

६२. पी० आर० सी० भाग ११, संख्या २०४, २०८

६३. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, २८ दिसम्बर १८०६, कान्स १५ जनवरी १८०७, संख्या ६, एफ पी

६४. पी० आर० सी० भाग ११, संख्या २०९

१८०६ में होल्कर की तटस्थता की कामना की।[६५]

जगतसिंह का जोधपुर के विरुद्ध कूच :

इस तैयारी के साथ महाराजा जगतसिंह एक विशाल सेना लेकर जिसमें २०,०५० अश्वारोही और २६,६०० पैदल सैनिक थे, जनवरी १८०७ के मध्य में अपनी राजधानी से चला तथा जयपुर से छः मील दूर झोटवाड़ा में उसने अपना शिविर लगाया।[६६] उसी समय खेतड़ी के अभयसिंह शेखावतों की एक बड़ी सेना लेकर धौंकलसिंह सहित महाराजा जगतसिंह का साथ देने जयपुर आये। महाराजा जगतसिंह ने धौंकलसिंह को एक महाराजा के सदृश्य ही सम्मान और प्रतिष्ठा दी और उन्हें मारवाड़ के सिंहासन का सही दावेदार स्वीकार किया।[६७]

महाराजा सूरतसिंह भी[६८] जनवरी १८०७ में सेना लेकर[६९] बीकानेर से जोधपुर के रास्ते में जगतसिंह के साथ सम्मिलित होने के लिए चल पड़ा। वह नापासर, बीदासर, मलसीसर से कूच करता हुआ सीकर पहुँचा जहाँ सीकर के ठाकुर लक्ष्मण-सिंह ने उसकी अगवानी की।[७०] वहाँ ३० जनवरी १८०७ को सवाईसिंह महाराजा सूरतसिंह से मिला और उससे सैनिक कार्यवाही की भावी रूपरेखा के सम्बन्ध में चर्चा की।[७१] १७ जनवरी को महाराजा जगतसिंह ने झोटवाड़ा से आगे कूच किया और मार्ग में झम्भूरी, गुढ़ा और रींगस में शिविर लगाते हुए फरवरी १८०७ में

---

६५. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र २८ दिसम्बर १८०६, कान्स १५ जनवरी १८०७, संख्या ६, एफ पी

६६. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, १८ जनवरी १८०७, कान्स ५, फरवरी १८०७, कान्स १२, फरवरी १८०७, संख्या ६६, एफ पी, जगतसिंह ने १२ जनवरी १८०७ को राजधानी से चलने का निश्चय किया।

६७. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, २० जनवरी १८०७, कान्स ५, फरवरी १८०७, संख्या १२७, एफ पी, बही याददाश्त, एफ १२७, पोकरण ठाकुर का रेकर्ड, तवारीख मानसिंह, एफ ३६

६८. सूरतसिंह ने ६०,००० सेना के साथ कूच किया, राठौड़ां री ख्यात, परन्तु जो संख्या दी गई है उसमें अतिशयोक्ति प्रतीत होती है।

६९. राठौड़ां री ख्यात, भाग २, एफ ११७

७०. हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८६३, एफ १७०, नापासर जिला बीकानेर, बीदासर जिला चूरू, मलसीसर जिला झुन्झनू में हैं, राजस्थान की जनगणना रिपोर्ट १९६१ के अनुसार।

७१. बही याददाश्त, एफ १२७, पोकरण ठाकुर का रेकर्ड

पलसाना पहुँचा।[७२] जब वह पलसाना की ओर कूच कर रहा था तब जगतसिंह मानसिंह के विरुद्ध युद्ध में होल्कर की तटस्थता को खरीदने के लिए निरन्तर प्रयत्न कर रहा था, और इसी हेतु उसने उसके मूल्य स्वरूप दस लाख रुपये देने का प्रस्ताव रखा।[७३] लेकिन होल्कर किशनगढ़ से बारह मील दूर हरमाड़ा के उस स्थान पर जमा बैठा था, जो मानसिंह और जगतसिंह के शिविरों से अधिक दूर नहीं था। वह एक ऐसा स्थान था जो दोनों पक्षों से द्रव्य प्राप्त करने के लिए, और उनके प्रति अपने दृष्टिकोण द्वारा निरन्तर भय उत्पन्न करने के लिए भी सुविधाजनक था।[७४]

उस समय तक सूरतसिंह भी पलसाना पहुँच गया और जगतसिंह से मिल गया। वहाँ दोनों शासकों ने मानसिंह के विरुद्ध अपनाई जाने वाली रणनीति के सम्बन्ध में चर्चा की।[७५] पलसाना से सम्मिलित हुई सेनाएँ दाँतारामगढ़ की ओर बढ़ीं जहाँ अमीर खाँ भी अपनी २०,००० सेना लेकर उनमें सम्मिलित हो गया।[७६] इस प्रकार जयपुर, बीकानेर, अमीर खाँ और राठौड़ सवाईसिंह की सेनाएँ, उसके साथ ही साथ बालाराव इँगले की अधीनता में सिंधिया की सेना और हैदराबाद के वे पठान जो होल्कर को छोड़कर आये थे आदि सब मिला कर उस सेना में एक लाख बीस हजार आदमी हो गये।[७७] यह तथ्य कि महाराजा जगतसिंह और उसका योग्य दीवान इतनी विशाल सेना एकत्रित कर सके इस बात की ओर इंगित करता है कि वे किसी प्रकार

---

७२. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, २० जनवरी १८०७, कान्स ५, जनवरी १८०७, संख्या १२०, एफ पी, सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र. २३ जनवरी १८०७, कान्स १२, फरवरी १८०७, संख्या ९४, एफ पी, हकीकत बही, बीकानेर वि० सं० १८६३, एफ १७०, झम्भूरी जयपुर से १६ मील दूर है। गुढ़ा जयपुर से २६ मील दूर है और पलसाना सीकर जिले में है।

७३. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, २९ जनवरी १८०७, कान्स १२, फरवरी १८०७, संख्या ९५, एफ पी, पी० आर० सी० भाग ११, संख्या २१३

७४. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, २५ जनवरी १८०७, कान्स १२, फरवरी १८०७, संख्या ९५, एफ पी, पी० आर० सी० भाग ११, संख्या २१३

७५. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, ९ फरवरी १८०७, कान्स २६, फरवरी १८०७, संख्या २६, एफ पी, हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८६३, एफ १७०

७६. मैमॉयर्स आफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३१२

७७. टॉड : ऐनल्स भाग १, पृष्ठ ३६६, यद्यपि समकालीन ख्यातों और अमीर खाँ के मैमॉयर्स में, सम्मिलित सेना की संख्या तीन लाख दी गई है तथापि उसमें अतिशयोक्ति प्रतीत होती है।

का खतरा नहीं लेना चाहते थे। इस प्रकार उन्होंने मानसिंह के विरुद्ध युद्ध करने के लिए अपनी सैनिक स्थिति को बहुत मज़बूत बना लिया।

अन्त में सौभाग्यवश जगतसिंह होल्कर को सशर्त दस लाख रु० की वे हुण्डियाँ देकर जो कि दक्षिण जाते समय कोटा में सिकराई जा सकती थीं, होल्कर को तटस्थ रखने में सफल हो गया।[७८] शर्त के अनुसार होल्कर ने कोटा की ओर कूच किया, और परिणामतः जगतसिंह उसके बदलने वाले दृष्टिकोण के भय से मुक्त हो गया।

जगतसिंह इस बात का निश्चय कर लेना चाहता था कि मानसिंह को किसी भी क्षेत्र से सैनिक सहायता न मिले। अतएव उसने अपने वकील रामकृष्ण बोहरा के माध्यम से सिंधिया से भी सन्धि करली। यदि सिंधिया मानसिंह को युद्ध में सहायता न देने का वचन दे तो उसको दस लाख रुपये देने का और धौंकलसिंह सिंधिया को खिराज देता रहेगा, इस बात का जामिन बनना भी स्वीकार किया।[७९] इस प्रकार सिंधिया को भी तटस्थ कर लिया गया। ये सब प्रबन्ध करके जगतसिंह मार्च १८०७ में मारोठ की ओर बढ़ा और उसने वहाँ अपना शिविर लगाया।[८०]

गिंगोली का युद्ध १३ मार्च १८०७ :

क्योंकि मानसिंह आगामी संघर्ष के लिए दृढ़ता पूर्वक तैयार था, अतः जब उसे यह समाचार मिला कि शत्रु की सेनाएँ मारोठ पहुँच गई हैं, जो कि अधिक दूर नहीं था, तब वह २६ फरवरी १८०७ को पचास हजार सेना के साथ शत्रुओं को रोकने के लिए गिंगोली[८१] की ओर बढ़ा।[८२] महाराजा की निराशा में वृद्धि करने के लिए

---

७८ सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, १० फरवरी १८०७, कान्स २६ फरवरी १८०७, संख्या २६, एफ पी, पी० आर० सी० भाग ११, संख्या २१६

७९. पी० आर० सी० भाग ११, संख्या २१६

८०. हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८६३, एफ १७०, तवारीख मानसिंह, एफ ४२; रेऊ : मारवाड़ का इतिहास भाग २, पृष्ठ ४०७ 'मारोठ' नागौर जिले में एक कस्बा है।

८१. गिंगोली परबतसर से दो मील दूर स्थित है।

८२. टॉड : ऐनल्स भाग १, पृष्ठ ३६६, समकालीन ख्यातों में मानसिंह की सेना में ८०,००० (अस्सी हजार) सैनिक बतलाए गए हैं। परन्तु यह अतिशयोक्ति प्रतीत होती है, क्योंकि बाद में रणक्षेत्र में अट्ठाईस हजार (२८,०००) ने मानसिंह का साथ छोड़ दिया, और जो उसके साथ रहे उनकी संख्या दस हजार से अधिक नहीं थी।

जहाँ एक ओर उसकी सेना उसके प्रतिद्वन्द्वी की सेना से अपेक्षाकृत छोटी थी वहाँ दूसरी ओर बहुत से राठौड़ सरदार उसके प्रति वफादार नहीं थे।[८३] वे गुप्त रूप से सवाईसिंह से मिले हुए थे और उसका साथ छोड़ देने के लिए अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा में थे।[८४] फिर भी जगतसिंह मानसिंह के साथ के राठौड़ सरदारों द्वारा उसके पक्ष को छोड़ देने की संभावना के सम्बन्ध में आश्वस्त नहीं था। इसलिए उसने यह उचित नहीं समझा कि वह स्वयं अग्रिम पंक्ति में जाय। इसके विपरीत उसने सवाईसिंह और अमीर खाँ के सेनापतित्व में सम्मिलित सेनाओं को मानसिंह पर आक्रमण करने के लिए गिंगोली भेजा।[८५]

१३ मार्च १८०७ को जयपुर और जोधपुर की दोनों सेनाएँ मारवाड़ की सीमा पर स्थित गिंगोली में आमने सामने आईं[८६] जैसे ही युद्ध आरम्भ हुआ तैसे ही अन्तिम क्षण में अधिकांश राठौड़ सरदारों ने मानसिंह का पक्ष छोड़ दिया।[८७] हरसोलाव का ठाकुर जालिमसिंह मानसिंह का पक्ष छोड़ने वालों में सबसे पहला था और बगड़ी के राठौड़ केसरीसिंह, खींवसर के प्रतापसिंह, चन्दावल के बख्शीराम, कुंपावत ज्ञानसिंह, तथा अन्य सरदारों ने उसका अनुसरण किया।[८८] कुछ अन्य सरदार यद्यपि शत्रु से जाकर नहीं मिले तथापि उन्होंने बिना युद्ध किये ही रणक्षेत्र छोड़ दिया।[८९] इस प्रकार अधिकांश राठौड़ सरदारों द्वारा उसका पक्ष छोड़ दिए

८३. तवारीख मानसिंह, एफ ४२

८४. वही, एफ ४३

८५. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, १२ मार्च, १८०७, कान्स २६ मार्च, १८०७, संख्या ३७, एफ पी, पी० आर० सी० भाग ११, संख्या २२५, रेऊ : मारवाड़ का इतिहास भाग २, पृष्ठ ४०८, सम्मिलित सेनाओं में सवाईसिंह और हैदराबाद रिसाले के ६०,००० और अमीर खाँ की सेना के २०,००० (बीस हजार) सैनिक थे, मुदियार ख्यात, बस्ता संख्या ४०, एफ १०७ के अनुसार।

८६. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, १७ मार्च १८०७, कान्स २ अप्रेल १८०७, संख्या ५६, एफ पी, हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८६३, एफ १७४, हथबही (वि० सं० १८४८–१८६५) संख्या ३, एफ ४५

८७. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, १८ मार्च १८०७, कान्स ७ अप्रेल १८०७, संख्या ६०, एफ पी, हकीकत बही बीकानेर (वि० सं० १८६३), एफ १७४, बन्दगी व बिगत, बस्ता संख्या ७६, जिन्होंने मानसिंह का साथ छोड़ दिया उनमें आठ हजार अश्वारोही और बीस हजार पैदल थे।

८८. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, ६ फरवरी १८०७, कान्स २६ फरवरी १८०७, संख्या २७, एफ पी, हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८६३, एफ १७०

८९. मैमायर्स आफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३१२

जाने पर मानसिंह के पास शत्रु का सामना करने के लिए एक बहुत छोटी सेना रह गई। ऐसे गंभीर संकट की घड़ी में केवल कुछ सरदार, उसके साथ रहे[६०] जैसे, आउवा का माधोसिंह, आसोप का केसरीसिंह, नींमाज का सुरतानसिंह, कुचामन का शिवनाथसिंह तथा थोड़े से अन्य सरदार जो कि मानसिंह के प्रति निष्ठावान थे।

राठौड़ सरदारों द्वारा पक्ष छोड़ देने के उस लज्जाजनक आचरण से मानसिंह की क्रोधाग्नि भड़क उठी और उसने अपनी म्यान से तलवार निकाल कर घोषणा की कि जो भी थोड़ी सी सेना उसके साथ है उसी से वह शत्रु से युद्ध करेगा। रास के ठाकुर जवानसिंह ने मानसिंह को समझाया कि उसको यह ख़तरा नहीं उठाना चाहिए, क्योंकि अधिकांश राठौड़ सरदार उसका साथ छोड़ चुके थे।[६१] अपने सरदारों द्वारा राजी किये जाने पर और उस असहाय स्थिति का अनुभव होने पर मानसिंह बिना युद्ध किये हुए अपने स्वामिभक्त सरदारों के साथ रणक्षेत्र छोड़ने को विवश हो गया और तीन से चार हजार अश्वारोही सैनिकों के साथ मेड़ता की ओर भाग गया।[६२]

क्योंकि वह शीघ्रता में रणक्षेत्र छोड़ने को विवश हुआ था अतः उसने अपने पीछे तोपखाना व अन्य सामग्री सहित शिविर का सामान छोड़ दिया जो कि युद्ध में लूटी गई सम्पत्ति के रूप में अमीर खाँ और जयपुर की सेनाओं के हाथ पड़ गया।[६३]

अमीर खाँ ने मानसिंह का मेड़ता की ओर पीछा किया, मार्ग में जो प्रदेश पड़ा उसको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और गाँवों को लूट लिया।[६४] उसके उस आड़े समय में जिन योद्धा साधुओं ने उसका साथ दिया उनमें से कुछ हिंदाल खाँ के साथ

---

६०. टॉड-ऐनल्स भाग १, पृष्ठ ३५५, यद्यपि समकालीन ख्यातों और मैमायर्स आफ अमीर खाँ में सम्मिलित सेना की संख्या तीन लाख बतलाई गई है, परन्तु वह अतिशयोक्ति प्रतीत होती है।

६१. कुम्पावत री ख्यात, ७/१०१, एफ १५७४

६२. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, २१ मार्च १८०७, कान्स ६ अप्रेल १८०७, संख्या २४, एफ पी, तवारीख मानसिंह, एफ ४४

६३. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, २१ मार्च १८०७, कान्स ६ अप्रेल १८०७ संख्या २४ एफ पी, तवारीख मानसिंह एफ ४५, मैमायर्स आफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३१५

६४. वही।

६५. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, १८ मार्च १८०७, कान्स ७ अप्रेल १८०७, संख्या ६०, एफ पी, पी० आर० सी० भाग ६, संख्या २२५, मैमायर्स आफ अमीर खाँ पृष्ठ ३१४

सम्मिलित हो गये जो कि शत्रु की उन सेनाओं को रोकने के लिए पीछे ठहर गया था जो मानसिंह का तेजी से पीछा कर रही थीं। मानसिंह भागकर १४ मार्च १८०७ को मेड़ता पहुँचा। पहले उसकी इच्छा जालौर जाने की थी, परन्तु बाद में कुचामन के ठाकुर शिवनाथसिंह के परामर्श से उसने जोधपुर की ओर जाना स्वीकार कर लिया।[६५]

जोधपुर का घेरा :

पूर्व निश्चय के अनुसार मानसिंह १६ मार्च १८०७ को जोधपुर पहुँचा[६६] और उसने राजधानी की रक्षा करने के लिए शीघ्रतापूर्वक तैयारियाँ कीं। उसने नगर की किलेवन्दी को सुदृढ़ करने के लिए धन और जनशक्ति को इकट्ठा किया। सामरिक महत्त्व के केन्द्रबिन्दुओं पर तोपें चढ़ा दी गईं।[६७]

इसी बीच गिगोली के युद्ध के उपरान्त महाराजा जगतसिंह और सूरतसिंह दोनों १६ मार्च १८०७ को मारौठ से परबतसर चले गए।[६८] जयपुर की सेनाओं ने कूच करते हुए मार्ग में मारवाड़ के अधिकांश परगनों मारौठ, परबतसर, साँभर, नावा, डीडवाना, जैतारण, सोजत, मेड़ता और नागौर पर अपना अधिकार कर लिया। वे जोधपुर की ओर, राजधानी पर भी अधिकार कर लेने के लिए आगे बढ़ीं।[६९]

गिगोली में जयपुर की सेनाओं को जो सफलता प्राप्त हुई वह दीवान रायचंद की सम्मति में इतनी अधिक निश्चयात्मक थी कि उससे मानसिंह की युद्ध करने की शक्ति पूर्ण रूप से छिन्न-भिन्न हो गई। अतएव जगतसिंह कृष्णा कुमारी से विवाह करने के लिए बिना किसी आशंका के उदयपुर की ओर प्रस्थान कर सकता था। किन्तु सवाईसिंह का मत इससे भिन्न था। उसने इस बात पर बल दिया कि जगतसिंह को उदयपुर की ओर प्रस्थान करने के बजाय प्रथम जोधपुर पर अधिकार कर लेना चाहिए और धौंकलसिंह को राजसिंहासन पर बिठा देना चाहिए एवं उसके उपरान्त ही उदयपुर की ओर प्रस्थान करना चाहिए, जिससे कि राजपूताने में उसका

---

६६. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, २३ मार्च १८०७, कान्स ६ अप्रेल १८०७, संख्या २५, एफ पी

६७. हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८६४, एफ १८२

६८. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, २३ मार्च १८०७, कान्स ६ अप्रेल, १८०७, संख्या २५, एफ पी

६९. मैमायर्स आफ़ अमीर खाँ, पृष्ठ ३१७, तवारीख मानसिंह, एफ ४५, मुदियार की ख्यात के अनुसार नागौर पर वि० सं० १८६२ फाल्गुन शुक्ल पक्ष की १५ को अधिकार हुआ।

(जगतसिंह का) प्रभाव और प्रतिष्ठा बढ़ जाए।[१००]

महाराजा जगतसिंह को यह परामर्श देकर स्वयं सवाईसिंह हैदराबाद रिसाले के साथ मेड़ता और पीपाड़ के रास्ते से जोधपुर की ओर आगे बढ़ा। मार्ग में उसने मारवाड़ के गाँवों का विध्वंस किया और उन्हें लूट लिया। इस प्रकार उसने ग्रामीण प्रदेश को इतनी अधिक हानि पहुँचाई और उनका ऐसा भयंकर विनाश किया कि उसका मूल्यांकन नहीं किया जा सका। सवाईसिंह ३० मार्च को जोधपुर पहुँचा और उसने राजधानी को घेर लिया।[१०१]

जैसी की दीवान रायचन्द ने सलाह दी थी, जगतसिंह के लिए यह वांछनीय था कि वह मानसिंह को अपनी पराजय के घावों की मरहमपट्टी करने के लिए छोड़कर उदयपुर को प्रस्थान करता। किन्तु सवाईसिंह के प्रभाव के कारण उसने जोधपुर के विरुद्ध कूच करने का निश्चय किया। जगतसिंह और सूरतसिंह दोनों ही अपनी सेनाओं के साथ मारवाड़ की घिरी हुई राजधानी के पास शीघ्र ही पहुँच गए और उन्होंने क्रमशः राई का बाग और गुलाबसागर पर अपने-अपने शिविर लगाए।[१०२]

सेना का मुख्य भाग भी धौंकलसिंह के साथ १ अप्रेल १८०७ को जोधपुर पहुँच गया। उसने नगर को पूर्णतया चारों ओर से घेर लिया और नगर से बाहर निकलने के सभी स्थलों को अपने अधिकार में कर लिया।[१०३]

सवाईसिंह की सेना ने मंडोर के समीप सिनगोरी की पहाड़ी पर नागोरी फाटक के पास कागा में अपना शिविर लगाया। अमीर खाँ की सेना नगर के दूसरी ओर अखयराज के तालाब पर ठहराई गई और शेष सेना ने चैनपुरा, बालसमन्द और मंडोर में अपना शिविर लगाया।[१०४] इस प्रकार मानसिंह अपनी ही राजधानी में

---

१००. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, ६ अप्रेल १८०७, कान्स १३ अप्रेल १८०७, संख्या १५, एफ पी।

१०१. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, ११ अप्रेल १८०७, कान्स ३० अप्रेल १८०७, संख्या १८, एफ पी, पी० आर० सी० भाग ११, संख्या २२८, तवारीख मानसिंह, एफ ६, रेऊ: मारवाड़ का इतिहास, भाग २, पृष्ठ ४६०

१०२. तवारीख मानसिंह, एफ ४६, वीर विनोद, भाग २, पृष्ठ ५०८

१०३. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र ११ अप्रेल १८०७, कान्स ३० अप्रेल १८०७ संख्या २८, एफ पी, पी० आर० सी० भाग ११, संख्या २२८

१०४. हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १६४ एफ १८६, बही याददास्त, एफ १२२ के अनुसार धौंकलसिंह ने बालसमंद पर शिविर लगाया, पोकरण के ठाकुर का रेकर्ड, मैमायर्स आफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३१७, बंदगी व बिगत, बस्ता संख्या ६

घेर लिया गया और उसकी स्थिति अत्यन्त दयनीय तथा असहाय हो गई। उसके पास बहुत सीमित साधन और बहुत छोटा क्षेत्र जिसमें जोधपुर, जालौर, दौलतपुरा, घानेराव, सिवाना शिवानन्द व उमर कोट आदि परगने थे, रह गये थे।[१०५] चारों ओर से घिर जाने के कारण वह इन क्षेत्रों से भी कोई सहायता प्राप्त नहीं कर सकता था। अत्यन्त निराश और क्रोधोत्तेजित होकर उसने अपने सरदारों का सम्मेलन बुलाया और उनसे यह जानना चाहा कि क्या वे उन विपरीत परिस्थितियों में उसका साथ देंगे। उन सभी सरदारों ने जो उसके साथ किले में थे, शपथपूर्वक उसे आश्वासन दिया कि वे उस संकट के समय अन्तिम क्षण तक उसका साथ देने के लिए कृतसंकल्प हैं। सरदारों की निष्ठा के इस आश्वासन से वह प्रोत्साहित हुआ, उसका खोया हुआ साहस पुनः लौटा और उसने शत्रु से दृढ़तापूर्वक युद्ध करने का संकल्प किया।[१०६]

मानसिंह के पास एक छोटी सी सेना थी। विभिन्न अनुमानों के अनुसार वह पाँच हजार से बारह हजार तक थी। उसमें राठौड़ सरदारों के अनियमित सैनिक थे तथा पठान (परदेशी) और स्वामियों की जमातें थीं।[१०७] फिर भी उसने साहस के साथ शत्रु का सामना किया। परन्तु कुछ दिनों के युद्ध के उपरान्त यह स्पष्ट प्रतीत होने लगा कि राठौड़ राजधानी की रक्षा नहीं कर सकते। अतः नगर को लूटपाट से बचाने के अभिप्राय से उसने शत्रु से समझौता-वार्ता करने का निश्चय किया। इस उद्देश्य से उसने सिंघवी जीतमल, सूरजमल और शम्भूदान को कारावास से मुक्त कर दिया और उन में से प्रथम दो को अपना दीवान नियुक्त किया। परन्तु वे शीघ्र ही शत्रु द्वारा प्रलोभन में आ गए और सवाईसिंह से मिल गँए।[१०८] अन्त में १६ अप्रेल १८०७ को उसने सिंघवी इन्द्रराज, भंडारी गंगाराम और ड्योढ़ीदार नथकरण को कारावास से मुक्त कर दिया और उन्हें शत्रु से समझौता-वार्ता करने के लिए कहा।[१०९] दोनों कागा में सवाईसिंह से मिले परन्तु सवाईसिंह की मनोदशा

---

१०५. तवारीख मानसिंह, एफ ५९

१०६. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, ११ अप्रेल १८०७, कान्स ३० अप्रेल १८०७, संख्या २८, एफ पी।

१०७. वही, फुटकर बही वि० सं० १८६३ (१८६४), (घेरा री हाजरी रो चौपनियो) एफ ६-५४, हकीकत बही जोधपुर, संख्या ९, एफ १८२-२४२, जागीरदारां री बंदगी, १६/९७ मानसिंह की सेना में उसके सैनिक हिन्दाल खाँ, मुहम्मद खाँ, जीवन शेख, गुलाब खाँ, स्वामी महन्तखेम भारती, किशन-भारती, कृपा भारती आदि के नेतृत्व में थे।

१०८. तवारीख मानसिंह, एफ ४९

१०९. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२-७०) संख्या ९, एफ ८१

सिंघवी इन्द्रराज के प्रस्ताव को स्वीकार करने की नहीं थी। उसने इस बात पर बल दिया कि मानसिंह जोधपुर छोड़कर जालौर चला जाए। इसके अतिरिक्त उसने युद्ध के हर्जाने के रूप में बाईस लाख रुपये की माँग की। मानसिंह ने ऐसी अपमानजनक शर्तों को स्वीकार नहीं किया।[११०] अन्त में इन्द्रराज ने इस शर्त पर जोधपुर नगर को खाली कर देने का प्रस्ताव रक्खा कि सवाईसिंह उन सरदारों को जो उस समय किले में घिरे हुए थे बिना छेड़छाड़ किये नगर से निकल जाने देगा।[१११] सवाईसिंह ने उस प्रस्ताव को इस आशा से स्वीकार कर लिया कि वह उन लोगों को भी अपने साथ लाने में सफल हो जायेगा। उसके अनुसार १८ अप्रेल १८०७[११२] को जोधपुर शत्रु को समर्पित कर दिया गया। जैसे ही जयपुर की सेनाओं ने जोधपुर नगर पर अधिकार किया वैसे ही धौंकलसिंह १६ अप्रेल को महाराजा घोषित कर दिया गया, जबकि जोधपुर का किला उस समय भी महाराजा मानसिंह के अधिकार में था।[११३] पूर्व निश्चय के अनुसार, चतुर और दूरदर्शी सिंघवी इन्द्रराज और गंगाराम ने महाराजा मानसिंह को परामर्श दिया कि वह किले की अन्दर से रक्षा करे; और वे दोनों आउवा, असोप, निमाज, कुचामन, बूडसू और लाम्बिया के साथ इस उद्देश्य से किले के बाहर निकल जाएँ कि वे बाहर से सहायता प्राप्त करें और घेरेबन्दी को दावपेंच के द्वारा उठवाने का प्रयत्न करें।

जोधपुर के किले का घेरा :

नगर पर अधिकार कर लेने के उपरान्त जयपुर की सेनाओं ने जोधपुर के सुदृढ किले को घेर लिया जो कि एक ऊँची दुर्गम कड़ी चट्टानों की ढालू पहाड़ी पर ठीक

---

११०. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, १३ अप्रेल १८०७, कान्स ३० अप्रेल १८०७, संख्या ३१, एफ पी, पी० आर० सी०, भाग ११, संख्या २२६, मारवाड़ ख्यात-भाग ३, एफ ३८

१११. आउवा, असोप, निमाज और कुचामन के ठाकुर।

११२. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, २४ अप्रेल १८०७, कान्स ७, मई १८०७, संख्या २२, एफ पी, पी० आर० सी०, भाग ११, संख्या २३०, मैमायर्स आफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३१८, रेऊ : मारवाड़ का इतिहास, भाग २, पृष्ठ ४१०

११३. पुरोहित जगरूप का धानमल बुद्धा, भाई शेरसिंह गहलोत, संग्रामसिंह इत्यादि को पत्र, वि० सं० १८६३ चैत्र शुक्ल पक्ष की द्वादशी, ढोलिया का कोठार, फाइल संख्या ६२, महाराजा धौंकलसिंह का महाराणा भीमसिंह को खरीता, वि० सं० १८६३ (१८६४) वैशाख कृष्ण पक्ष की नवमी, बही याददाश्त, एफ १२२, पोकरण के ठाकुर का रेकार्ड।

नगर के ऊपर स्थित था।[११४] शत्रु-सेना ने किले पर अधिकार कर लेने के अपने प्रयास में मई १८०७ में दुर्ग की रक्षा करने वाली सेना पर भीमवेग से प्रबल आक्रमण किया। किन्तु मानसिंह और उसके सैनिक ऐसी दृढ़ता से अडिग होकर लड़े कि शत्रु अपनी उद्देश्य-पूर्ति में सफल नहीं हो सका। लखनापोल के बाहर रासोली और रानीसर स्थानों पर भयंकर युद्ध हुआ। शत्रु-सेना फतहपोल और जयपोल में आगे बढ़ गई थी और वह प्रचड क्रोध के साथ उन स्थानों पर अपना अधिकार स्थापित कर लेने के लिए अथक प्रयत्न कर रही थी। उसने किले की दीवार को उड़ा देने के लिए उन फाटकों के पास विस्फोटक पदार्थ बिछा दिए। दुर्ग-रक्षक सेना ने उनके प्रयत्नों को कगार-जैसी ढालू और अजेय चट्टानों के कारण विफल कर दिया।[११५]

इसके बाद शत्रु ने सिनगोरी पहाड़ी के सामने भारी सैनिक दबाव केन्द्रित किया। जालिमसिंह जो उस स्थान की रक्षा कर रहा था ऐसे असाधारण साहस और शौर्य से लड़ा कि उसने शत्रु के आक्रमण को पीछे ढकेल दिया।[११६] किले पर हुए उस भयंकर युद्ध में दोनों ओर से बड़ी संख्या में योद्धा वीरगति को प्राप्त हुए।

उस सकट की घड़ी में आउवा, असोप, निमाज और कुचामन के ठाकुरों सहित सिंघवी इन्द्रराज ने सवाईसिंह से दूसरी बार पुनः समझौता करने का प्रयत्न किया। उसने नागौर जो कि धौंकलसिंह के अधिकार में पहले से ही था, को छोड़कर अन्य कुछ परगने धौंकलसिंह को देने का प्रस्ताव रखा। परन्तु इस पर सवाईसिंह राजी नहीं हुआ और उसने उन्हीं शर्तों पर जोर दिया जो उन्हें स्वीकार नहीं थीं।[११७]

---

११४. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, २४ अप्रेल १८०७, कान्स ७ मई १८०७, संख्या २२, एफ पी, पी० आर० सी०, भाग ११, संख्या २३०, २३१, फुटकर बही, वि० सं० १८६३ (१८६४), एफ ६–५४

११५. मैमायर्स आफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३१८; चम्पावत की ख्यात, २६/१०१, एफ १–३

११६. खाँप शंखला वा सोढारी, ६/१०१, एफ ३३, इस अवसर पर मानसिंह ने स्वयं अपने आभूषण जालिमसिंह को उसकी सेवाओं के उपलक्ष्य में दे दिए।

११७. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, २३ जुलाई १८०७, कान्स ११ अगस्त १८०७. संख्या ४ एफ पी, मानसिंह का इन्द्रराज को खास रुक्का, वि० सं० १८६३ (१८६४), ज्येष्ठ कृष्णपक्ष की चतुर्दशी, पी० आर० सी० भाग ११, सख्या २३२, २३८, मारवाड़ ख्यात भाग ३, एफ ४३

बीकानेर की हकीकत बही के अनुसार मानसिंह ने आउवा, असोप, निमाज और कुचामन के ठाकुरों के साथ सिंघवी इन्द्रराज को सूरतसिंह के पास भेजा और उससे प्रार्थना की कि वह उसे (मानसिंह को) जालौर किले के लिए

उस समय सवाईसिंह ने कूटयुक्ति से सिंघवी इन्द्रराज और चारों सरदारों को कैद कर लेने का भी प्रयत्न किया, परन्तु वे शेखावतों की सहायता से बच निकले। जब शान्ति-स्थापना के सभी प्रयत्न असफल हो गए तो सिंघवी इन्द्रराज आउवा, असोप, निमाज और कुचामन के ठाकुरों के साथ निमाज चला गया। वहाँ से सिंघवी इन्द्रराज ने लोढ़ा कल्याणमल को दौलतराव सिंधिया के पास अपने स्वामी के लिए सहायता प्राप्त करने हेतु भेजा और उसे इस बात का आश्वासन दिया कि उसके खिराज (कर) की बकाया उसको चुका दी जाएगी।[११८]

यद्यपि मानसिंह पूरी तरह से किले में घिरा हुआ था तथापि उन प्रतिकूल परिस्थितियों में उसने अपने धैर्य और अथक प्रयत्नों को नहीं छोड़ा। मानसिंह ने उन सरदारों को जिनसे उसे आशा थी कि वे किले के बाहर से उसकी सहायता करेंगे, प्रशंसात्मक खास रुक्के भेजे,[११९] और उन्हें आदेश दिये कि वे सिंघवी इन्द्रराज से मिलकर कार्य करें।

जहाँ मानसिंह पर भारी दबाव था और वह भयंकर विपत्ति में फंसा हुआ था वहाँ जगतसिंह के समक्ष भी समान कठिनाई और ख़तरे की स्थिति उत्पन्न हो गई थी, यद्यपि उसका स्वरूप भिन्न प्रकार का था। वह विशाल सेना जो विजातीय

[पिछले पृष्ठ का शेष]

प्रस्थान करने दे और मारवाड़ की प्रशासनिक व्यवस्था में उसको भी किसी स्थिति में सम्मिलित करे। इसके बदले उसने (मानसिंह ने) एक महीने में दुर्ग को खाली करना स्वीकार किया। सवाईसिंह ने इस प्रस्ताव को दो शर्तों पर स्वीकार कर लिया :—(१) मानसिंह को पूरा फौज-खर्च देना होगा; (२) जब तक धौंकलसिंह बालिग न हो जाय तब तक जोधपुर जगतसिंह के प्रशासन में रहेगा। जोधपुर के सरदार सवाईसिंह की द्वितीय शर्त को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८६४, एफ २०६, २१०, २१३, २१५ और राठौड़ों की ख्यात भाग २, एफ ३१८ के अनुसार।

११८. पी० आर० सी० भाग ११, संख्या २३१, २३२, २३४, तवारीख मानसिंह, एफ ५८।

११९. खास रुक्का मानसिंह का केशोदासोत और मेड़तिया मिसल के सभी सरदारों को, वि० सं० १८६३ (१८६४) ज्येष्ठ कृष्णपक्ष की द्वादशी, मेड़तिया री ख्यात, भाग २,१/१०१, एफ १३४३, मानसिंह का अजीतसिंह को खास रुक्का वि० सं० १८६३ (१८६४) ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष द्वादशी, वही। मानसिंह का राठौड़ हरदानसिंह को खास रुक्का, वि० सं० १८६३ (१८६४) ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की पन्द्रहवीं, मेड़तिया की ख्याति, भाग ३, ३,५/१०१, एफ १८४७

और अनुशासनहीन तत्वों से बनी हुई थी और जिसकी युद्ध करने की प्रेरणा उस द्रव्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं थी जो उसे पुरस्कार के रूप में मिलने वाला था, उस समय बेकाबू होगई और कोलाहल मचाने लगी जिस समय उसे वचन दिया हुआ धन सम्बन्धी पुरस्कार नहीं मिला। अपनी राजधानी से बहुत दूर होने, खाद्य सामग्री के अभाव, और पीने के पानी की भारी कमी तथा अन्य वस्तुओं की कमी के कारण जयपुर की सेना अपना धैर्य खो रही थी।[१२०] वे राठौड़ सरदार भी जो जगतसिंह के साथ थे, यह देख कर कि अमीर खाँ और जयपुर की सेनाएँ उनके स्वदेश मारवाड़ का विध्वंस और विनाश कर रही हैं, मन में दुखी थे। वे विरक्त भाव से जयपुर शिविर से चले गए और उनमें से कुछ ने पुनः मानसिंह का साथ दिया।[१२१]

अमीर खाँ का पक्ष बदलना और नवीन व्यपवर्तन :

जब सिंघवी इन्द्रराज मानसिंह के लिए सहायता प्राप्त करने हेतु प्रयत्न कर रहा था तब उसको ज्ञात हुआ कि अमीर खाँ के जगतसिंह के प्रति सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न हो रहा है।[१२२] अतएव वह अमीर खाँ के पूर्ववर्ती वकील गुलाम खाँ के माध्यम से अमीर खाँ को अपनी ओर मिलाने के उद्देश्य से उससे (गुलाम खां से) मिला। पहले तो अमीर खाँ ने पक्ष बदलने से इनकार कर दिया,[१२३] परन्तु घटनाक्रम ने उसको पक्ष बदलने पर विवश कर दिया। अमीर खाँ के राजपूताने में बढ़ते हुए प्रभाव और शक्ति से चौकन्ना होकर दौलतराव सिंधिया ने ८ जून १८०७ को अम्बाजी को जगतसिंह के पास अमीर खाँ की शक्ति को क्षीण करने के उद्देश्य से पहले ही भेज दिया था।[१२४] उसने पाँच हजार रुपये प्रतिदिन दिया जाने वाला अमीर खाँ का भत्ता रोक देने के लिए जगतसिंह को राजी कर लिया।[१२५] इससे जयपुर के महाराजा और अमीर खाँ में गम्भीर मनमुटाव हो गया। इस अवसर का

१२०. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, २३ जुलाई १८०७, कान्स ११, अप्रेल १८०७ संख्या ४ एफ पी, पी० आर० सी०, भाग ११, संख्या २३१-२३२

१२१. वही; मानसिंह का राठौड़ विजयसिंह को खास रुक्का, वि० सं० १८६४ श्रावण शुक्ल पक्ष की चौथ, बस्ता संख्या ७६, मानसिंह का राठौड़ अनारसिंह, सलेमसिंह, मालमसिंह को उसी तारीख का खास रुक्का, बस्ता संख्या ७६

१२२. मैमायर्स आफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३२०, तवारीख मानसिंह, एफ ५८

१२३. मैमायर्स आफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३१८

१२४. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, २३ जुलाई १८०७, कान्स ११ अगस्त, १८०७, संख्या ४, एफ पी, मैमायर्स आफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३२४

१२५. तवारीख मानसिंह एफ ६५, मारवाड़ ख्यात, भाग ३, एफ ४६

लाभ उठाने के उद्देश्य से इन्द्रराज ने पुनः भंडारी पृथ्वीराज को अमीर खाँ के पास भेजा। उसी समय मानसिंह ने भी जो कि भयंकर विपत्ति में फंसा हुआ था एक व्यक्तिगत पत्र अमीर खाँ को गुलाम खाँ के द्वारा भेजा। पत्र द्वारा उसने अमीर खाँ की सहायता चाही और उसको चार लाख रुपये मासिक देने के अतिरिक्त उसके ब्रिग्रेड को स्थायी रूप से अपनी सेवा में रखने, उसके रसोवड़े के व्यय के लिए चार लाख रुपये की जागीर देने और उसके प्रमुख अधिकारियों को जागीर देने का प्रस्ताव रक्खा।[१२६]

यह एक प्रलोभन देने वाला प्रस्ताव था जिसने अमीर खाँ को उसके पक्ष में आने के लिए राजी कर लिया।[१२७] सौदे की पुष्टि करने के लिए भंडारी पृथ्वीनाथ और कुचामन ठाकुर शिवनाथसिंह ने चार से पाँच लाख रुपए का एक बन्ध-पत्र लिखकर हस्ताक्षर कर दिए।[१२८] व्यय को पूरा करने के लिए मानसिंह ने अपने परिवार के और सरदारों के आभूषण अमीर खाँ के पास भेज दिए और इन्द्रराज ने उसे एक लाख रुपए नकद दिए।[१२९] जुलाई १८०७ के अन्त में चतुर्भुज उपाध्याय ने बूडसू और अन्य सरदारों के साथ डीडवाना, परबतसर और मारौठ आदि पर अधिकार कर लिया और उन परगनों से द्रव्य वसूल किया।[१३०] उस समय तक इन्द्रराज ने कुछ राठौड़ सरदारों को अपने पक्ष में आने को सहमत कर लिया था। अमीर खाँ और राठौड़ सरदारों द्वारा पक्ष परित्याग के अतिरिक्त सरजेराव घाटके ने भी, अम्बाजी से मतभेद होने के कारण, जगतसिंह की सेवा त्याग दी और अमीर खाँ के साथ हो गया।

यद्यपि अमीर खाँ और अन्य साथियों ने जगतसिंह का पक्ष छोड़ दिया तथापि धौंकलसिंह के साथ सवाईसिंह और बीकानेर के महाराजा तब भी किले को घेरे हुए थे। अतएव मानसिंह पर दबाव हल्का नहीं हुआ। सिंधिया ने मानसिंह की सहायता के लिए जीन बैपटिस्ट के सेनापतित्व में दो हजार सैनिकों की एक सेना भेजी जो ३१ जुलाई १८०७ को जोधपुर पहुँची। किन्तु दुर्भाग्य से सेना ने मानसिंह का पक्ष ग्रहण नहीं किया, क्योंकि सवाईसिंह ने दक्षतापूर्वक सिंधिया के सेनापति को अपने

---

१२६. मैमायर्स आफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३२३, तवारीख मानसिंह, एफ ५८

१२७. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, २३ जुलाई १८०७, कान्स ११ अगस्त १८०७, संख्या ४, एफ पी, मैमायर्स आफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३२४

१२८. तवारीख मानसिंह, एफ ६५, मारवाड़ ख्यातं, भाग ३, एफ ४६

१२९. वही; इन्द्रराज ने बलून्दा के ठाकुर से तीस हजार रुपए, अमीर खाँ को देने के लिए, वसूल किए।

१३०. वही; एफ ५६, रेऊ : मारवाड़ का इतिहास, भाग २, पृष्ठ ४१०

पक्ष में कर लिया। दो महीने तक युद्ध में शिथिलता के उपरान्त शत्रु ने पुनः मानसिंह पर अत्यधिक दबाव केन्द्रित कर दिया। १२ अगस्त को रसोली के मोर्चे पर और १४ अगस्त १८०७ को रानीसर के मोर्चे पर भयंकर युद्ध हुआ।[131] परन्तु राठौड़ सरदारों मालूमसिंह जोरावरसिंह, संग्रामसिंह, श्यामसिंह भाटी और पृथ्वीराज की सहायता से मानसिंह ने शत्रु के आक्रमण को पीछे ढ़केल दिया।[132]

जब मानसिंह जोधपुर में अत्यन्त दुर्दशाग्रस्त अवस्था में था, तब सिंघवी इन्द्रराज ने अमीर खाँ से मित्रता करने के उपरान्त जयपुर के प्रदेश पर आक्रमण करने की रणनीति अपनाई, जिससे कि जयपुर की सेना का मानसिंह पर दबाव कम हो जाए। अमीर खाँ सरजेराव घाटके के साथ बीसलपुर चला गया जहाँ अमीर खाँ की सेना ठहरी हुई थी। मेड़ता जाते हुए मानसिंह के आदेशानुसार सिंघवी इन्द्रराज भी दो सौ अश्वारोहियों के साथ उससे मार्ग में जा मिला। उस समय तक पाँच हजार राठौड़, कुचामन के शिवनाथसिंह, भंडारी पृथ्वीराज, बूडसू के प्रतापसिंह तथा अन्य सरदारों के नेतृत्व में जयपुर के राज्यक्षेत्र पर आक्रमण करने के साहसिक कार्य में भाग लेने के लिए अमीर खाँ से आ मिले। पुष्कर के मार्ग में, सरजेराव घाटके का रिसाला और ब्रिगेड भी आक्रमण करने वाली सेना के साथ हो गए।[133]

अब स्थिति जगतसिंह के प्रतिकूल हो गई। जब जगतसिंह को उसके राज्यक्षेत्र पर आक्रमण करने की अमीर खाँ की योजना का पता चला तो वह भयोत्तेजित हो उठा और उसने तुरन्त ही पचास हजार सैनिकों सहित बख्शी शिवलाल को अमीर खाँ का सामना और जयपुर के राज्यक्षेत्र की रक्षा करने के लिए भेजा।[134]

---

१३१. चम्पावत री ख्यात, २६/१०१, एफ ७–८, कछवाहा री ख्यात, १८/१०१, एफ ६६, बन्दगी व बिगत, बस्ता संख्या ७६

१३२. मानसिंह तथा छतरसिंह के द्वारा लड़खानी व लुहारसिंह को खास रुक्का, वि० सं० १८६४, श्रावण शुक्ल पक्ष की १५, शेखावत कछवाहा री ख्यात, २२/१०१, एफ ३५, ख्यात भाटी १६/१०१, एफ ३३६, बन्दगी व बिगत, बस्ता संख्या ७६, जयपुर के दादू पन्थियों ने रसोली के मोर्चे पर आक्रमण किया था। शत्रु ने वि० स० १८६४ के श्रावण में रानीसर और फतहपोल में विस्फोटक पदार्थ बिछा दिए थे। इन युद्धों में जोरावरसिंह, संग्रामसिंह और श्यामसिंह मारे गए।

१३३. मैमायर्स आफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३२६

१३४. मैमायर्स आफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३२६, किन्तु इसमें जो संख्या दी गई है वह अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होती है।

फागी का युद्ध :

शिवलाल और अमीर खाँ का आमना-सामना ३ अगस्त १८०७ को गोविन्दगढ़ में हुआ जहाँ दोनों सेनाओं में पहले मुठभेड़ें हुईं और फिर उनके उपरान्त हरसोरी में लड़ाई हुई। इन युद्धों में शिवलाल ने अमीर खाँ की सेना को परास्त कर दिया। वह अपनी सफलता पर प्रफुल्लित होकर जयपुर चला गया और अपनी सेना को फागी में छोड़ गया। अमीर खाँ ने अपनी सेनाओं को पुनः संगठित किया और फिर वह जयपुर की सीमा पर स्थित फागी गाँव पहुँचा।[१३५]

उस समय अमीर खाँ ने संगठित युद्धनीति को अपनाया। उसने अफरीदी रामपुर रिसाले और महताब खाँ के ब्रिगेड को अपने दाहिनी ओर रक्खा और शिवनाथसिंह के नेतृत्व में राठौड़ों और सरजेराव घाटके तथा हीरासिंह के ब्रिगेड को बाईं ओर रक्खा। यद्यपि जयपुर की सेनाओं ने वीरतापूर्वक युद्ध किया तथापि अमीर खाँ ने १८ अगस्त १८०७ को शिवलाल को बुरी तरह परास्त कर दिया।[१३६] जयपुर की सेना को बड़ी संख्या में जीवन-हानि उठानी पड़ी।[१३७] फागी के युद्ध के उपरान्त अमीर खाँ शिवनाथसिंह और भंडारी पृथ्वीराज के साथ आगे बढ़ा और उसने जयपुर नगर की बाह्य सीमा पर स्थित झोटवाड़ा में अपना शिविर लगाया। वहाँ से उसने चौबीस घंटे तक राजधानी पर गोले बरसाये। जयपुर के निवासी मानव-जीवन और सम्पत्ति के विनाश से अत्यन्त भयभीत हो गए। उस संकट के समय अलवर के महाराजा से सहायता माँगी गई किन्तु वह, अंग्रेजों से मित्रता के कारण, सहायता नहीं कर सका। अन्त में महाराजा जगतसिंह की बहिन ने राजधानी को विध्वंस से बचाने के लिए अमीर खाँ के पास यह प्रार्थना भिजवाई कि वह नगर को बख्श दे।[१३८]

अतएव अमीर खाँ ने राजधानी को छोड़ दिया और किशनगढ़ के रास्ते साँभर की ओर गया, जहाँ सिंघवी इन्द्रराज उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। उस समय तक सिंघवी इन्द्रराज ने यथेष्ट द्रव्यराशि इकट्ठी कर ली थी और पाँच हजार की सेना खड़ी कर ली थी।

---

१३५. वही; पृष्ठ ३३०, तवारीख मानसिंह, एफ ६६, टॉड ऐनल्स, भाग २, पृष्ठ ११२

१३६. मैमायर्स आफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३३२, ठाकुर नरेन्द्रसिंह—थर्टी डिसाइसिव बैटिल्स आफ जयपुर, चौहानां री ख्यात, १७/१०१, एफ २३६, खाँप जोधा, ४/१०१, एफ २१–२८

१३७. मैमायर्स आफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३३६, तवारीख मानसिंह, एफ ६६

१३८. मैमायर्स आफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३३९

जोधपुर किले का घेरा उठाना :

जबकि महाराजा जगतसिंह भारी कठिनाइयों का सामना कर रहा था और उसके मित्र, एक-एक करके उसको छोड़ते जा रहे थे, अमीर खाँ तथा राठौड़ सरदारों के अतिरिक्त सीकर के राजा ने भी युद्ध में पराजित होकर जून १८०७ के आरम्भ में उसका पक्ष छोड़ दिया।[१३९] सेना को भी अत्यन्त कठिनाई का सामना करना पड़ रहा था। जगतसिंह की वेदना को अधिक बढ़ाने के लिए, फागी में बख्शी शिवलाल की अपमानजनक पराजय का समाचार जब महाराजा के पास पहुँचा तो वह बुरी तरह घबरा गया। कारण यह था कि फागी का युद्ध निर्णायक था। उसके कारण जयपुर के लिए गम्भीर खतरा उत्पन्न हो गया था। अतएव विवश होकर जगतसिंह को जोधपुर का घेरा उठाना पड़ा। १४ सितम्बर १८०७ की रात्रि को वह शीघ्रतापूर्वक जयपुर की ओर चल पड़ा।[१४०] जगतसिंह के साथ महाराजा सूरतसिंह और सवाईसिंह भी, धौंकलसिंह को साथ लेकर जोधपुर से नागौर को चल दिए।

घेरा उठने के उपरान्त मानसिंह ने अपनी शक्ति का पुनः संचय करना आरम्भ कर दिया। इसी बीच अमीर खाँ और इन्द्रराज ने जगतसिंह पर आक्रमण कर दिया और उसकी सेनाओं को लूट लिया। महाराजा जगतसिंह की दशा उस समय इतनी अधिक दुर्भाग्यपूर्ण हो गई थी कि उसके दीवान रामचन्द ने स्वयं महाराजा को खतरे में पड़ा जान इन्द्रराज को एक लाख रुपए की रिश्वत इसलिए दी कि वह महाराजा को सुरक्षित अपनी राजधानी पहुँच जाने दे।[१४१] जगतसिंह के जयपुर की ओर पलायन में अम्बाजी इंगले भी उसके साथ तीस मील तक गया और ४ अक्टूबर १८०७ को उसका साथ छोड़कर अजमेर की ओर चला गया।[१४२]

---

१३९. मानसिंह का राठौड़ हरदानसिंह को खास रुक्का, वि० सं० १८६३ ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की पन्द्रह, मेडतिया री ख्यात, खंड ३, ५/१०१, एफ १८४७

१४०. मानसिंह का सिंघवी इन्द्रराज को तथा उसके सब सरदारों को पत्र. वि० सं० १८६४, भाद्रपद शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी, हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८६४, एफ २२२, रेऊ : मारवाड़ का इतिहास, भाग २, पृष्ठ ४४१, सूरतसिंह को मोतीझरा हो गया। वह जगतसिंह से पहले ही जोधपुर से चला गया। हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८६४, एफ २१८ के अनुसार तथा राठौड़ां री ख्यात, भाग २, एफ ३१८–३१९

१४१. तवारीख मानसिंह, एफ १६७, जगतसिंह ने उस समय अपनी सुरक्षा के लिए मराठों को १२ लाख रुपए और अमीर खाँ को ९ लाख रुपए देने का वचन दिया, टॉड-एनल्स भाग २ पृष्ठ ११२ के अनुसार।

१४२. मैमायर्स आफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३८२

विजयी सिंघवी इन्द्रराज और अमीर खाँ जोधपुर लौट गए जहाँ महाराजा मानसिंह द्वारा उनका अभूतपूर्व स्वागत किया गया। २४ अक्टूबर १८०७ को महाराजा ने अमीर खाँ को 'नवाब' की पदवी देकर सम्मानित किया और उसे अपने साथ मसनद पर बैठने का विशेष सम्मान देकर उसके साथ भाई-जैसा व्यवहार किया। नावा का परगना उसको सैनिक व्यय के लिए जागीर के रूप में दिया गया।[143] इसी प्रकार सिंघवी इन्द्रराज को भी एक अत्यन्त भव्य खिलअत तथा फौजबख्शी का पद देकर सम्मानित किया गया।[144] ठाकुर शिवनाथसिंह को पचास हजार रुपये के मूल्य का पट्टा दिया गया और 'रावराजा' की उपाधि दी गई। इसके अतिरिक्त उसकी सेवाओं के उपलक्ष्य में उसको कुचामन में 'इकतिसन्दा' रुपया[145] के सिक्के ढ़ालने की आज्ञा भी प्रदान की गई।[146]

युद्ध के परिणाम :

जब १८०७ के सितम्बर मास में जयपुर की सेनाएँ जोधपुर से हट गईं तब मानसिंह ने नागौर के अतिरिक्त मारवाड़ पर पुनः अपना शासन स्थापित कर लिया। नागौर उस समय भी धौंकलसिंह और सवाईसिंह के नियंत्रण में था और उनके पास पन्द्रह हजार सैनिकों की सेना थी।[147] यह स्थिति मानसिंह के लिए संतोषप्रद नहीं थी, और उसे आपत्ति के कभी भी पुनः उठ खड़े होने की आशंका थी। अतएव उसने अपने शत्रुओं को पराभूत करने तथा धौंकलसिंह एवं उसके सहायकों के विरोध को सर्वदा के लिए नष्ट कर देने के लिए अमीर खाँ से जनवरी १८०८ में एक गुप्त समझौता किया।[148] उस समझौते के अनुसार मानसिंह ने उसे चार लाख पचास

---

१४३. मैमायर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३४४, तवारीख मानसिंह, एफ १६८, मुहम्मद खाँ को भी 'नवाब' की उपाधि दी गई और अमीर खाँ के मुंशी दाताराम को एक गाँव का पट्टा दिया गया।

१४४. मानसिंह का इन्द्रराज को खास रुक्का, वि० सं० १८६४ भाद्रपद शुक्ल पक्ष की नवमी, संख्या २९८, टॉड : ऐनल्स भाग २, पृष्ठ ११३

१४५. 'इकतिसन्दा रुपया' एक सिक्का था जिसकी ढ़लाई शाह आलम द्वितीय के शासन के इकत्तीसवें वर्ष में आरम्भ हुई थी, उसको ढालने की आज्ञा कुचामन के ठाकुर को मानसिंह द्वारा १८३८ ई० में प्रदान की गई थी। रेऊ : मारवाड़ का इतिहास, भाग २, पृष्ठ ६४७ के अनुसार।

१४६. बन्दगी व बिगत, बस्ता संख्या ७६

१४७. तवारीख मानसिंह, एफ ७२

१४८. मैमायर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३४६–३४७, मुदियार ख्यात, बस्ता संख्या ४०, एफ १६२

हजार रुपए मासिक सैनिक व्यय के रूप में और उसके पुत्र तथा सम्बन्धियों को जागीरें देने का वचन दिया। इसके अतिरिक्त उसने उसके एक ब्रिगेड को तेरह लाख रुपए वार्षिक पर अपनी स्थायी सेवा में रख लिया।[१४९]

इस षडयंत्र को छिपाये रखने के लिए और सवाईसिंह को विश्वास दिलाने के लिए अमीर खाँ ने महाराजा मानसिंह का विरोधी होने का बहाना किया।[१५०] समझौते के अनुसार अमीर खाँ ने पाँच सौ अश्वारोहियों के साथ मार्च १८०८ में नागौर की ओर गमन किया।[१५१] जब वह वहाँ पहुँचा तब उसने मिर्जा हाजी बेग के द्वारा सवाईसिंह के पास यह प्रस्ताव भेजा कि यदि सवाईसिंह चाहे तो धौंकलसिंह को मारवाड़ के सिंहासन पर बैठाया जा सकता है।[१५२] सवाईसिंह को अपने मराठा सहायकों—जीन बैपटिस्ट और बापू सिंधिया—से अलग करवा देने के अभिप्राय से अमीरखाँ ने अपने एजेण्टों के द्वारा सिंधिया के दोनों सेनापतियों के मन में सवाईसिंह के प्रति शंका उत्पन्न करवा दी। परिणाम स्वरूप दोनों ने अपने शिविर उठा दिए और वे अजमेर चले गये।[१५३] अब अमीर खाँ बिना किसी प्रतिद्वन्द्वी के मैदान में अकेला रह गया। सवाईसिंह अमीर खाँ द्वारा दिए गए प्रलोभन का शिकार हो गया और उसने अमीर खाँ को अपने ध्येय के पूरा होने पर चालीस लाख रुपए देना स्वीकार कर लिया। तेरह लाख रुपए अमीरखाँ से प्रथम साक्षात्कार के समय देना निश्चित हुआ और शेष सत्ताईस लाख रुपए उस दिन देना तय हुआ जिस दिन धौंकलसिंह मारवाड़ के सिंहासन पर बैठे।[१५४]

सौदे का अन्तिम रूप से निर्णय करने के लिए २५ मार्च १८०८ को नागौर के

---

१४९. कौलनामा-मानसिंह और मुख्तारउद्दौला के मध्य, वि० सं० १८६४ पौष शुक्ल पक्ष की पंचमी, हथबही (वि० सं० १८४८–१८६५) संख्या ३, एफ ४२, मैमायर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३४७

१५०. दयालदास की ख्यात, देश दर्पण, एफ ३१९, रेऊ : मारवाड़ का इतिहास, भाग २, पृष्ठ ४१२

१५१. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ ९२ मैमायर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३४७

१५२. जब सवाईसिंह को मानसिंह और अमीर खाँ के मतभेद का पता चला तब उसने अपने आदमी उसको अपने पक्ष में लाने के लिए भेजे, रेऊ : मारवाड़ का इतिहास भाग २, पृष्ठ ४१२, ओझा : राजपूताने का इतिहास, भाग ४, खंड पृष्ठ ८०५

१५३. मैमायर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३४९–३५१

१५४. मैमायर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३५२

समीप पीर तरकीन की दरगाह में अमीर खाँ सवाईसिंह से मिला। उसने पवित्र कुरान की शपथ खाकर उसके प्रति अपनी निष्ठा का विश्वास दिलाया और सवाईसिंह को अपनी सच्चाई के प्रति आश्वस्त किया।[१५५]

मूंडवा में सवाईसिंह की हत्या :

सवाईसिंह को छल पूर्वक ठगा गया और वह डाकुओं के उस सरदार के षडयन्त्रों का शिकार बन गया जिसे बुरे से बुरा कार्य करने में तनिक भी संकोच नहीं था। उसने (सवाईसिंह ने) मूंडवा स्थित उसके शिविर में जो कि नागौर से दस मील की दूरी पर था उससे मिलने का निमंत्रण स्वीकार कर लिया। वह अमीर खाँ से मिलने एक हजार आदमियों के साथ गया। प्रदर्शन के लिए अमीर खाँ ने अपने मेहमान का स्वागत करने के लिए समारोहपूर्ण व्यवस्था की। एतदर्थ मध्य में एक बहुत बड़ा खेमा खड़ा किया गया और खेमे के चारों ओर कनातों के पीछे तोपें लगा दीं गईं। जब नृत्य तथा रंगारंग कार्यक्रम चल रहा था तब अमीर खाँ सवाईसिंह से किसी बहाने आज्ञा माँग कर खेमे से बाहर चला गया। अमीर खाँ द्वारा पूर्व आयोजित संकेत दिए जाने पर सवाईसिंह और उसके आदमियों पर खेमा गिरा दिया गया। खेमे के गिरते ही तोपों से गोलों की बौछार हुई और खेमे के अन्दर जो भी थे वे सब मारे गए।

इस प्रकार सवाईसिंह, बगडी के ठाकुर केशरीसिंह, चन्दावल के बख्शीराम और पाली के ज्ञानसिंह के साथ ३० मार्च १८०८ को धोखे से मार डाला गया।[१५६] अमीर खाँ ने उनके सर जोधपुर में मानसिंह के पास भेज दिए।[१५७] मारवाड़ के शासक के रूप में मानसिंह को दीर्घकाल तक जिस चुनौती का सामना करना पड़ा वह मारवाड़ के राजनीतिक दृश्य से इस प्रकार सवाईसिंह के हट जाने से समाप्त हो गई।

सवाईसिंह और उसके साथियों की इस प्रकार धोखे से हत्या का समाचार सुन कर धौंकलसिंह बीकानेर की सेना के साथ शीघ्रतापूर्वक बीकानेर चला गया।[१५८]

---

१५५. हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८६३, एफ २४४, मैमायर्स ऑफ अमीर खाँ पृष्ठ ३५३

१५६. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ १०१, मैमायर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३४६, रेऊ : मारवाड़ का इतिहास, भाग २, पृष्ठ ४१३; मैमायर्स ऑफ अमीर खाँ पृष्ठ ३५६ के अनुसार वे ४ अप्रेल १८०८ को मारे गए,

१५७. तवारीख मानसिंह, एफ १७७, टॉड-ऐनल्स भाग २, पृष्ठ ११

१५८. मैमायर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३६०

अब नागौर रक्षाहीन हो गया। अमीर खाँ ने नगर में प्रवेश किया और उस पर अधिकार कर लिया तथा ३१ मार्च १८०८ को वहाँ पुनः मानसिंह का शासन स्थापित कर दिया।[१५६]

१५ मई १८०८ को अमीर खाँ नागौर से जोधपुर लौटा। उसकी अत्यन्त सम्मान के साथ अगवानी की गई और मानसिंह ने उसका हार्दिक स्वागत किया।[१६०] विशेष अनुग्रह और शिष्टता प्रकट करने के लिए महाराजा ने अमीर खाँ को किले में ठहराया। जितनी द्रव्य-राशि का वचन दिया गया था उसकी आधी तुरन्त नगदी के रूप में चुका दी गई और शेष बहुत शीघ्र चुका देने का वचन दिया गया। इसके अतिरिक्त मानसिंह ने उसे अपने निजी व्यय के लिए परबतसर, मारौठ, डीडवाना, सांभर, नांवा इत्यादि के परगने दिए।[१६१]

यद्यपि मानसिंह ने कुख्यात अमीर खाँ की सहायता से उस समय अपने उद्देश्य की पूर्ति कर ली तथापि उसने अनजाने में उसको अपने दरबार में अत्यन्त शक्तिशाली बना दिया जो कि मारवाड़ और उसके शासक के लिए घातक सिद्ध हुआ।

बीकानेर के विरुद्ध प्रतिशोध :

सवाईसिंह और उसके सहायकों को रास्ते से हटाकर मानसिंह ने बीकानेर के महाराजा सूरतसिंह की ओर ध्यान दिया, जिसने धौंकलसिंह का पक्ष लिया था। १८०७ में जयपुर के युद्ध में उसके हाथों उसका जो अपमान हुआ था उसका बदला लेने की उसकी तीव्र इच्छा थी। २५ फरवरी १८०७ को जयपुर से युद्ध छिड़ते ही महाराजा सूरतसिंह ने फलौदी[१६२] पर अधिकार कर लिया था जो कि उस समय भी उसके अधिकार में थी। जुलाई १८०८ में मानसिंह ने सिंघवी जसवन्तराय के साथ दस हजार सैनिक पुनः फलौदी पर अधिकार करने के लिए

---

१५९. परवाना देवड़ा रायसिंह को वि० सं० १८६४ (१८६५) चैत्र शुक्ल पक्ष नवमी, मैमॉयर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३५६

१६०. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ १०४

१६१. तवारीख मानसिंह, एफ १८६; रेऊ : मारवाड़ का इतिहास, भाग २, पृष्ठ ४१४, मैमायर्स ऑफ अमीर खाँ पृष्ठ ३६०, टॉड के अनुसार अमीर खाँ के जोधपुर लौटने पर मानसिंह ने उसे दस लाख रुपए चुकाये और दो बड़े नगर दिए। उसने इसके अतिरिक्त एक सौ रुपये प्रतिदिन 'भोजन की मेज का भत्ता' के रूप में दिए। एनल्स भाग २, पृष्ठ ११४

१६२. हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८६३, एफ १७०, राठौड़ां री ख्यात, एफ ३१६

भेजे।[१६३] फलौदी की रक्षा मेहता ज्ञानजी और पुरोहित जीवनजी ने की। उन्होंने जोधपुर की सेनाओं का कड़ा प्रतिरोध किया।[१६४]

उसी समय १८०८ में मानसिंह ने सिंघवी इन्द्रराज और मेहता सूरजमल के अधीन, बीस हजार सैनिकों की एक विशाल सेना बीकानेर के विरुद्ध भेजी और उसके साथ आउवा, नीमाज, रास, बलून्दा आदि के ठाकुरों को भी भेजा। सेना में राठौड़ और परदेशी सैनिक थे।[१६५]

बीकानेर की सीमा पर जोधपुर की सेना को साँडवा के ठाकुर जयसिंह, शाह अमानचन्द और दुर्जनसिंह के नेतृत्व में सात हजार सेना के प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। उदासर[१६६] पर भयंकर युद्ध हुआ जिसमें भारी तोपें गरजीं जिनसे दोनों पक्षों को भारी जीवन-हानि उठानी पड़ी।[१६७] यद्यपि बीकानेर की सेना वीरता से लड़ी और उसने आक्रमणकारी सेना को भारी हानि पहुँचाई तथापि वह उसको बीकानेर की ओर बढ़ने से नहीं रोक सकी। अपनी राजधानी की ओर पीछे हटते समय बीकानेर की सेना ने मरे हुए पशुओं को कुओं में इसलिए फेंक दिया कि उनसे कुओं का जल विषाक्त हो जाए और मनुष्यों के पीने योग्य न रहे। इसके परिणाम स्वरूप जोधपुर की सेना को पेयजल के अत्यधिक अभाव का सामना करना पड़ा। दूर से जल लाने के लिए पन्द्रह सौ ऊँटों का उपयोग करना पड़ा। इन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त जोधपुर की सेना आगे बढ़ती गई और ८ अगस्त १८०८ को उसने गजनेर में अपना शिविर लगाया।[१६८]

गजनेर में दोनों सेनाओं की अनेक मुठभेड़ें हुईं। अन्ततः बापरी के युद्ध में महाराजा सूरतसिंह को भारी जन-हानि सहनी पड़ी। किन्तु उसने साहस नहीं छोड़ा और पुनः सात हजार सैनिकों की सेना एकत्रित करके अपनी बढ़ी हुई शक्ति से

---

१६३. हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८६३, एफ २६८, तवारीख मानसिंह, एफ १८०

१६४. वही, राठौड़ां री ख्यात, भाग २, एफ ३२०, दयालदास ख्यात, देशदर्पण, एफ २८

१६५. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), सख्या ६, एफ ११७, हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८६४, एफ २६२–२६३, तवारीख मानसिंह, एफ १८१

१६६. 'उदासर' बीकानेर जिले में एक गाँव है।

१६७. तवारीख मानसिंह, एफ १८१, ख्यात भाटी, भाग २, २३/१०१, एफ २८८

१६८. हकीकत बही बीकानेर (वि० सं० १८६५), एफ २६२–६३, राठौड़ां री ख्यात, भाग २, एफ ३२०

जोधपुर की सेना पर आक्रमण कर दिया। परन्तु जोधपुर की सेना ने आक्रामक को पराजित कर दिया।[१६९] इन्द्रराज के अधीन जोधपुर की सेना बीकानेर की सेना से मुठभेड़ करती रही, परन्तु किले पर अधिकार कर लेने में सफल नहीं हो सकी।

इससे मानसिंह को सिंघवी इन्द्रराज पर संदेह हो गया। अतएव उसने लोढ़ा कल्याणमल की अधीनता में चार हजार सैनिकों की सेना बीकानेर के किले पर अधिकार करने के लिए भेजी।[१७०] लोढ़ा कल्याणमल के आने पर इन्द्रराज को मानसिंह की भावना का आभास हो गया और उसने इसमें अपना अपमान अनुभव किया। रोष में उसने सुराना अमरचन्द की अधीनता में बीकानेर की चार हजार सैनिकों की सेना से होने वाले युद्ध में लोढ़ा कल्याणमल की सहायता नहीं की। इन्द्रराज से सहायता के अभाव में उसकी (लोढ़ा कल्याणमल की) युद्ध में पराजय हुई और उसको शत्रुओं ने बन्दी बना लिया। बाद में उसे छोड़ दिया गया और वह जोधपुर लौट गया।[१७१]

जब लोढ़ा कल्याणमल पराजित हो गया, कैद कर लिया गया और वापस जोधपुर भेज दिया गया तब उसके उपरान्त इन्द्रराज ने बीकानेर का घेरा पुनः आरम्भ किया। जोधपुर की सेना से दीर्घकाल तक लड़ने के कारण सूरतसिंह की सैनिक शक्ति क्षीण हो गई।

क्योंकि वह अत्यन्त कठिन परिस्थिति में फंस गया था, अतः बाई के ठाकुर प्रेमसिंह ने महाराजा को संधि करने की पहल करने का परामर्श दिया। तीन महीने तक युद्ध करने के उपरान्त, अन्त में, महाराजा सूरतसिंह ने अक्टूबर १८०८[१७२] में इन्द्रराज से संधिवार्ता आरम्भ की। उसके परिणामस्वरूप १८ नवम्बर, १८०८ को महाराजा सूरतसिंह ने गजनेर में कबूलीयत पर हस्ताक्षर कर दिए।[१७३]

१६९. हकीकत बही बीकानेर वि० सं० १८६५, एफ २९३–९७ जागीरदारां की बंदगी, १६/९७

१७०. हकीकत बही बीकानेर वि० सं० १८६५, एफ २९८–९९, राठौड़ां री ख्यात, भाग २, एफ ३२०

१७१. वही, एफ ३१५–३१७, राठौड़ां री ख्यात, भाग २, एफ ३२१

१७२. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ९, एफ १२४, राठौड़ां री ख्यात, भाग २, एफ ३२१

१७३. कबूलीयत-महाराजा सूरतसिंह, वि० सं० १८६५ मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष की पंचमी, हथबही संख्या ३, एफ ४६–४७, हथबही बीकानेर वि० सं० १८६५, एफ ३२२–३२४, अभिलेखागार विभाग की प्रशासनिक रिपोर्ट में प्रकाशित बन्ध पत्र, तथा सुमेर सार्वजनिक पुस्तकालय, जोधपुर (१९३८ ई० सन्), पृष्ठ ९, के अनुसार।

(१) शर्तों के अनुसार महाराजा सूरतसिंह ने चार लाख एक रुपए (रु० ४०००० १) सैनिक व्यय के देने का वचन दिया और उनमें से चालीस हजार रुपए तुरन्त ही भेज दिए ।
(२) इसके अतिरिक्त, उसने फलौदी समर्पित कर दी ।
(३) सिंघवी इन्द्रराज तथा उसके सहयोगियों को एक लाख रुपए का भुगतान किया गया तथा सभी महत्त्वपूर्ण सरदारों में से प्रत्येक को दो हजार रुपए दिए गए ।
(४) बीकानेर का पाँचू-गाँव, मानसिंह के गुरु आयसदेवनाथ को भेंट कर दिया गया ।
(५) गिंगोली के युद्ध में जोधपुर के शिविर से बीकानेर की सेना जो मूल्यवान युद्ध सामग्री लूट लाई थी वह मारवाड़ की सेना को वापस कर दी गई ।
(६) इसके अतिरिक्त यह भी स्वीकार किया गया कि भविष्य में विद्रोही राठौड़ सरदारों और उनके आदमियों को बीकानेर के राज्यक्षेत्र में आश्रय नहीं दिया जाएगा ।[१७४]

महाराजा सूरतसिंह से संधि करके इन्द्रराज मार्च १८०८ में जोधपुर लौटा ।[१७५]

जयपुर से मित्रता :

इस विजय के उपरान्त अमीर खाँ जो कि अभी तक मानसिंह की ओर से आवभगत और मनोरंजन का आनन्द ले रहा था, जून १८०९ में जोधपुर से जयपुर की ओर चला । जयपुर के मार्ग पर वह ग्रामीण क्षेत्रों को लूटता और नष्ट करता गया ।[१७६] जयपुर राज्य के क्षेत्र में अमीर खाँ की विध्वंस-लीला से महाराजा जगतसिंह आतंकित हो उठा और अमीर खाँ द्वारा की जा रही लूटमार को समाप्त करने की दृष्टि से उसने अपने वकील को मानसिंह के पास दोनों राज्यों में शान्ति समझौता करने के लिए भेजा । आयसदेवनाथ और सिंघवी इन्द्रराज ने जयपुर और जोधपुर राज्यों की दीर्घकालीन भयंकर शत्रुता को समाप्त करने के इस अवसर का स्वागत किया और बीकानेर से हुई संधि की तरह ही जयपुर से शान्तिसन्धि कर लेने का मानसिंह को परामर्श दिया ।

१७४. महाराजा सूरतसिंह का मानसिंह को पत्र, वि० सं० १८६५ माघ कृष्ण पक्ष की द्वितीया, खरीता बही, संख्या १२, एफ ३५, तवारीख मानसिंह, एफ १८३

१७५. तवारीख मानसिंह, एफ १८३

१७६. मैमायर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३६२, तवारीख मानसिंह, एफ १८७; रेऊ : मारवाड़ का इतिहास भाग २, पृष्ठ ४१४

अतएव मानसिंह ने सिंघवी फतहराज, मेहता सूरजमल और असोप तथा निमाज के ठाकुरों को संधि वार्ता करने हेतु जयपुर भेजा जयपुर में दोनों राज्यों के प्रतिनिधियों में दीर्घकाल तक संधि वार्ता चलती रही। अन्त में, मई १८१० में दोनों राज्यों में परस्पर मित्रता की संधि हो गई।[१७७]

संधि की शर्तें :—

(१) संधि के अनुसार मानसिंह और जगतसिंह के मध्य यह समझौता हुआ कि भविष्य में जयपुर दरबार धौंकलसिंह की सहायता करना बन्द कर देंगे और मारवाड़ के उन सरदारों को संरक्षण नहीं देंगे जिन्होंने मानसिंह के विरुद्ध धौंकलसिंह को सहायता दी थी।

(२) वे सभी मूल्यवान वस्तुएँ तथा सैनिक सामग्री जो गिंगोली के युद्ध में जयपुर की सेना मानसिंह के शिविर से ले गई थी जोधपुर को वापस दे दी जाएँगी।

(३) दोनों ही शासक उदयपुर की राजकुमारी से पाणिग्रहण की उत्कट अभिलाषा से विरत रहेंगे और उससे विवाह करने के विचार को त्याग देंगे।

(४) दोनों राजघराने परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करेंगे। महाराजा जगतसिंह की बहिन का विवाह महाराजा मानसिंह से होगा और महाराजा मानसिंह की पुत्री का विवाह महाराजा जगतसिंह से होगा।

(५) अंग्रेजों तथा मराठों से राजनीतिक व्यवहार में दोनों ही शासक एक समान नीति बरतेंगे।

(६) दोनों राज्यों में सीमा सम्बन्धी झगड़ों का शान्तिपूर्ण वार्ता से निपटारा किया जाएगा।

(७) एक राज्य के मित्र और शत्रु दूसरे राज्य के द्वारा भी मित्र और शत्रु माने जाएँगे और उनसे उसी प्रकार व्यवहार किया जाएगा।[१७८]

---

१७७. सियेटन का चार्ल्स के कार्यवाहक सचिव सरकार फोर्ट विलियम को पत्र, १९ मई १८१०, कान्स, ५ जून १८१०, संख्या ५३, एफ पी, सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, ६ जून १८१०, कान्स, २१ जून १८१०, संख्या ४२, एफ पी।

१७८. याददाश्त का रुक्का, वि० सं० १८६५ चैत्र शुक्ल पक्ष की नवमी, महाराजा जगतसिंह का महाराजा मानसिंह को खरीता, वि० सं० १८६८ वैशाख शुक्ल पक्ष की पंचमी, याददाश्त का प्रारूप जोधपुर शिविर, वि० सं० १८६६ वैशाख शुक्ल पक्ष की अष्टमी। महाराजा जगतसिंह का महाराजा मानसिंह को खरीता, वि० सं० १८६६ माघ कृष्ण पक्ष की चौथ।

ऊपर लिखे समझौते के अतिरिक्त महाराजा जगतसिंह ने अमीर खाँ के सैनिक व्यय के लिए आवश्यक द्रव्यराशि भी दी।

इस प्रकार लगभग एक वर्ष तक दोनों राज्यों में लम्बे तथा थका देने वाले वादविवाद और वार्ता का परिणाम यह हुआ कि शान्ति स्थापित हुई और वह शत्रुता जिसने दोनों राज्यों को लगभग बरबाद कर दिया था, समाप्त हो गई।

कृष्णा कुमारी का दुःखद अन्त :

मानसिंह ने महाराणा उदयपुर के अतिरिक्त उन सभी शक्तियों का मान-मर्दन कर दिया था, तथा उन सभी से प्रतिशोध ले लिया था, जो उसकी कठिनाइयों और अग्नि-परीक्षा के लिए उत्तरदायी थीं। जयपुर और जोधपुर के मध्य हुई सैनिक शत्रुता में यद्यपि महाराणा सम्मिलित नहीं था तथापि मानसिंह उससे शत्रुता मानता था। जिसका मूल कारण था उसका कृष्णा कुमारी की जगतसिंह से सगाई करना। अतएव मानसिंह उसका प्रतिशोध लेने के लिए उत्सुक था। इसके अतिरिक्त मानसिंह को जैसा कि अमीर खाँ ने सुझाया था, यह आशंका भी थी कि यदि कृष्णा कुमारी जीवित रही तो जयपुर के साथ हुई मित्रता की संधि अस्थायी सिद्ध हो सकती है। अतएव उसने अमीर खाँ को इस उद्देश्य से उदयपुर भेजा कि वह जयपुर और जोधपुर के संघर्ष के मूल कारण को ही समाप्त कर दे।

जुलाई १८१० में अमीर खाँ तीस-चालीस हजार सेना के साथ उदयपुर की ओर चला। मार्ग में वह मारवाड़ के गाँवों को उजाड़ता और जलाता हुआ गया।[१७९] जोधपुर से आकर पंडित अनूपराम और भंडारी पृथ्वीराज भी मेवाड़ के विरुद्ध इस अभियान में उससे मिल गए। जब अमीर खाँ उदयपुर पहुँचा तो उसने मेवाड़ के वकील अजीतसिंह चूंडावत के द्वारा महाराणा को कहला भेजा कि या तो वह कृष्णा कुमारी का विवाह उसके स्वामी महाराजा मानसिंह से कर दे[१८०] या उसको मरवा दे। ऐसा न किए जाने की स्थिति में उसने समस्त मेवाड़ राज्य को नष्ट कर देने की धमकी दी।[१८१]

---

१७९. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, ८ जुलाई १८१०, कान्स, ६ अगस्त १८१०, संख्या ७७, एफ पी, मैमॉयर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३९९, तवारीख मानसिंह, एफ १८८

१८०. उस समय महाराणा ने कृष्णा कुमारी का विवाह मानसिंह से करना स्वीकार कर लिया, किन्तु मानसिंह ने उससे विवाह करना अस्वीकार कर दिया, तवारीख मानसिंह, एफ ६ के अनुसार; रेऊ : मारवाड़ का इतिहास-भाग २, पृष्ठ ४१५

१८१. वीर विनोद, भाग २, पृष्ठ १७३८, मैलकम : मैमॉयर्स ऑफ सेन्ट्रल इन्डिया भाग १, पृष्ठ ३४०

महाराणा सम्भवतः अमीर खाँ को अप्रसन्न करने का साहस नहीं बटोर सका। अतएव वह उसकी धमकी से पराभूत होकर राजकुमारी को मरवा देने के लिए सहमत हो गया। राजकुमारी को मारने के इस जघन्य कृत्य को करने के लिए प्रथम उसने महाराज दौलतसिंह को बुलाया। परन्तु उसने (दौलतसिंह ने) इस बर्बरतापूर्ण कार्य का कर्ता बनना अस्वीकार कर दिया। इसके विपरीत, उसने क्रोध में महाराणा से कहा कि यदि महाराणा चाहे तो वह अमीर खाँ को मार सकता है। उसके पश्चात् महाराणा अरीसिंह की पासवान के पुत्र जवानदास को राजकुमारी का वध करने के लिए कहा गया। परन्तु वह भी अपने प्रयत्न में असफल रहा।[१८२] अन्त में यह तय हुआ कि राजकुमारी को विष दे दिया जाय। तीन बार उसे विष दिया गया जिसे उसने मेवाड़ की रक्षा करने के उद्देश्य से पी लिया, परन्तु वह घातक सिद्ध नहीं हुआ। अन्त में उसे अत्यधिक मात्रा में अफीम दी गई, जिसने मेवाड़ की उस मंत्रमुग्ध करने वाली मोहक राजकुमारी का अन्त कर दिया। इस प्रकार अत्यन्त दुःखद परिस्थितियों में २१ जुलाई १८१०[१८३] को कृष्णा कुमारी की जीवन लीला सोलह वर्ष की सुकुमार आयु में समाप्त कर दी गई।

कृष्णा कुमारी की दुःखान्त मृत्यु ने मेवाड़ की राजधानी को हतबुद्धि कर दिया। ऐसा लगा मानों उदयपुर नगर पर घोर विषाद का अन्धकार उतरा हो। इससे सभी पुरुष और स्त्रियाँ शोकाकुल हो गए। यद्यपि निर्दोष कृष्णा कुमारी को विष देने का यह अपयशस्कर और बर्बरतापूर्ण कृत्य अमीर खाँ के कारण घटित हुआ था तथापि वह वीर राजपूत जाति के धवल यश पर एक स्थायी कलंक की भाँति सदैव बना रहेगा। इस प्रकार उसके (कृष्णा कुमारी) जीवन के मूल्य पर प्रमुख राज्यों की दीर्घकालीन एवं परम्परागत शत्रुता का अन्त हो गया और अमीर खाँ जोधपुर लौट गया।[१८४]

जयपुर और जोधपुर में वैवाहिक सम्बन्ध :

यह पहले ही कहा जा चुका है कि जयपुर और जोधपुर के शासकों में परस्पर मित्रता की संधि हुई थी। उस नवनिर्मित मित्रता को अधिक दृढ़ करने तथा दोनों राजघरानों में होने वाले वैवाहिक सम्बन्ध की व्यवस्था के बारे में तय करने के लिए महाराजा जगतसिंह ने सिंघवी इन्द्रराज और भंडारी शिवचन्द को अप्रेल १८१३ में

१८२. जवानदास एक कटार लेकर महलों में गया, परन्तु जब उसने कृष्णा कुमारी को देखा तो वह उसे मार नहीं सका।

१८३. पी० आर० सी० भाग १४, संख्या ३६, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२-१८७०), संख्या ६, एफ २६६ वीर विनोद भाग २, पृष्ठ १७३८, टॉड—एनल्स भाग १, पृष्ठ ३६६

१८४. तवारीख मानसिंह, एफ १६०, मैमॉयर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ ४१३

जयपुर बुला भेजा। महाराजा के निमन्त्रण के प्रत्युत्तर में सिंघवी इन्द्रराज और भंडारी शिवचन्द, आउवा, असोप और निमाज के ठाकुरों और जोशी श्रीकृष्ण के साथ मई १८१३ में जयपुर गए।[१८५] महाराजा जगतसिंह ने सिंघवी इन्द्रराज को विशेष सम्मान दिया। उसके पहुँचने पर महाराजा स्वयं उसकी अगवानी करने गया। वे पाँच महीने जयपुर ठहरे। इस काल में उन्होंने दोनों महाराजाओं के विवाह के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक सभी बातों पर अन्तिम निर्णय कर लिया और जयपुर महाराजा को आश्वासन दिया कि अमीर खाँ से उनको कोई खतरा नहीं होगा।[१८६]

परस्पर यह तय हुआ कि दोहरा विवाह क्रमशः ३ और ४ सितम्बर १८१३ की शुभ तारीखों (वि० सं० १८७० भाद्रपद सुदी ८ और ६) को हो, अर्थात् महाराजा मानसिंह महाराजा जगतसिंह की बहिन से ३ सितम्बर को और महाराजा जगतसिंह मानसिंह की पुत्री से ४ सितम्बर १८१३ को विवाह करें।[१८७] सब बातें तय करके सिंघवी इन्द्रराज अगस्त १८१३ में जोधपुर लौट गया।

इसी अवसर पर आयसदेवनाथ के सद्प्रयत्नों से मानसिंह और बीकानेर के महाराजा सूरतसिंह के मध्य परस्पर मित्रता के सम्बन्ध और भी अधिक दृढ़ हो गए। आयसदेवनाथ महाराजा सूरतसिंह से मिलने के लिए बीकानेर गया और दोनों देशनोक नामक स्थान पर मिले।[१८८] अपने विवाह के लिए रूपनगर जाते समय महाराजा मानसिंह सूरतसिंह से नागौर में मिला, और दोनों ने ही स्थायी मित्रता की मनोभावना प्रदर्शित की।[१८९] इस प्रकार दो भाई राठौड़ नरेशों के मध्य जो

---

१८५. सिंघवी इन्द्रराज और भंडारी शिवचन्द का महाराजा जगतसिंह को पत्र, वि० सं० १८६९ (१८७०) चैत्र शुक्ल पक्ष, हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८७०, एफ १८५४, तवारीख मानसिंह, एफ २००, मैमॉयर्स ऑफ अमीर खाँ पृष्ठ ४२१

१८६. मानसिंह का जगतसिंह को पत्र, वि० सं० १८७० भाद्रपद कृष्ण पक्ष की सप्तमी, खरीता जात हिन्दी रियासत जोधपुर, बंडल संख्या ७, तवारीख मानसिंह एफ २००; रेऊ : मारवाड़ का इतिहास, भाग २, पृष्ठ ४१५

१८७. मानसिंह का पत्र महाराणा भीमसिंह को, वि० सं० १८७० भाद्रपद कृष्ण पक्ष की सप्तमी, खरीता बही, संख्या ६, एफ २८७

१८८. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ ४१५

१८९. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ ४१५, हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८७०, एफ ६२, तवारीख मानसिंह, एफ २००

तनावपूर्ण सम्बन्ध थे, वे समाप्त हो गये। उसके पश्चात् सूरतसिंह नागौर से बीकानेर लौट आया और महाराजा मानसिंह किशनगढ़ स्थित रूपनगर चला गया। मानसिंह के साथ पोकरण के ठाकुर के अतिरिक्त मारवाड़ के सभी सरदार थे। किशनगढ़ के महाराजा कल्याणसिंह और मसूदा के राव ठाकुर देवीसिंह भी मानसिंह की बारात में सम्मिलित हुए।[१६०]

पूर्व निश्चय के अनुसार जगतसिंह ने जयपुर के राज्यक्षेत्र में 'मारवाह' में अपना शिविर लगाया जो रूपनगर से जहाँ कि मानसिंह ठहरा हुआ था, ७ मील की दूरी पर था। उन दोनों के विवाहोत्सव के अवसर पर वहाँ एक विशाल जन-समुदाय इकट्ठा हो गया। अजमेर के सूबेदार गोमाजी सिंधिया की ओर से तांत्या माधवराव भी विवाह के अवसर पर उपस्थित था। आचार्य पुरुषोत्तम और सवाईराम भी बीकानेर के महाराजा का प्रतिनिधित्व करने के लिए बीकानेर से आए।[१६१] तीन सितम्बर के शुभ दिन मानसिंह ने जयपुर की राजकुमारी से मारवाह में और दूसरे दिन महाराजा जगतसिंह ने मानसिंह की पुत्री सिरेकुंवर से रूपनगर में विवाह किया।[१६२]

दोनों नरेशों के विवाह के उपरान्त दोनों ही शिविरों में अत्यन्त हर्ष और उल्लास के साथ विवाहोत्सव मनाया गया। जोधपुर के प्रसिद्ध कवि बांकीदास और जयपुर के पद्माकर में कविता-प्रतियोगिता हुई जिसमें बांकीदास विजयी हुए और उनको मानसिंह तथा जगतसिंह दोनों ने ही उपहार के रूप में 'हाथी सिरोपाव' भेंट किया।[१६३] इस खुशी के अवसर पर महाराजा जगतसिंह रूपनगर में अमीर खाँ से भी मिला जो कि मानसिंह के शिविर में उपस्थित था। वह उन दोनों को आपस में मिलाने में सहायक हुआ और इस प्रकार दोनों नरेशों में दीर्घकालीन शत्रुता समाप्त हो गई और वे दोनों मित्र बन गए।[१६४]

सिंघवी इन्द्रराज के उपक्रमण से हरसोलाव ठाकुर के अतिरिक्त उन सभी

---

१६०. तवारीख मानसिंह, एफ २००–२०१

१६१. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ ४३१

१६२. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०) संख्या ६, एफ ४१७, तवारीख मानसिंह, एफ २०१

१६३. जिसको यह सम्मान दिया जाता है उसे वस्त्रों आदि के बदले सात सौ अस्सी रुपए (७८० रु०) राज्य द्वारा दिए जाते हैं, रेऊ : मारवाड़ का इतिहास, भाग २, पृष्ठ ६३२ के अनुसार।

१६४. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ ४३७, मैमॉयर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ ४२३–२४, तवारीख मानसिंह, एफ २०२

विरोधी राठौड़ सरदारों ने जो गिंगोली के युद्ध में मानसिंह के पक्ष को छोड़कर धौंकलसिंह के शिविर में चले गए थे, अपने उस कृत्य के लिए खेद प्रकट किया और महाराजा मानसिंह ने उन्हें प्रसन्नतापूर्वक क्षमा कर दिया।[१६५]

इस वैवाहिक सम्बन्ध से जोधपुर और जयपुर राज्यों में दीर्घकाल से चला आ रहा वैमनस्य और शत्रु-भाव समाप्त हो गया और दोनों राज्यों ने नौ वर्षों के लम्बे और तीव्र संघर्ष के उपरान्त शान्ति और विश्राम का अनुभव किया।

१६५. हकीकत वही बीकानेर, वि० सं० १८७०, एफ ८८, तवारीख मानसिंह, एफ २०२

३

अमीरखाँ और मारवाड़

मानसिंह के काल में पिंडारियों की स्थिति :

पिंडारी वास्तव में लुटेरे थे जो कि मराठा सेनाओं के साथ अनिश्चयात्मक रूप से सम्बद्ध थे, और जिनमें सभी वर्गों और जातियों के कानून विरोधी तत्त्व सम्मिलित थे। वह लूटमार करने वालों का एक गिरोह था जिसका मुख्य कार्य शत्रु के शिविर और उसकी सम्पत्ति को लूट कर उसे परेशान करना था।[1] वे किसी स्वामी विशेष के प्रति स्थायी रूप से निष्ठावान नहीं थे। प्रत्युत वह नितान्त अमर्यादित व सिद्धान्त-हीन सशस्त्र सैनिकों का एक गिरोह था जिसकी सेवाएँ अधिक से अधिक कीमत देने वाला नीच से नीच उद्देश्य के लिए खरीद सकता था।

ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा राजपूताने में १८०५ से १८१४ तक के काल में अपनी प्रभुसत्ता की अभिपुष्टि करने में संकोच करने के कारण मराठा अपने प्रभाव क्षेत्र में पूर्ण रूप से शक्तिशाली बन गए, उनको राजपूताने में मनमानी करने का अवसर मिल गया और एक प्रकार से राजपूताने के राज्य मराठा सेनाओं के शिकार क्षेत्र बन गए।[2] क्योंकि पिंडारी मराठों के शिविरानुचर थे, अतः वे भी शक्तिशाली हो गए, और अपने नेताओं अमीर खाँ, चीतू, वासिल मुहम्मद और करीम खाँ के नेतृत्व में ग्रामीण क्षेत्रों को लूटने और उजाड़ने लगे।।[3] बापू सिंधिया पिंडारियों को बहुत निकट से जानता था, क्योंकि वह अनेक युद्धों में उनका सहयोगी रहा था। उसने अमीर खाँ के बारे में कहा था कि अमीर खाँ के पास लूटमार के अतिरिक्त सेना की उपजीविका का अन्य कोई साधन न होने पर भी उसने एक बड़ी सेना एकत्रित करली है, अतएव वह सेना के जीवन निर्वाह के साधनों को उपलब्ध करने के लिए जिन उपायों को काम में लाता है उनके सम्बन्ध में निश्चय ही उसको कोई

---

१. डॉडवेल, कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भाग ५, पृष्ठ ३७७

२. वही,

३. डॉडवेल, कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भाग ५, पृष्ठ ३७७

संकोच या दुविधा नहीं हो सकती।[४] अमीर खाँ की वे हलचलें उस समय तक अबाधगति से चलती रही जब तक कि लार्ड हैस्टिंग्ज ने अपने अविरल सैन्य अभियान के द्वारा १८१८ में पिंडारियों का उन्मूलन नहीं कर दिया।

अमीर खाँ का पिंडारी नेता के रूप में उदय :

उसके संस्मरणों से हमें यह ज्ञात होता है कि अमीनुद्दौला मुहम्मद अमीर खाँ अफगान था, जो कि उत्तर भारत के मुरादाबाद जिले में सम्भल से आया था। उसके पिता की आर्थिक स्थिति अत्यन्त साधारण थी। उसके पास बहुत थोड़ी जायदाद थी।[५] अमीर खाँ अपने युवा काल में, लूटमार करने वाली पिंडारियों की सेना में सम्मिलित हो गया और उसने अपनी सैनिक क्षमता और योग्यता के कारण शीघ्र ही ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया।

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में, वह जसवन्तराव होल्कर के सम्पर्क में आया जो कि उसकी सैन्य-संचालन की योग्यता से प्रभावित हुआ। होल्कर ने उसे सिरोंज का परगना जागीर के रूप में दिया और उसको पपना जनरल नियुक्त किया।[६] इससे अमीर खाँ की शक्ति और प्रतिष्ठा में और अधिक वृद्धि हुई। जसवन्तराव होल्कर अमीर खाँ के साथ सदैव अपने भाई-जैसा व्यवहार करता था और उसके प्रति सौजन्य और हित-कामना का प्रदर्शन करता था। अमीर खाँ अपनी सेना जिसकी संख्या बीस हजार थी, का एक मात्र सेनाध्यक्ष था और यद्यपि वह होल्कर से सम्बद्ध था तथापि उसकी स्थिति अर्द्ध स्वतंत्र थी और वह बिना किसी अन्य वरिष्ठ अधिकारी के हस्तक्षेप के अपनी इच्छानुसार जैसे चाहता वैसे अपनी सेना की व्यवस्था कर सकता था।[७]

मानसिंह के अमीर खाँ से सम्बन्ध :

अमीर खाँ नाँद स्थान पर १८०६ में प्रथम बार मानसिंह के सम्पर्क में उस समय आया,[८] जब मानसिंह ने जयपुर के महाराजा जगतसिंह से होने वाले युद्ध में जसवन्तराव को अपनी सहायता के लिए आमंत्रित किया था। प्रथम भेंट में मानसिंह ने अमीर खाँ को वह इज्जत नहीं दी जिसकी वह राठौड़ नरेश से अपेक्षा

---

४. पी० आर० सी० भाग १४, संख्या १७

५. मैमॉयर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ १, मैलकम : मैमॉयर्स आव सैंट्रल इंडिया, भाग १, पृष्ठ ३२५

६. वही, पृष्ठ १०३

७. मैलकम : मैमॉयर्स ऑफ सैन्ट्रल इंडिया, भाग १, पृष्ठ ३२७

८. हकीकत बही जोधपुर, वि० सं० १८६२–७०, संख्या ६, एफ ८६

करता था।[९] अतएव वह मानसिंह से अत्यन्त अप्रसन्न हो गया और उसने जयपुर के महाराजा का साथ दिया, जिसने उसकी सेवाओं को खरीद लिया।[१०]

यद्यपि अमीर खाँ एक योग्य सैनिक नेता था तथापि उसमें एक सम्मानित या प्रतिष्ठित व्यक्ति के गुणों का अभाव था। वह चरम सीमा का निष्ठाहीन व्यक्ति था और आर्थिक लाभ के लिए रात भर में ही अपनी विश्वास भक्ति में परिवर्तन कर देता था। यदि उसको अपना मूल्य मिल जाता तो पृथ्वी पर ऐसा कोई जघन्यतम अपराध नहीं था जिसको करने में वह हिचकता। जिस समय जयपुर और जोधपुर में युद्ध हो रहा था उस समय महाराजा मानसिंह द्वारा उसके (अमीर खाँ के) मूल्य स्वरूप अधिक द्रव्य दिए जाने के वचन देने पर वह अपने चरित्र के अनुरूप ही, अपने पहले स्वामी महाराजा जगतसिंह का पक्ष छोड़कर मानसिंह के पक्ष में चला गया।[११]

अमीर खाँ के साथ संधि :

ऊपर वर्णित अमीर खाँ के मानसिंह के पक्ष में आजाने से युद्ध में मानसिंह के अनुकूल मोड़ आया। परिणामस्वरूप जगतसिंह को जोधपुर का घेरा उठाना पड़ा और अपनी राजधानी की ओर तेजी से वापस जाना पड़ा। उसके उपरान्त मानसिंह ने अपने शत्रुओं को नष्ट करने और उनका मान भंग करने में अमीर खाँ की सेवाओं का उपयोग किया। महाराजा जयपुर का मान मर्दन करने के उपरान्त १७ अक्टूबर १८०७ को अमीर खाँ जोधपुर में मानसिंह से मिला और यहाँ २९ दिसम्बर १८०७ तक ठहरा।[१२] इस अवसर पर मानसिंह ने अमीर खाँ के प्रति साधारण से बहुत अधिक सम्मान प्रदर्शित किया, उसका अत्यन्त स्नेह से स्वागत किया तथा उसको उदारतापूर्वक प्रचुर मात्रा में उपहार दिए, और दोनों ने एक साथ भोजन किया। महाराजा द्वारा किसी के प्रति किया जा सकने वाला यह एक अद्वितीय सम्मान था।[१३] जब वह जोधपुर में ठहरा हुआ था तब दोनों में एक गुप्त समझौता हुआ जिसके अनुसार १८०८ में अमीर खाँ द्वारा सवाईसिंह की धोखे से हत्या कर दी गई।[१४]

९. मैमॉयर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३००, तवारीख मानसिंह, एफ ३५

१०. मैमॉयर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३०७, पी० आर० सी०, भाग ६, संख्या २०४, २०८

११. मैमायर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३२३, तवारीख मानसिंह, एफ ५८

१२. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ ७६–९२

१३. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ ७६–९२, मैमॉयर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ट ३४२

१४. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ १०१ मैमॉयर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३५०

जब सवाईसिंह के मारे जाने का समाचार मानसिंह के पास पहुँचा तो वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ । ७ अप्रेल १८०८ को उसने उसकी (अमीर खाँ की) सराहना के प्रतीक स्वरूप सिंघवी कल्याणमल को बहुमूल्य उपहारों सहित खास रुक्का देकर नागौर भेजा ।[१५] अमीर खाँ के अतिरिक्त उसके मुख्य सेनाध्यक्ष मुख्तारउद्दौला मुहम्मद शाह खाँ और अमीर खाँ के मुन्शी हिम्मतराय को भी महाराजा मानसिंह ने उपयुक्त उपहार भेंट किए ।[१६] १५ मई को जब अमीर खाँ नागौर से जोधपुर पहुँचा तब स्वयं मानसिंह ने उसकी अगवानी की । अमीर खाँ के साथ वैसा ही व्यवहार किया गया जैसे व्यवहार की बराबरी का कोई महाराजा अपेक्षा कर सकता था । उसको तलहटी महल में निवास दिया गया और भेंट स्वरूप दो हजार रुपए भेजे गए । १५ और १६ मई को अमीर खाँ ने किले के अन्दर मोतीमहल के भीतरी कक्ष में महाराजा से गुप्त वार्ता की । वहाँ उसका मुक्त हस्त से भोजन तथा नृत्य से मनोरंजन किया गया ।[१७] दूसरे दिन अमीर खाँ राठौड़ सरदारों से उस समारोह में मिला जो उसके सम्मान में आयोजित हुआ था ।[१८] १८ मई को अमीर खाँ और महाराजा पुनः एक दूसरे से मिले और दोनों ने आपसी हितों पर चर्चा की । अमीर खाँ कुँवर छतरसिंह से भी मिलने गया और उसने उसको (कुँवर को) एक हाथी भेंट किया । संक्षेप में कहा जा सकता है कि अमीर खाँ, महाराजा तथा उन सभी लोगों का जो राज्य में प्रभावशाली थे निकट का विश्वासपात्र बन गया और उसके कारण जोधपुर में उसका बहुत अधिक प्रभाव हो गया । अमीर खाँ २ जुलाई १८०८ तक जब तबकि वह जोधपुर से विदा नहीं हुआ महाराजा के अत्यन्त भव्य आतिथ्य का आनन्द लेता रहा ।[१९] उसके उपरान्त महाराजा जगतसिंह को जोधपुर से मैत्री करनी पड़ी और उदयपुर के महाराणा को, जैसाकि पहले बताया जा चुका

---

१५. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ १०३

१६. वही, एफ १०३, इस अवसर पर अमीर खाँ को, इसमें सोने की जरी का थान (टस का थान तम्मानी सोने का) देहली की पाग दुशाला, पटना की ढाल, सोने के मूठ की तलवार आदि तेरह उपहार भेजे गए । हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ १०३ के अनुसार

१७. वही, एफ १०४

१८. आउवा, निमाज, असोप, रोहित, बदलू, मीठरी, और चंदावल इत्यादि ने अमीर खाँ को उत्तम जाति के घोडे भेंट किए ।

१९. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ १०५ विदा होते समय महाराजा ने अमीर खाँ को बहुमूल्य उपहार भेंट किए, (आभूषण, मूल्यवान अस्त्र, हाथी, घोड़े आदि) ।

हैं, कृष्णा कुमारी को विष देने पर विवश होना पड़ा।[२०] मुहम्मद शाह खाँ के शक्तिशाली ब्रिगेड की सेवाओं को प्राप्त कर लेने का एक अप्रत्यक्ष लाभ मानसिंह को यह मिला कि वह दौलतराव सिंधिया की उस अन्यायपूर्ण अत्यधिक धनराशि की माँग का विरोध कर सका जिसे दौलतराव सिंधिया मानसिंह पर दबाव डाल कर मनवाने में सफल हो जाता। यही कारण था कि मानसिंह ने सिंधिया की बार-बार कर चुकाने की माँग की ओर १८१५ तक कभी गम्भीरतापूर्वक ध्यान नहीं दिया। इस प्रकार से अमीर खाँ मानसिंह के लिए एक उपयोगी मित्र सिद्ध हुआ।[२१] किन्तु मानसिंह द्वारा अमीर खाँ को जो अनुचित बढ़ावा दिया गया उससे वह भयंकर रूप में शक्तिशाली बन गया। क्योंकि वह नितान्त सिद्धान्तहीन व्यक्ति था, अतएव उसकी कभी तृप्त न होने वाली द्रव्य की लालसा ने उसको मारवाड़ में विध्वंस और विनाश का खेल खेलने के लिए प्रोत्साहित किया।

जोधपुर में अमीर खाँ का प्रभुत्व :

मानसिंह ने अपने उद्देश्य को अमीर खाँ के माध्यम से प्राप्त किया था, परन्तु इस प्रक्रिया में मारवाड़ अमीर खाँ की मुट्ठी में आ गया। सैनिक व्यय के रूप में उसको जो अत्यधिक द्रव्य राशि दी गई और उसको निजी जागीर के रूप में जो परगने दिए गए उन सबके कारण मारवाड़ में वित्तीय तंगी आ गई।[२२] वास्तविक स्थिति यह थी कि अमीर खाँ ने मारवाड़ की राजनीति पर अपना प्रभाव जमा लिया और वह उसके भाग्य का निर्णायक बन गया।[२३] ३ जनवरी १८०८ को मानसिंह ने नवाब मुख्तारउद्दौला मुहम्मद शाह खाँ के अधीन अमीर खाँ के एक ब्रिगेड को नीचे लिखी शर्तों पर स्थायी रूप से अपनी सेवा में रखना स्वीकार किया :—

(१) उसको एक लाख पचास हजार रुपए मासिक वेतन दिया जाएगा। एक लाख रुपए उसी मास में दे दिए जाएँगे और शेष राशि दूसरे महीने में दी जाएगी। इसके लिए नौ परगनों की मालगुजारी निर्दिष्ट कर दी गई। परन्तु यदि उन परगनों का राजस्व (मालगुजारी) निर्धारित रकम से कम रहे तो राज्य उस कमी को पूरा करेगा। इस रकम का भुगतान

२०. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ २६६ पी० आर० सी० भाग १४, संख्या ३६

२१. सिएटन का ऐडमान्सटन को पत्र, १८ फरवरी १८१०, कान्स ६ मार्च १८१०, संख्या १५, एफ० पी० आर० सी० भाग १४, संख्या ११, १८, ११५

२२. वि० सं० १८६६ माघ कृष्ण पक्ष अष्टमी का इन्द्रराज का लाला महताब राय को दीवानी रुक्का, हथबही, संख्या ३, एफ ३१

२३. टॉड : एनल्स, भाग २, पृष्ठ ११५

'विजयसाही रुपए' के सिक्कों में किया जाएगा।[२४]

(२) महाराजा की सेवा में प्रवेश करने की तारीख ३० दिसम्बर १८०७ होगी।

(३) मारवाड़ सरकार अपेक्षाकृत छोटी और कम कठिन लड़ाइयों के लिए तोपों के गोले और बारूद नहीं देगी, किन्तु जब ब्रिगेड को कोई बड़ा युद्ध लड़ना होगा तो सरकार वह भी देगी।

(४) यदि कोई सैनिक युद्ध में मारा जाता है अथवा घायल हो जाता है, अथवा रणक्षेत्र में अतुलनीय वीरता प्रदर्शित करता है तो उसको महाराजा की जानकारी में लाया जाएगा।

(५) उन परगनों की मालगुजारी जो मुहम्मदशाह खाँ (मुख्तारउद्दौला) को निर्दिष्ट किए गए हैं मुहाल और परगनों की सनद के अनुसार चुकाई जाएगी, और उसको वेतन के हिसाब में शामिल नहीं किया जाएगा।

(६) क्योंकि महाराजा ने मुख्तारउद्दौला को अपनी सेवा में लिया है, अस्तु उसको महाराजा की इच्छा और आज्ञा के अनुसार उसकी सेवा करनी होगी, और उसकी आज्ञानुसार समीप अथवा सुदूर स्थानों को जाना होगा।

(७) यह कि नीचे लिखे कौलनामा, जिसे मुख्तारउद्दौला ने लिखा है, के अनुसार ही कार्य होगा और यह लागू रहेगा।

महाराजा की सेवा में प्रवेश करते समय मुख्तारउद्दौला ने नीचे लिखा कौलनामा लिखा।

"कि मैं नवाब अमीर खाँ की सेना के तीसरे ब्रिगेड का स्वामी होने के नाते इस बात की अभिपुष्टि करता हूँ कि मेरा ब्रिगेड जिसमें दस हजार पैदल सैनिक व तीन हजार अश्वारोही सैनिक हैं और एक सौ पच्चीस तोपें हैं,[२५] समस्त सैनिक साज-

---

२४. वि० सं० १८६४ पौष शुक्ल पक्ष ६८ का मुख्तारउद्दौला मुहम्मद शाह खाँ का कौलनामा, हथबहीसंख्या ३, एफ ४२–४३, मैमॉयर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ ३४७, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ ८६, पी० आर० ७ भाग १४, संख्या १२

विजयसाही रुपया—क्योंकि यह १८७० में प्रथम बार महाराजा विजयसिंह के शासनकाल में ढाला गया था, अतः 'विजयसाही रुपया' कहलाता था। यह चाँदी का सिक्का था।

२५. पी० आर० सी०, भाग १४, संख्या १२ के अनुसार मुहम्मद शाह खाँ के ब्रिगेड में पाँच हजार पैदल सेना, ३००० अश्वारोही और अच्छी संख्या में तोपें थीं।

सामान के साथ महाराजा की सेवा में रखा गया है, अतएव मैं निष्ठा के साथ उनकी सेवा करूँगा और उनकी आज्ञा का पालन करूँगा। समस्त ब्रिगेड का, इकरार के अनुसार, एक लाख पचास हजार रुपए वेतन निश्चित किया गया है। परगनों की मालगुजारी इस शर्त के साथ वसूल की जाएगी कि ब्रिगेड का लोगों से झगड़ा न हो। मेरा ब्रिगेड मारवाड़, बीकानेर, ढूंढार में किसी भी स्थान पर जायेगा और यदि आवश्यकता पडी तो बाहर के स्थानों पर भी जायेगा। किन्तु मालगुजारी और पैदावार पर एकमात्र दरबार का स्वामित्व होगा और यदि दरबार उसे हमें देते हैं तो वह हमें दिए जाने वाले वेतन के हिसाब में सम्मिलित करली जायेगी। हम परगनों से कोई रकम नहीं लेंगे। दरबार जितना देंगे, उतना स्वीकार होगा। ब्रिगेड, सरदारों, जागीरदारों (भौमियों) नाथों और स्वामियों (षट-दर्शन) से झगड़ा नहीं करेगा तथा परगनों की परम्पराओं और पुरानी प्रथाओं का पालन किया जायेगा। हमारे आदमी राज्य के अधिकारियों और दरबार के मुत्सद्दियों की इच्छाओं के विरुद्ध न कोई कार्य करेंगे और न लूटपाट करेंगे। यदि कभी ऐसा हुआ तो जो हानि होगी वह ब्रिगेड के वेतन से पूरी कर दी जायेगी। हम उन लोगों से जो ढूंढार, बीकानेर तथा उदयपुर में दरबार के विरोधी हैं, कोई सम्बन्ध नहीं रखेंगे। मैं पवित्र कुरान और इस्लाम की शपथ खाकर यह घोषणा करता हूँ कि मैं दरबार की आज्ञाओं का अक्षरशः पालन करूँगा और निष्ठा के साथ उनकी सेवा करूँगा।

मैंने इस कौलनामा का प्रत्येक शब्द पढ़ लिया है और मुसलमान होने के नाते मैं अपनी प्रतिष्ठा को ध्यान में रखकर कहता हूँ कि वह बिलकुल सही है और उसको स्वीकार करने के प्रतीक स्वरूप मैंने उस पर अपनी मुहर लगाई है।"

१८०८ में इस समझौते के साथ ब्रिगेड को हीराचन्द सेठ से नियमित रूप से वेतन मिलता रहता था। मानसिंह ने हीराचन्द सेठ को सेना के साथ रहने का निर्देश दे दिया था।[२६] नियमित रकम के अतिरिक्त अमीर खाँ तथा उसके अधिकारियों को महाराजा ने कई परगने और गाँव उनकी निजी जागीर के रूप में दिए थे। उदाहरण के लिए अमीर खाँ को नावां और सांभर परगनों की सम्पूर्ण मालगुजारी जो क्रमशः तीन लाख रुपए और डेढ लाख रुपए थी, मिलती थी।[२७] कौलनामा में इन सभी

२६. सिएटन का ऐडमान्सटन को पत्र, १८ फरवरी १८१०. कान्स ६ मार्च, १८१०, संख्या १५, एफ पी० आर० सी० भाग १४,

२७. दीवानी रुक्का, इन्द्रराज का लाला महताब राय को, वि सं० १८८६ माघ कृष्ण पक्ष की अष्टमी का, हथबही संख्या ३, एफ ३१, पी० आर० सी भाग १४, संख्या २७, मुहम्मदशाह खाँ—६ गाँव, राजाबहादुर—दो गाँव, अकबर खाँ—दो गाँव, गुलाम खाँ—बिलाडा का परगना, अकुन साहब—आठ गाँव, पी० आर० सी० भाग १४, संख्या २७ के अनुसार

अभिरक्षणों और समझौतों के होते हुए भी अमीर खाँ और उसके प्रतिनियुक्त (डिप्टी) मुहम्मदशाह ने मारवाड़ के गाँवों को लूटा और लोगों से जितना द्रव्य वे जबरदस्ती वसूल कर सकते थे उतना उन्होंने वसूल किया।[२८]

मानसिंह अपने राज्य को उनकी लूट और विध्वंस से बचाने के लिए प्रायः नकदी या वस्तु रूप में भुगतान करता था। १२ मार्च १८१० को मानसिंह ने अमीर खाँ के लड़के को जो उस समय मेड़ता में था, सात हजार रुपए और उपहार भेजे थे।[२९] बाद में मानसिंह ने अमीर खाँ के परिवार को जालौर भेज दिया।[३०] पुनः २६ अप्रेल १८१० को मानसिंह ने अमीर खाँ को किशनगढ़ में पचपन हजार (५५००० रुपये) की हुंडियाँ भेजी।[३१] इन भुगतानों के करने पर भी जब अमीर खाँ के सैनिक विद्रोही हो उठे तब उसने १८११ में मानसिंह से एक बहुत बड़ी रकम माँगी।[३२]

क्योंकि मानसिंह को बहुत बड़ी धनराशि देनी पड़ी, अतः मुहम्मद शाह खाँ को दिया जाने वाला प्रतिज्ञाबद्ध वेतन बकाया रह गया, और इसलिए मुहम्मद शाह खाँ ने भी उसी समय नौ लाख पच्चीस हजार रुपये की बहुत बड़ी रकम अपने मासिक व्यय के हिसाब में माँगी। उस धनराशि को लाने के लिए मुन्शी दाताराम को भेजा गया।[३३] महाराजा ने ९ दिसम्बर १८११ को छः लाख तेंतीस हजार पाँच सौ

२८. दौलतराव का मानसिंह को पत्र, वि० सं० १८६७ पौष कृष्ण पक्ष तेरस, पोर्टफोलियो फाइल, संख्या ६, अनूपराम का श्रीकृष्ण को पत्र, वि० सं० १८६९, फाइल कागजात खतो किताबत संख्या ७/२ ढोलिया का कोठार, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०) संख्या ९, एफ २२४

२९. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०) संख्या १०, एफ ३४ केवेण्डर का कोलब्रुक को पत्र, २७ जून १८२८, कान्स २९ जुलाई १८२८, कान्स २९ जुलाई १८२८, संख्या २४, एफ पी

३०. तवारीख मानसिंह एफ २०५, पी० आर० सी० भाग १४, संख्या १२८,

३१. खास रुक्का, जगतसिंह का मानसिंह को, वि० सं० १८७१ फाल्गुन शुक्ला अष्टमी, खरीता बही, संख्या १२, एफ ९३; हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८७१, एफ ४०

३२. खरीता जगतसिंह का मानसिंह को, वि० सं० १८७२ चैत्र शुक्ल पक्ष भी चतुर्थी, खरीता बही, संख्या, १२, एफ ९४ कुतुबउद्दीन खाँ और खामल खाँ की मानसिंह को बिना तारीख की अर्जी, अर्जियों की फाइल संख्या ६८, ढोलिया का कोठार।

३३. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, १८ फरवरी १८१०, कान्स ६ मार्च १८१०, संख्या १५, एफ पी, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ९, एफ १२६

तिरानवे (६३३५६३) रुपये का आंशिक भुगतान कर दिया। अस्तु, उसने अपनी सेनाओं को 'नागौर' और 'नावां' में रख दिया और मेड़ता की भूमि को अपने अनुयायियों में विभाजित कर दिया।[३४]

अमीर खाँ मानसिंह से बलात् द्रव्य लेने के लिए बार-बार जोधपुर आता था। वह २१ जुलाई १८१२ को जोधपुर गया और वहाँ १५ सितम्बर १८१२ तक ठहरा।[३५] वह पुनः १४ सितम्बर १८१३ को आया और १४ अक्टूबर तक ठहरा रहा।

१८१४ में अमीर खाँ दक्षिण से लौटा और उसने एक बार फिर मारवाड़ को रौंद डाला। पुनः वह सदा की भाँति जोधपुर आया और ७ फरवरी १८१५ को 'राई का बाग' में उसने अपना शिविर लगाया।[३६] अपने डाकू गिरोहों के साथ अमीर खाँ और मुहम्मद शाह खाँ के इन नियतकालीन आगमनों ने मारवाड़ के ग्राम्य क्षेत्र को उजाड़ डाला, और उन्होंने मारवाड़ का निर्ममतापूर्वक शोषण किया। १८१४ में सिंघवी इन्द्रराज ने मुख्तारउद्दौला को मारवाड़ के गाँवों को लूटने से रोकने के लिए तीन लाख रुपये दिए।[३७]

अमीर खाँ की मित्रता मारवाड़ के लिए अत्यन्त महंगी और विनाशकारी सिद्ध

---

३४. पी० आर० सी० भाग १४, संख्या २७

३५. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ २४५ मानसिंह को कुतुबउद्दीन खाँ, कमाल खाँ, और फतह खाँ की बिना तारीख की अर्जी, अर्जियों की फाइल संख्या ६८, ढ़ोलिया का कोठार।
मुन्शी दाताराम का छंगानी कचरदास को पत्र, वि० सं० १८६८ ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष की छठ, फाइल कागजात खतो किताबत, संख्या ७/२ ढोलिया का कोठार।
हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ ३३०, खरीता बही, संख्या १२, एफ ३१६
टॉड : एनल्स भाग २, पृष्ठ ११५
हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या ६, एफ एफ ३५७–३६३, ४३१–४४१

३६. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८८), संख्या १०, एफ ३४, केवेन्डर का कोलब्रुक को पत्र, २७ जून १८२८; कान्स, २६ जुलाई १८२८, संख्या २४, एफ० पी०

३७. तवारीख़ मानसिंह, एफ २०५, पी० आर० सी०, भाग १४, संख्या १२८,

हुई ।[३८] वह एक खतरनाक मित्र सिद्ध हुआ,[३९] और उसकी सेवाओं ने मारवाड़ पर, जो कि पहले ही रिक्त हो चुका था, जो वित्तीय भार डाला उसने मारवाड़ की वित्तीय स्थिति को नितान्त पंगु बना दिया । उसकी माँगों को पूरा कर सकना राज्य के वित्तीय साधनों और शक्ति के बाहर की बात थी । क्योंकि मानसिंह पर कठोर दबाव था, अतएव उसने १८१०, १८१२, और १८१४ में ब्रिटिश सरकार से १८०३ की संधि को पुनर्जीवित करने की प्रार्थना की परन्तु मैटकाफ ने अपनी सरकार की नीति को ध्यान में रखकर तीनों बार इस आशय के किसी भी प्रस्ताव पर विचार करने से इन्कार कर दिया ।[४०] अतएव मानसिंह को विवश होकर अमीर खाँ को अठारह लाख रुपये की बहुत बड़ी राशि कई किश्तों में चुकानी पड़ी ।[४१]

१८१५ के संकट को उत्पन्न करने वाली परिस्थितियाँ :

इस काल में राज्य-कार्य की व्यवस्था तथा अमीर खाँ को भुगतान करने का वास्तविक श्रेय सिंघवी इन्द्रराज को था । वह अप्राप्य प्रतिभा और योग्यता का व्यक्ति था । उसका १८०७ से मानसिंह पर अत्यधिक प्रभाव था, क्योंकि उसने मानसिंह की अत्यन्त योग्यता और निष्ठा से सेवा की थी । यही कारण था कि वह अपने स्वामी की दृष्टि में बहुत ऊँचा उठ गया; और मानसिंह ने एक राजाज्ञा द्वारा पाँच वर्षों के लिए प्रशासन के समस्त अधिकार उसको प्रदान कर दिए ।[४२] सिंघवी इन्द्रराज के पास दीवान और फौजबख्शी के दो उत्कट अभिलक्षित पद थे । अस्तु, सिंघवी इन्द्रराज मानसिंह के आध्यात्मिक गुरु आयसदेवनाथ के साथ मिलकर राज्य का प्रशासन चलाता था । मानसिंह राज्य का नाममात्र का शासक बना रहा ।

---

३८. खास रुक्का जगतसिंह का मानसिंह को वि० सं० १८७१ फाल्गुन शुक्ला अष्टमी, खरीता बही, संख्या १२, एफ ६३, हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८७१, एफ ४०

३९. खरीता जगतसिंह का मानसिंह को पत्र वि० सं० १८७२ चैत्र शुक्ल पक्ष की चतुर्थी, खरीता बही, संख्या १२, एफ ६४, कुतुबउद्दीन खाँ और खामल खाँ की मानसिंह को बिना तारीख की अर्जी, अर्जियों की फाइल, संख्या ६८, ढ़ोलिया का कोठार ।

४०. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, १८ फरवरी १८१०, कान्स ६ मार्च १८१०, संख्या १५, एफ पी, मेटकाफ का जे, ऐडम को पत्र संख्या ३ अप्रेल २२, १८१४, संख्या ११, एफ पी०, पी० आर० सी०, भाग १४, संख्या ६८, १८४

४१. मैटकाफ का जे० ऐडम को पत्र, ३ अक्टूबर १८१५, कान्स २० अक्टूबर १८१५, संख्या ४७, एफ पी ।

४२. तवारीख मानसिंह, एफ २०४

सिंघवी इन्द्रराज और आयसदेवनाथ के इस महान उत्कर्ष के कारण अन्य दरबारियों और सरदारों में ईर्ष्या की भावना जागृत हो गई और अखयचन्द, मोहता ज्ञानमल, आउवा, असोप, नीमाज और बूडसू के नेतृत्व में दरबारियों का एक प्रतिद्वन्द्वी गुट उत्पन्न हो गया।[४३] यहाँ तक कि मारवाड़ राजसिंहासन के युवराज छतरसिंह की माता भी सिंघवी इन्द्रराज से अप्रसन्न हो गई और उसके विरुद्ध अपने मन में शिकायतें पोषित करती रहीं।[४४] क्योंकि इन्द्रराज राज्य की उस वित्तीय स्थिति को सुधारने का प्रयत्न कर रहा था जो अत्यन्त शोचनीय तथा हीन स्थिति में थी। अतः उसने राज्य के व्यय में कठोरता पूर्वक मितव्ययता की जिससे प्रत्येक संबंधित व्यक्ति के स्वार्थों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। मितव्ययता के रूप में उसने भाड़े के सैनिकों को क्षति-पूर्ति की रकम, जो उनकी राय में बहुत थोड़ी थी,[४५] देकर हटा दिया।[४६] इस प्रकार सिंघवी इन्द्रराज ने अपने विरोधियों और शत्रुओं की संख्या में बहुत वृद्धि करली और वह उनके कुचक्रों और षडयन्त्रों का शिकार बन गया।[४७] उस समय १८१५ में, जबकि जोधपुर के दरबार में षडयन्त्र अबाध रूप से उग्र था, अमीर खाँ जोधपुर और बीकानेर की सीमा पर लूटमार करता हुआ मँडरा रहा था और मुहम्मद शाह खाँ ने जोधपुर राज्य के कुछ भाग पर इस उद्देश्य से अधिकार कर लिया था कि जिससे वह महाराजा को उसकी शेष राशि का भुगतान करने के लिए दबा सके।[४८] जब अमीर खाँ सितम्बर १८१५ में और अधिक रुपए का भुगतान प्राप्त करने के अपने उद्देश्य में असफल रहा तब वह वचन दी हुई राशि के भुगतान को लेने के लिए एक हजार पाँच सौ सैनिकों के साथ जोधपुर आया और उसने जोधपुर में शेखावत तालाब पर अपना शिविर लगाया।[४९]

२४ अगस्त १८१५ को उसने अपने एक हजार सैनिकों के साथ महाराजा

४३. केवेन्डिश का कोलब्रुक को पत्र, २७ जून १८२८, कान्स २९ जुलाई १८२८, संख्या २४, एफ पी, तवारीख मानसिंह, एफ २०४

४४. केवेन्डिश का कोलब्रुक को पत्र, २७ जून १८२८, कान्स २९ जुलाई १८२८, संख्या २४, एफ पी, मुदियार ख्यात, बस्ता संख्या ४०, एफ २४४–२५२

४५. मेटकाफ का ऐडम को पत्र, २८ अक्टूबर १८१५, कान्स १७ नवम्बर १८१५, संख्या २९, एफ पी

४६. वही

४७. तवारीख मानसिंह, एफ ८–९

४८. पी० आर० सी०, भाग ८, संख्या २२३–२२५

४९. अमीर खाँ का मानसिंह को पत्र (बिना तिथि का), फाइल रियासती, खरीता संख्या ३२, ढोलिया का कोठार।

मानसिंह से मिलने के लिए जोधपुर के दुर्ग में प्रवेश किया। दोनों दुर्ग के भीतरी कक्ष में मिले।[५०] २ सितम्बर १८१५ को पुनः दोनों का मिलना हुआ और अमीर खाँ ने शेष रकम के तुरन्त भुगतान के लिए महाराजा पर दबाव डाला।[५१] महाराजा और उसके मंत्री भुगतान की व्यवस्था करने के लिए कुछ समय चाहते थे, किन्तु अमीर खाँ तुरन्त रुपये दिए जाने का हठ कर रहा था। इस प्रकार कुछ समय तक समझौता वार्ता चलती रही। इस समझौता वार्ता में एक प्रस्ताव इस आशय का रखा गया कि शेष राशि के बदले महाराजा नागौर और मेड़ता के परगने अमीर खाँ को प्रदान कर दें। परन्तु सिंघवी इन्द्रराज ने वे परगने अमीर खाँ को नहीं देने दिए।[५२]

सिंघवी इन्द्रराज और आयसदेवनाथ की हत्या :

सिंघवी इन्द्रराज के इस प्रकार के रुख से उसके तथा अमीर खाँ के सम्बन्धों में खिचाव आ गया और उसने इन्द्रराज के विरोधियों से घनिष्ठतापूर्वक सम्पर्क स्थापित करना आरम्भ कर दिया।[५३] राज्य की वित्तीय स्थिति इतनी अधिक शोचनीय अवस्था में थी कि कुल राशि जो पाँच से ६ लाख तक थी, दे सकना सम्भव नहीं था।[५४] अतएव इन्द्रराज ने देय की आधी राशि देने का वचन दिया और शेष राशि अमीर खाँ के मारवाड़ छोड़कर चले जाने के उपरान्त देने का वचन दिया। दरबारियों के प्रतिस्पर्द्धी गुट ने, जिसमें आसोप के ठाकुर केसरीसिंह, आउवा के बख्तावरसिंह, निमाज के सुरतानसिंह, रास और चन्दावल के ठाकुर, जोशी श्रीकृष्ण, व्यास चतुर्भुज, मेहता अखयचन्द और देवनाथ का छोटा भाई आयससूरतनाथ थे, सिंघवी इन्द्रराज और आयसदेवनाथ के विरुद्ध एक षडयन्त्र की रचना की।[५५]

उन्होंने अमीर खाँ को उन दोनों के विरुद्ध यह कह कर भड़काया कि उसके भुगतान को रोक रखने के लिए वे दोनों ही जिम्मेदार हैं, और यदि वह उन दोनों

५०. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ७६–८०
हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८७२, एफ २८–३०, मैमॉयर्स ऑफ अमीर खाँ पृष्ठ ४३३

५१. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ८४

५२. मानसिंह का सिंघवी फतहराज को पत्र, वि० सं० १८७२, आश्विन शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी, हकीकत बही बीकानेर, वि० सं १८७२, एफ २८–३२

५३. केवेन्डिश का कोलब्रुक को पत्र, २७ जून १८२८, कान्स २६ जुलाई १८२८, संख्या २४, एफ पी

५४. मुदियार की ख्यात, बस्ता संख्या ४०, एफ २५२

५५. मैटकाफ का ऐडम को पत्र, १५ अक्टूबर १८१५, कान्स नवम्बर १०, १८१५, संख्या १३, एफ० पी०, हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८७२, एफ २८–३२

(सिंघवी इन्द्रराज और आयसदेवनाथ) को मरवादे तो वे उसे सात लाख रुपये देंगे।[५६] उन्होंने अमीर खाँ को यह भी आश्वासन दिया कि वे उन लोगों के जिन्हें वह मारने के लिए नियुक्त करेगा, सुरक्षित निकल जाने की व्यवस्था करेंगे।[५७] कुंवर छतरसिंह और उसकी माता (मानसिंह की रानी) दोनों भी इस षडयन्त्र में सम्मिलित हो गए।[५८] छतरसिंह १३ सितम्बर १८१५ को अमीर खाँ से उसके शिविर में मिलने गया।[५९] इस प्रकार षडयन्त्र की विस्तारपूर्वक रचना की गई और षडयन्त्रकारियों ने अमीर खाँ को पाँच लाख रुपये अग्रिम दे दिए।[६०]

५ अक्टूबर १८१५ को अमीर खाँ पुनः दुर्ग में महाराजा से मिला और भुगतान के लिए दृढ़तापूर्वक आग्रह किया। महाराजा ने भुगतान करने के लिए पाँच दिन का समय माँगा। पाँच दिन व्यतीत हो जाने के उपरान्त दस अक्टूबर को षडयन्त्रकारियों ने अमीर खाँ को सूचित किया कि सिंघवी इन्द्रराज तथा आयसदेवनाथ दोनों ही दुर्ग के भीतरी कक्ष में परामर्श कर रहे हैं, और यह उनको मार डालने का उपयुक्त अवसर है।

१० अक्टूबर १८१५ को अमीर खाँ ने कुतुबउद्दीन खाँ और अहमद सईद के नेतृत्व में चुने हुए पच्चीस-तीस सैनिक इस निर्देश के साथ भेजे कि जो लोग भुगतान की माँग का विरोध करें उनका जीवन समाप्त कर दो।[६१] जब अफगान ख्वाबगाह (भीतरी कक्ष) में पहुँचे तब वहाँ इन्द्रराज और आयसदेवनाथ दोनों अमीर खाँ को द्रव्य का आसन्न भुगतान करने के संबंध में परामर्श कर रहे थे। अफगानों ने सम्पूर्ण राशि का तत्काल रोकड़ में भुगतान करने की माँग की।[६२] इन्द्रराज ने नकदी में भुगतान करने की असमर्थता प्रकट की। उसके स्थान पर उसने ऐसी हुडियाँ देने का प्रस्ताव किया जो मासिक नौ किश्तों में नकदी में चुकाई जा सकती थीं।[६३] १०

५६. टॉड : एनल्स भाग २, पृष्ठ ११५

५७. मुदियार की ख्यात, बस्ता संख्या ४०, एफ २४८

५८. मैटकाफ का ऐडम को पत्र, २८ अक्टूबर १८१५, कान्स १७ नवम्बर १८१५, संख्या ३०, एफ पी

५९. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ८५ मैमॉयर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ ४३४

६०. पी० आर० सी०, भाग १४, संख्या २४३ एक लाख रुपये अखयचन्द ने दिए थे। राठौड़ों की ख्यात, भाग २, एफ ३२६ के अनुसार।

६१. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ८६

६२. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ८६

६३. मैटकाफ का ऐडम को पत्र, २१ अक्टूबर १८१५, कान्स १० नवम्बर १८१५, संख्या १६, आर० पी

अक्टूबर १८१५ को सायंकाल लगभग ८ बजे जब इन्द्रराज और देवनाथ दोनों से रुपये के भुगतान के संबंध में तर्क-वितर्क कर रहे थे तब उन्हें अफगानों ने धोखे से मार डाला और उनके साथ चार या पाँच उन व्यक्तियों को भी मार डाला जो उस समय वहाँ थे।[६४]

महाराजा मानसिंह जो समीप ही मोती महल में था, इस भीषण आघात पहुँचाने वाले समाचार को सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा और उसने आज्ञा दी कि जो अफगान इस हत्याकांड के लिए उत्तरदायी हों उन्हें मरवा दिया जाए। तथ्य क्या है, यह जानने के लिए उसने महल से बाहर निकलने का प्रयत्न किया, किन्तु व्यास चतुर्भुज ने जो स्वयं एक षडयन्त्रकारी था और उस समय महाराजा की सेवा में उपस्थित था, महाराजा को बाहर नहीं जाने दिया। व्यास चतुर्भुज ने उसको वस्तुत: कैद कर लिया था।[६५] विरोधी गुट ने आयसदेवनाथ के भाई भीमनाथ के माध्यम से महाराजा पर प्रभावी होकर तथा उसको यह तर्क देकर अपनी आज्ञा वापस लेने के लिए राजी कर लिया कि इससे अमीर खाँ का जोधपुर पर प्रचंड रोष फूट पड़ेगा, जिसके लिए वे लोग तैयार नहीं हैं। अमीर खाँ ने अपनी सेना को सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सभी स्थानों पर तैनात कर दिया था और धमकी दी थी कि यदि उसके आदमियों को कुछ हो गया तो वह महामंदिर सहित राजधानी

---

६४. मैटकाफ का पत्र ऐडम को, १७ अक्टूबर १८१५, कान्स १० नवम्बर १८१५, सख्या १४, एफ पी, मैटकाफ का ऐडम को पत्र, २१ अक्टूबर १८१५, कान्स १० नवम्बर १८१५, संख्या १६, एफ पी; हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ८६, मैमॉयर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ ४३६, देहली में जोधपुर के वकील ने कहा कि महाराजा ने अमीर खाँ को उसके स्वर्गीय दीवान को मार डालने के लिए उकसाया था—मैटकाफ का ऐडम को पत्र, ७ नवम्बर १८१५, कान्स २५, नवम्बर संख्या ३१, एफ पी के अनुसार। यही एक एकाकी कथन है जिसमें मानसिंह को इन्द्रराज की हत्या के मामले में अभिग्रस्त किया गया है। अन्य किसी भी समकालीन स्रोत ने इस हत्या में मानसिंह के अभिग्रस्त होने के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा है, और बाद का उसका आचरण भी इस सम्बन्ध में उसको निर्दोष सिद्ध करता है। तथ्य यह है कि अंग्रेज रेजीडेंट को भी जोधपुर-वकील के इस कथन पर पूरा विश्वास नहीं हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि वकील स्वयं षडयन्त्र में सम्मिलित था।

६५. हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८७२, एफ ७८–८२, राठौड़ां री ख्यात, भाग १२, एफ ३२६ तवारीख़ मानसिंह, एफ २१०

को लूट लेगा और दुर्ग पर आक्रमण करेगा।[६६] अपने दरबारियों द्वारा दबाए जाने और अमीर खाँ द्वारा गुंडागिरी करने की धमकी दी जाने के कारण मानसिंह ने अपनी आज्ञा वापस ले ली और अफगानों को दुर्ग से जाने दिया।[६७]

इस दुःखद घटना के उपरान्त अमीर खाँ ने कई बार महाराजा से साक्षात्कार की प्रार्थना की, परन्तु महाराजा (मानसिंह) ने उससे भेंट करना अस्वीकार कर दिया।[६८] मानसिंह को अमीर खाँ से मिलने के विचार मात्र से तीव्र घृणा थी। इसके अतिरिक्त मारवाड़ में सर्वसाधारण में अमीर खाँ के विरुद्ध इतना व्यापक रोष था कि मानसिंह उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता था। उसने हत्या का दुष्कर्म कराने वाले से समागम करना इस कारण से बुद्धिमानी का कार्य नहीं समझा कि कहीं ऐसा न हो कि जनता उसको गलत समझने लग जाए।[६९] अमीर खाँ को भी उस घृणास्पद अपराध के कारण उसके (अमीर खाँ के) विरुद्ध सर्वसाधारण में जो आक्रोष उत्पन्न हो गया था उससे उसे अपनी सुरक्षा के प्रति आशंका हो गई थी। इसके अतिरिक्त सिंघवी इन्द्रराज के सम्बन्धी और समर्थक हत्या का बदला लेने का प्रयत्न कर रहे थे।[७०]

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, मानसिंह को अपने दीवान और आध्यात्मिक गुरु की हत्या से ऐसा गहरा आघात लगा कि उसकी समस्त अभिरुचि समाप्त हो गई, और वह अत्यन्त विषादमय एवं उदासीन हो गया।[७१] आयसदेवनाथ का दाह-संस्कार किया गया और दुर्ग में जयमंदिर के पास उसकी समाधि बनाई गई। सिंघवी इन्द्रराज का अन्तिम संस्कार रसौली में किया गया, जहाँ महाराजा ने

---

६६. मेटकाफ का ऐडम को पत्र, २८ अक्टूबर १८१५, कान्स १७ नवम्बर १८१५, संख्या २६, एफ पी

६७. वही, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ८६, तवारीख मानसिंह, एफ २१२

६८. पी० आर० सी० भाग १४, संख्या २४७, हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८७२, एफ ७८–८२

६९. वही।

७०. मेटकाफ का ऐडम को पत्र, २ नवम्बर १८१५, कान्स २५ नवम्बर १८१५, संख्या ३१ एफ पी, पी० आर० सी०, भाग १४, संख्या २४८

७१. केवेन्डिश का कोलब्रुक को पत्र, २७ जून १८२८, कान्स २६ जुलाई १८२८, संख्या २४, एफ पी, हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८७२ एफ १८–८२

एक छतरी का निर्माण करवाया और एक मूर्ति स्थापित की ।[७२] मानसिंह ने सिंघवी इन्द्रराज के पुत्र फतहराज को व्यक्तिगत संवेदना-पत्र भेजा जिसमें उसने सिंघवी इन्द्रराज की मृत्यु पर गहरा दुःख और सन्ताप व्यक्त किया था और राज्य के प्रति की गई उसकी श्लाघनीय सेवाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी ।[७३]

हत्या के परिणाम :

मारवाड़ के राजनीतिक दृश्य से सिंघवी इन्द्रराज और आयसदेवनाथ दो अत्यन्त शक्तिशाली और प्रभुत्वशाली व्यक्तित्वों के हट जाने का राज्य की राजनीति पर गहन और महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा । अपने सरदारों और दरबारियों के भीषण षडयन्त्र के विरुद्ध मानसिंह असहाय हो गया और उसकी स्थिति एक प्रभावहीन दर्शक की भाँति हो गई ।[७४] वस्तुतः उसने राज्य के प्रशासनिक मामलों से अपने को हटा लिया और वह एकान्तवास में रहने लगा ।

अमीर खाँ का सबसे अधिक शक्तिशाली व्यक्ति के रूप में उदय हुआ और वस्तुतः उसके आदेश के अनुसार ही राज्य के राजनीतिक तंत्र की रचना हुई ।[७५] मेहता अखयचंद मुख्तियार बना, लक्ष्मीचन्द दीवान नियुक्त हुआ और आउवा, आसोप, और नीमाज के ठाकुरों के समर्थन से भंडारी चतुर्भुज फौजबख्शी नियुक्त किया गया । उन्होंने राज्य के सभी महत्त्वपूर्ण पदों पर अपने विश्वास के आदमियों को नियुक्त कर दिया ।[७६] अमीर खाँ एक भयानक आतंक बन गया और सभी संबंधित व्यक्ति उससे भयभीत थे । इससे वह लोभी पठान अपनी माँगों को अनाप-शनाप ऊँची रखने और दूसरे पक्ष को उन्हें पूरा करने हेतु विवश करने के लिए और भी अधिक प्रोत्साहित हो गया ।[७७] फिर, जैसाकि उसे वचन दिया गया था, अमीर खाँ ने षडयन्त्रकारियों से २८ अक्टूबर १८१५ को नौ लाख पचास हजार रुपये (९,५०,०००)

---

७२. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ९४; तवारीख मानसिंह, एफ २११

७३. मानसिंह का पत्र सिंघवी फतहराज को, वि० सं० १८७२, आश्विन

७४. पी० आर० सी०, भाग १४, संख्या २४७

७५. मेटकाफ का ऐडम को पत्र, १७ अक्टूबर १८१५, कान्स १० नवम्बर १८१५, संख्या १४, एफ० पी०, मेटकाफ का ऐडम को पत्र, २ नवम्बर १८१५, कान्स २५ नवम्बर १८१५, संख्या ३१, एफ पी

७६. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ९१, हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८७३, एफ ४८, तवारीख मानसिंह, एफ २१२

७७ मेटकाफ का ऐडम को पत्र, २ नवम्बर १८१५, कान्स २५ नवम्बर १८१५, संख्या ३१, एफ पी

वसूल कर लिए।[७८] परन्तु अमीर खाँ का कभी तृप्त न होने वाला लोभ फिर भी शान्त नहीं हुआ और उसने उसके उपरान्त भी सरदारों और मुत्सद्दियों को ६ लाख पचास हजार रुपये के एक अन्य बन्ध-पत्र पर हस्ताक्षर करने पर विवश किया, जिसका भुगतान अगले वर्ष ५ नवम्बर १८१६ को किया जाना था।[७९] इस प्रकार उसने वस्तुतः मारवाड़ के अधिकारियों को अपने आदेश मानने पर विवश कर दिया और उनसे बीस लाख रुपये ऐंठ लिए जिनमें से पाँच लाख रुपये कार्य-संपादन से पूर्व ही प्राप्त हो चुके थे।[८०] अमीर खाँ दिसम्बर १८१५ में मारवाड़ से चला गया।[८१]

गुलराज ने षडयन्त्रकारियों को सत्ता से हटा दिया :

जब जोधपुर में इस प्रकार की विपादमय घटनाएँ घट रही थीं तब स्वर्गीय सिंघवी इन्द्रराज का भाई गुलराज अपनी सेना के साथ सोजत में था। जब उसने अपने भाई की हत्या का दुःखद समाचार सुना तब वह कोट का घाना आया और वहाँ से उसने महाराजा मानसिंह को एक गुप्त पत्र यह निश्चित करने के लिए भेजा कि क्या वह हत्या उसकी इच्छा के विरुद्ध हुई है ? और उसने महाराजा को विश्वास दिलाया कि यदि ऐसा हुआ हो तो वह शत्रुओं से प्रतिशोध लेगा। मानसिंह ने उसके प्रस्ताव को इस शर्त पर कि यदि उसे यह आत्म विश्वास हो कि उसकी इतनी शक्ति है कि वह राज्य का प्रशासन चला सकेगा, स्वीकार कर लिया।[८२] इस पर गुलराज ने भंडारी पृथ्वीराज, मानमल तथा अन्यों को साथ लेकर अपनी सेना इकट्ठी की और बापू सिंधिया से उसकी सहायता हेतु आने के लिए सम्पर्क स्थापित किया। उसने दो हजार सेना एकत्रित करली और अमीर खाँ के प्रभाव से राज्य को

---

७८. मेहता अखयचन्द का अमीर खाँ को रुक्का, वि० सं० १८७२, कार्तिक कृष्ण पक्ष की ग्यारस, खरीता बही, संख्या १२, एफ ३१६ पी० आर० सी०, भाग १४, संख्या २४३, मानसिंह का जगतसिंह को पत्र, वि० सं० १८७२ कार्तिक कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी, संख्या ७/२५५ बंडल संख्या ७, मैमॉयर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ ४४०

७९. वही, पी० आर० सी०, भाग १४, संख्या २४३

८०. पी० आर० सी० भाग १४, संख्या २४३

८१. मैमॉयर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ ४४०, पी० आर० सी० भाग १४, संख्या २४३, गोडवाल की हाकिमी की कीमत पर अखयचन्द ने शम्भूमल से १,२५,००० रुपये की माँग की जिससे कि अमीर खाँ को दी जाने वाली रकम इकट्ठी की जा सके, तवारीख मानसिंह, एफ २१३, के अनुसार

८२. तवारीख़ मानसिंह, एफ २१३,

मुक्त करने के लिए जोधपुर की ओर कूच किया, तथा १ फरवरी १८६१ को 'राई का बाग' में अपना पड़ाव डाला।[८३]

गुलराज के जोधपुर आगमन से षडयन्त्रकारियों का साहस नष्ट हो गया और वे घबरा गए। उसका विरोध करने का असफल प्रयत्न करने के उपरान्त मोहता अखयचन्द ने महात्मा आत्माराम की समाधि में शरण ली और शेष पाँच षडयन्त्रकारी ठाकुर बख्तावरसिंह, केसरीसिंह, बिशनसिंह, और शम्भूसिंह अपने मुखिया चतुर्भुज के साथ भाग कर चौपासनी चले गए। दूसरे दिन गुलराज अपनी सेना के साथ किले में घुसा। उसने महाराजा से एकान्त में साक्षात्कार की प्रार्थना की। मानसिंह ने प्रसन्न हो कर उसके प्रति शिष्टाचार और आदर प्रदर्शित किया और राज्य का समस्त प्रशासन गुलराज और फतहराज को सौंप दिया। फतहराज को औपचारिक रूप से दीवान और फौजबख्शी नियुक्त किया गया।[८४] षडयन्त्रकारियों के प्रभाव को नष्ट करने के लिए चैनकरण को उनके विरुद्ध भेजा गया जो इस बीच चौपासनी से हटकर चंदावल चले गए थे। जब सिंघवी चैनकरण वहाँ पहुँचा तब वे अतिभय के कारण भाग कर अपनी जागीरों को चले गए। १२ मार्च १८१६ को व्यास चतुर्भुज अपने साथियों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया और जोधपुर के कारागार में डाल दिया गया।[८५]

क्योंकि मानसिंह राज्य के प्रशासन की ओर से नितान्त उदासीन था अतः सम्पूर्ण शक्ति गुलराज और फतहराज के हाथों में केन्द्रित हो गई। उन्होंने उन सरदारों के गाँव ज़ब्त कर लिए जो अनुग्रह विहीन हो गए थे और उन्हें एक निश्चित रकम चुकाने का वचन देने के लिए विवश किया। इस प्रकार गुलराज राजधानी में दीवान और फौजबख्शी का कार्य करता था और फतहराज अपनी सेना के साथ परगनों में चक्कर लगाता था।[८६]

उस समय यद्यपि सिंघवी गुलराज और फतहराज शक्तिशाली हो गए तथापि विरोधियों का प्रतिस्पर्द्धी गुट जो अमीर खाँ के प्रभाव में था, सम्पूर्ण रूप से प्रभावहीन नहीं हुआ था। वह गुप्त रूप से अपनी शक्ति का निर्माण करने का प्रयत्न कर

---

८३. मेटकाफ का ऐडम को पत्र, २ नवम्बर १८१५, कान्स २५ नवम्बर १८१५, संख्या ३०, एफ पी, हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८७३, एफ ७८–८२, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ६१

८४. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ६१

८५. तवारीख़ मानसिंह, एफ २१५

८६. पी० आर० सी० भाग १४, संख्या ३००, मुदियार ख्यात, बस्ता संख्या ४०, एफ २५७

रहा था। क्योंकि गुलराज ने बापू सिंधिया को आमंत्रित किया था,[८७] अतः जोधपुर में उसकी उपस्थिति गुलराज को प्रबल बनाने में शक्तिशाली कारण बनी।[८८] परन्तु वह अमीर खाँ के प्रभाव का मुकाबला करने में पूर्ण रूप से असफल रहा।[८९] वस्तु-स्थिति यह थी कि बापू सिंधिया ने भी अमीर खाँ की भाँति राज्य का शोषण किया तथा अपना मूल्य माँगा, और वह समय-समय पर अमीर खाँ से समझौता वार्ता भी करता रहा। इस प्रकार बापू सिंधिया और अमीर खाँ दोनों के द्वारा निर्मम शोषण के कारण राज्य की वित्तीय स्थिति और अधिक खराब हो गई।[९०] बापू सिंधिया के बढ़ते हुए प्रभाव का प्रतिकार करने के लिए अमीर खाँ की सेनाओं ने भी जोधपुर की ओर कूच किया।[९१] छतरसिंह सहित विरोधी गुट अमीर खाँ की माँगों को पूरा करने के लिए तैयार था, बशर्तें उसकी सहायता से शक्ति उनके हाथ में निहित कर दी जाती।[९२] बापू सिंधिया और अमीर खाँ दोनों राज्य की आन्तरिक राजनीति में सक्रिय रूप से संलग्न थे और, जैसा कि उनके लिए सामान्य बात थी, वे मारवाड़ के क्षेत्र को लूट रहे थे। यद्यपि मानसिंह बापू सिंधिया और अमीर खाँ दोनों से ही अत्यधिक असंतुष्ट था तथापि वह राज्य में उनके हानिकर प्रभाव को रोक सकने में असहाय था। उसने उनके द्वारा माँगी गई द्रव्यराशि का आंशिक भुगतान करके दोनों को शान्त करने का प्रयत्न किया।[९३] द्रव्य संबंधी निजी स्वार्थ के अतिरिक्त एक और भी कारण था जिससे कि अमीर खाँ जोधपुर में ठहरना चाहता था। क्योंकि जनवरी १८१७ में एक अन्य पिंडारी नेता चीतू ने अमीर खाँ से महाराजा पर अपने भारी प्रभाव का उपयोग कर अंग्रेजों के विरुद्ध उसके परिवार को शरण दिलाने की प्रार्थना की थी,

---

८७. दौलतराव सिंधिया का जगतसिंह को पत्र, वि० सं० १८७३ मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की ग्यारस।

८८. पी० आर० सी० भाग १४, संख्या २७७

८९. पी० आर० सी० भाग १४, संख्या २८२,

९० दौलतराव सिंधिया का मानसिंह को पत्र, वि० सं० १८७३ ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष सप्तमी संख्या ६८, पोर्टफोलियो फाइल, संख्या ६, मंजीदास का मानसिंह को पत्र, वि० स० १८७३, मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष की तृतीया, पोर्टफोलियो फाइल, सख्या २७, पी० आर० सी० भाग १४, संख्या २७७

९१. वही।

९२. पी० आर० सी० भाग १४, संख्या २९२, २९८

९३. पी० आर० सी० भाग १४, संख्या २८२

अतः चीतू ने अपने पत्र में भी मानसिंह से इसी आशय की प्रार्थना की थी,[९४] जब अमीर खाँ और बापू सिंधिया जोधपुर के दरबार में परस्पर विरोधी गुटों का समर्थन करने में सक्रिय रूप से संलग्न थे तब गुलराज, बापू सिंधिया को अमीर खाँ का निरसन करने के लिए निरन्तर दबा रहा था।[९५] परन्तु बापू सिंधिया ने अपने मूल्य स्वरूप पर्याप्त धनराशि ऐंठे बिना ऐसा करने से इन्कार कर दिया। इसके विपरीत सिंधिया मारवाड़ के क्षेत्र को लगातार लूटता रहा।[९६] अस्तु, आन्तरिक षडयन्त्र तथा संघर्ष और अमीर खाँ तथा बापू सिंधिया के बाहरी हस्तक्षेप ने निकृष्टतम संभ्रम और अस्थिरता उत्पन्न कर दी। ऐसी स्थिति में गुलराज लगभग एक वर्ष (मार्च १८१७ तक) प्रशासन चलाता रहा।

जब राजनीतिक स्थिति इतनी अधिक डावांडोल थी तब गुलराज के मुख्य प्रतिद्वन्द्वी मोहता अखयचन्द ने राज्य में राजनीतिक प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए महाराजा और गुलराज के विरुद्ध पुनः षडयन्त्र किया। अपनी महत्वाकांक्षा को पूरा करने के लिए अखयचन्द ने मार्च १८१७ में आयसमूरतनाथ, मोहता उत्तमचन्द, महा मंदिर के कामदार तथा जोशी मेघदूत के माध्यम से आयसदेवनाथ के भाई भीमनाथ को अपने पक्ष में कर लिया। भीमनाथ पर इस बात का प्रभाव डाला गया कि महाराजा ने व्यवहार में अपने सम्पूर्ण अधिकार गुलराज को दे दिए हैं और यदि छत्तरसिंह जो सत्रह वर्ष का था अधिकारारूढ़ हो जाता है तो वह छतरसिंह की आज्ञा से और भीमनाथ के निर्देशन में राज्य की सेवा करेगा।[९७] इसी प्रकार उसने कुंवर छतरसिंह और उसकी माता चावड़ी रानी को इस बात का आश्वासन देकर कि सिंघवियों को छोड़कर अन्य सभी वर्गों के लोग उनके साथ हैं, अपने पक्ष में कर लिया। अन्त में, वह अपने नेतृत्व में गुलराज से सत्ता छीनने के लिए जोशी मेघदूत, व्यास त्रिनोदीराम, मुंशी जीतमल, खींची बिहारी दास, किलेदार नाथकरण और आउवा, आसोप, निमाज तथा चंदावल के ठाकुरों और खेजड़ला के भाटियों का एक शक्तिशाली गुट बनाने में सफल हो गया।[९८]

योजना के अनुसार षडयन्त्रकारियों ने ४ अप्रेल १८१७ को गुलराज को कैद कर

---

९४. पी० आर० सी० भाग १४, संख्या ३००, पृष्ठ ३६७–६८
९५. पी० आर० सी० भाग १४, संख्या २६२, २६८, ३०५
९६. पी० आर० सी० भाग १४, संख्या २६१, २६६, ३००
९७. केवेन्डिश का कोलब्रुक को पत्र, २७ जून १८२८, कान्स, २६ जुलाई १८२८, संख्या २४, एफ पी, हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८७४ एफ २२; तवारीख मानसिंह, एफ २१५
९८. तवारीख मानसिंह, एफ २१७

लिया और उसको उसी दिन पठानों ने जेल में ही मार डाला।[६६] फतहराज को अमीर खाँ के सैनिकों ने मेड़ता में कैद कर लिया और मेड़ता के हाकिम गोपालदास ने अमीर खाँ को पाँच हजार रुपये देकर उसे (फतहराज को) मुक्ति दिलाई। उसके उपरान्त फतहराज कुचामन चला गया।[१००]

छतरसिंह को युवराज मनोनीत किया गया :

प्रतिद्वन्द्वी गुट ने गुलराज और फतहराज को सत्ता से निरसित कर दिया। मोहता अखयचन्द, सालम और आयसभीमनाथ ने मानसिंह को सत्ता से निवृत्त होने तथा छतरसिंह को युवराज नियुक्त करने के लिए विवश कर दिया।[१०१] मानसिंह लगभग असहाय था। दबाव से बाध्य होकर १६ अप्रेल १८१७ को उसने अपने सिंहासन-त्याग और अपने इकलौते पुत्र सत्रहवर्षीय छतरसिंह को युवराज नियुक्त करने हेतु राजाज्ञा पर हस्ताक्षर कर दिए।[१०२]

शासन की बागडोर संभालने पर छतरसिंह ने मोहता अखयचन्द को दीवान नियुक्त किया और पोकरण के ठाकुर सालमसिंह को प्रधान का पद दिया गया।[१०३] प्रशासन में परिवर्तन अमीर खाँ के प्रभाव के अन्तर्गत किए गए।[१०४] उसने अपनी सेवाओं के उपलक्ष में छतरसिंह से एक बडी धनराशि माँगी और दाताराम को वह राशि लेने भेजा। छतरसिंह ने इस शर्त पर कि अमीर खाँ मारवाड़ से चला जाय एक लाख पचास हजार रुपए देना स्वीकार किया, जिसे अमीर खाँ ने भी स्वीकार

---

६६. केवेन्डिश का कोलब्रुक को पत्र, २७ जून १८२८, कान्स २६ जुलाई १८२८, संख्या २४, एफ पी०, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १० एफ ११४, पी० आर० सी० भाग १४, संख्या ३१३

१००. तवारीख मानसिंह, एफ २२०–२२१, मैमॉयर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ ४६०

१०१. हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८७४, एफ २२, तवारीख मानसिंह एफ २१७. भीमनाथ महाराजा से मोती महल में मिला और उसे छतरसिंह को शासनाधिकार सौंप देने के लिए दबाया।

१०२. मानसिंह का जगतसिंह को पत्र, वि० सं० १८७३ वैशाख शुक्ल पक्ष की चतुर्थी संख्या ७/२५८, बंडल संख्या ७, मैटकॉफ को देहली के रेजीडेंट का पत्र, २६, मई १८१७, कान्स १४ जून १८१७, संख्या १३, एफ पी, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ११८

१०३. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ११६, हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८७४, एफ २२

१०४. मैमॉयर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ ४६०, पी० आर० सी० भाग १४, संख्या ३१३, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ११६

कर लिया। तदनुसार दाताराम और अमीर खाँ के श्वसुर मुहम्मद अयाज खाँ ने वचन दी हुई राशि छतरसिंह से प्राप्त की।[१०५]

अपने सलाहकारों के दुष्प्रभाव के अन्तर्गत छतरसिंह ने महाराजा को भी मार डालने का प्रयत्न किया। उसके प्राण लेने के लिए अनेक बार प्रयत्न किए गए परन्तु मानसिंह की सजगता ने अनर्थ को घटित होने से रोक लिया।[१०६]

वचन दी हुई राशि का अमीर खाँ को भुगतान कर दिए जाने पर भी उसकी निरंकुशता या मनमानी समाप्त नहीं हुई। छतरसिंह की नई सरकार उसके विरुद्ध असहाय थी। वह मारवाड़ से द्रव्य बटोर रहा था तथा उसके प्रदेश को इस भयंकरता से लूटता एवं विनष्ट करता रहा था जो कभी सुनी भी नहीं गई थी। यह स्थिति तब तक बनी रही जब तक कि मारवाड़ ने १८१८ में ईस्ट इंडिया कम्पनी से मित्रता की संधि नहीं कर ली।

---

१०५. मैमॉयर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ ४५७–६०

१०६. केवेन्डिश का कोलब्रुक को पत्र, २७ जून १८२८, कॉन्स २६ जुलाई १८२८, संख्या २४, एफ पी, तवारीख मानसिंह, एफ २२६, राठौड़ां की ख्यात, भाग २, एफ ३२७

४

मानसिंह के अंग्रेजों से सम्बन्ध

भारतीय देशी राज्यों के प्रति अंग्रेजों की नीति :

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारतीय देशी राज्यों के प्रति अंग्रेजों की नीति को सही रूप में दो अवस्थाओं में बाँटा जा सकता है। प्रथम अवधि में जो कि १८१३ में समाप्त हुई उन्होंने उन भारतीय शक्तियों (राज्यों) के साथ जो कि उनके द्वारा स्थापित घेराबन्दी के बाहर थीं, अहस्तक्षेप की नीति को अपनाया।[१] इसमें संदेह नहीं है कि वे गम्भीर संकटकाल में इस नीति से विचलित होने पर विवश हो जाते थे, और अव्यवस्था की भयंकर सम्भावनाओं के विरुद्ध संधि करते थे, तथा उसके द्वारा भारतीय राजनीतिक स्थिति को स्थायित्व प्रदान करते थे।[२] अतएव वे जमुना के पश्चिम और दक्षिण में जो भी शक्तियाँ थी उनसे प्रतिरक्षा सन्धि अथवा सहायक आश्रय के सिद्धान्त द्वारा अपने संबंधों को इस प्रकार नियंत्रित कैर लेने के लिए उत्सुक थे जिससे वे जयनगर (जयपुर) से बुन्देलखण्ड तक कंपनी से मित्रता की संधि से बंधे हुए और उसकी शक्ति के संरक्षण में छोटे राज्यों की एक अवरोधक बाढ़ बन सकें।[३] यद्यपि इन सभी राजनीतिक संबंधों की वह मूल भावना जिसके अनुसार वे अनुशासित होने को थे, परस्पर आदान-प्रदान पर आधारित थी तथापि बाद में उसके द्वारा अंग्रेजों के लिए अपनी श्रेष्ठता की अभिपुष्टि सम्भव होगई। उन्होंने अपने मित्रों के लिए भारत के अन्दर या बाहर की किसी भी शक्ति से ब्रिटिश

१. चोपरा—ला रिलेटिंग टू प्रोटैक्शन ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ स्टेट्स इन इंडिया, पृ० ७

२. मार्टिन, वीकली डिस्पैचेज भाग १, पृ० ५, रूथनास्वामी : ब्रिटिश एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम इन इंडिया, पृ० ५६२

३. लेक का वैलेजली को पत्र, २७ नवम्बर १८०३, कान्स, २ मार्च १८०४, संख्या १८५, यफ यस

सरकार के माध्यम बिना कोई संधि न कर सकने की शर्त लगा दी।[४]

अंग्रेजों का संधि-प्रस्ताव और उनकी असफलता :

अंग्रेज-मराठा युद्ध छिड़ जाने पर अंग्रेजों ने मारवाड़ के शासक को अपनी ओर मिलाने के लिए मित्रता का प्रस्ताव किया। उनका विचार था कि महाराजा भीमसिंह उन जिलों की पुनः वापसी के लिए उनकी सहायता की याचना करेगा जो महादाजी सिंधिया ने उसके पूर्वजों से बलपूर्वक छीन लिए थे। जोधपुर के राज्य का एक अपना सामरिक महत्त्व भी था। मारवाड़ से मित्रता के संबंध होने पर इस बात की संभावना समाप्त हो जाती कि वह प्रतिकूल पृष्ठ-प्रदेश महादाजी सिंधिया से मिल जाता और उसके कारण पंजाब और सिंध दोनों में ही अंग्रेजों के हितों को ख़तरा उत्पन्न हो जाता। जो व्यापारिक मार्ग मारवाड़ में होकर जाते थे और पश्चिमी समुद्र तट को शेष देश से जोड़ते थे वे भी अंग्रेजों के लिए अत्यधिक सहायक और उपयोगी सिद्ध हो सकते थे।[५] परन्तु भीमसिंह द्वारा, प्रस्ताव के अनुकूल प्रत्युत्तर देना अस्वीकार करने से उनकी (अंग्रेजों की) आशाएँ समाप्त होगई।[६]

१८०३ की संधि के लिए वार्ता :

२४ सितम्बर १८०३ को अस्सायें और १ नवम्बर को लसवारी में हुई सिंधिया की पराजय ने उसकी सैनिक शक्ति की श्रेष्ठता की धाक को समाप्त कर दिया।[७] भीमसिंह की आकस्मिक मृत्यु ने एक ऐसे राजकुमार को गद्दी पर बैठने में सहायता दी जिसके सामंतों की शत्रुता ने उसको अंग्रेजों से मित्रता की याचना के लिए प्रेरित किया। वह उनसे इस बात का पक्का आश्वासन चाहता था कि वे उसके शत्रुओं में से किसी की भी सहायता नहीं करेंगे।[८] साथ ही उसकी यह भी इच्छा थी कि यदि

४. चोपरा उल्लिखित, रूथनास्वामी उल्लिखित, आर्टिकल १, ट्रीटी विद निजाम, १२ नवम्बर १७६६, आर्टिकल ५, ट्रीटी विद बड़ौदा, ८ मार्च १८०२, आर्टिकल ६, ट्रीटी ऑफ ट्रावनकोर, १८०५, आर्टिकल १, ट्रीटी विद ग्वालियर १८०३, (ऐटचिसन; ट्रीटीज, एन्गेजमेंन्ट्स एण्ड सनद्स)

५. मारटिन : वैलेजली के डिसपैच, पृष्ठ १६६–१७०, २३५, २४१–४२, पी० आर० सी० भाग ८, पृष्ठ १२३

६. भीमसिंह का दौलतराव को पत्र, वि० सं० १८६८ आश्विन शुक्ल पक्ष की तृतीया (१६ सितम्बर १८०३), अर्जी बही, संख्या ४, एफ ५५

७ सरकार, संपादक की भूमिका, पी० आर० सी० भाग १४, पृष्ठ ५

८. मैलकम का ऐडमान्सटन को पत्र, २ सितम्बर १८०५, कान्स, १६ सितम्बर १८०५, संख्या ६२–६३, यफ यस

सिंधिया उस दुर्जेय संघ से बचाव के लिए आए जो कि उसके विरुद्ध मारवाड़ में बनने जा रहा था,[९] तो वे सिंधिया के विरुद्ध उसकी सहायता करें।

अंग्रेज मानसिंह की केवल इस शर्त पर सहायता करने के लिए तैयार थे कि वह अन्य शक्तियों से केवल उनके द्वारा ही संबंध रखना स्वीकार करेगा। मानसिंह ने इस शर्त में अपनी स्वतंत्रता के लिए ख़तरा देखा और इसलिए उसने ६ दिसम्बर १८०३ को भंडारी कल्याणदास और गहलौत जीवनदास को होल्कर के पास भेजा।[१०] साथ ही अंग्रेजों से उसकी संधि वार्ता अबाध रूप से चलती रही।[११] यद्यपि अंग्रेजों ने मानसिंह से यथेष्ट उदार शर्तों का प्रस्ताव किया, जो पारस्परिक आदान-प्रदान पर आधारित था तथापि वे चाहते थे कि वह अन्य राज्यों से अपने झगड़ों को उनकी मध्यस्थता के लिए प्रस्तुत करे और किंचित् अधीन स्थिति में रहकर व्यवहार करे। साथ ही उन्होंने अजमेर या सांभर पर उसके दावे को स्वीकार नहीं किया। अतएव मानसिंह ने अंग्रेजों द्वारा प्रस्तुत मित्रता के प्रस्ताव की पुष्टि करने के बजाय एक दूसरी ही संधि का प्रस्ताव उनके सामने रखा।[१२] वह अंग्रेजों के परामर्श को मानने के लिए तैयार था और उनको सूचित किए बिना तथा उनकी सलाह लिए बिना किसी भी विदेशी को अपनी सेवा में न रखने के लिए भी तैयार था, परन्तु वह चाहता था कि यदि अंग्रेज अजमेर को विजय करें तो वे उसे मानसिंह को दे दें। यदि ऐसा न हो तो वे सिंधिया से अजमेर छीन लेने में उसकी सहायता करें।[१३] इस प्रकार, जिस संधि के लिए उसने पहले वार्ता की थी उस संधि की पुष्टि न करके उसने अपनी शर्तों को ही मनवाने का हौसला किया। उसने १७ जनवरी १८०४ को जसवंतराव होल्कर से एक ऐसी संधि करली थी जिसकी शर्तों के अनुसार उसे अजमेर और सांभर का मिलना प्रायः निश्चित था।[१४] उस समझौते से उत्पन्न होने वाला दायित्व केवल यही था कि वह होल्कर की सहायता के लिए सेना भेजे और उसके परिवार को जोधपुर में सुरक्षित शरण दे।

---

९. पी० आर० सी, भाग १४, पृष्ठ

१०. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८५६–६६), संख्या ८, एफ ४४

११. मैलकम का ऐडमान्सटन को पत्र, २ सितम्बर १८०५, कान्स १९ सितम्बर १८०५, संख्या ६२–६३ एफ एस

१२. १४ जून १८०४ को मानसिंह ने अंग्रेजों से जिस संधि का प्रस्ताव किया था उसका अनुवाद, संख्या ५६ ए, एफ एस

१३. वही।

१४. जसवंतराव होल्कर का मानसिंह से कौलनामा, वि० सं० १८६० माघ शुक्ल पक्ष की पचमी (१७ जनवरी १८०४) अर्जी बही, संख्या ५, पृष्ठ १०६

अंग्रेजों ने अनुभव किया कि उस साहसिक कार्य में मानसिंह ने अपने चातुर्य से उन्हें परास्त कर दिया है अतः उन्होंने मानसिंह द्वारा प्रस्तावित संशोधित प्रारूप (मसविदा) को, विशेष रूप से मानसिंह की होल्कर से मित्रता को ध्यान में रखकर अस्वीकार कर दिया।[१५] मानसिंह ने जसवन्तराव को सहायता के लिए जो वचन दिए थे और उसके प्रति जो मित्रता व्यक्त की थी उनको अंग्रेजों ने अत्यन्त गम्भीरता से लिया। संधि के संबंध में टालने और समझ में न आने वाले उसके आचरण से अंग्रेज अत्यन्त चिन्तित हो उठे।[१६] अतएव संधि में शर्त सहित जिन दायित्वों का समावेश कर दिया गया था उनसे उन्होंने अपने को बँधा हुआ नहीं माना। साथ ही सिंधिया ने भी मानसिंह का नाम अंग्रेजों के मित्रों की सूची में समाविष्ट किए जाने पर आपत्ति की[१७]

१७ जनवरी १८०४ को मानसिंह ने होल्कर के साथ जिस सन्धि पर हस्ताक्षर किए उसकी शर्तों से अंग्रेजों के प्रति उनका द्वेष स्पष्ट प्रकट होता था। उसने होल्कर के परिवार को जून १८०५ में शरण दी।[१८] उसने उसके परिवार के सदस्यों को केवल सुरक्षित आश्रय ही नहीं दिया वरन् उन्हें 'मासुदी' और 'संगोली' के गाँव भी दिए।[१९] उसके परिवार के सदस्य मानसिंह के आश्रय में जुलाई १८०९ तक (अर्थात् चार वर्ष) रहे।[२०] मानसिंह के रुख से अंग्रेज रुष्ट होगए और विशेष रूप से जब मानसिंह ने १८०५ में अजमेर के समीप होल्कर की सेना से मिलकर उसकी सहायता के लिए यथेष्ट सेना भेजी तब अंग्रेजों ने जयपुर पर सिंधिया के दावे का समर्थन करना आरम्भ कर दिया।[२१] जब सिंधिया ने जोधपुर पर आक्रमण करने

---

१५. मानसिंह द्वारा प्रस्तावित संधि का अनुवाद, कान्स १४ जून १८०४, संख्या ५६ ए, एफ एस

१६. लेक का वैलेजली को पत्र, ७ अप्रैल १८०४, कान्स ६ सितम्बर १८०४, संख्या १, एफ एस, ऐडमान्सटन का मैलकम को पत्र, ६ मई १८०४, कान्स ६ सितम्बर १८०४, संख्या ६, एफ एस

१७. जगतसिंह का दौलतराव सिंधिया को पत्र, वि० सं० १८६१ श्रावण शुक्ल पक्ष की तृतीया (७ अगस्त १८०४), 'जयपुर कपट द्वार' के कागजात।

१८. भंडारी गंगाराम का जसवन्तराव होल्कर को पत्र, वि० सं० १८६० द्वितीय चैत्र कृष्ण पक्ष त्रयोदशी (६ अप्रैल १८०४), अर्जी बही, संख्या एफ १०५, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ २–४, २२

१९. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ ३७

२०. पी० आर० सी० भाग ११, संख्या १३४

२१. पी० आर० सी० भाग ११, संख्या १३४

का विचार किया तब होल्कर उसकी सहायता के लिए नहीं आ सका और तब मानसिंह के पास अपने पैतृक राज्य की रक्षा करने हेतु इसके अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रहा कि वह सिंधिया की खिराज चुकाने की शर्त को स्वीकार करे।[२२] सिंधिया ने अपनी ओर से मित्रतापूर्ण उत्तर दे दिया, परन्तु सहायता देने के संबंध में कोई निश्चित वचन नहीं दिया।[२३]

मित्रता के लिए मानसिंह की उत्सुकता :

मानसिंह ने १८०७ में पुनः व्यास फतहराम को देहली में रेजीडेंट के पास यह प्रार्थना लेकर भेजा कि अंग्रेज सरकार की मैत्रीपूर्ण मध्यस्थता से वह जोधपुर शासक और जयपुर के महाराजा के बीच चलने वाले झगड़े को तुरन्त समाप्त करने में उसकी सहायता करे।[२४] अंग्रेजों ने यह सुझाव देकर कि कम्पनी दोनों शासकों की शुभ चिंतक है और वह यह देखने की इच्छुक है कि वे वर्तमान मतभेदों को बिना रुधिर बहाये तय करलें, अपने पुराने उत्तर को दोहरा दिया।[२५] गिंगोली की पराजय के उपरान्त मानसिंह ने मार्च १८०७ में ठाकुर दास के द्वारा अंग्रेजों से महाराजा जयपुर के विरुद्ध सहायतार्थ पुनः प्रार्थना की और क्षतिपूर्ति के रूप में साँभर के साथ अन्य तीन जिले दे देने का प्रस्ताव रक्खा।[२६] परन्तु अंग्रेजों ने, खेद के साथ, ऐसा करने में अपनी असमर्थता प्रकट की और हस्तक्षेप करने से इन्कार कर दिया। उन्होंने उससे (मानसिंह) स्पष्ट कहा कि वे अपने राज्य को बढ़ाने के इच्छुक नहीं हैं।[२७]

---

२२. पी० आर० सी० भाग ११, संख्या १३४, खरीता मानसिंह का दौलतराव सिंधिया को वि० सं० १८६२ पौष शुक्ल पक्ष की अष्टमी, अर्जी बही, संख्या ५, एफ ५–७

२३. पी० आर० सी० भाग ११, संख्या १६२

२४. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, ८ फरवरी १८०७, कान्स २६ फरवरी १८०७, संख्या २६, एफ पी; सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, २० फरवरी १८०७, कान्स १२ मार्च १८०७, संख्या २६, एफ पी, १

२५. सिटन का ऐडमान्सटन को पत्र, २० फरवरी १८०७, कान्स १२ मार्च १८०७, संख्या २६, एफ पी

२६. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, १७ मार्च १८०७, कान्स २ अप्रेल १८०७, संख्या ५६, एफ पी, सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, १८ मार्च १८०७, कान्स २ अप्रेल, १८०७, संख्या ६१ एफ पी

२७. सियेटन का ऐडमान्स्टन को पत्र, १७ मार्च १८०७, कान्स २ अप्रेल १८०७, संख्या ५६, एफ पी

१८१० में मानसिंह ने अंग्रेजों से मित्रता स्थापित करने का एक बार और प्रयत्न किया।[२८] इस बार दोनों शासकों के प्रतिनिधि अंग्रेजों के पास पहुँचे। उन्होंने अंग्रेजों को बतलाया कि उन दोनों ने अपने मतभेदों को भुला देना स्वीकार कर लिया है और अपने सौहार्दपूर्ण संबंधों को दोहरे विवाह संबंध से अधिक मजबूत बनाना तय किया है।[२९] दोनों ने अंग्रेजों को बतलाया कि उनके राज्यों में शासक से लेकर निम्नतम दास तक प्रत्येक व्यक्ति अंग्रेजों से मित्रता करने के लिए उत्सुक है एवं उनके विचार से अंग्रेज सरकार ने अब महान रक्षक शक्ति का स्थान ले लिया है और वह शान्तिप्रिय और निर्बल राज्यों के नैसर्गिक संरक्षक बनने की योग्यता रखती है।

उस समय मेटकाफ ने स्पष्ट रूप से यह सुझाव दिया कि राजपूत राज्यों को समाप्त होने से बचाने के लिए अंग्रेजों को अहस्तक्षेप की नीति छोड़ देनी चाहिए। उसकी सम्मति यह थी कि विद्यमान संधियों को एक ओर रखकर कम्पनी द्वारा उन राज्यों को अपने संरक्षण में ले लेना चाहिए। १८१४ में मानसिंह ने पुनः प्रस्ताव रखा कि वही संधि जिसे लार्ड लेक की मध्यस्थता में अंग्रेजों ने १८०३ में तैयार की थी पुनर्जीवित की जानी चाहिए।[३०] परन्तु मेटकाफ पुरानी शर्तों को अपनाने में हिचकिचाया और उसने वे विभिन्न कठिनाइयाँ बतलाई जो ऐसा करने में उपस्थित थीं।[३१]

फिर भी मेटकाफ की टिप्पणी भारतीय राज्यों के प्रति अंग्रेजों के रुख में जो परिवर्तन हो चुका था उसकी स्पष्ट साक्षी थी। वह चाहता था कि अंग्रेज नीति के रूप में और मानवतावादी कारणों से राजपूत राज्यों को समाप्त होने से रक्षा करने के लिए अहस्तक्षेप की नीति को छोड़ दें। परन्तु इस प्रकार की योजना में जो कठिनाइयाँ आने वाली थीं उनकी ओर से वह बेखबर नहीं था, क्योंकि वह योजना बिना सैनिक कार्यवाही के पूरी नहीं की जा सकती थी। इस प्रकार की नीति से भारत के प्रत्येक भाग पर अंग्रेजों का सम्पूर्ण नियंत्रण स्थापित होना अनिवार्य था। परन्तु

---

२८. सियेटन का लुशिंगटन को पत्र, १९ मई १८१०, कान्स ५ जून १८१०, संख्या ५३, एफ पी

२९. देहली के रेजीडेंट का ऐडमान्सटन को पत्र, १० जून १८१०, कान्स २१ जून १८१०, संख्या ४२, एफ पी

३०. मेटकाफ का ऐडमान्सटन को पत्र, २० जून १८११, कान्स १२ जुलाई १८११, कान्स १२ जुलाई १८११, संख्या १, एफ पी

३१. मेटकाफ का ऐडम को पत्र, ३ अप्रेल १८१४ कान्स २२ अप्रेल १८१४, संख्या ११. एफ पी

१८१७ के पिंडारी युद्ध ने जिन परिस्थितियों को उत्पन्न कर दिया था उनके कारण ब्रिटेन के जनमत में उल्लेखनीय परिवर्तन हो चुका था। अतएव कम्पनी ने मेटकाफ के सुझाव को जून १८११ में स्वीकार करने में अधिक कठिनाई अनुभव नहीं की।[३२]

यह कहना अवश्य ही गलत होगा, जैसाकि बहुधा अंग्रेज राजनीतिज्ञ कहा करते हैं, कि राजपूताना के राज्यों को विघटित होने से बचाने के लिए केवल मानवतावादी अभिप्राय से अहस्तक्षेप नीति अपनाए रहना असम्भव बन गया था। वास्तव में, तथ्य यह था कि वह नीति अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की वास्तविकता की उपज थी। वह लार्ड हेस्टिंग्स था जिसने भारतीय राज्यों की समस्या को अन्तर्राष्ट्रीय वकील के क्षेत्र से हटाकर व्यावहारिक राजनीतिज्ञ को हस्तांतरित कर दिया।[३३] मानसिंह और जगतसिंह द्वारा बार-बार की गई प्रार्थनाएँ उस समय तक फलप्रद नहीं हुईं जब तक कि हेस्टिंग्स ने अपने निजी जरनल में यह नहीं लिखा, "हमारा प्रयत्न अंग्रेजी सरकार को वास्तव में सार्वभौम शक्ति बनाने का होना चाहिए।"[३४]

ईस्ट इंडिया कम्पनी को घेराबन्दी की अपनी नीति को तिलाञ्जलि देनी पड़ी और अपने प्रभाव-क्षेत्र में उन प्रदेशों को लेना पड़ा जिन्हें कुछ ही वर्षों पूर्व अपनी संरक्षणता के क्षेत्र से बाहर रख दिया गया था। मुख्यतः मराठों की शक्ति को कुचलने और पिंडारी-आपदा का समूल नाश करने के उद्देश्य से ही अंग्रेजों ने राजपूत राज्यों से मित्रता की संधि करने और उन्हें अपने संरक्षण में लेने का निश्चय किया। इस नीति को अपना कर ही वे मराठों और पिंडारियों के चारों ओर एक सुदृढ पेटी बाँध सके। मराठा संघ के विघटन और पेशवा तथा भोंसले की पराजय के उपरान्त सिंधिया और होल्कर भी अंग्रेजों की इस इच्छा के सामने झुक गए कि वे (अंग्रेज) मध्य भारत और राजपूताना के राज्यों पर जो कि अभी तक मराठों के प्रभाव में थे, अपना राजनीतिक प्रभाव स्थापित करलें।[३५]

यह इसी नीति का परिणाम था कि पिंडारियों का दमन किया जा सका, उनके नेता अमीर खाँ को टोंक का नवाब बनाया गया और जोधपुर सहित तेरह राज्यों से संधियाँ की गईं।[३६]

---

३२. वही,

३३. मेटकाफ का ऐडमान्स्टन को पत्र, २० जून १८११, कान्स १२ जुलाई १८११, संख्या १, एफ एस; वेस्टलेक के एकत्रित किए हुए कागजात, पृष्ठ २०५

३४. मेहता मोहनसिंह; हेस्टिंग्स एण्ड दी इंडियन स्टेट्स, पृष्ठ २६२

३५. हेस्टिंग्स की कार्यवाही का विवरण, ६ फरवरी १८१४, मारक्विस ऑफ हेस्टिंग्स का निजी जरनल (पत्र) भाग १, पृष्ठ ५४–५५

३६. चोपरा : उल्लिखित, पृष्ठ १३

मानसिंह द्वारा पागलपन का बहाना और १८१८ को संधि :

जोधपुर से की गई सन्धि पर ६ जनवरी १८१८ को ऐसे समय पर हस्ताक्षर हुए कि तब से मानसिंह अपने उन व्यक्तियों के प्रति अविश्वासी हो गया जो उसके निकट चारों ओर थे, और उसने पागल होने का बहाना बना लिया। उसका पुत्र छतरसिंह राज्य का प्रतिशासक (रिजेंट) था। स्वरूप और विषय की दृष्टि से यह संधि १८०३ के पूर्ववर्ती प्रस्ताव से बहुत अधिक भिन्न थी।[३७]

१८१८ की संधि के अनुसार ब्रिटिश सरकार ने १०८००० रुपए वार्षिक कर के उस भुगतान के बदले जो महाराजा पहले सिंधिया को देता था, जोधपुर को अपने संरक्षण में ले लिया।[३८] जोधपुर के महाराजा ने १५०० अश्वारोही जब आवश्यकता पड़े तब सामान्य सेवा के लिए जुटाना और जब आवश्यकता पड़े तब जोधपुर राज्य के सम्पूर्ण साधनों को ब्रिटिश सरकार की सेवा के लिए उपलब्ध करना स्वीकार किया।[३९] इस वचन-बन्ध को 'शाश्वत मित्रता की संधि' का नाम दिया गया जिससे दोनों पक्षों के हितों की एकता स्थापित हुई, अर्थात् एक के मित्र और शत्रु दोनों के ही मित्र और शत्रु बन गए।[४०] ब्रिटिश सरकार ने जोधपुर राज्य और उसके प्रदेश की रक्षा करने का दायित्व अपने ऊपर ले लिया।[४१] महाराजा भी इस बात के लिए सहमत हो गया कि वह अन्य नरेशों और राज्यों से न तो कोई संबंध रखेगा, और न बिना ब्रिटिश सरकार की जानकारी और अनुज्ञा के उनसे वार्ता ही करेगा,[४२] एवं पड़ोसी राज्यों के सभी झगड़ों को ब्रिटिश सरकार के पंच-निर्णय और फैसले के लिए प्रस्तुत करेगा।[४३] यह भी निर्णीत हुआ कि महाराजा के वंशानुगत उत्तराधिकारी अपने देश के अबाधित शासक होंगे और उस राज्य में ब्रिटिश सरकार का कोई अधिकार

---

३७. मेटकाफ का नोट, २९ मई १८१७, कान्स १४ जून १८१७, संख्या १३, एफ पी, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ११८

३८. अनुच्छेद ८ जोधपुर से संधि, ६ जनवरी १८१८, पोर्टफोलियो फाइल, संख्या २२, ऐटचिसन उल्लिखित, भाग ८, पृष्ठ १२९

३९. अनुच्छेद ८, जोधपुर से संधि, ६ जनवरी १८१८, पोर्टफोलियो फाइल संख्या २२, ऐटचिसन उल्लिखित भाग ३, पृष्ठ १२९

४०. अनुच्छेद १, ऐटचिसन, उल्लिखित, पृष्ठ १२८

४१. अनुच्छेद २, ,, ,,

४२. अनुच्छेद ३, ,, ,,

४३. अनुच्छेद ५, ,, ,,

या नियंत्रण नहीं होगा।[४४]

संधि की शर्तों का आलोचनात्मक विश्लेषण करने से प्रकट होता है कि ब्रिटिश सरकार ने जोधपुर के साथ लगभग वैसा ही व्यवहार किया जैसा उसने अन्य राज्यों के साथ किया था। यद्यपि संधि की शर्तों से ऐसा दिखलाई देता था कि ब्रिटिश सरकार की मारवाड़ के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने की कोई इच्छा छिपी हुई नहीं है तथापि मानसिंह जैसे सावधान पर्यवेक्षक की दृष्टि से, उसके पागल होने का बहाना करने के काल में भी, यह छिपा नहीं रह सका कि एक समय आएगा जब ब्रिटिश सरकार अधिक शक्तिशाली हो जायेगी और उस समय वह अहस्तक्षेप के ढोंग के नकाब को उतार फेंकेगी। इससे मानसिंह के मन में अंग्रेजों के प्रति घोर अविश्वास उत्पन्न हो गया था और यही कारण था कि वह अंग्रेजों के हस्तक्षेप के विरुद्ध असंदिग्ध सुरक्षा का साधन प्राप्त करने के लिए तीव्र इच्छुक था। बाद में उसका अंग्रेजों के साथ जैसा संबंध रहा उससे स्पष्ट इंगित होता है कि यदि वह उस समय अधिकार प्राप्त होता तो इस प्रकार की संधि करने के लिए तैयार नहीं होता।[४५]

६ जनवरी १८१८ को संधि हो जाने के उपरान्त तुरन्त ही मार्च १८१८ में छतरसिंह की मृत्यु होगई।[४६] मानसिंह कठिन स्थिति में पड़ गया। उन कतिपय जागीरदारों और मुत्सद्दियों ने जो उस काल तक छतरसिंह का समर्थन करते रहे थे, छतरसिंह की मृत्यु को दबाने और उसकी शक्ल-सूरत के किसी नकली व्यक्ति (प्रतारक) को उसके स्थान पर खड़ा करने का प्रयत्न किया। उन्होंने यह भी घोषणा करदी कि छतरसिंह की पत्नी गर्भवती है। परन्तु उस महिला की असामयिक मृत्यु ने उनकी आशाओं को चकनाचूर कर दिया।[४७] उसके उपरान्त उन्होंने ईडर राजघराने को टटोला।[४८] परन्तु महाराजा और जनता का रुख देखकर उन्होंने अन्त में यह निश्चय किया कि महाराजा को शासनसूत्र अपने हाथ में लेने के लिए राजी किया जाय। परन्तु महाराजा फिर भी हिचकिचाता रहा, क्योंकि वहाँ दो दल थे

---

४४. अनुच्छेद ६, ऐटचिसन उल्लिखित पृष्ठ १२६

४५. मेटकाफ का ऐडम्स को पत्र, १५ जनवरी १८१८, कान्स ६ फरवरी १८१८, संख्या १०२, एफ एस

४६. मेटकाफ का ऐडम्स को पत्र, २ अप्रैल १८१८, कान्स २४ अप्रैल १८१८, संख्या ४६, एफ पी०; हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१-८०), संख्या १० एफ २०७

४७. तवारीख मानसिंह, एफ २३५

४८. वही,

जोकि एक दूसरे से द्वेष रखते थे।[४९] तत्कालीन दीवान अखयचन्द और किले के अन्य अधिकारी उन जागीरदारों के विरुद्ध थे जो इकट्ठे होकर किले के बाहर नीचे मैदान में अपना शिविर लगाए हुए थे। उन ठाकुरों ने जो कि अखयचन्द और फतहराज (इन्द्रराज का पुत्र जिसकी हत्या करदी गई थी) से शत्रुता रखते थे, खालसा की भूमि के एक भाग को अपने अधिकार में कर लिया था और वे उसकी मालगुजारी वसूल करने लगे थे। अखयचन्द और उसके समर्थकों ने भी उन क्षेत्रों में जो उनके नियंत्रण में थे, वैसा ही किया।[५०]

फतहराज ने अपने तीन हजार अनुयायियों को एकत्रित कर लिया और किले के पास अपना शिविर लगाया। उसके गुट को मुसलमान अफसरों की अधीनता में उन चार बटैलियनों का भी समर्थन प्राप्त था जिनमें लगभग पन्द्रह सौ सैनिक थे। वे सैनिक यद्यपि मूलतः सरकार द्वारा भर्ती किए गए थे तथापि वे अब अपना वेतन फतहराज सिंघवी से प्राप्त करते थे। इसके अतिरिक्त वे एक हजार सवार भी जो फतहराज की निजी सेवा में थे जोधपुर पहुँच गए थे। उनका शिविर अन्यों से पृथक् परन्तु अखयचन्द विरोधी ठाकुरों के समीप लगाया गया। दूसरी ओर अखयचन्द ने भी सैनिक तैयारियाँ की थीं। दानसिंह पुरबिया के अधीन ६ हजार अश्वारोही सैनिक और पाँच बटैलियन सोजत के किले में रखी गई थीं और नरसी पंडित के अधीन एक हजार सैनिकों की सेना और आठ तोपें पाली में थीं, जो अखयचन्द के संकेत पर किसी भी क्षण रणक्षेत्र में उतरने के लिए उपलब्ध थीं। उसने किले में भी पंद्रह सौ से दो हजार तक सैनिक एकत्रित कर लिए थे।[५१]

मानसिंह तब भी निष्क्रिय था और उसने इन सभी कुचक्रों और मतभेदों के प्रति असीम उदासीनता का रुख प्रदर्शित किया। इन चिन्ताजनक समाचारों से अंग्रेजों को कुछ उद्विग्नता हुई। जोधपुर के वकील व्यास विशनराम ने कहा था कि महाराजा बहुत शीघ्र ही शासनसूत्र अपने हाथों में ले लेंगे। परन्तु वैसा कुछ नहीं हुआ। अतएव वे उन विभिन्न रिपोर्टों के पीछे, जो उनके पास पहुँची थी, छिपे हुए सत्य को जानने के लिए और अधिक उत्सुक हो उठे।[५२]

---

४९. विल्डर का आक्टरलोनी को पत्र, २२ फरवरी १८२१, कान्स २१ मार्च १८२१, संख्या १४, एफ० पी०, मुन्शी बरकत अली की रिपोर्ट, २६ दिसम्बर १८१८, संख्या ५५–५६, एफ० पी० ।

५०. वही, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ २१५–२१

५१. मुन्शी बरकत अली की रिपोर्ट, उल्लिखित ।

५२. खरीता आक्टरलोनी का मानसिंह को, वि० सं० १८७५, आश्विन शुक्ल पक्ष की परवा, पोर्टफोलियो फाइल संख्या १७, मुन्शी बरकत अली की रिपोर्ट, उल्लिखित ।

मुन्शी बरकत अली का शिष्टमण्डल

जोधपुर के मामले में गवर्नर जनरल की जिज्ञासा उस समय और अधिक बढ़ गई जिस समय उसे नवाजिश अली के द्वारा महाराजा से इस आशय के पत्र मिले कि उसे कुछ व्यक्तियों को, जिनका नाम उसने नहीं बतलाया, दंड देने के लिए सेना की आवश्यकता है। इस पर गवर्नर जनरल ने अपने मुन्शी (बरकत अली) को स्थिति का अध्ययन करने, महाराजा की योजनाओं और इच्छाओं को जानने, तथा उससे कतिपय प्रश्नों का स्पष्ट उत्तर प्राप्त करने के लिए अपना प्रतिनिधि बनाकर जोधपुर भेजा।[५३] बरकत अली ८ अक्टूबर १८१८ को जोधपुर पहुँचा।[५४] उसने महाराजा को सूचित किया कि सेना केवल सरकार की आज्ञा से ही भेजी जा सकती है। परन्तु इससे पूर्व कि वह इस मामले की सिफारिश करे वह यह जानना चाहता था कि कौन से सरदार तथा राज्याधिकारी महाराजा के पक्ष में थे और कौन उनकी इच्छा के विपरीत कार्य कर रहे थे। गवर्नर जनरल यह भी चाहते थे कि महाराजा उन्हें उन व्यक्तियों के सबंध में सूचित करें जिनमें उनका विश्वास था। महाराजा से यह भी अपेक्षा की गई थी कि वह अपनी सैनिक शक्ति का निर्धारण करे और गवर्नर जनरल को उन इकाइयों के सम्बन्ध में सूचित करे जो असंतुष्ट थीं और उन इकाइयों के बारे में जिनके द्वारा उसकी आज्ञाओं के पालन करने की सम्भावना थी और यह भी सूचित करे कि क्या वह उस सेना का जो भेजी जायेगी, व्यय वहन करने के लिए तैयार है।[५५]

मुन्शी बरकत अली ने महाराजा से साक्षात्कार किया, उसको गवर्नर जनरल की इच्छाओं से अवगत कराया और उससे पूछा कि वह गवर्नर जनरल को बतलाए कि उसकी उदासीनता का क्या कारण है, साथ ही यह भी बतलाए कि क्या वह अपने शत्रुओं को, यदि कोई हों, दबाने के लिए सैनिक सहायता चाहता है? मानसिंह ने उस संकटपूर्ण स्थिति का वर्णन किया जिसमें वह था; और उन समस्याओं का उल्लेख किया जो उसके समक्ष थी। उसने उन विभिन्न प्रश्नों का तुरन्त उत्तर नहीं दिया प्रत्युत मुन्शी से प्रतीक्षा करने और उसे स्थिति सम्भालने के लिए थोड़ा अधिक समय देने के लिए कहा। इसी बीच उसने उस अवसर का, अपने सामन्तों से मतभेदों को समाप्त करने तथा विभिन्न तत्त्वों में सौहार्द स्थापित कर अनुकूल वातावरण का

---

५३. मुन्शी बरकत अली की रिपोर्ट—उल्लिखित १

५४. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ २१५, मुन्शी बरकत अली की रिपोर्ट उल्लिखित

५५. आक्टरलोनी का ऐडम्स को पत्र, १५ नवम्बर १८१८, कान्स २६ दिसम्बर १८१८, संख्या ५५, एफ पी १

निर्माण करने में उपयोग किया और अन्त में वह पूर्ण अव्यवस्था में से व्यवस्था स्थापित करने में सफल होगया। असाधारण परिस्थितियों के होते हुए भी वह अपने सामन्तों और मुत्सद्दियों को आश्वासन देकर और उनके पिछले कृत्यों को भूलकर क्षमा करके उनको अपने पक्ष में करने में सफल हो गया। मूर्खों के पास विश्वसनीय व्यक्तियों को भेज कर उनके संदेहों को दूर करके उसने उन्हें वस्तुस्थिति से अवगत करा दिया। उसने उनको सब प्रकार के प्रलोभन देकर तथा उनके लोभ का लाभ उठाकर उनको अपने पक्ष में कर लिया। इसके उपरान्त उसने एक दरबार किया जिसमें उसके समस्त सामन्तों और मुत्सद्दियों ने अपनी राजभक्ति का उसको आश्वासन दिया। इस प्रकार अंग्रेजों से सैनिक सहायता की याचना किए बिना उनके द्वारा मारवाड़ के आन्तरिक मामलों में किए जाने वाले हस्तक्षेप एवं तज्जन्य महानाश को अत्यन्त चतुराई और गरिमा के साथ टालकर उसने ३ नवम्बर १८१८ को अपने हाथ में शासन ले लिया।[५६] मुन्शी बरकत अली की रिपोर्ट से स्पष्ट प्रकट होता है कि उसने अवसर के अनुरूप ही आचरण किया, अपनी परेशानियों पर विजय प्राप्त कर यथेष्ट आत्म संयम के साथ बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य किया और स्थिति को बिगड़ने नहीं दिया। उसने अंग्रेजों के हस्तक्षेप की अपेक्षा अपने ही असंतुष्ट व्यक्तियों से मैत्रीभाव स्थापित करना पसंद किया।

मुन्शी बरकत अली के अनेक प्रश्नों के मानसिंह ने जो उत्तर दिए वे उसकी राजनीतिक दूरदर्शिता और कूटनीतिज्ञता की सूक्ष्मता का बोध कराते हैं। उसने अंग्रेजों को अपनी मानसिक पीड़ा का तनिक भी संकेत नहीं दिया और मुन्शी बरकत अली से कहा कि गवर्नर जनरल को उसकी सहायता के लिए व्यक्तिश: जोधपुर आने की कोई आवश्यकता नहीं है। उसने मुन्शी बरकत अली को इस बात का भी विश्वास दिलाया कि वह स्वयं बहुत शीघ्र ही सरकार का शासनसूत्र अपने हाथ में ले लेगा, अपने सामन्तों और राज्याधिकारियों के झगड़ों को तय कर देगा और कज्जाकों के बारे में जो अनेक शिकायतें हैं, उनको देखेगा। उसने इस बात की भी घोषणा कर दी कि वह इस बात की परवाह किए बिना कि कोई उसका शत्रु या मित्र है, सबका भला चाहता है। उसकी बुद्धिमानी इस बात में निहित थी कि उसने अपने मित्रों अथवा शत्रुओं का नाम नहीं बतलाया, क्योंकि ऐसा उत्तर देने से उन दोनों में खाई और बढ़ जाती और अंग्रेजों को अधिक कलह भड़काने का अवसर मिल जाता।[५७] एक अनुभवी और परिपक्व राजनीतिज्ञ की भाँति उसने अंग्रेजों को

५६. मुन्शी बरकत अली की रिपोर्ट, उल्लिखित, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ २२०

५७. वही,

अपना हृदय खोलकर अन्तर का भाव नहीं बतलाया। उसने उदारता का प्रदर्शन किया, गरिमामय संयम बनाए रखा, और यह प्रदर्शित किया कि वह जानता है कि किस स्थिति का किस प्रकार सामना किया जाय। उसने जानबूझ कर सैनिक सहायता के संबंध में कोई चर्चा नहीं की। उसका उद्देश्य यह था कि वह केवल अपने विरोधियों को यह अनुभव करा दे कि अंग्रेज उसके पृष्ठपोषक हैं और वह तत्काल यह हितकर नहीं समझता कि अंग्रेजों को हस्तक्षेप करने का अवसर देकर और अधिक खतरा लिया जाए। अपने अधिकार और राज्य-प्रशासन को अंग्रेजों के निर्देशन तथा हस्तक्षेप के अधीन किए बिना, वह यह प्रभाव डालने में सफल हो गया कि यदि आवश्यकता पड़े तो वह अंग्रेजों से सहायता प्राप्त कर सकता है।[५८]

अंग्रेजों ने नवम्बर १८१९ में कर्नल टॉड को जोधपुर भेजा। उसके पास उदयपुर, कोटा, बूंदी और सिरोही के अतिरिक्त मारवाड़ का राजनीतिक प्रभार भी था।[५९] उसने मारवाड़ को उसी दयनीय दशा में पाया जिसमें वह पहले था। महाराजा ने अखयचन्द के गुट को मनमानी करने की छूट दे दी। सिंधिया और पठानों के भाड़े के सैनिक गिरोहों को तीन वर्षों से वेतन नहीं मिला था। उनमें से लोग भीख माँगने लगे थे। अंग्रेज राजदूत ने स्थिति में सुधार करने तथा राज्य की वित्तीय स्थिति को ध्यान में रखते हुए प्रशासन को कार्यकुशल बनाने के लिए महाराजा को राजी करने का भरसक प्रयत्न किया। उसने जोधपुर-सेना के पुनर्संगठन और बकाया वेतनों के भुगतान पर विशेष बल दिया। राज्य की सभी सीमाओं पर दृढ़ पुलिस दल को संगठित करने, लूटमार को दबाने, सीमा शुल्क में सुधार करने और उनको सुरक्षा प्रदान करने की आवश्यकता की ओर उसका (महाराजा का) ध्यान दिलाया गया। महाराजा ने इन सुझावों को बड़े ध्यान से सुना और राजदूत से कहा कि उसके सुझावों को बहुत शीघ्र ही कार्यरूप में परिणत किया जायेगा, जिससे लगभग एक वर्ष में स्थिति में अवश्य सुधार होगा।[६०]

इसके विपरीत, मानसिंह ने अपने विपक्षियों के प्रति और भी अधिक प्रतिशोधात्मक रुख अपना लिया। लम्बे समय के उपरान्त मानसिंह ने स्थिति को सुधारने अथवा उसका अन्त करने की अनिवार्य आवश्यकता का अनुभव कर लिया। सर्व प्रथम, उसने अखयचन्द और फतहराज में मैत्री स्थापित करने का प्रयत्न किया, परन्तु अखयचन्द ने उसकी बात को सुनने से इन्कार कर दिया और अपनी व्यक्तिगत

---

५८. बनर्जी ए० सी० : राजपूत स्टेट्स एण्ड दि ईस्ट इंडिया कम्पनी, पृष्ठ ३४०

५९. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१-८०), संख्या १०, एफ २७५

६०. टॉड का मेटकाफ को पत्र, ७ जुलाई १८२, कान्स १२ अगस्त १८२०, संख्या १०, एफ पी

सुरक्षा के विरुद्ध षडयन्त्र के भय से वह राजधानी से चला गया। ६ महीने तक प्रतीक्षा करने के उपरान्त मानसिंह के क्षोभ की गहनता ने उसके कृत्रिम पागलपन पर विजय प्राप्त कर ली। उसने अखयचन्द से चालीस लाख रुपये वापस करने को कहा, सरसरी तौर पर अपने सभी आश्रितों को पदच्युत कर दिया, नाथकरण (नागजी) किलेदार तथा मूलजी ढंढाल को विष दिलवा दिया, उनके मृत शरीरों को फतेहपोल पर से फिकवा दिया एवं जीवराज और बिहारीदास खींची को मरवा दिया। व्यास विनोदीराम और जोशी श्रीकृष्ण को भी क्षमा नहीं किया गया।[६१] मानसिंह ने जिस सफलता के साथ अखयचन्द और उसके साथियों को दंडित किया उसने उसे और अधिक निर्भीक बना दिया और वह उन मुत्सद्दियों और हाकिमों को ही दंड देकर संतुष्ट नहीं हुआ बरन् उसने मारवाड़ के कतिपय प्रमुख जागीरदारों के विरुद्ध भी कार्यवाही की।[६२]

इस प्रकार के नृशंस अत्याचार ने अन्य सभी जागीरदारों को भयभीत कर दिया। उन्होंने अपने घरों को त्याग दिया और वे कोटा, मेवाड़ और जयपुर के पड़ोसी राज्यों में आश्रय प्राप्त करने के लिए चले गए। टॉड ने मानसिंह के इन विश्वासघात के कार्यों की सामान्य रूप से, और अहोर के ठाकुर अनारसिंह के साथ उसने जो अमानवीय व्यवहार किया उसके संबंध में, विशेष रूप से, अत्यन्त प्रतिकूल टिप्पणी की थी।[६३]

मानसिंह के प्रतिशोध की प्रचंड क्रोधाग्नि ने मारवाड़ के सामन्तों को प्रदेश से निर्वासित कर दिया जिससे उन्होंने अत्यन्त असहाय अवस्था में १८२१ में अंग्रेजों की मध्यस्थता प्राप्त करने का प्रयत्न किया।[६४]

सामन्तों का विद्रोह और अंग्रेजों का हस्तक्षेप

अंग्रेजों से महाराजा मानसिंह की लम्बी वार्ता चली। उसने ब्रिटिश सरकार को प्रसन्न करने के लिए बेदखल ठाकुरों को वे जागीरें पुनः वापस लौटाना स्वीकार कर

---

६१. वही विल्डर का आक्टरलोनी को पत्र, २२ फरवरी १८२१, कान्स २१ मार्च १८२१, संख्या १४, एफ पी, तवारीख मानसिंह, एफ २४६–५०

६२. टॉड का मेटकाफ को पत्र, ७ जुलाई १८२०, कान्स ८ अगस्त १८२० संख्या १०, एफ पी, विल्डर का आक्टरलोनी को पत्र, २२ फरवरी १८२१, कान्स २१ मार्च १८२१, संख्या १४, एफ पी, तवारीख मानसिंह, एफ २४६–५०

६३. वही

६४. ३१ जुलाई १८२१ (वि० सं० १८७८ श्रावण शुक्ल पक्ष की द्वितीया) का आवेदन पत्र जिसे ओझा ने अपनी पुस्तक 'राजपूताना का इतिहास' भाग २, पृष्ठ ८३६–३७, ३८ पर उद्धृत किया है।

लिया जो महाराजा बख़्तसिंह के समय उनके पास थीं। शर्त यह थी कि यदि ठाकुर अपने कर्तव्य के प्रति उदासीनता अथवा अवज्ञा के दोषी पाए गए अथवा अन्य किसी अपराध के दोषी पाए गए अथवा दरबार की इच्छाओं के अनुरूप उनका आचरण नहीं हुआ तो महाराजा जैसा उचित समझे वैसा करने के लिए स्वतंत्र होगा। मानसिंह ने ब्रिटिश सरकार के आग्रह पर आसोप, आउवा, नीमाज और रास के ठाकुरों को उनकी जागीरें पुनः वापस करना स्वीकार कर लिया, यद्यपि वह उनको दया के योग्य पात्र नहीं समझता था। उसने यह वचन भी दिया कि भविष्य में यदि वे लोग आज्ञाकारी सिद्ध हुए और उन्होंने अपने कर्तव्यों का पालन तथा अपना सेवा-कार्य स्वेच्छा और तत्परता से किया तो उन्हें पारितोषिक दिए जायेंगे, मानसिंह ने निम्न श्रेणी के अन्य निर्वासित ठाकुरों को भी पुनः अपने कृपापात्र बनाना इस शर्त पर स्वीकार कर लिया कि उनका आचरण संतोषप्रद रहेगा और अंग्रेज उनकी ओर से मध्यस्थता नहीं करेंगे। बूडसू और चन्दावल के ठाकुरों ने इन शर्तों पर महाराजा के कृपापात्र बनना स्वीकार नहीं किया अतएव उन दो ठिकानों के मामलों को छोड़ दिया गया।[६५] २५ फरवरी १८२४ को विल्डर ने ब्रिटिश सरकार की ओर से महाराजा को लिखित आश्वासन दिया कि यदि उनमें से कतिपय ठाकुर बाद में किसी अपराध के दोषी पाए गए अथवा उन्होंने महाराजा की इच्छा के विरुद्ध कार्य किया तो ब्रिटिश सरकार पुनः उनकी ओर से हस्तक्षेप नहीं करेगी।[६६] महाराजा को और अधिक संतोष प्रदान करने के लिए इस आशय का एक पत्र गवर्नर जनरल को भी भेज दिया गया।[६७]

जब ब्रिटिश सरकार ने सिरोही से मित्रता की एक पृथक् संधि करनी चाही तब मानसिंह ने उस पर गम्भीर आपत्ति उठाई, क्योंकि सिरोही जोधपुर राज्य का एक भाग था। मानसिंह की मान्यता थी कि ब्रिटिश सरकार को उससे मित्रता की संधि करने का कोई अधिकार नहीं है। जोधपुर सरकार ने इस आशय के प्रलेख उपस्थित किए कि महाराजा अभयसिंह के समय से सिरोही के शासक जोधपुर के शासकों को कर (खिराज) देते आ रहे थे और उनके आदेशानुसार चाकरी करते

---

६५. निर्वासित ठाकुरों के संबंध में जोधपुर सरकार का वचन बन्ध, २५ फरवरी १८२४, संख्या १११ वि० सं० १८८० की फरद, खरीता बही, संख्या १०, एफ ३५६

६६. निर्वासित ठाकुरों को जागीरें वापस देने के संबंध में इकरारनामा, २५ फरवरी १८२४, पोर्टफोलियो फाइल, संख्या १०

६७. ब्रिटिश सरकार के सैक्रेटरी का मानसिंह को पत्र, १० सितम्बर १८२४, कान्स १० अक्टूबर १८२४, संख्या ५७, एफ पी

आ रहे थे। यद्यपि कर्नल टॉड महाराजा मानसिंह के प्रति मित्रता का भाव रखता था तथापि उसने जोधपुर सरकार के उस दावे को इस तर्क के आधार पर मानना अस्वीकार कर दिया कि सिरोही के शासकों द्वारा कर (खिराज) दिया जाना और चाकरी किया जाना इस बात का द्योतक था कि वे मुगल सम्राट की अधीनता स्वीकार किए हुए थे न कि जोधपुर के शासक के अधीन थे। सिरोही द्वारा जो कर दिया जाता था वह (कर) महाराजा अभयसिंह मुगल सेनापति के रूप में वसूल करते थे न कि मारवाड़ के शासक के रूप में। इस बात को सिद्ध करने का कोई प्रमाण नहीं कि सिरोही प्रत्यक्ष रूप से मारवाड़ के अधीन था। इसी प्रकार महारावल उदयभान ने जोधपुर का आधिपत्य स्वीकार करते हुए जो लिखित वचन दिया था उसकी व्याख्या इस प्रकार की गई कि जब वह कैदी था तब वह (लिखित वचन) दबाव से लिखा गया था, इस कारण मान्य नहीं किया जा सकता था।[६८]

महाराजा मानसिंह द्वारा उपस्थित किए हुए विभिन्न तर्कों को अमान्य करके जब अंग्रेजों ने १८ सितम्बर १८२३ को सिरोही से मित्रता की एक पृथक् संधि कर ली तब उसने जालौर के हाकिम पृथ्वीराज भंडारी को आदेश दिया कि वह 'खरल' परगना के तलेता गाँव पर धावा कर दे और अन्य दस गाँवों को नष्ट कर दे। इससे सिरोही की ३१ हजार रुपये की भारी क्षति हुई। अंग्रेजों ने इसकी जाँच-पड़ताल करके इस लूट के लिए मानसिंह को उत्तरदायी ठहराया और उससे क्षतिपूर्ति करने के लिए कहा।[६९]

१८२४ में महाराजा जोधपुर ने छंग और कोट किराना परगनों के इक्कीस गाँव ब्रिटिश सरकार को दे दिए, क्योंकि वह विधि विरुद्ध मीणों और मेरों को दबा कर उनको आत्मसमर्पण करने के लिए विवश करने में असफल रहा था। अंग्रेजों की ओर से इस कार्य के लिए सेना रखने के खर्च को पूरा करने के लिए महाराजा ने १५००० रुपये वार्षिक देना भी स्वीकार किया।[७०] इसी बीच फतहराज को उसके

---

६८. ए० जी० जी० का मैकनाटन को पत्र, ६ नवम्बर १८३३, कान्स ५ दिसम्बर १८३३, संख्या २०, एफ पी, स्पियर्स का अलवेज को पत्र, २४ फरवरी १८३५, कान्स ३० मार्च १८३५, संख्या ३२–३४ एफ पी

६९. लाकेट का मैकनाटन को पत्र, २९ जून १८३३, कान्स १८ जुलाई १८३३, संख्या २२, एफ पी; मानसिंह का स्पियर्स को पत्र जो १९ दिसम्बर १८३३ को प्राप्त हुआ, कान्स १६ जनवरी १८३४, संख्या ६, एफ पी

७०. जोधपुर सरकार के मेरवाड़ा की भूमि के संबंध में वचन बन्ध का अनुवाद, संख्या ४, तारीख ५ मार्च १८२४, ऐटचिसन, उल्लिखित भाग ३, पृष्ठ १३१–३२

विरुद्ध झूठे आरोपों के कारण हटा दिया गया। इसके बाद शीघ्र ही उस पर दोषारोपण करने वालों की भी कलई खुल गई। इन सब षडयन्त्रों[७१] और परिवर्तनों ने नाथों के लिए जो अभी तक अपने आपसी झगड़ों में ही व्यस्त थे, प्रशासन पर अधिक प्रभाव डालना सम्भव कर दिया। लाडूनाथ ने मुख्य रूप से अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए आउवा की घेराबन्दी करवा दी।[७२] ठाकुर ने अत्यन्त दृढ़तापूर्वक प्रतिरक्षा की और उसने निमाज और रास के ठाकुरों को सिंहासन के दावेदार धौंकलसिंह से मिल जाने के लिए तैयार कर लिया।[७३]इन सामन्तों ने धौंकलसिंह को डीडवाना आमंत्रित किया, उसे विजय कर लिया और १८२७ में उसको (धौंकलसिंह को) सौंप दिया। इस पर मानसिंह ने सिंघवी फौजराज को डीडवाना भेजा जिसने निमाज और रास के ठाकुरों को महाराजा के पक्ष में कर लिया। आउवा का घेरा उठा दिया गया और पुनः समाधान कर लिया गया जिसके परिणामस्वरूप निमाज, रास, और आउवा के ठाकुरों ने धौंकलसिंह को उसके भाग्य पर छोड़ दिया और डीडवाना पर जोधपुर की सेनाओं ने १८२८ में पुनः अधिकार कर लिया।[७४]

रास, निमाज और आउवा से १८२७ का यह समाधान भी उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ और अपने सामन्तों से मानसिंह के संबंध बिगड़ते ही गए। इसका मुख्य कारण यह था कि नाथ उनके विरुद्ध सम्पीड़न की कार्यवाही करने की सोचते थे। अतः असंतोष क्रमशः गहन होता गया और असंतुष्ट सामन्त वर्ग ने १८२७ के अन्त में महाराज के विरुद्ध संगठित होकर सिंहासन के दावेदार धौंकलसिंह को एक बार पुनः अपना महाराजा मान कर जयपुर राज्य के क्षेत्र से जोधपुर पर आक्रमण करने के लिए तैयारियाँ आरम्भ कर दीं।[७५]क्योंकि महाराजा जयपुर ने मारवाड़ के असंतुष्ट सामन्तों को सहायता देकर संधि के वचन-बन्धों को भंग किया था अतः मानसिंह ने उसे विदेशी आक्रमण होने का दावा करके १८१८ की संधि के अन्तर्गत अंग्रेजों से

---

७१. तवारीख मानसिंह, एफ २६६

७२. कैवेन्डिश का कोलब्रुक को पत्र, ५ जुलाई १८२८, कान्स २६ जुलाई १८२८, संख्या २५ एफ पी

७३. वही, कोलब्रुक का स्टर्लिंग को पत्र, ७ जुलाई १८२८, कान्स ५ सितम्बर १८२८, संख्या १७, एफ पी

७४. कोलब्रुक का स्विन्टन को पत्र, ११ अगस्त १८२८, कान्स ५ सितम्बर १८२८ संख्या १७, एफ पी

७५. ब्रिग्स की रिपोर्ट, २६ अप्रेल १८४१, संख्या ७७, एफ पी

सैनिक संरक्षण की माँग की।[७६]

असन्तुष्ट सामन्तों और धौंकलसिंह ने दस हजार सैनिकों की एक सेना इकट्ठी करली। जयपुर का शासक उनकी सहायता पर था। इस भयंकर षडयन्त्र ने मानसिंह को पूर्ण रूप से साहसहीन बना दिया। उसके लिए यह संदेह करना स्वाभाविक था कि उस योजना के पीछे अंग्रेजों का हाथ है। लाडूनाथ भी इसी विचार का था।[७७] क्योंकि अंग्रेजों पर उसको यह संदेह था कि उन्होंने इस झगड़े को भड़काया था, अतएव उसने एक मात्र उनकी सहायता पर निर्भर रहना उचित नहीं समझा। अस्तु, उसने अगस्त १८२८ में महाराजा रणजीतसिंह से सहायता के लिए प्रार्थना की।[७८] जब अंग्रेजों को यह ज्ञात हुआ तब वे चौंके। यद्यपि मानसिंह की सहायता के लिए रणजीतसिंह के आने की सम्भावना नहीं थी तथापि अंग्रेजों ने पंजाब के शासक से मानसिंह के सम्पर्क स्थापित करने के कार्य को अत्यन्त गम्भीर दृष्टि से देखा।[७९] उन्होंने हस्तक्षेप किया और मानसिंह को उनकी (अंग्रेजों की) मध्यस्थता स्वीकार करने को कहा। क्योंकि मानसिंह असहाय हो गया था अतः उसने अंग्रेजों के निर्णय को स्वीकार करना अंगीकार कर लिया। उन्होंने उसे अपने सामन्तों की जब्त की हुई भूमि को वापस लौटाने का परामर्श किया।[८०] अंग्रेजों ने धौंकलसिंह को असंतुष्ट सामन्तों से अपना संबंध विच्छेद कर लेने का निर्देश दिया और उसे झुझार चले जाने के लिए विवश किया।[८१] १६ मई १८२८ को बीकानेर और अन्य पड़ोसी राज्यों के शासकों को भी धौंकलसिंह से संबंध विच्छेद कर लेने के आदेश

---

७६. कोलब्रुक का स्टर्लिंग को पत्र, ७ जुलाई १८२८, कान्स २६ जुलाई १८२८, संख्या १८, एफ पी

७७. ट्रेवीलियन का कोलब्रुक को पत्र, ६ अगस्त १८२८, कान्स ५ सितम्बर १८२८, संख्या २०, एफ पी १६–२६ अप्रेल १८४१ की कार्यवाही, संख्या ८६४, ए, पी, ३३८

७८. कोलब्रुक का स्विन्टन को पत्र, अगस्त १८२८, कान्स ५ सितम्बर १८२८, २० एफ पी; ट्रेवेलियन का कोलब्रुक को पत्र, ६ अगस्त १८२८, कान्स ५ सितम्बर १८२८, संख्या २०, एफ पी

७९. कोलब्रुक का स्विन्टन को पत्र, ८ अगस्त १८२८, कान्स ५ सितम्बर १८२८, संख्या २०, एफ पी

८०. विल्सन मिल : हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया, भाग ६, पृष्ठ ३१०–३११, मारवाड़ ख्यात, भाग ४ एफ, १०४

८१. कोलब्रुक का स्विन्टन को पत्र, ११ अगस्त १८२८, कान्स ५ सितम्बर १८२८, संख्या १७, एफ पी, हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८८६

दिए गए । अस्तु, जागीरदार अपने झगड़ों को स्वयं आपस में सुलझाने के लिए अकेले छोड़ दिए गए । यद्यपि इस बार अंग्रेजों ने महाराजा के पक्ष में मध्यस्थता की तथापि उन्होंने महाराजा को यह स्पष्ट बतला दिया कि इस प्रकार के सर्वव्यापी असंतोष और विद्रोह के विरुद्ध विशेषकर जबकि उसकी स्वय की अयोग्यता और कुशासन उसके लिए उत्तरदायी हों, उसका समर्थन करने में कम्पनी का कोई दायित्व नहीं है ।[८२]

मानसिंह की ब्रिटिश विरोधी कार्यवाहियाँ :

अपने जागीरदारों को उनके विश्वासघात के लिए बिना दंडित किए छोड़ देने हेतु अंग्रेजों का मानसिंह को विवश करना उसे रुचिकर नहीं हुआ । वह ब्रिटिश विरोधी विचारों को मन में पोषित करने लगा जो कि धीरे-धीरे १८२८ में निश्चित रूप लेने लगे ।[८३] वह मारवाड़ में ब्रिटिश विरोधी भावना को फैलाने के लिए नाथों का उपयोग करने लगा और उसने मारवाड़ के बाहर ब्रिटिश विरोधी विभिन्न केन्द्रों से सम्पर्क स्थापित किया ।[८४] वे मानसिंह को उन क्षेत्रों में होने वाली गतिविधियों से अवगत कराते थे और उसे तथा अन्य ब्रिटिश विरोधी तत्त्वों को जोड़ने की कड़ी का काम करते थे । भिन्न-भिन्न राजदरबारों के संदेशवाहक फकीरों के वेष में जोधपुर पहुँचते थे और एकान्त में मानसिंह से लम्बी वार्ता करते एवं उसके संदेश को अन्यों के पास ले जाते थे ।[८५]

उसने नागपुर के अप्पा साहब भोंसले को शरण दी, जिसने १८१७ में अंग्रेजों के विरुद्ध पेशवा का साथ दिया था ।[८६] इस पर अंग्रेजों ने सेना भेजी और अन्त में उसको गद्दी से उतार दिया, परन्तु वह कैद किए जा सकने के पूर्व ही वहाँ से निकल गया ।[८७] कई वर्षों तक इधर-उधर भटकते रहने पर भी जब अंग्रेजों से मैत्री भाव

८२. ऐटचिसन, उल्लिखित भाग ३, पृष्ठ १४१

८३. विल्सन मिल : हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया, भाग ६, पृष्ठ ३०६–११

८४. नाथों की अर्जियाँ-जसवन्त नाथ की मानसिंह को (तिथि रहित), पोर्टफोलियो फाइल, संख्या २५, हुशियार नाथ की मानसिंह को, वि० सं० १८८७ ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष नवमी, अर्जी बही, संख्या ६, एफ ३२, बालकनाथ की मानसिंह को, वि० सं० १८८८ भाद्रपद शुक्ल पक्ष की पंचमी, अर्जी बही, संख्या ६, एफ ३३

८५. सदरलैंड का मैडाक को पत्र, १० जून १८३६, कान्स २४ जुलाई १८३६, संख्या ३८, एफ पी

८६. पी० आर० सी०, भाग ५, संख्या २३५, नागपुर पर जैनकिन की रिपोर्ट, पृष्ठ ७१–७२

८७. पी० आर० सी०, भाग ५, संख्या २३६

स्थापित नहीं हो सका तब वह मानसिंह के पास पहुँचा और उसने नागौर में रहने की आज्ञा माँगी।[८८]

यद्यपि अंग्रेजों ने पहले मानसिंह को निर्देश दिया कि वह किसी प्रकार अप्पा साहब को रोके रक्खे, जो कि अप्रेल १८२९ में मानसिंह से कुछ दिन जोधपुर रहने की आज्ञा माँगने नागौर के रास्ते से मंडोर आया था।[८९] बाद में उन्होंने आदेश दिया कि वह अप्पा साहब को मारवाड़ से निकाल दे और उसे बहावलपुर के मार्ग से सिंध जाने के लिए विवश करे।[९०] आरंभ में मानसिंह अप्पा साहब की सहायता करने में हिचकिचाया, परन्तु बाद में, अंग्रेजों ने १८२७–२८ में उसके साथ जो व्यवहार किया था उसे स्मरण करके, उसने अप्पा साहब को शरण देने का निश्चय किया।[९१] साथ ही उसकी यह मान्यता थी कि जो भी उसके पास शरण माँगने के लिए आए उसे शरण देना सर्वथा उसके अधिकार की बात थी। अंग्रेजों द्वारा बार-बार यह पूछे जाने पर कि उसने एक अंग्रेज विरोधी नरेश को क्यों शरण दी, मानसिंह ने बार-बार यही उत्तर दिया कि अप्पा साहब को उनके सुपुर्द कर देने के लिए उसे विवश करने का अंग्रेजों को कोई अधिकार नहीं है। मानसिंह के इस कार्य से अंग्रेजों को गहरा रोष हुआ। उन्होंने नागपुर, इंदौर, ग्वालियर, कोटा, उदयपुर और जयपुर स्थित अपने एजेंटों को मानसिंह द्वारा अप्पा साहब को एक तीर्थयात्री के छद्मवेष में नागपुर भेजने की कार्यवाही की निगरानी रखने के लिए ताकीद कर दी। अप्पासाहब अपनी मृत्यु पर्यन्त १५ जुलाई १८४० तक महा मंदिर में रहा।[९२]

इस सम्पूर्ण काल में अंग्रेज अप्पा साहब को उनके सुपुर्द कर देने के लिए मानसिंह को निरन्तर दबाते रहे, परन्तु मानसिंह ने उनकी बात को सुनी-

---

८८. कैवेन्डिश का कोलब्रुक को पत्र, ८ मई १८२९, कान्स १९ जून १८२९, संख्या १२, एफ पी

८९. कैवेन्डिश का मानसिंह को पत्र, ८ मई १८२९, कान्स १८ जून, १८२९, संख्या २६, एफ पी

९०. देहली के रेजीडेंट का मेहता बच्छराज को पत्र, १९ जून १८२९, संख्या २६, एफ पी

९१. कैवेन्डिश का कोलब्रुक को पत्र, २६ मई १८२९, कान्स १९ जून १८२९, संख्या २७, एफ पी

९२. कैवेन्डिश का कोलब्रुक को पत्र, २७ जून १८२९, कान्स २४ जुलाई १८२९, संख्या १९, एफ पी।

अनसुनी कर दिया।[६३] इस भय से कि कहीं अंग्रेज जोधपुर पर सैनिक चढ़ाई न कर दें, उसने सैनिक तैयारियाँ करना आरंभ कर दिया, अपनी सेना को सतर्क कर दिया और अपनी स्थिति को मजबूत बनाने के लिए नए सैनिकों को भर्ती किया। उसने भीमनाथ से पुनः मित्रता करली और पड़ोसी राजाओं यहाँ तक कि टोंक के शासक को भी उसकी सहायता करने के लिए लिखा।[६४] क्योंकि उसके पत्रों का कोई अनुकूल उत्तर नहीं आया और स्वयं उसके कुछ सामन्त तब भी धौंकलसिंह के साथ मिले हुए थे जो कि मानसिंह के विरुद्ध अंग्रेजों का समर्थन प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न कर रहा था अतः उसने अंग्रेजों को विरोधी बनाना बुद्धिमानी का काम नहीं समझा। अतएव उसने लार्ड विलियम बैंटिक से अक्टूबर १८२९ में पत्र-व्यवहार कर उसे बतलाया कि जिन्हें अपने संरक्षण में ले लिया गया है उन्हें सुपुर्द नहीं करना[६५] उसके वंश की परम्परा रही है, अतः पवित्र शरण-स्थानों की प्रतिष्ठा को कायम रखना उसका कर्त्तव्य है। उसने यह भी निवेदन किया कि अंग्रेज उसे अप्पा साहब को पकड़ने और उसे अंग्रेजों के सुपुर्द करने के लिए कहकर उसे (मानसिंह को) अपने वंश के यश को नष्ट कर देने पर विवश न करें।[६६]

गवर्नर जनरल ने मानसिंह को उसे (अप्पा साहब को) अपने संरक्षण में रखने की अनुमति इस शर्त पर प्रदान कर दी कि वह उसकी जमानत दे और उसके भावी आचरण का उत्तरदायित्व ले। उसकी मानसिंह से यह अपेक्षा थी कि मानसिंह यह व्यवस्था करे कि अप्पा साहब जोधपुर छोड़ कर न जाएँ और अपने राज्य को जिसे उन्होंने खोदिया है, पुनः विजय करने का प्रयत्न न करें।[६७] १ फरवरी १८३० के

६३. कैवेन्डिश का मानसिंह को पत्र, १२ जून १८२९, अप्पा साहब के बारे में टोंक और जोधपुर से १९ अक्टूबर १८२९ को प्राप्त हुई, कैवेन्डिश का स्विन्टन को पत्र, १२ अक्टूबर १८२९, कान्स १३ नवम्बर १८२९, संख्या ९, एफ पी।

६४. जोधपुर के खबरों के कागजों का सारांश, १७, १८, २० अक्टूबर १८२९, हाकिन्स का स्विन्टन को पत्र, १० नवम्बर १८२९, कान्स ४ दिसम्बर १८२९, संख्या १०, एफ पी

६५. मानसिंह का गवर्नर जनरल को पत्र, (१६ अक्टूबर को प्राप्त हुआ), कान्स ७ नवम्बर १८२९.

६६. मानसिंह का गवर्नर जनरल को पत्र जो १६ अक्टूबर १८२९ को मिला। कान्स ७ नवम्बर १८२९, संख्या ७, एफ पी, मानसिंह का हाकिन्स को पत्र जो १९ अक्टूबर १८२९ को प्राप्त हुआ, कान्स १३ नवम्बर १८२९, संख्या ९, एफ पी

६७. विलियम बैंटिक का मानसिंह को पत्र, ६ नवम्बर १८२९, कान्स ७ नवम्बर १८२९, संख्या ६, एफ पी

अपने पत्र द्वारा मानसिंह ने ब्रिटिश सरकार को यह आश्वासन दिया कि वह अप्पा साहब को अपनी निगरानी में रखेगा और उन आदेशों का निष्ठा के साथ पालन करेगा।[९८]

फिर भी अप्पा साहब निष्क्रिय नहीं बैठा। उसने सेना एकत्रित करने का प्रयत्न किया, नागपुर की जनता को अंग्रेजों के विरुद्ध भड़काने का प्रयत्न किया, अंग्रेज-अफगान मनमुटाव का लाभ उठाया, नेपाल, सतारा और बड़ौदा से सहायता माँगी और मानसिंह से भी वित्तीय सहायता प्राप्त की।[९९] अंग्रेजों ने इस बात का भरसक प्रयत्न किया कि मानसिंह और अप्पा साहब में फूट पड़ जाए, उसके फलस्वरूप मानसिंह ने इस शर्त पर अप्पा साहब को अंग्रेजों के सुपुर्द कर देना स्वीकार कर लिया कि अंग्रेज उसे नागपुर का कुछ प्रदेश सौंप दें।[१००] इसी बीच अप्पा साहब की जुलाई १८४० में मृत्यु हो गई और सारे प्रसंग का ही अन्त हो गया।[१०१]

अप्पा साहब को उसने जो शरण और सहायता दी उसके अतिरिक्त १८२८ के उपरान्त मानसिंह ने जो नीति अपनाई उससे अंग्रेजों को उसके आचरण पर संदेह होने लगा। बार-बार अंग्रेजों द्वारा विरोध किए जाने पर भी मानसिंह ने रणजीत सिंह से एक संदेहास्पद प्रकार का संबंध स्थापित करने में संकोच नहीं किया। रणजीतसिंह के ब्रिटिश विरोधी झुकाव से अंग्रेज पहले ही डरे हुए थे।[१०२] उसने गुप्त रूप से उन सभी असामाजिक तत्त्वों को सहायता दी जिन्होंने सिरोही और अजमेर के अत्यन्त निकट के क्षेत्रों में शान्ति भंग कर दी थी और जहाँ से वे समीपवर्ती प्रदेशों में लूटमार के धावे किया करते थे।[१०३] विलियम बैंटिक के अजमेर

---

९८. मानसिंह का गवर्नर जनरल को पत्र, जो उसे १ फरवरी १८३० को प्राप्त हुआ। कान्स ५ मार्च १८३०, संख्या ७९, एफ पी

९९. ब्रिग्स का गवर्नर जनरल के सेक्रेटरी को पत्र, अगस्त १८३४, कान्स ५ सितम्बर १८३४, संख्या २०, एफ पी। अन्तारुद्ध पत्र-व्यवहार अप्पा साहब का अमुत राव को, १४ जून १८३४, कान्स ५ सितम्बर १७३४, संख्या ३१, एफ पी

१००. सदरलैंड का मैडाक को पत्र, ६ जून १८३९, कान्स १२ फरवरी १८४०, संख्या ४७, एफ पी

१०१. लडलो का सदरलैंड को पत्र २६ मार्च १८४०, कान्स २७ अप्रेल १८४०, संख्या ३२, एफ पी

१०२. मार्टिन का गवर्नर जनरल के सेक्रेटरी को पत्र, २४ दिसम्बर १८३१, कान्स ३० जनवरी १८३२, संख्या ४०, एफ पी, लोकहार्ट का मैकनाटन को पत्र, २८ सितम्बर १८३२, कान्स २६ नवम्बर १८३२, संख्या १४, एफ पी

१०३. विलसन, उल्लिखित, भाग ९, पृष्ठ ३१२

दरबार में सम्मिलित होने से इन्कार करने के उसके दुस्साहस के कारण अंग्रेज उससे अत्यन्त क्रुद्ध हो गए।[१०४] खोसा कबीले के नेताओं को अपनी सेवा में रखने के उसके प्रयत्नों का अंग्रेजों ने यह अर्थ लगाया कि यह उसकी थारपारकर में ब्रिटिश विरोधी तत्त्वों के प्रति सहानुभूति प्रकट करने की इच्छा का द्योतक है। उस क्षेत्र में विद्रोहियों का दमन करने में अंग्रेजों के साथ उनके प्रयत्न में सहयोग देने में उसकी अनिच्छा तथा बाद में लोढ़ा रिधमल के अधीन उस क्षेत्र में उसने अपनी जो सेनाएँ भेजीं उनके शत्रुतापूर्ण रुख ने अंग्रेजों को विश्वास दिला दिया कि बहुत करके मानसिंह उनके विरुद्ध षडयन्त्र कर रहा है।[१०५] किशनगढ़ के क्षेत्र[१०६] को लूटने वालों को गिरफ्तार करने में उसकी असफलता और डाक्टर मोटले की हत्या करने वालों को उसके द्वारा शरण दिए जाने आदि कार्यों ने अग्नि में घृत डालने का काम किया।[१०७] ठगी[१०८] को समाप्त करने में मानसिंह का निषेध तथा, जो खिराज बकाया चढ़ गया था उसको न चुकाना आदि प्रभुसत्ता के प्रति स्पष्ट शत्रुता की अतिरिक्त साक्षी प्रस्तुत करते थे।[१०९]

मानसिंह की इन सब ब्रिटिश-विरोधी कार्यवाहियों ने अंग्रेजों पर ऐसी प्रतिकूल छाप डाली कि उन्होंने, कंपनी की सरकार द्वारा बड़ी संख्या में दिए गए विरोध पत्रों की मानसिंह द्वारा जिस उदासीनता से उपेक्षा की गई थी, उसके विरुद्ध अत्यन्त

---

१०४. मानसिंह का वाइस प्रेसीडेंट को पत्र जो ६ अप्रेल १८३२ को प्राप्त हुआ, कान्स ७ मई १८३२, संख्या ३२–३५, एफ पी, जोधपुर के राजा के वकील का सरकार के मुख्य सचिव को पत्र, जो ६ अप्रेल १८३२ को प्राप्त हुआ, कान्स ७ मई १८३२, संख्या ३२–३५, एफ पी

१०५. लोकहार्ट का मैकनाटन को पत्र, २८ सितम्बर १८३२, कान्स २६ नवम्बर १८३२, संख्या १४, एफ पी, लोकहार्ट का मानसिंह को पत्र १५ सितम्बर १८३२, कान्स २२ अक्टूबर १८३२, संख्या १० एफ एस

१०६. मैडाक का अलवेज को पत्र, २२ अगस्त १८३४, कान्स २२ अक्टूबर १८३४, संख्या १८, एफ पी; लाकेट का मानसिंह को पत्र, २७ दिसम्बर १८३२,

१०७. अलवेज का मैकनाटन को पत्र, १८ अगस्त १८३४, कान्स १६ अगस्त १८३४, संख्या १७–१८, एफ पी

१०८. ए० जी० जी० का मेकनाटन को पत्र, ६ मई १८३४, कान्स १६ जून १८३४, संख्या २३, एफ पी, स्पियर्स का मैकनाटन को पत्र, १६ जनवरी १८३४, कान्स २६ जनवरी १८३४, संख्या १६, एफ पी

१०९. अलवेज का मैकनाट को पत्र, १८ अगस्त १८३४, कान्स ६ अगस्त १८३४, संख्या १७–१८, एफ पी

गम्भीर चिन्ता का दृष्टिकोण अपना लिया। यद्यपि खिराज की बकाया १८३३ में चुका दी गई थी तथापि अंग्रेजों ने अन्य सभी विवादास्पद विषयों के तुरन्त तय किए जाने पर बल दिया और मानसिंह से अपनी गलत कार्यवाहियों और भूलों का उत्तर माँगा। उससे कहा गया कि वह अपने जिम्मेदार अधिकारियों को विवादास्पद विषयों पर वार्ता करने और अंग्रेजों के प्रति उसकी निष्ठा और मित्रता का विश्वास दिलाने के लिए अजमेर भेजे।[११०] मानसिंह कुछ समय तक इस विषय को टालता रहा परन्तु अन्त में उसके पास इसके अतिरिक्त कोई विकल्प शेष नहीं रहा कि वह अनूप राम व्यास, और रियाँ तथा बलूंदा के ठाकुरों को अपना प्रतिनिधि बनाकर बातचीत करने के लिए भेजता।[१११] क्योंकि इन लोगों को विवादास्पद विषयों के संबंध में अन्तिम निर्णय करने का अधिकार नहीं दिया गया था अतः अंग्रेजों ने विरक्त हो कर उसको गद्दी से उतार कर धौंकलसिंह को जोधपुर की गद्दी पर बैठाने की धमकी दी।[११२] इस पर ठाकुर रणजीतसिंह के नेतृत्व में दूसरा प्रतिनिधि दल २९ सितम्बर को अजमेर पहुँचा और उसने १८३४ में अंग्रेजों से समझौता किया।[११३]

अजमेर में हुए इस समझौते के अनुसार मानसिंह ने किशनगढ़, सिरोही और जैसलमेर के क्षेत्र में हुई लूटमार और डाक्टर मोटले की हत्या तथा डकैती से जो हानि हुई उसकी क्षतिपूर्ति करना स्वीकार किया। उसने ठगों के दमन का दायित्व भी अपने ऊपर लिया और सिरोही[११४] की जो हानि हुई उसकी क्षतिपूर्ति स्वरूप दस से बारह लाख तक रुपये देना स्वीकार किया। अंग्रेजों को यह भी आश्वासन दिया गया कि महाराजा ने अंग्रेजों के प्रति जो गलतियाँ की हैं उनके लिए वह न केवल क्षमा-प्रार्थना ही करेगा वरन् भविष्य में अपने अच्छे आचरण के लिए सद्भाव से सहमत भी होगा तथा उनसे मित्रतापूर्ण संबंध विकसित करेगा। यह भी तय हुआ कि अंग्रेजों को अजमेर में जो सैनिक तैयारियाँ करनी पड़ी थी उनके खर्चे को पूरा करने के लिए जोधपुर सरकार अंग्रेजों को पाँच लाख रुपये देगी।[११५]

---

११०. अलवेज का मैकनाटन को पत्र, १८ अगस्त १८३४, कान्स १३ सितम्बर १८३४, संख्या १०, एफ पी

१११. वही,

११२. मैकनाटन का अलवेज को पत्र, २२ अगस्त १८३४, कान्स २२ अगस्त १८३४, संख्या १७–१८, एफ पी

११३. ए० जी० जी० का मैकनाटन को पत्र, ७ अक्टूबर १८३४, कान्स २ दिसम्बर १८३४, संख्या २४, एफ पी

११४. वही,

११५. बैंटिक का मानसिंह को पत्र,

ये आश्वासन और वचन यद्यपि सामान्य रूप से बहुत महत्त्वपूर्ण थे तथापि अंग्रेजों को यह विश्वास नहीं हुआ कि मानसिंह उन्हें सद्भावना के साथ पूरा करेगा। अतएव उन्होंने महाराजा पर निगरानी और उसकी कार्यवाहियों पर नियंत्रण रखने की सावधानी भी बरती। उन्होंने अपनी वित्तीय माँगों से उत्पन्न होने वाले देय को पूरा करने के लिए 'साँभर' और 'नावां' के नमक की आय उन्हें (अंग्रेजों को) देने हेतु जोधपुर सरकार को विवश कर दिया। दूसरे शब्दों में, साँभर और नावां की आय जमानत के रूप में १५ जनवरी १८३५ को दे दी गई।[११६] मारवाड़-मेरवाड़ा के संबंध में हुए समझौते की अवधि भी नौ वर्षों के लिए बढ़ा दी गई तथा सात और गाँवों को अंग्रेजों के नियंत्रण में दे दिया गया।[११७] बाड़मेर में एक सैनिक छावनी स्थापित की गई जिससे कि मालानी के ठाकुरों के लूटपाट के धावों पर नियंत्रण रखा जा सके। अंग्रेजों ने मानसिंह को इन उपद्रवी तत्त्वों को नियंत्रण में रखने के लिए पहले कहा था। किन्तु ऐसा करने के लिए उसकी अनिच्छा देखकर उन्होंने १८३६ में स्वयं अपनी सेना भेज दी, मालानी के प्रमुख ठाकुरों को कैद कर लिया, और अपने ही सुपरिंटेंडेंट कैप्टेन जैक्सन को उस क्षेत्र के प्रशासन की देखभाल करने के लिए नियुक्त कर दिया।[११८] मालानी में अंग्रेजों द्वारा रखी गई सेना के व्यय को पूरा करने के लिए गुढ़ा, डीडवाना और मारोठ के नमक तैयार होने वाले क्षेत्रों को अंग्रेजों के सीधे प्रशासन में रखने के लिए महाराजा जोधपुर को कहा गया।[११९] मानसिंह ने इस पर आपत्ति की और मालानी पर अपने दावे पर बहुत बल दिया। परन्तु क्योंकि वह उस क्षेत्र का प्रशासन करने में अयोग्य सिद्ध हो चुका था[१२०]

---

११६. अलवेज का मानसिंह को पत्र, २६ दिसम्बर १८२४, कान्स २३ जनवरी १८३५, संख्या ३०, एफ पी, मानसिंह का मेटकाफ को पत्र, महजिल जूदों ६, कान्स १८ मई १८३५, संख्या २४, एफ पी

११७. मारवाड़ की भूमि मेरवाड़ा को दी गई जसके संबंध में की गई संधि का अनुवाद, २३ अक्टूबर १८३५, संख्या ५, ऐटचिसन, उल्लिखित-भाग ३, पृष्ठ १३२–३३, ट्रेविलियन का अलवेज को पत्र, २१ सितम्बर १८३५, कान्स १९ अक्टूबर १८३५, संख्या २४, एफ पी

११८. गवर्नर जनरल के सेक्रेटरी का बुश को पत्र, २६ सितम्बर १८३६, कान्स २६ सितम्बर १८३६, संख्या ३०, एफ पी

११९. अलवेज का मैकनाटन को पत्र, २८ जनवरी १८२८, आर० ए०, पुरानी जोधपुर-फाँइल, संख्या १४ ए, जोधपुर २, १८३८ की।

१२०. मानसिंह का अलवेज को पत्र जो २७ अक्टूबर १८३६ को प्राप्त हुआ, कान्स २ दिसम्बर १८३६, संख्या ४०, एफ पी

अतः अंग्रेजों ने मालानी जोधपुर को देना अस्वीकार कर दिया, परन्तु उन्होंने उस पर उसके दावे को स्वीकार कर लिया। बम्बई और गायकवाड़ की सेनाएँ मालानी में १८४४ तक रक्खी गई जबकि मालानी का प्रशासन मारवाड़ के पोलीटिकल एजेंट को सौंपा गया।[१२१] संधि के अनुच्छेद आठ के अनुसार, ब्रिटिश सरकार की सेवा के लिए जब सिरोही, गोड़वाड़ और जालौर की सीमा पर लूटमार को दबाने के लिए आवश्यकता थी तब मानसिंह पंद्रह सौ अश्वारोही देने में सफल नहीं हुआ अतः ऐरिनपुरा में जोधपुर लिजन की स्थापना की गई और इस व्यवस्था के लिए ७ दिसम्बर १८३५ के करार के अनुसार जोधपुर की सरकार द्वारा एक लाख पंद्रह हजार रुपए वार्षिक अतिरिक्त राशि दी जानी तय हुई।[१२२]

मानसिंह अंग्रेजों की इस कार्यवाही से नाराज हो गया। उसको मारवाड़ में ब्रिटिश सेना का स्थायी रूप से रक्खा जाना अथवा नावां, गुढ़ा, डीडवाना और मारोठ के नमक के क्षेत्रों का अंग्रेजों को दिया जाना पसंद नहीं आया।[१२३] वह इसके पीछे जो रहस्य था उसको समझता था। अफगानिस्तान में अंग्रेजों और रूस के स्थायी स्वार्थों के संघर्ष ने १८३५ में गम्भीर समस्या को जन्म दिया था। अंग्रेज सिंध और उसके आगे के क्षेत्र के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही के लिए मारवाड़ को अड्डा बनाना चाहते थे। वे मालानी सहित मारवाड़ की पश्चिमी सीमा को अपने प्रत्यक्ष नियंत्रण में रखना चाहते थे,[१२४] जिससे कि उन्हें उत्तरपश्चिमी सीमा के संघर्ष से उत्पन्न होने वाले खतरे से अपने हितों की रक्षा करने के लिए आगे सैनिक कार्यवाही करने में सुविधा हो सके। वे जोधपुर, जैसलमेर और बीकानेर पर प्रत्यक्ष नियंत्रण रखने के लिए एक पृथक् एजेंसी स्थापित करने का भी विचार कर रहे थे।[१२५]

ऐसा प्रतीत होता है कि मानसिंह को अंग्रेजों की योजना का पूरा पता था। जहाँ एक ओर उसने अंग्रेजों द्वारा मालानी पर अधिकार किए जाने का इस आधार पर

---

१२१. वही,

१२२. मानसिंह और ब्रिटिश सरकार के मध्य हुए करार के अन्तर्गत, जो लैफ्टीनैंट एच ट्रेवेलियन के द्वारा ७ दिसम्बर १८३५ को किया गया उसके एक अनुच्छेद का अनुवाद, संख्या ६, ऐटचिसन उल्लिखित भाग—३, पृष्ठ १३५

१२३. मानसिंह का अलवेज को पत्र जो २७ अक्टूबर १८३६ को मिला, कान्स २ दिसम्बर १८३६, संख्या ४०, एफ पी

१२४. गवर्नर जनरल के सेक्रेटरी का बुश को पत्र, २६ सितम्बर १८३६, कान्स २६ सितम्बर १८३६, संख्या ३०, एफ पी

१२५. मैकनाटन का अलवेज को पत्र, १० जनवरी १८३८, आर० ए० पुरानी फाइल संख्या १४ ए, जोधपुर २, १८३८, पृष्ठ ७२८

विरोध किया कि वह वास्तव में मारवाड़ के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप है,[१२६] वहाँ दूसरी ओर उसने उन तत्त्वों से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न भी किया जो ब्रिटिश शासन को उखाड़ फैंकने के इच्छुक थे। उसने धूमदास के नेतृत्व में अपने दूत निजाम भाई मुबारक-उद्दौला और सतारा, बड़ौदा, नेपाल, भूपाल, बाँदा आदि के शासकों के पास भेजे। ऐसा प्रतीत होता है कि उसका अफगान और सागर के अधिपतियों और रणजीतसिंह से भी पत्र-व्यवहार था। यह भी प्रतीत होता है कि उसने रणजीतसिंह के द्वारा रूस, परशिया और फ्रांस के राजनीतिज्ञों से सम्पर्क स्थापित करने का सतत प्रयत्न किया। ऐसा प्रतीत होता है कि वे अंग्रेजों के विरुद्ध एक षडयंत्र की रचना कर रहे थे। उनका विचार था कि जैसे ही रूस और परशिया की सेनाएँ भारत पर आक्रमण करें वैसे ही एक साथ चारों ओर से वे अंग्रेजों पर आक्रमण कर दें। मानसिंह और बाँदा के नवाब की रणजीतसिंह से मिलने के उपरान्त अंग्रेजों के स्थानों पर संगठित ढंग से आक्रमण करने की योजना थी।[१२७]

नवम्बर १८३८ में धूमदास की गिरफ्तारी से षडयन्त्र का भंडाफोड़ हो गया और सारी योजना तत्काल असफल हो गई। मुबारक-उद्दौला के कार्यों की जाँच के लिए जो आयोग १८३९ में बिठाया गया उसकी रिपोर्ट से ये सारे तथ्य प्रकाश में आ गए। उस रिपोर्ट से ऐसा प्रतीत होता था कि मारवाड़ ब्रिटिश-विरोधी कार्यवाहियों का मुख्य केन्द्र था और मानसिंह युद्ध भड़काने का भरसक प्रयत्न कर रहा था।[१२८]

यद्यपि मानसिंह के विरुद्ध विभिन्न आरोप इससे अधिक सिद्ध नहीं हो सके तथापि एक अस्पष्ट संदेह उत्पन्न हो गया कि वह ब्रिटिश विरोधी तत्त्वों से मिला हुआ है। फिर भी अंग्रेज उस समय जबकि भारत में उनकी स्थिति के लिए खतरा उत्पन्न हो गया था, इन सम्भावनाओं और आशंकाओं के प्रति गंभीरता रहित दृष्टिकोण नहीं अपना सकते थे। उनके विचार से यह उचित नहीं था कि उस भयावह खतरे के

---

१२६. मानसिंह का अलवेज को पत्र जो २७ अक्टूबर १८३६ को प्राप्त हुआ, कान्स २ दिसम्बर १८३६, संख्या ४०, एफ पी

१२७. सदरलैंड का मैडाक को पत्र, १० जून १८३९, कान्स २४ जुलाई १८३९, संख्या ३८, एफ पी; मुबारक-उद्दौला के अंग्रेजों के विरुद्ध षडयन्त्र में शामिल होने के संबंध में जो जाँच आयोग १८३९–४० में बिठाया गया था उसकी रिपोर्ट (वह फ्रीडम स्ट्रगिल हैदराबाद भाग ५१, १८०० पृष्ठ १३४–३५ पर उद्धृत किया गया है); जोटेन्गार का अलवेज को पत्र, ३ अक्टूबर १८३८, कान्स १७ अक्टूबर १८३८, संख्या १२, एफ पी

१२८. वही

प्रदेश के अत्यन्त निकट सटे हुए एक विशाल क्षेत्र पर इस प्रकार के व्यक्ति को शासन करने दिया जाए। वे सोचने लगे कि मानसिंह को हटाकर उसके स्थान पर धौंकलसिंह अथवा किसी नाबालिग राजकुमार को गद्दी पर बिठाया जाए जिससे कि अंग्रेजों के प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण में नाबालिग-प्रशासन स्थापित किया जा सके। परन्तु वे हस्तक्षेप करने के लिए इस कारण बहुत अनिच्छुक थे कि कहीं उससे सभी ब्रिटिश-विरोधी तत्त्वों का संयोजन न हो जाए। उनको भय था कि कहीं मानसिंह को दंडित करने के प्रयास मारवाड़ में उसके शत्रुओं में उसके प्रति सहानुभूति की भावना उत्पन्न न कर दें। अतएव वे अलग रहे और उन्होंने उसके सामन्तों को भड़काया जिससे कि उनका विद्रोह उनके सक्रिय हस्तक्षेप के लिए भूमि तैयार कर दे।[१२९]

मानसिंह के प्रति अंग्रेजों की शत्रुता :

उनके कूटनीतिक शस्त्रागार में केवल तीन शस्त्र थे। उनमें से प्रथम और सर्वोपरि धौंकलसिंह के दावे से संबंधित था। यद्यपि उन्होंने बहुत पूर्व ही इस विवाद को बन्द कर दिया था और मानसिंह को मारवाड़ का शासक स्वीकार कर लिया था तथापि उन्होंने उसके झूठे दावे रूपी एक भूत को कब्र में से खोद निकाल कर खड़ा करने में संकोच नहीं किया, जिससे कि मानसिंह भयभीत हो कर उनके अधीन रहे। उन्होंने विभिन्न शासकों को इसके संबंध में लिखा, उसके संबंध में स्पष्टीकरण माँगा और उन दावों की वैधता का निर्णय करने का प्रयत्न किया जिन्हें वे बहुत पहले ही अस्वीकार कर चुके थे।[१३०] क्योंकि वे धौंकलसिंह को अपने प्रभाव में रख सकने के संबंध में निश्चित नहीं थे तथा उन्हें भय था कि कहीं धौंकलसिंह भी मानसिंह की भाँति ही परेशान करने वाला सिद्ध न हो जाए अतः उन्होंने चाहा कि मानसिंह गद्दी से उतर जाए जिससे कि वे किसी नाबालिग राजकुमार को गद्दी पर बिठा सकें और उन्हें नाबालिगी-प्रशासन स्थापित करने में सुविधा हो।[१३१] परन्तु कोई उपयुक्त नाबालिग गोद लेने के लिए उपलब्ध नहीं था। हाल ही में मानसिंह के जो पुत्र उत्पन्न हुआ था उसकी भी उसके जन्म के कुछ ही दिनों बाद २० अप्रेल १६३६ को

---

१२९. सदरलैंड का मैडाक को पत्र, २७ जुलाई १८३६, कान्स ६ अक्टूबर १८३६, संख्या ३१, एफ एस

१३०. मैकनाटन का अलवेज को पत्र, १ नवम्बर १६३८, कान्स संख्या १०–२४, एफ पी, अलवेज का मैकनाटन को पत्र, १५ नवम्बर १८३८ कान्स संख्या २१ एफ पी

१३१. डिप्टी सैक्रेटरी का नोट, २६ दिसम्बर १८३८, संख्या १०–२४ एफ पी; अलवेज का मैकनाटन को पत्र, १२ अक्टूबर १८३८, कान्स २६ दिसम्बर १८३८, संख्या १०–२४, एफ पी

मृत्यु हो गई।[१३२] इसके अतिरिक्त उन सामन्तों को जिनकी भूमि उनसे ले ली गई थी, ब्रिटिश हस्तक्षेप की माँग करने के लिए उकसाया जा सकता था जिससे प्रभुसत्ता को मानसिंह के अधिकारों पर अंकुश रखने का अवसर मिल सकता था। परन्तु जागीरदार भी एकमत न हो कर बँटे हुए थे। उनकी भक्ति और निष्ठा कभी इधर और कभी उधर बदलती रहती थी और विभिन्न उद्देश्यों वश वे स्वयं अपना गला काटते रहते थे, जिसका विश्लेषण किसी को भी हतबुद्धि कर सकता था। एक युक्ति जो किसी भी प्रकार से कम महत्त्वपूर्ण नहीं थी और जिसे मानसिंह के विरुद्ध अंग्रेज अपना सकते थे, मारवाड़ के सामन्तों और मुत्सद्दियों को नाथों के विरुद्ध भड़काने की थी। कारण यह था कि उनका वर्चस्व विभिन्न स्थायी स्वार्थ वालों को अप्रिय था।[१३३]

मानसिंह के विरुद्ध सीधी कार्यवाही करने के बजाय अंग्रेजों ने मारवाड़ के प्रशासनिक ढाँचे में सुधार करने के बहाने हस्तक्षेप किया। गवर्नर जनरल ने अलवेज को आज्ञा दी कि वह जोधपुर कूच करे, मानसिंह से राज्यत्याग के लिए कहे और उसकी स्थान-पूर्ति या तो धौंकलसिंह से या उसके नवजात पुत्र से कर दे।[१३४] अपनी बीमारी के कारण अलवेज इन आदेशों को पूरा करने में सफल नहीं हुआ और उन्हें पूरा करने के लिए कर्नल सदरलैंड को भेजा गया। वह २३ मार्च १८३९ को जोधपुर गया और मानसिंह से सारी स्थिति पर चर्चा की।[१३५] उसने खिराज (कर) की उस बकाया के तत्काल भुगतान की माँग की जो पिछले पाँच वर्षों से नहीं चुकाया गया था। उसने महाराजा से सवार खर्च के उस बकाया को भी जो पिछले कुछ वर्षों से इकट्ठा हो गया था चुकाने को कहा। उसने उन जागीरदारों की जागीरें वापस करने का मामला भी उठाया जिनकी जागीरें ले ली गई थीं। महाराजा से उन सभी व्यक्तियों को विशेषाधिकार के स्थानों से हटाने के लिए कहा गया जो अवज्ञा करने के दोषी थे और जिन्होंने निरन्तर अंग्रेजों के प्राधिकार को चुनौती दी थी। मानसिंह आठ दिनों तक इन प्रश्नों पर वार्ता करता रहा परन्तु उसने किसी भी प्रश्न

---

१३२. सदरलैंड का मैडाक को पत्र, १७ अप्रेल १८३९, कान्स २ २४ जुलाई १९३८, एफ पी

१३३. डिप्टी सेक्रेटरी का नोट, २६ दिसम्बर १८३८, संख्या १०, एफ पी

१३४. मैकनाटन का अलवेज को पत्र, १ नवम्बर १८३८, कान्स २६ दिसम्बर १८३८, संख्या २०, एफ पी

१३५. सदरलैंड की गवर्नर जनरल को रिपोर्ट, ७ अगस्त १८४७, कान्स ७ अगस्त १७४७, संख्या ८४५, पृष्ठ १२, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८९१–१९००), संख्या १२, एफ २१८–३५

का अन्तिम फैसला नहीं होने दिया।[136]

इसी बीच सदरलैंड को ज्ञात हुआ कि मानसिंह अंग्रेजों के विरुद्ध षडयन्त्र रच रहा है। उसी काल में नेपाल से एक राजदूत जोधपुर पहुँचा और मानसिंह ने उसका भव्य स्वागत किया।[137] इससे मानसिंह के छलकपट के संबंध में विश्वास हो जाने पर सदरलैंड यकायक जोधपुर से चला गया। उसने मानसिंह के वकील को हटा दिया और महाराजा को सूचित कर दिया कि अंग्रेजों का जोधपुर की रक्षा करने का कोई दायित्व नहीं है,[138] क्योंकि वह संधि की शर्तों के विरुद्ध कार्य करता रहा है। सदरलैंड मानसिंह को हटाकर धौंकलसिंह को गद्दी पर बैठाने की सोचता था, परन्तु नाथों के प्रबल विरोध के कारण वह ऐसा नहीं कर सका।[139]

अजमेर पहुँचने पर सदरलैंड ने मानसिंह से हुई वार्ता के संबंध में विस्तृत रिपोर्ट भेजी। उसने मानसिंह के ब्रिटिश-विरोधी रुख और अंग्रेजों से संबंध बनाए रखने में उत्साह के अभाव पर प्रतिकूल टिप्पणी की।[140]

मारवाड़ के विरुद्ध ब्रिटिश अभियान :

जैसे ही गवर्नर जनरल ने सदरलैंड को मानसिंह के विरुद्ध कार्यवाही करने की आज्ञा दी,[141] वैसे ही उसने १७ अगस्त १८३९ को युद्ध की घोषणा कर दी।[142] उसने जोधपुर पर एक हजार अश्वारोही, तीन हजार पैदल सैनिक और १२ तोपों के

---

१३६. सदरलैंड का मैडाक को पत्र, १० जून १८३९, कान्स २४ जुलाई १८३९, संख्या ३८, एफ पी,

१३७. वही

१३८. जीतमल, महाराजा जोधपुर का वकील, २३ जुलाई १८३९, कान्स ३१ जुलाई १८३९, संख्या ११३, एफ पी; सदरलैंड का मानसिंह को पत्र, १४ जून १८३९, कान्स २४ जुलाई १९३९, संख्या ३६, एफ पी, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८९१–१९००), संख्या १२, एफ २४७

१३९. सदरलैंड का मैडाक को पत्र, १० जून १८३९, कान्स २४ जुलाई १८३९, संख्या ३८९, एफ पी

१४०. वही

१४१. टारेंट का सदरलैंड को पत्र, ९ अगस्त १८३९, कान्स ९ अक्टूबर १८३९, संख्या ३२, एफ एस।

१४२. गवर्नर जनरल की ओर से सदरलैंड की मारवाड़ के सामन्तों और जनसाधारण को घोषणा, १७ अगस्त १८३९, कान्स ६ नवम्बर १८३९, संख्या ९३, एफ एस, तवारीख मानसिंह, एफ ३०५–९

साथ ब्रिगेडियर रिछ के सेनापतित्व में आक्रमण कर दिया।[१४३] मारवाड़ के असंतुष्ट सामन्तों ने भी उसका साथ दिया और उसकी सहायता के लिए एक हजार पाँच सौ सैनिक दिए।[१४४] जोधपुर के विरुद्ध अपना अभियान आरंभ करने के पूर्व सदरलैंड ने एक विज्ञप्ति प्रकाशित की जिसमें इस बात की घोषणा की कि क्योंकि मानसिंह ने अंग्रेजों के साथ जिस सन्धि पर हस्ताक्षर किए थे उसकी शर्तों का उसने निष्ठा के साथ पालन नहीं किया, खिराज (कर) की १०२६१८६ रु० की शेष राशि नहीं चुकाई और मारवाड़ से डाकुओं द्वारा पड़ोसी क्षेत्रों में आक्रमणों को नहीं रोका, अतएव ब्रिटिश सरकार के लिए हस्तक्षेप करना अनिवार्य हो गया। उसने यह भी जोड़ दिया कि क्योंकि महाराजा ने राज्यकार्य की ठीक प्रकार से देखभाल नहीं की, अतः मारवाड़ में उसके विरुद्ध बहुत अधिक असंतोष पैदा हो गया। अंग्रेजों को जोधपुर के विरुद्ध सैन्य-संचालन करना पड़ा जिससे कि जनता के हितों में सार्वजनिक प्रशासन की उपयुक्त व्यवस्था की जा सके। उसकी घोषणा के अनुसार वह युद्ध मानसिंह और ब्रिटिश सरकार के मध्य था तथा राज्य की प्रजा और नागरिकों को किसी प्रकार की हानि उस युद्ध से नहीं होने वाली थी।[१४५]

ब्रिटिश सेना ने मारवाड़ में तीन ओर से प्रवेश किया। मानसिंह अपनी ओर से ८ अगस्त को ही अत्यन्त अधीनता की भाषा में अति विनम्र पत्र लिख चुका था जिसमें उसने सम्पूर्ण परिस्थिति को स्पष्ट किया था, अपनी मित्रता और निष्ठा की स्वीकारोक्ति को दोहराया था और इस बात का आश्वासन दिया था कि वह गद्दी छोड़ने के लिए भी तैयार है। उसने पत्र में आगे यह भी लिखा था कि वह अपने प्रशासन में सुधार करने के लिए स्वयं भी बहुत उत्सुक है परन्तु उसके जागीरदारों का निरन्तर विरोध उसके मार्ग में रुकावट रहा है। उसने पत्र में इस बात को बल देकर दोहराया कि उसके विरुद्ध सैनिक अभियान करने की कोई आवश्यकता नहीं है,

---

१४३. सदरलैंड का मैडाक को पत्र, २३ अगस्त १८३९, कान्स ६ नवम्बर १८३९, संख्या ९३, एफ एस

१४४. वही

१४५. गवर्नर जनरल की ओर से सदरलैंड द्वारा मारवाड़ के सामन्तों और जनता को घोषणा, १७ अगस्त १८३९, कान्स ६ नवम्बर १८३९, संख्या ९३, एफ एस; अपने अभियान को आरम्भ करने के पूर्व सदरलैंड ने मानसिंह-विरोधी जागीरदारों के गुट के नेता से यह बात करली थी कि युद्ध होने की दशा में क्या वे केवल मानसिंह का साथ देंगे एवं अंग्रेजों का साथ नहीं देंगे ? परन्तु शक्तिदान की मृत्यु ने इस अवरोध को भी समाप्त कर दिया (जोधपुर राज्य की ख्यात–भाग ४, एफ १२०)

क्योंकि वह अंग्रेजों का पहले से ही मित्र है।[१४६] फिर भी ब्रिटिश सैनिक शक्ति का प्रदर्शन करने, मारवाड़ के लोगों को उसका भान कराने तथा युद्ध करने की इच्छा से सदरलैंड जोधपुर की ओर बढ़ा।[१४७] जब ब्रिटिश सेनाएँ दाँतीवाड़ा में पहुँच गई तब मानसिंह बनाद गया और केप्टेन लडलू और कर्नल सदरलैंड दोनों से मिला और शर्तरहित आत्मसमर्पण का प्रस्ताव किया। उसने जोधपुर के किले को अंग्रेजों के सुपुर्द करना स्वीकार किया और अपने भाग्य को पूर्ण रूप से कर्नल सदरलैंड के हाथों में सौंप दिया।[१४८] जिस सावधानी और कुशलता से वह अपने राज्यत्याग और पतन को बचाने में सफल हो गया उससे अंग्रेज चकित हो गए। वह बहुत सक्रिय हो गया, उसने सभी वार्ताओं में भाग लिया और कर्नल सदरलैंड को आश्वासन दिया कि प्रशासन में सुधार की उसकी इच्छा वास्तविक है। यद्यपि जोधपुर के किले में सेना के उपयोग के लिए उपयुक्त बैरकें नहीं थीं तथापि महाराजा ने २७ अगस्त १८३९ को उसे खाली कर दिया और अंग्रेजों को सैनिक केन्द्र की भाँति उसे उपयोग में लेने की इजाजत दे दी।[१४९]

अंग्रेजों का सक्रिय हस्तक्षेप :

महाराजा ने २४ सितम्बर १८३९ को अंग्रेजों से एक नए करार पर हस्ताक्षर किए।[१५०] उसमें उसने १८१८ की संधि में विश्वास और निष्ठा की पुन: पुष्टि की और मारवाड़ के प्रशासन में सुधार करने के लिए अनेक प्रकार के प्रबंध करना स्वीकार किया। यह निश्चय हुआ कि प्रशासन चलाने के लिए सभी नियमों और विनियमों को भविष्य में

१४६. मानसिंह का सदरलैंड को पत्र, ८ अगस्त १८३९ (ओझा द्वारा राजपूताना का इतिहास में इसका उद्धरण दिया गया है) देखिए—जिल्द ४, भाग २, पृष्ठ ८६९

१४७. सदरलैंड का मैडाक को पत्र, २० सितम्बर १८३९, कान्स ८ जनवरी १८४०, संख्या ९० एफ पी

१४८. सदरलैंड का मैडाक को पत्र, २० अक्टूबर १८३९, राजपूताना एजेंसी फाइल, संख्या १,११५ मारवाड़, संख्या २७, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८९१–१९००), संख्या १२, एफ २६०–६२

१४९. सरदलैंड का मैडाक को पत्र २० अक्टूबर १८३९, राजपूताना एजेंसी फाइल, संख्या १,११५ मारवाड़, संख्या २७, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८९२–१९००), संख्या १२, एफ २४७–२६०

१५०. ब्रिटिश सरकार और मानसिंह में संधि, २४ सितम्बर १८३९, राजपूताना एजेंसी रेकर्ड, १४ ए, जोधपुर भाग ६, १८३९, इकरारनामा, २४ सितम्बर १८३९, पोर्टफोलियो फाइल, संख्या २२, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८९१–१९००), संख्या २६३

एक काऊंसिल बनायेगी जिसमें महाराजा, कर्नल सदरलैंड, मारवाड़ के प्रमुख सरदार, मुत्सद्दी एवं खास पासवान आदि थे।[151] राज्य की सरकार को एक पंचायत द्वारा जिसमें पोलीटिकल एजेंट और मारवाड़ के अहलकार थे, करार में दिए गए नियमों के अनुरूप महाराजा के परामर्श से चलाने का निश्चय हुआ।[152] सरकार के सभी मामले पंचायत द्वारा प्राचीन रीतिरिवाजों के अनुसार तय किए जायेंगे।[153] किसी भी व्यक्ति के प्रति अत्याचार और उत्पीड़न को नहीं सहा जायेगा।[154] धार्मिक केन्द्रों के संबंध में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा।[155] मारवाड़ में जिन पशुओं को पवित्र माना जाता है उनके वध की आज्ञा नहीं दी जायेगी।[156] जिन सामन्तों की जागीरें ले ली गई हैं उनको वे न्याय के सिद्धान्त के अनुसार पुनः वापस दे दी जाएँगी। जागीरदारों ने महाराजा की सेवा-चाकरी करना स्वीकार किया।[157] ब्रिटिश सरकार ने यह वचन दिया कि न तो वे स्वयं महाराजा के दर्जे और अधिकार को घटायेंगे और न अन्य किसी को ऐसा करने देंगे।[158] अंग्रेजों के खिराज और सवार खर्च के भुगतान के लिए उपयुक्त व्यवस्था की जायेगी। समीपवर्ती राज्यों को मारवाड़ के डाकुओं की लूटपाट से जो हानि हुई उसकी क्षतिपूर्ति की जायेगी।[159] मारवाड़ के अन्य राज्यों पर किए गए दावों पर परस्पर आदान-प्रदान के आधार पर विचार किया जाएगा।[160] जिस प्रकार महाराजा ने अपने सभी असंतुष्ट सरदारों को क्षमा कर दिया उसी प्रकार ब्रिटिश सरकार ने भी मारवाड़ के अहलकारों, उमराओं, स्वरूपों और जागेश्वरों को क्षमा करना स्वीकार कर लिया।[161] एक ब्रिटिश पोलीटिकल एजेंट जोधपुर में रक्खा जायेगा जो इस बात को देखेगा कि किसी के साथ अन्याय न हो।[162] यदि जोधपुर सरकार अपने संगठन के सुधार करने में ६

१५१. ऊपर के करार का अनुच्छेद–१

१५२. अनुच्छेद संख्या २, उल्लिखित

१५३. अनुच्छेद संख्या १३, उल्लिखित

१५४. अनुच्छेद संख्या १४, उल्लिखित

१५५. अनुच्छेद संख्या ५, उल्लिखित

१५६. अनुच्छेद संख्या ११, उल्लिखित

१५७. अनुच्छेद संख्या ७, उल्लिखित

१५८. अनुच्छेद संख्या ८, उल्लिखित

१५९. अनुच्छेद संख्या ९, उल्लिखित

१६०. वही

१६१. अनुच्छेद संख्या १० उल्लिखित

१६२. अनुच्छेद संख्या ११, उल्लिखित

महीने या एक वर्ष, अथवा अट्ठारह महीने में भी सफल हो गई तो पोलीटिकल एजेंट और किले की सेना को वापस बुला लिया जायेगा।[१६३]

इस समझौते की शर्तों के अनुसार पोकरण के भभूतसिंह, आउवा के कुशलसिंह, निमाज के सवाईसिंह, रियाँ के शिवनाथसिंह, भद्राजन के बख्तावरसिंह, कुचामन के रणजीतसिंह, रास के भीमसिंह और शम्भूसिंह, असोप ठाकुर के प्रतिनिधि आदि की एक पंचायत नियुक्त की गई और पाँच व्यक्तियों को दीवान, किलेदार और अन्य पदाधिकारी नियुक्त किए जाने का सुझाव दिया गया।[१६४] मार्च १८४० को जोधपुर का किला महाराजा को वापस दे दिया गया।[१६५] नाथों का आधिक्य और प्रभाव पूर्ववत् बिना घटे बना रहा और उनके विरुद्ध शिकायतों की भरमार होती रही।[१६६] कतिपय असंतुष्ट सामन्तों ने धौंकलसिंह का पक्ष लिया, परन्तु उनके विरुद्ध सिंघवी फौजराज की तुरन्त कार्यवाही से उनकी दुरभिसंधि समाप्त हो गई।[१६७]

---

१६३. अनुच्छेद संख्या ११, उल्लिखित मैडाक का कर्नल सदरलैंड को पत्र, २५ सितम्बर १८३९, कान्स २९ नवम्बर १८३९, संख्या ५३, एफ एस, महाराजा मानसिंह और ब्रिटिश सरकार में संधि, २४ सितम्बर १८३९, राजपूताना एजेंसी रेकर्ड, १४ ए, जोधपुर भाग ६, १८३९, अहदनामा मानसिंह और ब्रिटिश सरकार में, २४ सितम्बर १८३९, संख्या ४, पोर्टफोलियो फाइल, संख्या० २२

१६४. अनुच्छेद ३, ब्रिटिश सरकार और महाराजा मानसिंह के मध्य हुई संधि, २४ सितम्बर १८३९, राजपूताना एजेंसी रेकर्ड १४ ए, जोधपुर भाग ६, १८३९, कोड़ ऑफ रूल्स, नवम्बर १८३९, राजपूताना एजेंसी रेकर्ड १४ ए, जोधपुर भाग १८४१, भाग ७; ओझा : राजपूताना का इतिहास—भाग ५, खंड २, पृष्ठ ८६५

१६५. सदरलैंड का हैमिल्टन को पत्र, २ मार्च १८४०, कान्स २३ मार्च १८४०, संख्या ५७, एफ पी

१६६. लडलो का मानसिंह को पत्र, ३० मार्च, कान्स १९ अप्रेल १८४१, फाइल संख्या ३६, ढ़ोलिया कोठार; लडलो का मानसिंह को खरीता, वि० सं० १८९७, पोर्ट फोलियो फाइल, संख्या १७, फारसी के पत्र का अनुवाद, खरीता लडलो का मानसिंह को, वि० सं० १८९७ भाद्रपद शुक्ल पक्ष की पंचमी (१ सितम्बर १८४०), पोर्टफोलियो फाइल, संख्या १७

१६७. जोधपुर राज्य की ख्यात भाग ४, एफ २०८

सदरलैंड नाथों को हटाने के संबंध में महाराजा को निरन्तर लिखता रहा।[१६८] यहाँ तक कि वह स्वयं अगस्त १८४१ में जोधपुर गया और उसने विभिन्न जागेश्वरों को दी गई जागीरों को जब्त करने की आज्ञा दी।[१६९] आयस लक्ष्मीनाथ, प्राणनाथ तथा रघुनाथ को उनके विभिन्न पदों से हटा दिया गया।[१७०] ठाकुर भभूतसिंह को प्रधान नियुक्त किया गया[१७१] और निमाज के ठाकुर के चाचा को कुछ गाँव जागीर में दिए गए।[१७२] कर्नल सदरलैंड ने जागेश्वरों को तीन लाख रुपए की आय की जागीरें देने का प्रस्ताव रक्खा, परन्तु उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया।[१७३]

२ सितम्बर १८४२ को सिंघवी सुखराज, पोलीटिकल एजेंट कैप्टेन लडलो की सिफारिश पर दीवान नियुक्त किया गया।[१७४] परन्तु वह भी नाथों पर किसी प्रकार का अंकुश लगाने में असफल रहा और वे जबरदस्ती राज्य-कोष को हड़पते रहे। २५ नवम्बर को सुखराज ने खेद के साथ दीवान के पद पर कार्य करने की अपनी असमर्थता प्रकट की[१७५] उसके उपरान्त महाराजा ने दीवान तथा अन्य अधिकारियों को नियुक्त करने की एक नीति अपनाई जिसके अनुसार उनको नियुक्त करने से पूर्व

---

१६८. सदरलैंड का लडलो को पत्र, २२ सितम्बर १८४१, कान्स ८ नवम्बर १८४१, संख्या १२२ एफ पी, सदरलैंड का लडलो को पत्र, १९ जनवरी १८४१, राजपूताना एजेंसी सूची। १, भाग २-१-१८४० से २७-४-१८४१, संख्या ५५, सदरलैंड का मैडाक को पत्र, ३० जनवरी १८४१, राजपूताना एजेंसी सूची १, भाग २-१-१८४० से २७-४-१८४२, ओझा : राजपूताने का इतिहास भाग ४, खंड २, पृष्ठ ८६७

१६९. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८९१-१९००), संख्या १२, एफ ३९८-४१०

१७०. लडलो को मानसिंह का खरीता, वि० सं० १८९८ वैशाख शुक्ल पक्ष की चतुर्थी (१४ मई १८४२) पोर्टफोलियो फाइल, संख्या १७,

१७१. लडलो का सदरलैंड को पत्र, १९ जनवरी १८४१, कान्स २६ जुलाई १८४१, संख्या २८-२९, एफ पी, तवारीख मानसिंह, एफ ३२५

१७२. वही

१७३. थाम्पसन का सदरलैंड को पत्र, १८ मई १८४३, कान्स ४ जून १८४३, संख्या ९२/१०५, एफ पी

१७४. ओझा : राजपूताने का इतिहास भाग ४, खंड २ पृष्ठ ८६७

१७५. वही पृष्ठ ८६८; हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८९१-१९००), संख्या १२, एफ ४७६

वह उनसे बहुत बड़ी धनराशि पेशगी ले लेता था।[१७६] यद्यपि नाथ-साधुओं में जो अधिक महत्वपूर्ण थे वे राज्य के बाहर थे तथापि उनके अनुयायियों और जागेश्वरों में जो कम महत्त्वपूर्ण थे उनकी कोई कमी नहीं थी।[१७७]

नाथों की नए अनुयायियों को भर्ती करने की कार्यवाहियों ने राज्य के ख़ज़ाने पर बहुत अधिक भार डाला जिसके कारण जनता पर भारी कर लगाना पड़ा। अन्त में पोलीटिकल एजेंट को हस्तक्षेप करना पड़ा। उसने अजमेर से एक सौ पचास सवार बुलाए और मेहरनाथ और शीतलनाथ को अप्रेल १८४३ में कैद कर लिया।[१७८]

लडलो ने जो सुझाव दिए उन पर मानसिंह ने बहुत कम ध्यान दिया। राज्य के प्रशासन में नाथों के हस्तक्षेप और उनके बार-बार जोधपुर आगमन के संबंध में उसकी सभी आपत्तियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।[१७९] जिस घोर उदासीनता और निरपेक्षता से मानसिंह ने लडलो के विरोधों की अवहेलना की उससे ब्रिटिश सरकार अत्यन्त क्रुद्ध होगई।[१८०] लडलो ने शिकायत की कि भ्रष्ट अधिकारियों के समूह के स्थान पर दूसरे भ्रष्ट अधिकारियों के समूह को रख दिया गया है, जागीरदार सशस्त्र सैनिकों को देने में अनिच्छुक हैं, रक्षकों को समय पर वेतन नहीं मिलता, जागेश्वरों के मामले को तय करने में देरी की जा रही है, ब्रिटिश सरकार के आदेशों का पालन नहीं किया जाता है और अपराधियों के विरुद्ध कार्यवाही करने में अवांछनीय देरी की

---

१७६. जोधपुर अखबार का सारांश, ६ जनवरी से १६ जनवरी १८३८ तक, कान्स ७ मार्च १८३८, संख्या २७ एफ पी

१७७. लडलो का सदरलैंड को पत्र, ८ जुलाई १८४३, २३ सितम्बर १८४३, संख्या ६७, एफ पी; तवारीख मानसिंह, एफ ३२६–३२७

१७८. लडलो का सदरलैंड को पत्र, ३ मई १८४३, कान्स १४ जून १८४३, संख्या ६२–१०५, एफ पी; हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८९१–१९००), संख्या १२, एफ ४६४

१७९. लडलो का मानसिंह को खरीता, वि० सं० १८९७, ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी; लडलो का मानसिंह को खरीता, वि० सं० १८९८ वैशाख शुक्ल पक्ष की चौथ, लडलो का मानसिंह को खरीता, वि० सं० १८९८, वैशाख कृष्ण पक्ष की ग्यारस; लडलो का मानसिंह को खरीता, वि० सं० १८९८ कार्तिक शुक्ल पक्ष १५, पोर्टफोलियो फाइल, संख्या १७

१८०. वही। मानसिंह का लडलो को खरीता, वि० सं० १८९८, आश्विन कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, खरीता बही, संख्या एफ ३५२

जाती है।[181] लडलो ने हिसाब का ठीक ब्यौरा रखने की व्यवस्था पर बहुत बल दिया और नाथों के बराबर महलों में आने तथा उनके द्वारा राज्य के मामलों में हस्तक्षेप किए जाने का विरोध किया।[182]

जहाँ एक ओर लडलो राज्य के अधिक महत्त्वपूर्ण नीति के प्रश्नों पर बल देने के स्थान पर दिन-प्रतिदिन के प्रशासन में महत्त्वहीन विस्तार-बिन्दुओं पर बल देने लगा, वहाँ दूसरी ओर मानसिंह उनके पालन को चतुराई व ऐसी धूर्तता से टालने लगा कि लडलो के पास इसके अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं रहता कि वह मानसिंह की उच्च अधिकारियों से शिकायत करे। उसने महाराजा का ध्यान निर्दोष व्यापारियों की कैद और अन्य अनियमितताओं की ओर खींचा।[183] जहाँ एक ओर मानसिंह लडलो के विरोधों और शिकायतों की जिस उदासीनता से अवहेलना करता था उसका कोई औचित्य नहीं था, वहाँ दूसरी ओर जिस प्रचंड आक्रोश और रोष से लडलो ने नाथों के विरुद्ध वास्तविक रूप में एक धर्मयुद्ध छेड़ा, और अत्यन्त महत्त्व-हीन प्रश्नों को ए० जी० जी० को रिपोर्ट करने में उसे जो उत्साह और प्रसन्नता होती थी वे सब सम्भवतः नितान्त अनुचित थी। उसको जोधपुर में केवल ब्रिटिश स्वार्थों की चौकसी करने और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बड़े प्रश्नों पर महाराजा को परा-मर्श देने के लिए रखा गया था। पर वह प्रशासन की छोटी-छोटी बातों में हस्तक्षेप करने लगा। वह एक मध्यस्थ और साथ ही एक प्रशासक का कार्य करने लगा और उसने अपने में एक राजदूत और दीवान के दुहरे दायित्वों को मिलाना चाहा।[184]

मानसिंह ने सदरलैंड द्वारा बनाई गई व्यवस्था के अनुसार कार्य करना भारी मन से स्वीकार किया था। जो समझौता उसके ऊपर थोप दिया गया था उसकी

---

१८१. लडलो का मानसिंह को खरीता, वि० सं० १८९७, भाद्रपद की पंचमी, पोर्टफोलियो फाइल, संख्या १७, लडलो का मानसिंह को खरीता, वि० सं० १८९७ पौष कृष्ण पक्ष की द्वादशी, पोर्टफोलियो फाइल, संख्या १७, लडलो का मानसिंह को खरीता, वि० सं० १८९८, ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की नवमी, पोर्ट फोलियो फाइल, संख्या १७

१८२. वही

१८३. लडलो का मानसिंह को खरीता, वि० सं० १८९७ माघ कृष्ण पक्ष की छट, खरीता बही, संख्या १३, एफ ४२६–२७

१८४. मानसिंह का अलवेज को पत्र, ४ दिसम्बर १८४०, कान्स संख्या ११, १८३९, एफ एस

शर्तों का निष्ठा के साथ पालन करने की उसकी कोई इच्छा नहीं थी। लडलो जिस लगन से उन प्रशासनिक प्रश्नों में रुचि लेने लगा जो एक पोलीटिकल एजेंट के कार्य-क्षेत्र के सर्वथा बाहर थे, उससे मानसिंह को विश्वास हो गया कि प्रभुसत्ता उसको बदनाम करके उसकी स्वतंत्रता को समाप्त कर देना चाहती है। मारवाड़ में जो कुछ भी बुराई प्रचलित थी उसके लिए लडलो मानसिंह को दोषी ठहराता था और उसको उन सब बुराइयों के लिए भी उत्तरदायी मानता था जिन पर मानसिंह का थोड़ा अथवा तनिक भी नियंत्रण नहीं था।[१८५] वह प्रत्येक व्याधि का कारण मानसिंह के नाथों से सम्बन्ध को मानता था,[१८६] मानों मारवाड़ में उस समम अन्य जो भी निवास करते थे वे सब भेड़ के बच्चे की भाँति निर्दोष थे।

अपनी स्वाभाविक चतुरता से मानसिंह ने प्रत्युत्तर दिया कि पोलीटिकल एजेंट ने उन असंख्य कठिनाइयों की उपेक्षा करदी जिनका उसके प्रशासन को सामना करना पड़ रहा है। मारवाड़ दुर्भिक्षों के चंगुल में फंस रहा है, जागीरदार राज्य के देयों को नहीं चुकाते हैं और सामन्त लोग जिनका ब्रिटिश सरकार सदैव पक्ष लेती है, लूटमार करते हैं, अपराधियों को सुरक्षा प्रदान करते हैं और उसके आदेश की अवज्ञा करते हैं।[१८७] वे मुत्सद्दी जो अंग्रेजों के अनुरोध पर नियुक्त किए गए थे, उतने ही अयोग्य सिद्ध हुए जितने कि उनके पूर्ववर्ती (अयोग्य) थे।[१८८] इन परिस्थितियों में लडलो को प्रशासनिक कमियों के प्रति एक सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण रखना चाहिए था। नाथ निस्संदेह उसके धार्मिक निर्देशक थे। इस कारण वह सम्भवतः उन्हें अपने पास न आने के लिए नहीं कह सकता था। परन्तु केवल उनको हटा देने मात्र से प्रचलित बुराइयों की कोई अचूक औषधि प्राप्त नहीं हो जाती, क्योंकि वे अनेक कारणों से

---

१८५. मानसिंह का सुखसेजराय को खरीता, वि० सं० १८९८ कार्तिक शुक्ल पक्ष की छट।

१८६. लडलो का सदरलैंड को पत्र, १ जनवरी १८४२, कान्स १२ फरवरी १८४२. संख्या २२, एफ पी, लडलो का सदरलैंड को पत्र, १८ जनवरी १८४२, कान्स २८ फरवरी १८४२, संख्या २२, एफ पी

१८७. मानसिंह का लडलो को खरीता, वि० सं० १८९८ आश्विन कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, खरीता बही, संख्या १०, एफ ३५२–५३

१८८. लडलो का सदरलैंड को पत्र, १८ जनवरी १८४२, कान्स २८ फरवरी १८४२, संख्या २२, एफ पी

उत्पन्न हुई थीं।[१८९]

यह प्रत्यक्ष था कि लडलो की शत्रुता ने केवल मानसिंह की घृणा को ही उत्पन्न किया और जब उसने शिष्टता की सीमा का अतिक्रमण कर दिया और नाथ गुरुओं को कैद करने के लिए पुलिस कांस्टेबिल का कार्य भी अपने ऊपर ले लिया, तब मानसिंह ने पहले तो विरोध करने का निश्चय किया परन्तु बाद में नितान्त असहाय अवस्था में विरक्त भाव से प्रतिरोध के सभी प्रयत्नों को त्याग दिया और मई १८४३ में संयासी बन गया।[१९०] यह सत्य है कि मानसिंह अपने प्रशासन का सुधार करने में असफल रहा, परन्तु इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि जिस तरीके से उसे सुधार लाने के लिए बिवश किया गया था वह तरीका अत्यन्त अपमान जनक था और कोई भी स्वाभिमानी व्यक्ति उसको सहन नहीं कर सकता था। यह सब विशेषकर इसलिए किया गया कि वे सिन्ध, अफगानिस्तान और पंजाब में अपने हितों की रक्षा करने लिए उत्सुक थे और उस क्षेत्र में भावी कार्यवाही के लिए सैनिक अड्डा प्राप्त करना चाहते थे। यही कारण था कि वे मारवाड़ को अपनी मुट्ठी मे रखना चाहते थे और उसकी गद्दी पर ऐसे व्यक्ति को बिठाना चाहते थे जो उनके हाथ की कठपुतली या सरल औजार बन कर रहता।

यही कारण था कि जब मानसिंह को उनकी सहायता की आवश्यकता होती थी तब उन्होंने उसकी कभी सहायता नहीं की। उन्होंने उसके हठी सरदारों का समर्थन किया, एक शत्रु दावेदार के मृत दावे को पुनः जीवित करने में भी संकोच नहीं किया और 'भेद डालो और शासन करो' की नीति को अपनाया। अजमेर-मेरवाड़ा में दुर्भिक्ष और अभाव के कारण वे स्वयं पूरी मालगुजारी वसूल नहीं कर सके। वह या तो खाम की दर से वसूल की गई या बिल्कुल ही वसूल नहीं की गई। ऐसे समय में भी जबकि दुर्भिक्ष, अभाव तथा अन्य अनेक कारणों से राज्य पूर्णतया साधनहीन और दरिद्र बन गया था, वे मानसिंह को खिराज (कर) चुकाने के लिए बार-बार स्मृतिपत्र भेजकर परेशान करने से नहीं चूके। उन्होंने राज्य के उस ख़ज़ाने को जो पहले ही दिवालिया हो चुका था, १८,२७,१८६ रुपए खिराज (कर) का बकाया चुकाने, सिरोही को तेरह लाख रुपए की क्षतिपूर्ति करने में, साढ़े पाँच लाख रुपये

---

१८९. मानसिंह का लडलो को पत्र, ३ फरवरी १८४३, संलग्न पत्र सं० १, १८४३ की संख्या ३२ में, मानसिंह का लडलो को पत्र, वि० सं० १८९८ आश्विन कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, खरीता बही, संख्या १०, एफ ३५३–३५४

१९०. लडलो का सदरलैंड को पत्र, १२ जून १८४२, संख्या १८४३ की २०२ आर० ए० रेकर्ड १४ ए, जोधपुर, भाग ६, १८४३

युद्ध के हर्जाने के और तीन लाख रुपए से अधिक वार्षिक सवार खर्च के रूप में भुगतान करने हेतु विवश करने में तनिक भी संकोच नहीं किया। इस पर भी वे मारवाड़ के शुभेच्छु होने का ढोंग करने की धृष्टता करते थे। अंग्रेज मानसिंह के लिए ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देना चाहते थे जिसका सामना करना उसके लिए असम्भव हो, परन्तु उसके विरुद्ध जो भी षडयन्त्र रचे गए उन पर उसने विजय प्राप्त की और यथेष्ट दीर्घकाल तक वह उनके विरुद्ध अडिग खड़ा रहा।

५

मानसिंह और नाथ

नाथों का इतिहास—सम्प्रदाय का उद्गम :

नाथ सम्प्रदाय के अनुयायी अपने सम्प्रदाय का उद्गम अनन्त कालीन धर्म से बतलाते हैं, जो तीन लोकों के आविर्भाव से सीधा संबंधित था।[1] उसके अनुयायी बनने से वे (नाथ) ब्रह्म का दर्शन कर सकते थे, अज्ञान की बुराई से मुक्ति पा सकते थे और सिद्धि की अवस्था को प्राप्त कर सकते थे।[2] कापालिक और कौल मतों से संबंधित तान्त्रिक सम्प्रदाय भी, नाथों के अनुसार, उनकी पद्धति से ही निकले हैं।[3] क्योंकि स्वयं आदिनाथ भगवान शिव को ही इस सम्प्रदाय का संस्थापक माना जाता था, अतएव प्रचलित मत के अनुसार उसको शैव धर्म की ही एक शाखा स्वीकार किया जाता था।[4]

सम्प्रदाय का पवित्र धर्मग्रन्थ :

'सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति' इस सम्प्रदाय का सबसे अधिक प्रामाणिक व पवित्र धर्म ग्रन्थ है। सम्प्रदाय के सिद्ध पुरुषों ने जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, उनका संकलन होने के कारण वह यह जानने का एक मात्र प्रामाणिक स्रोत है[5] कि सम्प्रदाय

१. देवनागरी अक्षर 'न' का अर्थ है, अनन्तकालीन स्वरूप और 'था' का अर्थ है, तीनों लोगों का आविर्भाव होना (भुवन त्रय)। 'न' अक्षर का अर्थ 'नाथ ब्रह्म' भी किया जा सकता है अर्थात् जिसमें आत्मा को बंधन से मुक्ति दे सकने की शक्ति है, और 'था' वह है जो अज्ञान को दूर कर सकता है। (हजारीप्रसाद द्विवेदी : नाथ सम्प्रदाय, पृष्ठ ३)

२. हजारीप्रसाद द्विवेदी : नाथ सम्प्रदाय, पृष्ठ ३–४

३. वही, पृष्ठ १

४. मारवाड़ जनसंख्या रिपोर्ट, भाग ३ (१८९१), पृष्ठ २३५–४५
देखिए:—ताराचन्द : सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति और शक्ति संगम तंत्र सिरीज संख्या ९१

५. हजारीप्रसाद द्विवेदी : नाथ सम्प्रदाय, पृष्ठ २–३

के अनुयायियों को किस प्रकार की आचरण संहिता और कैसे व्यवहार को अपनाना चाहिए। वह हिन्दू धर्म के सभी सम्प्रदायों की तुलना में नाथ सम्प्रदाय की श्रेष्ठता का प्रशंसात्मक वर्णन करता है। उसके इस दावे का आधार यह है कि उसने अनन्तकालीन सत्य की खोज की है और जो आचार संहिता और व्यवहार उसने अपनाया है वह श्रेष्ठ है।[६] यह भी माना जाता है कि 'सिद्धान्त-बिन्दु' नाथ सिद्धान्तों की एक टीका है, और यही कारण है कि उसके रचयिता आदि शंकराचार्य के सम्बन्ध में नाथ सम्प्रदाय के लोग यह दावा करते हैं कि वे अपने जीवन के अन्तिम काल में नाथ सम्प्रदाय के अनुयायी हो गए थे।[७]

नाथों की गुरु परम्परा :

इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को प्रस्तुत करने वालों में सबसे प्राचीन काल के मत्स्येन्द्रनाथ, जलंधरनाथ, गोरखनाथ और कनिया थे, जो कि सम्प्रदाय के सर्व-स्वीकृत आचार्य थे। इनमें से मत्स्येन्द्रनाथ तथा जलंधरनाथ आदि नाथ भगवान शिव के शिष्य थे और गोरखनाथ मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य थे। सम्प्रदाय के सबसे प्राचीन सिद्ध पुरुष होने के कारण धार्मिक उच्चोच्चपरम्परा में उनका स्थान अद्वितीय था, यद्यपि उन्होंने जिन सम्प्रदायों की स्थापना की वे एक दूसरे से सर्वथा भिन्न थे।[८] नेपाल और तिब्बत दोनों देशों में गौतम बुद्ध के अनुयायी मत्स्येन्द्रनाथ की बहुत अधिक भक्ति करते थे और उनमें श्रद्धा रखते थे जहाँ कौल मार्ग के प्रवर्तक होने के नाते वे अवलोकेतेश्वर के नाम से प्रसिद्ध थे।[९] जहाँ तक जलंधरनाथ के जन्म-स्थान का प्रश्न है, इस संबंध में तीन मत प्रचलित हैं। परन्तु उनका जलंधर नाथ से किसी न किसी रूप में संबंधित होना निश्चित है। ऐसा प्रतीत होता है कि जलंधरपीठ में या तो उनका जन्म हुआ या उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई। यही कारण है कि वे 'जलंधरनाथ' कहलाए। उनके शिष्य कृष्णपद अथवा कापालिक ने 'कापालिक सम्प्रदाय' चलाया।[१०]

परन्तु दसवीं शताब्दी में इस पद्धति को गोरखनाथ से बहुत अधिक प्रेरणा मिली। उनके नेतृत्व में नाथ सम्प्रदाय ने अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त करली और

---

६. हजारीप्रसाद द्विवेदी : नाथ सम्प्रदाय, पृष्ठ २—३

७. हजारीप्रसाद द्विवेदी : नाथ सम्प्रदाय, पृष्ठ १—२

८. धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोष-भाग २, पृष्ठ ४२५—२६

९. पी० सी० बागची : कौल ज्ञान निर्णय, भूमिका, पृष्ठ ६
देखिए:—हजारीप्रसाद द्विवेदी रचित नाथ सम्प्रदाय, पृष्ठ ६६

१०. योगी चन्द्रनाथ : योगी सम्प्रदाय विशर्कति, पृष्ठ ८६—८७; देखिए
पी० सी० बागची : की पुस्तक 'स्टडीज इन तंत्र', भाग १, पृष्ठ ३९,

उनके प्रभावशाली व्यक्ति द्वारा उसका प्रचार किए जाने के कारण सम्पूर्ण भारत में उसके अनुयायियों की संख्या बहुत अधिक हो गई। उन्होंने न केवल उसकी पुनर्स्थापना की वरन् उसकी बारह शाखाओं को भी संगठित किया। इस कारण उन्होंने सर्वसाधारण की श्रद्धा अर्जित की। उनको सर्वसाधारण आदर मिश्रित भय और सराहना की दृष्टि से देखने लगा। ज्ञान मार्ग का कट्टर प्रचारक होने के नाते उन्होंने भक्ति की अपेक्षा योगाभ्यास द्वारा ज्ञान प्राप्त करने पर बहुत बल दिया। भक्ति को उन्होंने प्रकट रूप से अनुपयुक्त मानकर त्याग दिया।[११] नाथ साधुओं के पास कुछ चामत्कारिक शक्तियाँ होती थीं। मुसलमान भी उनके पास इस उद्देश्य से जाते थे कि वे उन शक्तियों को किसी प्रकार प्राप्त करें एवं उसकी शिक्षा ग्रहण करें।[१२] कुछ नाथ साधु औषधि विज्ञान, ज्योतिष विज्ञान, खगोल शास्त्र, भविष्यवाणी आदि के गूढ़ रहस्यों के श्रेष्ठ ज्ञान का दावा करते थे। उनमें से कुछ सहनशीलता के असाधारण करतब (कार्य) कर सकते थे। कुछ साधु लेट कर कभी सोते नहीं थे एवं अन्य, सभी ऋतुओं को बिना वस्त्र पहने सहन कर सकते थे। वे तेज कीलों पर लेट सकते थे और भोजन और जल के बिना लम्बी यात्राएँ कर सकते थे। वे दुष्ट आत्माओं (पिशाच आदि) पर भी अपना प्रभाव रखने का दावा करते थे। वे बहुधा यह दावा करते थे कि वे भगवान से किसी व्यक्ति के पक्ष में प्रार्थना करके उसके भाग्य को भी बदल सकते थे। समस्त राजस्थान (राजपूताना) में लोगों का इन नाथ जोगियों में बहुत गहरा विश्वास था। वे सभी महत्त्वपूर्ण अवसरों पर उनसे परामर्श करते थे, बीमारी का उनसे उपचार कराते थे और सन्तान एवं समृद्धि प्राप्त करने के लिए उनका आशीर्वाद प्राप्त करते थे।[१३]

नाथ योगियों का बाह्य रूप :

नाथ योगी प्रचलित भाषा में 'कनफटा' नाम से प्रसिद्ध थे। वे लम्बे बाल रखते थे जो खोल दिए जाने पर पैरों को छूते थे और जब बाँध लिए जाते थे तब जटा बन जाते थे। वे अपने शरीर पर भभूत (भस्म) मलते थे जिसे एक धार्मिक विधि से तैयार किया जाता था। उनकी सैली काले ऊनी धागों से बनाई जाती थी। वे मूंज की एक रस्सी जिसे वे मेखला कहते थे, कमर में धारण करते थे और गले में रुद्राक्ष

---

११. ए० के० वन्द्योपाध्याय : गम्भीरनाथ प्रसंग, पृष्ठ ५२–५३, पी० डी० बडत्थ्वाल का योग प्रवाह, और देखिए-ब्रिग्ज : गोरखनाथ और कनफटा योगीज्, पृष्ठ ६४–६५

१२. हजारीप्रसाद द्विवेदी : नाथ सम्प्रदाय, पृष्ठ १८०–८८
इब्न बतूता की भारत यात्रा, पृष्ठ २९२–९३

१३. ऐडम्स : दी वेस्टर्न राजपूताना स्टेट्स, पृष्ठ ९२

की माला पहिनते थे। वे प्रार्थना तथा भोजन के समय हिरन के सींग से बनी शृंगी बजाते थे। वे एक खप्पर रखते थे, गेरुये रंग की धोती पहिनते थे और लकड़ी का एक सोटा रखते थे।[१४]

राजपूताने में योगी :

राजपूताना में नाथ योगियों ने इतनी अधिक प्रधानता प्राप्त करली थी कि बाप्पा रावल के गुरु हरित ऋषि भी सिद्ध योगी थे।[१५] जालौर के चौहान[१६] और आबू के परमार[१७] भी रावल शाखा के योगियों के बहुत बड़े भक्त थे। जैसलमेर, जोधपुर और पूर्वकाल में जयपुर के नरेशों के भी धर्मगुरु नाथ योगी थे। जयपुर के नाथावत और चम्पावत, तथा मारवाड़ के कुम्पावत राजपूत भी उनके भक्त थे। यहाँ तक कि उनके तम्बू, झंडे, और उनके घोड़ों की काठी के कपड़े की खोली का भी रंग गेरुआ होता था।[१८]

मारवाड़ के नाथ :

मारवाड़ में जलंधरनाथ के शिष्यों का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण केन्द्र जालौर था। उस क्षेत्र में सम्प्रदाय के प्रमुख गुरु चिड़ियानाथ थे जिन्होंने भीमसेन पहाड़ियों की चिड़ियाँ टूंक भांकरी पर योग का अभ्यास किया था। बाद में पलासनी भी नाथों का पवित्र स्थान बन गया जहाँ राव जोधा के आगमन के उपरान्त चिड़ियानाथ अपनी धूनी को हटाकर ले गए। मारवाड़ में नाथ साधु, योगी नाथ, योगेश्वर, सरूप और आयसजी के नामों से प्रसिद्ध थे।[१९] महाराजा मानसिंह के राजत्व काल में

---

१४. सेंसस रिपोर्ट-मारवाड़ स्टेट-भाग ३ (१८९१), पृष्ठ २३५–४५

१५. राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ३ : 'ता रावलास्याँ पदवीदधानो वाप्यभिधान सरराज राजा'। इसे हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक नाथ सम्प्रदाय में पृष्ठ १५६ पर उद्धृत किया है। एक मत इस प्रकार का भी है कि हरित ऋषि नाथ सम्प्रदाय के नहीं थे।

१६. महाराज कुल की सामन्तसिंह देव कल्याण विजय राज्ये-इत्यादि, साँचौर का शिलालेख, जिसे हजारीप्रसाद ने अपनी पुस्तक 'नाथ सम्प्रदाय' में पृष्ठ १५६ पर उद्धृत किया है।

१७. एवं मिथं व्यवस्था श्री चन्द्रावती पति राजकुल श्री सोमसिंह देवेन····देलवाड़ा मंदिर प्रशस्ति लेख—आबू, हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा 'नाथ सम्प्रदाय' में पृष्ठ १५६ पर उद्धृत।

१८. सेंसस रिपोर्ट ऑफ मारवाड़ स्टेट-भाग ३ (१८९१), पृष्ठ २३५–४५

१९. वही।

उनका उत्कर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। उस समय में समस्त राज्य का प्रशासन अधिक या कम नाथ साधुओं और उनके एजेंटों के हाथ में रहा। उनकी इस अभूतपूर्व लौकिक शक्ति के उदय ने बड़ी मात्रा में सभी प्रकार की ईर्ष्या और द्वेष को जन्म दिया।[२०]

मानसिंह को नाथों के प्रति भक्ति :

यद्यपि मानसिंह का जन्म और लालन-पालन एक ऐसे परिवार में हुआ था जो वैष्णव सम्प्रदाय के पुष्टि मार्ग की शाखा का भक्त था तथापि मानसिंह अपनी किशोर अवस्था के प्रारम्भ में ही जालौर की 'जलंधरनाथ पीठ' के मुख्य पुजारी आयसदेव नाथ के प्रत्यक्ष प्रभाव में आ गया था। ऊँची श्रेणी का संन्यासी और कठोर धार्मिक होने के कारण उस नाथ सिद्ध का मारवाड़ की जनता पर बहुत गहरा प्रभाव था। उसका जीवन पूर्ण रूप से सदाचार पूरित था। उसके धार्मिक लोक-त्याग के कारण उसे अपने अनुयायियों की श्रद्धा-भक्ति प्राप्त थी। वह घंटों तक कमर तक जल में बैठ कर मंत्र-जाप करता था। वह वर्ष में दो बार जालौर में पाँच हजार नाथों को भोज देता था। उसको भविष्य में घटने वाली घटनाओं को बता देने की शक्ति प्राप्त थी, यद्यपि वह वर्तमान में क्या होने वाला है यह कभी नहीं बतलाता था। वह एक योग्य व्यक्ति था। उसको असीम प्रभावोत्पादकता और शक्ति प्राप्त थी। वह लोगों को ऊँची आवाज में ताड़ना देता था और उनकी भर्त्सना करता था।[२१]

मानसिंह ने १७९२ से जालौर में रहना आरम्भ किया था। वहाँ निवास करने के समय उसने दुर्ग के बहुत समीप ही स्थित नाथ मंदिर में दर्शन करने जाना आरम्भ किया था।[२२] धीरे-धीरे उसके और नाथ सिद्ध के मध्य सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो गया।[२३] आयसदेवनाथ ने भीमसिंह के विरुद्ध मानसिंह के पक्ष का समर्थन किया। जब कभी उसको आवश्यकता पड़ी, उसने गाँव-गाँव घूम कर मानसिंह के

२०. सदरलैंड का गवर्नर जनरल को पत्र, १७ फरवरी १८४२, संख्या ५१७, एफ पी

२१. अजमेर के सुपरिंटैंडैंट कैवैंडिश का मेजर आक्टरलोनी को मीमो, ७ मार्च १८३१

२२. तवारीख मानसिंह, एफ २

२३. मानसिंह का सिंघवी फतहमल को खास रुक्का १८५१ आश्विन कृष्ण पक्ष की परवा; मानसिंह का सिंघवी जीतमल, फतहमल, आनन्दमल, केसरीमल को खास रुक्का, वि० सं० १८५२ भाद्रपद कृष्णपक्ष की ग्यारस का। मानसिंह ने जो पत्र वि० सं० १८५१ आश्विन के प्रथम कृष्णपक्ष में और वि० सं० १८५२ में भाद्रपद के कृष्णपक्ष की ग्यारस को लिखे, उनसे स्पष्ट हो जाता है कि वह उस समय भी नाथों का भक्त था।

लिए कोष, खाद्य-सामग्री, घोड़े तथा स्वयंसेवक इकट्ठे किए।[२४] १८०३ में जोधपुर की सेना ने मानसिंह को इतना अधिक दबाया कि उसने निराश हो कर असहाय अवस्था में दीपावली के पश्चात् दुर्ग छोड़ देने का निश्चय कर लिया।[२५] उस समय नाथ सिद्ध ने यह भविष्यवाणी की थी कि उसका २१ अक्टूबर १८०३ तक दुर्ग में रहना उसको मारवाड़ का प्रशासक बनने में अवश्य सहायता पहुँचायेगा।

भीमसिंह की अकस्मात मृत्यु ने मानसिंह को शक्ति-ग्रहण करने का अवसर प्रदान कर दिया और उसके मारवाड़ की गद्दी पर बैठने से वह सत्य सिद्ध हो गया[२६] जो नाथ सिद्ध ने कहा था। क्योंकि मानसिंह का यह विश्वास था कि उसे मारवाड़ का राजसिंहासन जलंधरनाथ के आशीर्वाद और आयसदेवनाथ की भविष्य वाणी के फलस्वरूप मिला है अतः उसने निश्चय किया कि वह मारवाड़ का शासन नाथों के परामर्श के अनुसार ही करेगा। उसने दिसम्बर १८०३ में आयसदेवनाथ को जालौर से बुला भेजा। जब वह जोधपुर नगर की बाहरी सीमा पर आ पहुँचा तब महाराजा स्वयं उसकी अगवानी करने के लिए नगर से निकल कर बाहर आया और उसका अत्यन्त श्रद्धा और समारोहपूर्वक स्वागत किया। देवनाथ के साथ उसके चार भाई हरनाथ, सूरतनाथ, भीमनाथ और ओपनाथ आए थे। चारों सूरसागर में ठहरे।[२७] महाराजा ने १८०४ में उसको अपना गुरु बनाने की घोषणा की और दस हजार रुपए वार्षिक आय का छोपरा गाँव आयसदेवनाथ और उसके भाइयों को दान में दिया तथा साथ ही जालौर के पास गोल गाँव की छदामी भी उसे प्रदान की।[२८]

जलंधर में उसने 'सिरेह मंदिर' का निर्माण करवाया और आयसदेवनाथ के सबसे बड़े भाई हरनाथ को उसका पुजारी नियुक्त किया। जालौर परगने में प्रत्येक गाँव से प्रति गाँव एक रुपया मंदिर-कर के रूप में वसूल करने का नाथों को अधिकार दे दिया गया। सूरतनाथ को निज मंदिर की सेवा करने का कार्य सौंपा, जिसे मानसिंह ने गुलाब सागर पर १८०४ में बनवाया था।[२९] जलंधरनाथ के प्रति

---

२४. हकीकत बही बीकानेर, संख्या १७, एफ १४५, १६५

२५. मारवाड़ ख्यात-भाग ३, एफ २, मुदियार ख्यात, बस्ता संख्या ८, एफ २७

२६. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८५६–६०), संख्या ८, एफ ४५३

२७. तवारीख मानसिंह, एफ २०

२८. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८५६–६०), संख्या ८, एफ ४५२, फुटकर बही जोधपुर, संख्या २, एफ २, मानसिंह के राज की ख्यात (राठौड़ की ख्यात), एफ २१

२९. तवारीख मानसिंह, एफ ३०

अपनी श्रद्धा-भक्ति के प्रतीक स्वरूप उसने उनके चरण-चिह्नों की दुर्ग में धार्मिक कृत्यों के साथ स्थापना की और अपने गुरु के लिए १७ जनवरी १८०४ को संगमरमर का एक छोटा चबूतरा बनवाया। महाराजा ने आयसदेवनाथ के लिए नागौरी फाटक के बाहर ६ अप्रेल १८०४ (वि० सं० १८६१ चैत्र सुदी दसवीं) को महामंदिर का निर्माण करवाया।[30]

महामंदिर के चैत्य में पाँच सौ सत्तर मकान थे और उसमें दो हजार पाँच सौ प्राणियों के निवास करने की सुविधा थी। वह मंदिर की अपेक्षा एक उपनगर था। वह नागौरी द्वार के बाहर आधा मील दूर उत्तर-पूर्व दिशा में स्थित था। उसके चारों ओर पत्थर की पतली दीवार बनाकर उसकी किलेबन्दी कर दी गई थी। दीवार की परिधि सवा मील थी। उसमें बुर्ज बने हुए थे और रक्षा की दृष्टि से चबूतरे और सूराख बनाए गए थे। समस्त क्षेत्रफल लगभग एक चतुर्भुज के समान था, जिसके प्रत्येक ओर एक फाटक था। उसके अन्दर एक कूप था जिसके संबंध में कहा जाता था कि वह कभी नहीं सूखा। उसका जल मिठास के लिए प्रसिद्ध था।[31] महामंदिर में दो सुन्दर नक्काशी युक्त महल थे। एक वह था जहाँ नाथजी निवास करते थे और दूसरा उनके महान पूर्वजों की आत्माओं के लिए आरक्षित था। उसके मुख्य कक्ष में एक सुन्दर पलंग तथा बिछौना रहता था जिसके संबंध में कहा जाता था कि वह दिव्य आत्मा द्वारा नियमित रूप से उपयोग में लाया जाता था। इन दो महलों के निर्माण में दस लाख रुपए व्यय हुए थे, और इसके अतिरिक्त मेढ़, नहर, झालरा, मानसागर तथा अन्य इमारतों पर चालीस लाख रुपए व्यय हुए थे।[32]

इसके अतिरिक्त मारवाड़ के लगभग सभी परगनों में नाथ मन्दिरों के निर्माण की आज्ञा भी निकाल दी गई। महामंदिर का विशाल मन्दिर ४ फरवरी १८०५ को बनकर सम्पूर्ण हुआ। उसमें अत्यन्त भव्य समारोह के साथ प्राण-प्रतिष्ठा की गई।[33] उस अवसर पर सब सरदारों, मुत्सद्दियों और खास पासवानों को आयस देवनाथ के समक्ष उपस्थित किया गया और उनसे उनका परिचय कराया गया।[34]

---

३०. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८५६–६०), संख्या ८, एफ ४५२

३१. ऐडम : वैस्टर्न राजपूताना स्टेट्स, पृष्ठ ८०

३२. दस्तूर बही, चौपासनी शोध संस्थान, एफ १५५

३३. मानसिंह की आयस हरदेवनाथ (देवनाथ के सबसे बड़े भाई) को अर्जी, वि० सं० १८६१, माघ कृष्णपक्ष की ग्यारस, अर्जी बही, संख्या ३, एफ २, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८५६–६०), संख्या ८, एफ ४८३ मारवाड़ ख्यात, भाग ३, एफ २६, नाथ पंचमी।

३४. तवारीख मानसिंह, एफ ३०

प्रत्येक सोमवार को मानसिंह अपने गुरु के दर्शन करने के लिए महामंदिर जाया करता था।[३५]

मानसिंह की दीक्षा :

२३ सितम्बर १८०५ के दिन महाराजा को नाथ सम्प्रदाय में दीक्षित किया गया। आयसदेवनाथ ने गुरुमंत्र दिया। उस उपलक्ष में दस हजार आठ सौ चालीस रुपये नाथों को भेंट में दिए गए, और आयसदेवनाथ को दस हजार दो सौ रुपये के साथ सिरोपाव भेंट किया गया। इसी प्रकार भीमनाथ, ओपनाथ, जोरनाथ, बालकनाथ आदि को भी द्रव्य और वस्तुएँ भेंट की गईं। उसने महामंदिर में भी छत्तीस मुहरें और एक सौ वीस रुपये भेंट किए, और सात मुहरें तथा पाँच सौ सत्तर रुपये जालौर के सिरह मंदिर में भेजे गए।[३६] मानसिंह ने उनमें से प्रत्येक नाथ योगी को दो रुपये दक्षिणा के रूप में भेंट किए, जो आयसदेवनाथ के पिता महेशनाथ के भंडारे के समय बहुत बड़ी संख्या में जोधपुर में एकत्रित हुए थे।[३७]

मानसिंह की नाथ सम्प्रदाय के प्रति अगाध भक्ति के कारण देश के विभिन्न भागों से नाथ योगी बड़ी संख्या में जोधपुर की ओर आकर्षित हुए और बड़ी संख्या में लोग नाथ सम्प्रदाय में दीक्षित हुए। महामंदिर उनका मुख्य केन्द्र बन गया। एक हजार अठावन नाथ स्वरूपों में पाँच सौ रुपए बाँटे गए तथा सत्तर प्रमुख योगियों को खिलअतें भी दी गईं।[३८]

मानसिंह भारत भर में बिखरे हुए प्रमुख गुरुओं से पत्र-व्यवहार करता था।[३९]

---

३५. वही।

३६. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ९, एफ १८–२१

३७. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ९, एफ ३५

३८. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८५६–६०), संख्या ८, एफ ४९०

३९. देहली से पीर बालकनाथ की मानसिंह को अर्जी, वि० सं० १८८८ भाद्रपद शुक्ल पक्ष की पंचमी; अर्जी बही, सं० ६, एफ ३३, अर्जी जोगेश्वर हुशियारनाथ की मानसिंह को हरिद्वार से, वि० सं० १८८८ वैशाख कृष्ण पक्ष की द्वितीया को, अर्जी बही संख्या ६, एफ ३६–३७ काशी, से नन्द रावल की मानसिंह को अर्जी, वि० सं० १८९० माघ शुक्ल पक्ष की चौदस। अर्जी बही, सं० ६, एफ ५६; देहली से पीर सहेजनाथ की मानसिंह को अर्जी, वि० सं० १८९३ कार्तिक कृष्ण पक्ष की परवा। अर्जी बही, सं० ६, एफ ७१; भटिंडा से मानसिंह को हुशियारनाथ का पत्र, वि० सं० १८८७ ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की नवमी का, अर्जी बही, सं० ६, एफ ३२; कुरुक्षेत्र से रामकठांद का मानसिंह को पत्र, वि० सं० १८९२ वैशाख कृष्ण पक्ष की छठ का। गोस्वामियों के पत्र, फाइल संख्या

वह उनसे महत्त्वपूर्ण धार्मिक तथा राजनीतिक प्रश्नों[४०] पर सलाह माँगता था। वह उनकी सेवाओं का उपयोग न केवल अपने पुस्तकालय के लिए धर्म, तंत्रशास्त्र, खगोल विद्या आदि पर अलभ्य पुस्तकों को एकत्रित करने में करता था वरन् भारत में ब्रिटिश शक्ति के विस्तार के संबंध में जानकारी प्राप्त करने के लिए भी करता था।[४१] देहली, आगरा, काशी, हरिद्वार, और देश के अन्य सुदूर स्थानों पर रहने वाले प्रमुख नाथ साधुओं के साथ हुए मानसिंह के पत्र-व्यवहार से ज्ञात होता है कि उन्हें मानसिंह से यथेष्ट वित्तीय सहायता प्राप्त होती थी और वे उसे ब्रिटिश लोगों

[पिछले पृष्ठ का शेष]

११ (ढ़ोलिया का कोठार); पंजाब से जोगेश्वर हुशियारनाथ की मानसिंह को अर्जी, वि० सं० १८८७ ज्येष्ठ शुक्ल नवमी, अर्जी बही, संख्या ६, एफ ३२, तुलसीपुर से सहजानन्द नाथ जी का मानसिंह को पत्र, वि० सं० १८६०, पौष कृष्ण पक्ष की नवमी; अर्जी बही, संख्या ६, एफ ५०–५१

४०. देहली से पीर बालकनाथ की मानसिंह को अर्जी, वि० सं० १८८८ भाद्रपद शुक्ल पक्ष की पंचमी, अर्जी बही, संख्या ६, एफ ३३, तुलसीपुर से जोगेश्वर सहजानन्द की मानसिंह को अर्जी, मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष की पंचमी, अर्जी बही, सं० ६, एफ ३४; अर्जी सहजनाथ की मानसिंह को, वि० सं० १८८६ आश्विन कृष्ण पक्ष की तृतीया, अर्जी बही, संख्या ६, एफ ३४, जसवंतनाथ की अर्जी मानसिंह को (तिथि नहीं), पोर्टफोलियो फाइल सं० २५, थावरनाथ की मानसिंह को अर्जी, वि० सं० १८८८ भाद्रपद शुक्ल पक्ष की पंचमी, पोर्टफोलियो फाइल सं० १२५, मानसिंह की जोरनाथ को अर्जी, वि० सं० १८६३ माघ शुक्ल पक्ष की दोज; गोसाइयों के पत्र व अर्जी, फाइल संख्या ७२, ढ़ोलिया का कोठार। ब्रह्मनाथ की मानसिंह को अर्जी, वि० सं० १८६१ भाद्रपद शुक्ल पक्ष की तृतीया, अर्जी बही संख्या ६, एफ १७, आयस नन्द रावलजी की मानसिंह को अर्जी, वि० सं० १८६० माघ शुक्ल पक्ष की चौदहवीं, अर्जी बही संख्या ६, एफ ६६

४१. मानसिंह की ब्रह्मानन्द को अर्जी, वि० सं० १८६१ वैशाख कृष्ण पक्ष की चौदहवीं, गोसाइयों के पत्र व अर्जी, फाइल सं० ७२, ढ़ोलिया का कोठार, संतोषनाथ की मानसिंह को अर्जी, वि० सं० १८८१ श्रावण कृष्ण पक्ष की पंचमी, अर्जी बही संख्या ६, एफ ३० गोस्वामी दामोदर की मानसिंह को अर्जी, वि० सं० १८६३ भाद्रपद शुक्ल पक्ष की तेरस, अर्जी बही सं० ६, एफ १०५, मानसिंह को अर्जी, पीर बालकनाथ को, वि० सं० १८८० चैत्र मास शुक्ल पक्ष की बारस, अर्जी बही संख्या ६, एफ १५५

की नीति और हलचलों की विस्तृत जानकारी पहुँचाते थे।[४२] परन्तु यह संदेहजनक है कि उनसे जो जानकारी होती थी वह किन्हीं घटनाओं का आकस्मिक विवरणमात्र थी अथवा अंग्रेजों के राजनीतिक उद्देश्यों का अध्ययन करने हेतु सोच-विचार कर किए गए प्रयत्नों का परिणाम थी। इस तथ्य को स्थापित करने के लिए इस बात की यथेष्ट साक्षी उपलब्ध नहीं है कि मानसिंह ने इन धार्मिक गुरुओं को राजनीतिक जानकारी इकट्ठी करने के लिए अथवा अंग्रेज विरोधी जो भावना उस समय समस्त देश में फैली हुई थी उससे अपने को संबंधित करने के लिए उकसाया था। मानसिंह की हैदराबाद, पंजाब, सिंध तथा अन्य प्रदेशों की ब्रिटिश विरोधी हलचलों मे रुचि इस तथ्य को स्पष्ट करती है कि वह जागरूक था और अंग्रेजों की योजनाओं के सबंध में जानकारी प्राप्त करने का इच्छुक था। अतएव यह असम्भव नहीं है कि मारवाड़ के बाहर रहने वाले प्रमुख नाथ गुरुओं से उसका संबंध केवल धार्मिक अभिरुचि के अतिरिक्त अन्य कारणों से भी हो।

महामंदिर की गरिमा :

महामंदिर के सर्वोच्च पुजारी को मानसिंह ने सार्वजनिक रूप से अपना धार्मिक गुरु स्वीकार किया था। वह उस मंदिर के प्रति प्राथमिकता का व्यवहार करता था और उसने उसे ठीक दशा में रखने और उसकी देखभाल तथा भावी वृद्धि के लिए पर्याप्त प्रबन्ध किया था। यद्यपि उसके लिए यह तो सम्भव नहीं था कि वह नाथ सम्प्रदाय को राज्यधर्म का दर्जा दे दे तथापि उसको दृढ़ बनाने के लिए उसने सतत प्रयत्न किया। अतएव उसके सम्प्रदाय ने एक स्थायी और सुदृढ़ धर्म सघ का रूप ले लिया और वह मारवाड़ में एक जीवित और तेजवान धार्मिक पंथ की भाँति पनपा।[४३] राजपूताना में किसी भी शासक के लिए भूतकाल में यह सम्भव नहीं था

---

४२. बालकनाथ की मानसिंह को अर्ज़ी, वि० सं० १८८८ भाद्रपद शुक्ल पक्ष की पंचमी, अर्ज़ी बही संख्या ६, एफ ६३, जोगेश्वर हुशियारनाथ की मानसिंह को अर्ज़ी, वि० सं० १८८८ वैशाख कृष्ण पक्ष की द्वितीया, अर्ज़ी बही सख्या ६, एफ ३६–३७, जीतनाथ की मानसिंह को अर्ज़ी, वि० सं० १८६३, गोसाइयों के पत्र, फाइल संख्या ११, ढ़ोलिया का कोठार, जोगेश्वर की मानसिंह को अर्ज़ी, वि० सं० १८८८ वैशाख कृष्ण पक्ष की तृतीया, अर्ज़ी बही सख्या ३, एफ ६, पीर सहेजनाथ की मानसिंह को अर्ज़ी, वि० सं० १८६३ कार्तिक कृष्ण पक्ष की परवा, अर्ज़ी बही संख्या ६, एफ ७१

४३. शक्तिदान का पत्र महेशदान को, वि० सं० १८६३, पौष कृष्ण पक्ष की तेरस, बीकानेर अर्ज़ी बही संख्या ४, वि० सं० १८६३

कि वह राज्य के अधीश्वर देवता का स्थान अपनी इच्छा अथवा अपने द्वारा चुने हुए देवता को दे दे।[४४] परम्परागत पुरोहित वर्ग को नए गुरुओं की एक उच्चोच्च परम्परा की स्थापना करके हटाया नहीं जा सकता था। यह स्वाभाविक था कि मानसिंह मारवाड़ के चिरकाल प्रतिष्ठित एवं परम्परागत धर्म को, जिसने राज्य में एक स्थापित धर्म संघ का स्वरूप प्राप्त कर लिया था, तिलांजलि नहीं दे सकता था। वह अपने स्नेहभाजन सम्प्रदाय को केवल अधिक धन दे सकता था। उसने विभिन्न नाथ मदिरों को केवल यथेष्ट भूमि ही दान में नहीं दी वरन् उनके रख-रखाव के लिए महामंदिर के सर्वोच्च पुजारी को बिक्री के माल, पशु तथा अन्य वस्तुओं पर लिए जाने वाले आयात, निर्यात, विक्रय आदि उपकर की आय में से एक भाग प्राप्त करने का अधिकार भी प्रदान कर दिया।[४५]

---

४४. मारवाड़ के महाराजा विजयसिंह, मेवाड़ के महाराजा राजसिंह, जयपुर के महाराजा प्रतापसिंह और किशनगढ़ तथा बीकानेर के कुछ शासक पुष्टिमार्ग के अनन्य भक्त थे। उन्होंने राज्य के अधीश्वर देवता के नाम के स्थान पर श्रीनाथजी का नाम सरकारी कागजों तथा दस्तावेजों पर नहीं दिया। परन्तु मानसिंह ने सभी श्रेणी के सरकारी कागजों पर "परमेश्वरजी सहाय चाही" के स्थान पर "जलंधरनाथजी सहाय चाही" कर दिया। इससे धोखा हो सकता है और यह अर्थ लगाया जा सकता है कि उसने नाथ सम्प्रदाय को राज्यधर्म का दर्जा दे दिया था परन्तु हमारे पास इसकी निर्णायक साक्षी है कि ऐसा नहीं हुआ। सुखसेजराय ने अपने एक पत्र द्वारा हिन्दू राज्य में षड्दर्शन की प्रधानता पर बल देते हुए हिन्दू राजनीति का निर्देशन करने वाले मूलभूत सिद्धान्तों की ओर मानसिंह का ध्यान खींचा था। उसके पत्र के उत्तर में मानसिंह ने स्पष्ट रूप से यह लिखा था, "जलंधरनाथजी सहाय चाही का यह अर्थ कदापि नहीं है कि नाथ सम्प्रदाय ने राज्यधर्म का स्थान ले लिया है। उसका केवल यही अर्थ है कि वह (मानसिंह) राज्य शासन को सफलतापूर्वक चलाने में जलंधरनाथजी की सहायता चाहता है।" इस भाँति राज्य, हिन्दू धर्म और उसके विभिन्न सम्प्रदायों के मूलभूत सिद्धान्तों को बिना पक्षपात किए समान रूप से प्रतिष्ठा देता रहा (जनानी तहरीर, जोधपुर रेकर्ड, वि० सं० १८७६ श्रावण शुक्ल पक्ष की पंद्रहवी तथा आसोज कृष्ण पक्ष की सप्तमी के पत्र)।

४५. आयसदेवनाथ को 'देजार' और थाबकाड़ा के गाँव दान में दिए गए और बाद में एक दूसरा गाँव तनवादा देकर महामंदिर की आय में वृद्धि की गई। उसको मारवाड़ में होने वाले विवाहों से एक रुपया प्रति विवाह के हिसाब से प्राप्त करने का अधिकार था। इसके अतिरिक्त उसे चार नमक के दरीबों से उत्पन्न

उसने नाथ पुरोहित वर्ग के जीवनयापन तथा नाथ मंदिरों की व्यवस्था के लिए[४६] स्थायी रूप से जो वित्तीय प्रावधान किए उनके अतिरिक्त उसने नाथ सम्प्रदाय के विभिन्न मंदिरों तथा मठों को एवं उनके सर्वोच्च पुजारियों को वर्ष में कई

[पिछले पृष्ठ का शेष]

होने वाले नमक पर प्रति मन एक छदामी और मेलों तथा उत्सवों पर लगाए गए उपकर की आय का एक निश्चित प्रतिशत लेने का अधिकार था (ताम्रपत्र मानसिंह द्वारा आयसदेवनाथ को, वि० सं० १८६६ पौष शुक्ल की आठवीं, मानसिंह द्वारा आयसदेवनाथ को ताम्रपत्र, वि० सं० १८६८ मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की छुट का, मानसिंह द्वारा आयसदेवनाथ को ताम्रपत्र, वि० सं० १८६९, बंदगी का रजिस्टर, सं० ७६), महामंदिर को जोधपुर के सीमा शुल्क की आय से प्रतिमास ३५७ रुपये अनुदान प्राप्त करने का अधिकार था (मानसिंह का रुक्का, वि० सं० १८६६ वैशाख कृष्ण पक्ष की पंचमी), वि० सं० १८६५ आषाढ़ कृष्ण पक्ष की आठवीं की मानसिंह द्वारा दी गई सनद, मानसिंह द्वारा दी गई सनद, वि० सं० ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष की बारहवीं, फुटकर बही, सं० २, एफ २१, राज्य के सभी मंदिरों को दशहरा, दीपावली और होली के प्रत्येक त्योहार पर ६२ रुपए पाने का अधिकार था। इसके अतिरिक्त उनमें होने वाले प्रत्येक उत्सव पर उन्हें एक मुहर तथा १६२ रुपये पाने का अधिकार था। उन्हें २१ रुपये देवासरा उत्सव पर तथा नाथ पंचमी पर एक मुहर और १९ रुपए तथा जन्म दिन की भेंट स्वरूप अठारह रुपये मिलते थे।

४६. राज्य के भंडार से प्रति सप्ताह भोग के लिए आवश्यक मात्रा में सामग्री और सेवकों के लिए खाद्य सामग्री दी जाती थीं तथा पशुओं के लिए चारा दिया जाता था। रोशनी के लिए तेल तथा रसौडे के लिए लकड़ी दी जाती थी। इसके अतिरिक्त जो गाँव नाथों को दान में दे दिए गए थे उनके व्यापारियों को गाँव में आयात, गाँव से निर्यात और गाँव में बिकने वाली वस्तुओं पर महामंदिर को कर देना पड़ता था। (परवाना वि० सं० १८६६ मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की चतुर्थी, नक्शेजात भोम व पुराना राजावां के शासन की विगत, बस्ता संख्या २/१७६)

पचभद्रा से प्रति वर्ष पाँच गाड़ी नमक दिया जाता था। प्रतिवर्ष आयसदेवनाथ के वस्त्रों के लिए दो सौ रुपये दिए जाते थे। मन्दिर में सेवा पूजा करने के लिए गोड़वाड़, फलोदी, शिव व जोधपुर के दुर्ग सहित परगनों के प्रत्येक ग्राम को एक रुपया देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त समस्त परगनों में परगने की आय पर प्रति रुपया ६ छदाम नाथ मंदिरों के लिए निर्धारित कर दिए गए थे।

अवसरों पर राज्य तथा सरदारों के वर्ग एवं सरकारी अधिकारियों अर्थात् नौकरशाही के द्वारा उत्तम और भव्य उपहार और भेंटों के दिए जाने की आज्ञा प्रदान की। इससे भी अधिक, उसने सभी सरकारी कागज-पत्रों, भूमि के पट्टों, परवानों तथा सनदों पर आदर सूचक 'जलंधरनाथ' अंकित करवाना आरंभ किया। सभी समारोहों के अवसर पर तथा महाराजा अथवा राज्य के अधिकारियों के नाथ मंदिरों में दर्शनार्थ जाने के अवसर पर एवं नाथ गुरुओं के महलों तथा दरबार में आने पर उनके प्रति कैसा व्यवहार किया जाय, यह भी उसने निर्धारित कर दिया था।[४७]

[पिछले पृष्ठ का शेष]

महामंदिर के सर्वोच्च पुजारी की गद्दीनशीनी के अवसर पर महाराजा उसे २०० रु० का शाल, एक पालकी, दो सौ रुपये के सोने के कुण्डल और ५० रु० के मूल्य की चाँदी की छडी भेंट करता था।

जब दरबार अपने किसी मुत्सद्दी या सेवक को गाँव बख्शीश करता था अथवा नई नियुक्तियाँ करता था तब बख्शीश पाने वाले तथा नियुक्त होने वाले महामंदिर में भेंट चढ़ाते थे। प्रत्येक सोमवार को राज्य का स्टोर पूजा की सामग्री देता था। जो गाँव महामंदिर को दान में दे दिए गए थे उनमें जो भी व्यापारिक माल खरीदा और बेचा जाता था उस पर चुंगी की समस्त आय महामंदिर को जाती थी। इसके अनुसार नाथपुर (महामंदिर) के बाजार की एक चौथाई आय मंदिर को दे दी जाती थी और शेष राज्य के खजाने में जाती थी।

४७. जब आयसदेवनाथ दरबार में आते थे तब महाराजा अपना शीश पृथ्वी से लगा कर उनका अभिवादन करता था और श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता था। जब महाराजा महामंदिर जाता था तब दो सौ कदम की दूरी से नगाड़ा बजना बन्द कर दिया जाता था और सभी दरबारी तथा सरदार यही शिष्टाचार बरतते थे। जब आयसदेवनाथ जी पालकी में बैठ कर किले में जाते थे तब वह (पालकी) सिरे ड्योढी तक ले जाई जाती थी और जब वे घोड़े पर सवार होते थे तब सूरजपोल पर उतरते थे। जब कभी सिरेह मन्दिर, महामंदिर या निजमंदिर के सर्वोच्च पुजारी मार्ग में दरबार को मिल जाते थे तब वे (दरबार) सदैव अपनी पालकी से उतरकर उनको नमस्कार करते थे। यदि उन्हें अन्य स्वरूप मार्ग में मिल जाते थे तो वे अपनी पालकी में बैठे-बैठे ही उनको नमस्कार करते थे। जब वे तीन उच्च आचार्य जालौर अथवा जोधपुर के बाहर से लौटते थे तब दरबार मुख्य द्वार से पाँच सौ कदम आगे बढ़ कर उनका स्वागत करते थे।

१८०९ में महामंदिर के चैत्य को शरण-स्थल का भी अधिकार प्रदान कर दिया गया था,[४८] जिससे वह अपराधी, चोर या डाकू जो उसमें शरण ले लेता अपने को सुरक्षित अनुभव कर सकता था, क्योंकि प्रशासन महामंदिर के आचार्य को उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे (अपराधी को) प्रशासन को देने के लिए विवश नहीं कर सकता था। अन्ततः इसके कारण स्थापित पुरोहित वर्ग में विद्वेष और ईर्ष्या की भावना उत्पन्न हो गई और नाथों के विरुद्ध एक शक्तिशाली गुट बन गया।[४९]

आयसदेवनाथ का प्रभुत्व :

आयसदेवनाथ को राज्य में बहुत अधिक प्रभाव और प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई। वह केवल महाराजा के आध्यात्मिक गुरु के रूप में ही कार्य नही करता था वरन् महाराजा उससे राज्य की नीति संबंधी मामलों में भी बहुधा परामर्श लेता था।[५०]

[पिछले पृष्ठ का शेष]

जब वे महामंदिर जाते थे तब महाराजा अपने साथ कोई अस्त्र नहीं रखते थे और उनको परम्परागत ढंग से कोई नजर भी नहीं की जा सकती थी। जब भी महाराजा तीन मंदिरों के आचार्यों से मिलने जाते थे तब वे यही शिष्टाचार बरतते थे और उन्होंने अपने सब उत्तराधिकारियों को आदेश दिया था कि वे महामंदिर के सेवक बने रहें (वि० सं० १८६६ मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की चतुर्थी का परवाना), नक्शेजात भोम व पुराने राजावां के शासन की विगत, बस्ता संख्या २/७६, फुटकर बही, संख्या २, एफ ३–६

४८. वि० सं० १८६६ मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की चौथ का परवाना, नक्शेजात भोम व पुराने राजावां के शासन की विगत, बस्ता सं० २/७६, महामंदिर का शिलालेख वि० सं० १८६६ मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष पंचमी का। फुटकर बही, संख्या २, एफ ३–६

४९. ए० जी० जी० को लडलो का मैमोरैंडम, २७ अप्रेल १८४४

५०. मानसिंह की आयसदेवनाथ को अर्ज़ी, वि० सं० १८६१ पौष कृष्ण पक्ष की चौदहवीं, गोस्वामियों के पत्र, फाइल संख्या ११, ढ़ोलिया का कोठार; मानसिंह की देवनाथ को अर्ज़ी, वि० सं० १८६३ पौष कृष्ण पक्ष की अष्टमी, गोस्वामियों के पत्र, फाइल संख्या ११, ढ़ोलिया का कोठार; सिंघवी इन्द्रराज की देवनाथ को अर्ज़ी, वि० सं० १८६६ ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष की नवमी, अर्ज़ी बही, संख्या ३, एफ ३८, मानसिंह की आयसदेवनाथ को अर्ज़ी, वि० सं० १८६५, फाल्गुन कृष्णपक्ष की तृतीया, अर्ज़ी बही, संख्या ३, एफ ३६, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ ४७,७७

१८०८ में जोधपुर और बीकानेर के बीच जो संधि हुई वह आयसदेवनाथ के प्रयत्नों के फलस्वरूप ही हुई थी। उसी ने महाराजा सूरतसिंह और मानसिंह को मिलाया था।[५१] इसी प्रकार उसके सत्प्रयत्नों के फलस्वरूप ही जयपुर से भी १८१० में संधि सम्भव हो सकी।[५२] इस प्रकार उसने मानसिंह के पड़ोसी नरेशों से संबंधों में सुधार करने में प्रमुख भाग लिया।

इसके अतिरिक्त उसके पथ प्रदर्शन में ही सिंघवी इन्द्रराज राज्य का प्रशासन चलाता था। उसको आयसदेवनाथ के अनुरोध पर ही वैसा करने की राजाज्ञा दी गई थी। दरबारियों और सरदारों का एक वर्ग उससे ईर्ष्या करने लगा और उसने उन दोनों को अपने प्रभाव और शक्ति से हटाने का सतत प्रयत्न किया।[५३] उन्होंने अमीर खाँ से मिलकर षडयंत्र किया। वह (अमीर खाँ) उनसे इस कारण क्रुद्ध हो गया था कि उन्होंने उसकी अनापशनाप व बढ़ी-चढ़ी माँगों को पूरा करना अस्वीकार कर दिया था। अमीर खाँ ने उन दोनों (आयसदेवनाथ और सिंघवी इन्द्रराज) की ६ अक्टूबर १८१५ को दुर्ग के अन्दर 'ख्वाब बाग' में हत्या कर दी।[५४] महाराजा इस दुखान्त दुर्घटना के आघात से हतबुद्धि हो गया। वह अगाध शोक में डूब गया और इसी कारण, प्रयत्न करने पर भी आगे राज्यकार्य में रुचि न ले सका। उसने इच्छा के विपरीत राज्यकार्य में रुचि लेना बन्द कर दिया।[५५]

भीमनाथ और लाडूनाथ :

आयसदेवनाथ की मृत्यु के कारण उसके उत्तराधिकारियों के लिए शक्ति और अधिकारों को हथियाकर उनका अपने निजी स्वार्थ-साधन के लिए उपयोग करना सम्भव हो गया। उन्होंने अपने को केवल उस पद के अयोग्य ही प्रमाणित नहीं किया वरन् वे मारवाड़ की आन्तरिक शान्ति और समृद्धि के लिए भी हानिकर सिद्ध हुए। उनकी कभी न तृप्त होने वाली शक्ति और अपने अधिकारों में वृद्धि करने की प्यास ने कलह को बढ़ाया, नीचे दर्जे के ईर्ष्या-द्वेष को भड़काया, और गड़बड़ तथा अनिश्चितता उत्पन्न कर दी।[५६] शक्ति को हथियाने की उत्सुकता में वे महाराजा को

५१. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ८६
५२. तवारीख मानसिंह, एफ १८७
५३. मेटकाफ का जे एडम को पत्र, १५ अक्टूबर १८१५, कान्स १० नवम्बर १८१५, संख्या १३, एफ पी, हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८७२, एफ २८–३२
५४. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ८६
५५. कैवेंडिश का कोलब्रुक को पत्र, २७ जून १८२८, कान्स २६ जुलाई १८२८, संख्या २४, एफ पी
५६. तवारीख मानसिंह, एफ २२१

कठिनाई में और उनके राज्य की शान्ति और समृद्धि को संकट में डालने में भी संकोच नहीं करते थे।[५७]

आयसदेवनाथ की हत्या से महाराजा को गहरा आघात लगा था। वह अब अपने को एकान्त में रखता था और उसने राज्य के प्रशासन में रुचि लेना छोड़ दिया था। भीमनाथ ने इस अवसर का लाभ उठाकर उसे छतरसिंह को युवराज पद देने के लिए तैयार कर लिया। शक्ति और अधिकारों को हथियाने और उनके द्वारा अत्यधिक लाभ उठाने की उत्सुकता में उन्होंने अनुभवहीन युवराज के भोलेपन का खूब ही लाभ उठाया।[५८] १८१८ में पुनः अधिकार लेने के उपरान्त स्वयं मानसिंह ने देवनाथ के पुत्र लाडूनाथ को महामंदिर के सर्वोच्च पुजारी की गद्दी पर बिठाया। क्योंकि उस समय लाडूनाथ अल्पवयस्क था अतः भीमनाथ वास्तव में महाराजा के गुरु का काम करने लगा।

भीमनाथ और लाडूनाथ दोनों में आयसदेवनाथ की आध्यात्मिक ऊँचाई का सर्वथा अभाव था। वे उतने धार्मिक नहीं थे जितने वे शक्ति और अधिकार के लिए लालायित थे। वे परस्पर कलह करने, क्षुद्र झगड़ों और षडयन्त्रों में ही फंसे रहने में प्रसन्नता अनुभव करते थे। शीघ्र ही वे दोनों एक दूसरे के घोर विरोधी हो गए और उनके परस्पर झगड़े के कारण इतना भयंकर उपद्रव उठ खड़ा हुआ कि लाडूनाथ ने मानसिंह से प्रार्थना की कि वह उसके चाचा को महामंदिर से हटा दे।[५९]

यह कभी न समाप्त होने वाले कलह का अन्त नहीं, केवल आरंभ था जिसने महाराजा मानसिंह की शान्ति को भंग कर दिया और राज्य के प्रशासन पर बुरा प्रभाव डाला। दोनों ही राज्य के दिन-प्रतिदिन के प्रशासन में हस्तक्षेप करने लगे और चाचा-भतीजे में रस्साकशी शुरू हो गई।[६०] एक दूसरे के प्रति घृणा के इस भद्दे प्रदर्शन का परिणाम यह हुआ कि दोनों एक दूसरे के विरुद्ध शिकायतें करते और झगड़ा करते। भीमनाथ और लाडूनाथ के बीच कलह को मिटाने के लिए महाराजा ने १८२१ में उदयमंदिर का निर्माण करवाया और भीमनाथ को उसका सर्वोच्च पुजारी नियुक्त किया। उदयमंदिर को भी महामंदिर की बराबरी का दर्जा दे दिया गया।[६१] परन्तु फिर भी भीमनाथ और लाडूनाथ में प्रतिस्पर्द्धा चलती रही।

---

५७. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ११६

५८. तवारीख मानसिंह, एफ २१७

५९. हाकिन्स को कैवेंडिश का पत्र, ५ जुलाई १८३०, कान्स ३ अगस्त १८३१, संख्या ४, एफ पी

६०. वही।

६१. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ८८; तवारीख मानसिंह, एफ २५६–५७

दोनों नाथ गुरुओं के मध्य खाई और अधिक चौड़ी हो गई। कालान्तर में उसके कारण मानसिंह के दरबार में दो प्रतिद्वन्द्वी गुट उत्पन्न हो गए। सिंघवी फतहराज और भाटी गजसिंह लाडूनाथ का समर्थन करते थे और ढंढाल गोवर्धन तथा नाजर इमरतराम भीमनाथ के समर्थक थे।[६२] दोनों ही धर्माचार्य तथा उनके संरक्षणाधीन व्यक्ति महाराजा को कतिपय प्रतिष्ठित सरदारों के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए उकसाने में एक दूसरे से होड़ करते थे। राज्य के अधिकारियों तथा हाकिमों को राज्य का प्रशासन नाथों के परामर्श से करना पड़ता था। नाथों द्वारा इस प्रकार का हस्तक्षेप राज्य की वित्तीय स्थिति पर ऐसा विनाशकारी सिद्ध हुआ कि राज्य द्वारा जो खिराज (कर) ब्रिटिश सरकार को दिया जाता था वह बकाया हो गया, चुकाया नहीं जा सका और परदेशी सैनिकों को नियमित रूप से उनका वेतन भी नहीं चुकाया जा सका।[६३]

जागीरदारों को दी गई भूमि को बड़ी मात्रा में जब्त कर लेने के कारण वे (जागीरदार) विरोधी हो गए, वित्तीय कठिनाइयों के परिणाम स्वरूप राज्य वास्तव में लगभग दिवालिया हो गया, भ्रष्टाचार अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया और रिश्वतखोरी खूब पनप उठी।[६४] अन्त में बहुत समय के उपरान्त १८२५ में महाराजा को विवश होकर नाथों के हस्तक्षेप को रोकने तथा राज्य की वित्तीय स्थिति को सुधारने के लिए शम्भूदत्त को दीवान नियुक्त करना पड़ा। परन्तु उसकी कठोरता के कारण लाडूनाथ उससे बहुत क्रुद्ध हो गया और उसने महाराजा को उसे हटाकर उसके स्थान पर महामंदिर के कामदार को नियुक्त करने के लिए राजी कर लिया।[६५] इस प्रकार राज्य-शासन में महाराजा के सुधार के प्रयत्न विफल हो गए।[६६]

क्योंकि लाडूनाथ को यह संदेह था कि आउवा के ठाकुर का उसके पिता की हत्या में हाथ है; अस्तु, उसने महाराजा को उसके विरुद्ध सेना भेजने के लिए प्रेरित किया[६७] नाथों ने इस बात का भरसक प्रयत्न किया कि कुछ प्रमुख जागीरदारों की

---

६२. तवारीख मानसिंह, एफ २५६–५७

६३. कैवेन्डिश का कोलब्रुक को पत्र, २४ जुलाई १८२८, कान्स १६ अगस्त १८२८, संख्या २१, एफ पी

६४. वही।

६५. तवारीख मानसिंह, एफ २७४

६६. जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग ४, एफ १०३

६७. कैवेंडिश का कोलब्रुक को पत्र, १५ अक्टूबर १८२८, कान्स ८ नवम्बर १८२८, संख्या १२, एफ पी

जागीरें छीन ली जाएँ। नाथ गुरुओं की शत्रुता और द्वेष भावना ने जागीरदारों को विरोधी बना दिया और वे यहाँ तक विरोधी बन गए कि उन्होंने सार्वभौम सत्ता से शिकायत की और उससे हस्तक्षेप करने के लिए प्रार्थना की। इस सम्मिलित विरोध के सम्मुख मानसिंह का उनकी जागीरों को जब्त करने का साहस नहीं हुआ।[६८] इस प्रकट शक्ति-संघर्ष में सफल न होने के कारण लाडूनाथ को इतनी गहरी निराशा हुई कि उसने तीर्थयात्रा के लिए जाने का निश्चय कर लिया।[६९] परन्तु जोधपुर से जाने से पूर्व उसने अपने प्रभाव द्वारा महाराजा की इच्छा के विरुद्ध भी फतहराज को दीवान नियुक्त करवा दिया।[७०] जब वह गिरनार से जोधपुर को लौट रहा था तब गुजरात में बामनवाड़ा स्थान पर ८ जनवरी १८२८ को उसका स्वर्गवास हो गया।[७१]

अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त दो वर्ष का बालक भैंरोंनाथ (लाडूनाथ का पुत्र) महामंदिर की गद्दी पर बिठाया गया। उसका भी ६ मास के उपरान्त स्वर्गवास हो गया। लाडूनाथ की पत्नी सूरतनाथ के पौत्र चन्दननाथ को गोद लेना चाहती थी।[७२] परन्तु भीमनाथ ने उसका विरोध किया और इस बात पर बल दिया कि उसके पुत्र लक्ष्मीनाथ को महामंदिर की गद्दी पर बिठाया जाना चाहिए। उसने अपनी माँग को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए महलों में धरना दिया।[७३] अन्त में भीमनाथ के पुत्र लक्ष्मीनाथ को १६ नवम्बर १८२९ को निर्धारित समारोहों और संस्कारों के साथ महामंदिर की गद्दी पर बिठाया गया।[७४]

---

६८. अजमेर के असिस्टैंट रेजीडैंट ट्रेवेलियन का दिल्ली के रेजीडैंट कोलब्रुक को पत्र १६ अक्टूबर १८२८, कान्स ८ नवम्बर १८२८, संख्या १२, एफ पी

६९. कैवेन्डिश का कोलब्रुक को पत्र, १५ अक्टूबर १८२८, कान्स ८ नवम्बर १८२८, संख्या १२, एफ पी

७०. राठौड़ां की ख्यात, एफ ८४

७१. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८९१–१९००), संख्या ११, एफ १९६ देखिए :—कैवेन्डिश का कोलब्रुक को पत्र, १५ अक्टूबर १८२८, कैवेन्डिश लाडूनाथ को मारवाड़ का वास्तविक शासक मानता था।

७२. कैवेन्डिश का देहली स्थित रेजीडैंट को पत्र, ८ दिसम्बर १८३० कान्स १५ जनवरी १८३०, संख्या १५/६, एफ पी

७३. राठौड़ों की ख्यात, एफ ८४

७४. कैवेन्डिश का देहली के रेजीडैंट को पत्र, १२ दिसम्बर १८२९, कान्स १५ जनवरी १८२०, सं० ५/६, हकीकत बही जोधपुर, वि० सं० १८९१–२००० संख्या ११, एफ २२६। इस अवसर पर महाराजा ने निम्नलिखित भेंटें लक्ष्मीनाथ को दी—पाग चंदेरी, दुशाला ३०१ रु० का, जडाऊ कंगन १००० रु० के, १००५ रु० के साथ दो मुहरें और न्यौछावर।

महामंदिर की गद्दी पर पुत्र के बैठ जाने पर भीमनाथ मारवाड़ के दिन-प्रतिदिन के शासन में हस्तक्षेप करने लगा।[७५] उसने उन सब अधिकारियों को जो लाडूनाथ के विश्वासपात्र थे, हटा कर उनके स्थान पर अपनी मर्जी के व्यक्तियों को नियुक्त करवाया। उसने इस बात का भी भरसक प्रयत्न किया कि जो जागीरदार लाडूनाथ के विश्वासपात्र थे उनकी जागीरें जब्त करली जाएँ। महाराजा ने उसकी यह बात यह बहाना लेकर कि अंग्रेज इस प्रकार की नीति के विरुद्ध हैं, मानने से इनकार कर दिया।[७६] अतएव भीमनाथ महामंदिर के कामदार द्वारा राज्य-शासन चलाने की आज्ञा प्रदान करने के लिए महाराजा को प्रेरित कर अप्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप करने लगा।

भीमनाथ की दुर्भावना इतनी अधिक और तीव्र थी कि उसको अपने पुत्र लक्ष्मीनाथ का उत्कर्ष भी रुचिकर नहीं हुआ। उन दोनों में एक नया कलह उठ खड़ा हुआ। अन्त में दोनों मंदिरों के कामदारों को राज्य-शासन के संचालन की आज्ञा प्रदान की गई। १८३३ में भीमनाथ की आज्ञा से सिंघवी गम्भीरमल दीवान नियुक्त किया गया, यद्यपि तदुपरान्त उसको शीघ्र ही पदच्युत कर दिया गया और भंडारी लक्ष्मीचन्द को दीवान नियुक्त किया गया।[७७]

भीमनाथ के प्रभुत्व में आने का परिणाम यह हुआ कि समस्त अधिकार उसके हाथ में केन्द्रित हो गए। लाकेट ने गवर्नर को लिखे अपने एक पत्र में भीमनाथ को मारवाड़ का प्रधानमंत्री और उसके निकट के एक विश्वासपात्र मेहता हरकचन्द को अधीनस्थ मंत्री लिखा था। मानसिंह की घोर उपेक्षा और उदासीनता का परिणाम यह हुआ कि भीमनाथ ने उसके अधिकारों को हथिया लिया और घोर आतंक का साम्राज्य स्थापित कर दिया। परिणामस्वरूप ठाकुरों में तीव्र असंतोष फैल गया और वे प्रकट रूप से विद्रोही हो उठे। यह कहा जाने लगा कि समस्त मारवाड़ प्रदेश और उसके सारे कारबार कनफटे जोगियों के हाथों में हैं।[७८]

---

७५. तवारीख मानसिंह, एफ २७७

७६. कैवेन्डिश का हाकिन्स को पत्र, ५ जुलाई १८३०, कान्स ४ अगस्त १८३०, संख्या ४, एफ पी

७७. सदरलैंड को प्राप्त उन ठाकुरों का पत्र जो १८३० में मारवाड़ के बाहर थे, कन्सल्टेशन नम्बर ३८, २४ अगस्त १८३९ में उपलब्ध है। उसका अनुवाद 'राठौड़ों की ख्यात', एफ ८६ पर है।

७८. खास रुक्का मानसिंह का आयस भीमनाथ को, वि० सं० १८८६ भाद्रपद कृष्ण पक्ष की तेरस, अर्जी बही सं० ३, एफ ८३, खास रुक्का मानसिंह का भीमनाथ को, वि० सं० १८८६ श्रावण शुक्ल पक्ष की अष्टमी का, अर्जी बही सं० ३,

१८३३ में कौशलराज और फौजराज को अपने-अपने पदों से हटा दिया गया। राज्य-परिषद् (स्टेट काउसिल) से रायपुर, जसूरी और कुचामन के कामदारों को निकाल दिया गया और भीमनाथ ने प्रशासन के सम्पूर्ण अधिकार अपने हाथ में ले लिए।[७९]

भीमनाथ ने राज्य का शोषण करके अपार वैभव और धन प्राप्त कर लिया, और अपरिमित कोष इकट्ठा किया। वह जानता था कि मानसिंह के पश्चात् वह अपनी सुरक्षा के लिए किसी पर भी भरोसा नहीं कर सकता अतः उसने अपनी अतुल सम्पत्ति लेकर जालौर के सुरक्षित दुर्ग में चले जाने की योजना बनाई। राजपूत और ब्राह्मण दोनों ही जातियाँ उसकी तथा उसके कुख्यात व व्यभिचारी पुत्र लक्ष्मीनाथ की लम्पटता के कारण, जिनके अधिकार में प्रतिष्ठित ब्राह्मण और राजपूत परिवारों की पुत्रियों तथा पत्नियों का सतीत्व सुरक्षित नहीं था, उनके विरुद्ध हो चुकी थी।[८०]

भीमनाथ के पुत्र लक्ष्मीनाथ की कामुकता की कोई सीमा नहीं थी। एक राजपूत की पत्नी पर मोहित हो जाने पर १८३२ में उसने पच्चीस सशस्त्र सैनिकों के साथ

[पिछले पृष्ठ का शेष]

एफ ८६, रतनसिंह की अर्ज़ी आयस भीमनाथ को, वि० सं० १८९३ आषाढ़ कृष्ण पक्ष की बारस की, अर्ज़ी बही सं० ६, एफ १०५, खास रुक्का—मानसिंह का लक्ष्मीनाथ और भीमनाथ को, वि० सं० १८७७ फाल्गुन शुक्ल पक्ष की दसवीं का और वि० सं० १८८९ का, अर्ज़ी बही सं० ३, एफ ५२–५९; मानसिंह का खरीता आयसओपनाथ को, वि० सं० १८८७ भाद्रपद शुक्ल पक्ष की दोज का, अर्ज़ी बही सं० ४, एफ ८४–८५; मानसिंह का खरीता दाऊनाथ को, वि० सं० १८८७ आषाढ़ कृष्ण पक्ष की परवा का, तथा वि० सं १८९० पौष कृष्ण पक्ष की परवा का, अर्ज़ी बही सं० ३, एफ २०–२३, लाकेट का मैकनाटन को पत्र, २८ सितम्बर १८३२ का, कान्स २६ नवम्बर १८३२, संख्या १४/४४ ए० एम० पा०

७९. सुखसेजराय का मानसिंह को खरीता, वि० सं० १८८६ आश्विन कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी का और वि० सं० १८८६ कार्तिक शुक्ल पक्ष की पद्रहवीं का, गवर्नर जनरल का कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स को पोलीटिकल डिस्पेच—१ मई १८३८ का, सं० ९; लाकेट का मैकनाटन को पत्र, २८ सितम्बर १८३२, कान्स १६ नवम्बर १८३२, संख्या १४/४४ ए० एफ० पी०

८०. सुखसेजराय की महाराजा मानसिंह को अर्ज़ी, वि० सं० १८८६ आश्विन कृष्ण-पक्ष की चतुर्दशी और वि० सं० कार्तिक शुक्ल पक्ष की पंद्रहवी की अर्ज़ी। हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८९८, एफ ९४

रथ भेजकर उस राजपूत को अपनी पत्नी उसके (लक्ष्मीनाथ के) पास भेज देने हेतु संदेश भेजा। जब राजपूत ने अपनी पत्नी को राव बैरीसाल की हवेली में भेज दिया तब लक्ष्मीनाथ के सैनिकों ने राव बैरीसाल की हवेली में घुसने का प्रयत्न किया। किन्तु उनको मार भगाया गया और इस प्रकार उस राजपूत रमणी के सतीत्व की रक्षा हो सकी। मानसिंह ने इस कांड पर केवल लक्ष्मीनाथ की नम्र भर्त्सनामात्र की। लक्ष्मीनाथ महाराजा के इस हस्तक्षेप से क्रुद्ध होकर जालौर चला गया।[८१]

भीमनाथ के प्रभुत्व में आने का परिणाम यह हुआ कि राजकोष से गम्भीर अपव्यय और गबन हुए जिनके फलस्वरूप राज्य में वित्तीय संकट उत्पन्न होगया। अंग्रेजों को जो खिराज दिया जाता था वह बकाया में पड़ गया और सैनिकों को उनका वेतन नहीं दिया जा सका।[८२] जोशी शम्भूदत्त की गिरफ्तारी के उपरान्त मेहता उत्तमचन्द और हरकचन्द क्रमशः दीवान और मुसाहिब का कार्य कर रहे थे। अप्रेल १८३६ में भीमनाथ ने उत्तमचन्द को किले से गिरफ्तार करवा कर उसको उदयमंदिर में कैदी बनाकर रखा। उसको दो या तीन लाख रुपये देने को कहा गया, किन्तु जब उत्तमचन्द ने एक पाई भी देने से इनकार कर दिया तब उसको निर्दयतापूर्वक मार डाला गया।[८३] उसी वर्ष आषाढ़ मास में भीमनाथ की आज्ञा से राज्य के बहुसंख्यक राज्याधिकारियों और जागीरदारों को एक बड़ी धनराशि देने पर मजबूर किया गया।[८४]

भीमनाथ की अत्याचार की नीति के कारण मारवाड़ में अराजकता की स्थिति उत्पन्न होगई और प्रशासन तेजी से बिगड़ने लगा।[८५] भीमनाथ और लक्ष्मीनाथ अपने निजी स्वार्थों के लिए लुटेरों को भी संरक्षण प्रदान करने लगे। भीमनाथ की महत्वाकांक्षा की कोई सीमा नहीं थी और अराजकता के विकल्प स्वरूप उसने महाराजा को यह सुझाव तक देने का साहस किया कि महाराजा उसे सरकार का संचालन-सूत्र अपने हाथ में लेने की आज्ञा प्रदान करदें और वह सभी मुत्सद्दियों और हाकिमों को हटाकर उनके स्थान पर अपने आदमी रखदे।[८६] किन्तु मानसिंह ने

---

८१. लाकेट का मैकनाटन को पत्र, २८ सितम्बर १८३२, कान्स २६ नवम्बर १८३२

८२. हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८३२, एफ ९४

८३. तवारीख मानसिंह, एफ २९३

८४. ओझा : राजपूताने का इतिहास, जिल्द ४, खंड २, पृष्ठ ८५४

८५. अलवेज का मैकनाटन को पत्र, १९ फरवरी १८३८, कान्स २१ मार्च १८३८

८६. अलवेज का मैकनाटन को पत्र, १९ फरवरी १८३८, कान्स २१ मार्च १८३८, सं० १३०, एफ० पी०

उसके इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया ।[८७] अस्वस्थ और रोगी होने के कारण महाराजा राज्य-प्रशासन में कोई सक्रिय भाग नहीं ले सकते थे । फलतः कानून और व्यवस्था की स्थिति तेजी से बिगड़नी आरम्भ होगई और पदों से हटाए गए हाकिमों और अपनी जागीरों से वंचित किए गए जागीरदारों ने लूटपाट का धंधा अपना लिया । स्थिति यहाँ तक बिगड़ गई कि नाथ भी अपनी सुरक्षा के लिए चिन्तित हो उठे ।[८८] उसी समय अंग्रेज भी मानसिंह के विरुद्ध उसकी ब्रिटिश विरोधी हलचलों के लिए उसे दंडित करने के अभिप्राय से सैनिक अभियान चलाने का विचार कर रहे थे ।[८९] इस कारण नाथों के लिए भी किसी भी सम्भावित घटना का सामना करने हेतु सशस्त्र सैनिकों को संगठित और एकत्रित करना आवश्यक हो गया । भीमनाथ ने धूली की मरुभूमि से एक हजार अश्वारोहियों को भर्ती किया और उन्हें उदयमंदिर में नियुक्त कर दिया । उसने और अधिक अश्वारोहियों और पैदल सैनिकों को इकट्ठा करके अपनी शक्ति को और अधिक बढ़ाने का प्रयत्न किया । अन्य जागीरें भी अपनी शक्ति को बढ़ाने लगीं ।[९०]

उस समय मारवाड़ में असंतुष्ट जागीरदारों की लूटपाट और मानसिंह के विरुद्ध अंग्रेजों द्वारा विचाराधीन सैनिक अभियान के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाली अराजकता का ऐसा भय व्याप्त था कि भीमनाथ के कामदार हरकचन्द और कस्तूरचन्द दस-बीस सशस्त्र आदमियों को साथ लिए बिना किले के ऊपरी भाग में जाने का साहस नहीं करते थे । जब वे किले के अन्य भागों में जाते तब वे चार-पाँच सौ आदमियों को साथ ले जाते थे ।[९१] राजधानी के समीप जो सेना थी उसका

८७. ए० जी० जी० का प्रिंसेप को पत्र, २४ फरवरी १८३८, कान्स २१ मार्च १८३८, सं० १२९, एफ० पी०, राजपूताना डायरी, २२ जनवरी १८३८ से २८ जनवरी तक का सार, जोधपुर का अखबार ।

८८. टॉरेंट का सदरलैंड को पत्र, ४ जुलाई १८३८, कान्स १४ जुलाई १८३९, एफ० एस०

८९. सदरलैंड का मैडाक को पत्र, १७ अप्रेल १८३९, कान्स २४ जुलाई १८३९, सं० ३६, एफ० पी०; टारेंट का सदरलैंड को पत्र, ४ जुलाई १८३९, कान्स १४ अगस्त १८३९ एफ० एस०, सदरलैंड का मैडाक को पत्र, ८ जून १८३९, कान्स १७ जुलाई १८३९, सं० ७२, एफ० पी०

९०. जोधपुर ख़बरनवीस की अर्जी, ७ मई १८३८, सं० ६६, एफ० पी० ए० जी० जी० का मैकनाटन को पत्र, २९ जनवरी १८३८, कान्स २१ मार्च १८३८, सं० १११–११२, एफ० पी०, जोधपुर ख़बरनवीस की अर्जी का सार, अनुवाद—२९ मई १८३८

९१. जोधपुर ख़बरनवीस की अर्जी १५ मई की, जो १९ मई १८३८ को प्राप्त हुई

अधिकांश भाग किले में बुला लिया गया और लक्ष्मीचन्द के शिष्य हरकचन्द और लक्ष्मीपाव ने किले के बचाव की व्यवस्था की। अवश्य ही यह सब महाराजा की जानकारी में था। उन्होंने अपने अनुयायियों को किले के फाटकों पर नियुक्त कर दिया। उनकी आज्ञा के अनुसार किले में किसी को भी घुसने नहीं दिया जाता था। यहाँ तक कि ब्रिटिश अधिकारियों को भी किले में नहीं घुसने दिया जाता था।[६२] महाराजा की सुरक्षा के लिए नाथों ने अन्य कदम भी उठाए। नाथों के विरुद्ध सामान्य रूप से तथा महाराजा मानसिंह के विरुद्ध विशेष रूप से अंग्रेजों के शत्रुतापूर्ण दृष्टिकोण ने नाथों को अपनी सेना को शक्तिशाली बनाने का यथाशक्ति प्रयत्न करने के लिए प्रेरित किया, जिससे वे महाराजा मानसिंह के हितों की रक्षा कर सकें।

नाथों में अपने आप में ही बहुत अधिक मतभेद थे और वे अपने विरोधी को परास्त करने के लिए हिंसा और बल का प्रयोग करते थे। जिस दल ने पाली को लूटा उसके संबंध में अन्त में यह ज्ञात हुआ कि वह उदयमन्दिर का था। राज्य की वित्तीय स्थिति में इतनी अधिक गिरावट आ गई थी कि परदेशी सैनिकों ने अपने वेतन आदि के भुगतान के लिए दीवान फतहराज को घेर लिया। परदेशी सैनिकों से फतहराज और कपूरचन्द दोनों को मुक्त कराने के लिए भीमनाथ को उदयमंदिर से पाँच सौ राजपूतों और दो सौ पचास स्वामियों तथा नाथों को भेजना पड़ा।[६३] परदेशी सैनिकों ने पुनः महाराजा से प्रार्थना की, और भीमनाथ तथा उसके पिट्ठुओं द्वारा उनके साथ जो अन्याय किया गया था उसकी शिकायत की।

तब तक भीमनाथ ने उदयमंदिर में तीन हजार सवार तथा पैदल सैनिक एवं कुछ तोपें इकट्ठी करली थीं और यदि कोई कठिन परिस्थिति उठ खड़ी होती तो वह उससे बचाव करने के लिए भी तैयार था। अपने मन्दिर की सेना के लिए जल की व्यवस्था करने हेतु उसने समीपवर्ती उन सभी सार्वजनिक तालाबों और कुओं पर अधिकार कर लिया, जिनका जल केवल मन्दिर की सेना के उपयोग के लिए था। जो परदेशी सैनिक राजधानी के बाहर मारवाड़ के विभिन्न भागों में नियुक्त थे एवं जिनकी संख्या पाँच से ६ हजार तक थी उनकी दशा वेतन, भोजन और वस्त्र न मिलने के कारण इतनी अधिक दयनीय हो उठी कि उन्होंने, जहाँ वे नियुक्त थे उन स्थानों को छोड़ दिया और वे राजधानी में आने लगे।[६४] राज्य की वित्तीय व्यव-

६२. जोधपुर के अखबार नवीस की अर्जी १५ मई की, जो १६ मई १६३६ को मिली।

६३. जोधपुर अखबारों की रिपोर्ट के सार का अनुवाद, १७ मई और २४ मई १८३४ के बीच में। कान्स जून १८३८, सं० ३६, एफ पी

६४. जोधपुर के अखबार नवीस की अर्जी (१५ मई को) जो १६ मई १८३८ को प्राप्त हुई।

स्था भी पूर्ण रूप से अस्त-व्यस्त हो गई थी। राज्य की आधी आय महाराजा के संबंधियों और मित्रों पर व्यय होती थी और शेष आय जो तीस लाख रुपये थी, नीचे लिखे अनुसार लुटाई जाती थी।[९५]

(१) नौ लाख रुपये भीमनाथ तथा अन्य ले लेते थे।
(२) १३ लाख रुपये प्रिवीपर्स पर व्यय होते थे।
(३) ६ लाख रुपये राजमहलों तथा सार्वजनिक इमारतों पर व्यय होते थे।
(४) दो लाख रुपये दान (धर्मादे) हेतु और नृत्य करनेवालियों के रख-रखाव पर व्यय होते थे।

भीमनाथ जिसे महाराजा की ओर से कल्पनातीत पारितोषिक और कभी सुनने में न आने वाला संरक्षण मिला था, १८३८ में विश्वासघात के इतने नीचे स्तर पर उतर गया कि उसने धौंकलसिंह से उदयमंदिर में इस उद्देश्य से मिलने का प्रयत्न किया कि मानसिंह को हटाकर उसके स्थान पर धौंकलसिंह को महाराजा बनाया जाए। अपनी इस सेवा के उपलक्ष में वह धौंकलसिंह का आध्यात्मिक गुरु बन जाता।[९६] परन्तु उसकी अल्पकालीन बीमारी के पश्चात् २२ जून १८३८ को मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के उपरान्त मेहता हरकचन्द जो भीमनाथ का दाहिना हाथ था उदयमंदिर को छोड़कर अहीर की हवेली चला गया।

लक्ष्मीनाथ के प्रभुत्व का उदय और मारवाड़ के प्रशासन में अंग्रेजों का सक्रिय हस्तक्षेप :

भीमनाथ का ज्येष्ठ पुत्र लक्ष्मीनाथ उस समय बीकानेर में पाँचू नामक स्थान पर था। वह महामंदिर लौट आया। स्वयं महाराजा ने उसकी अत्यन्त स्नेहपूर्वक अगवानी की और तत्पश्चात् राज्य के प्रशासन में उसका आदेश चलने लगा।[९७] लक्ष्मीनाथ ने २६ अगस्त १८३८ को भीमनाथ के कृपापात्रों के स्थान पर अपनी पसंद के नए अधिकारियों की नियुक्ति करवाई। महाराजा मुख्यतः अपने असंतुष्ट जागीरदारों के षडयन्त्रों तथा उसके विरुद्ध अंग्रेजों के शत्रुतापूर्ण व्यवहार के कारण सर्वथा निस्सहाय हो गया था और उसके पास केवल नाथों पर निर्भर रहने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं रहा था। उसने अपना तन-मन-धन सभी उनको समर्पित कर

---

९५. जोधपुर के अखबार नवीस की उस अर्जी के सार का अनुवाद जो २६ मई १८३८ को प्राप्त हुई।

९६. अलवेज का मैकनाटन को पत्र, ३ अगस्त १८३८, कान्स ५ सितम्बर १८३८, सं० १४, एफ पी, तवारीख मानसिंह, एफ ६५–६६

९७. अलवेज का मैकनाटन को पत्र, ३ अगस्त १८३८, कान्स ५ सितम्बर १८३८, संख्या १४, एफ पी; तवारीख मानसिंह, एफ ६५–६६

दिया था। इस कारण नाथों का प्रभाव और शक्ति सर्वोपरि हो गई और शीघ्र ही लक्ष्मीनाथ ने राज्य के प्रशासन पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।[९८]

परन्तु प्रशासन पर लक्ष्मीनाथ का प्रभुत्व विनाशकारी सिद्ध हुआ। राज्य का खजाना और अधिक खाली हो गया। लोगों की जेबों से द्रव्य निकालने के लिए सभी प्रकार के अत्याचार किए जाने लगे। इस अशान्त परिस्थिति में लोग लूटपाट करने लगे और अंग्रेजी सरकार का कई वर्षों का खिराज बकाया चढ़ गया। वास्तविकता यह थी कि नाथों द्वारा किए जाने वाले अत्याचार तथा क्रूरता के कार्य सहनशीलता की सीमा को पार कर गए थे और इस कारण मारवाड़ के जागीरदार १८३८ के अन्त में नाथों की स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध कर्नल सदरलैंड के समक्ष प्रार्थी हुए।[९९]

कर्नल सदरलैंड की महाराजा के साथ जो चर्चा हुई हुई उसमें कर्नल ने नाथों को हटाने के प्रश्न पर भी बल दिया। महाराजा द्वारा नाथों को अधिकार तथा सत्ता से हटाने में असफल होने के कारण उसने (सदरलैंड ने) महाराजा के समक्ष सिंहासन त्याग देने का सुझाव रक्खा जिससे कि गद्दी पर धौंकलसिंह अथवा अन्य किसी नाबालिग राजकुमार को बिठाने का मार्ग प्रशस्त हो सके।[१००] परन्तु नाथों ने इस प्रस्ताव का घोर विरोध किया; और महाराजा उनकी सहायता से कर्नल सदरलैंड के कुतन्त्र को विफल करने में सफल हो गया। अन्त में अंग्रेजों ने मारवाड़ पर आक्रमण किया और मानसिंह को विवश कर दिया कि वह किला उनको सौंप दे। इस प्रकार महाराजा मानसिंह को अत्यधिक अपमानित होना पड़ा। प्रशासन चलाने के लिए उन पर एक काऊंसिल भी थोप दी गई, परन्तु इस कठोर कार्यवाही के होते हुए भी नाथों का न तो प्रभाव और न प्रभुत्व ही कम किया जा सका।[१०१]

---

९८. ब्रिग्ज रिपोर्ट १४ ए, जोधपुर भाग २, १८३८, संख्या २, राजपूताना सूची २१ सिंघवी मेघराज, कुशलराज, सुखराज परबतसर, मारोठ आदि के सितम्बर १८३८ में हाकिम नियुक्त किए गए। खींची जुझारसिंह, ढाँढल पीरदान, असोप उत्तमराम, सवाईराम व्यास, गुमानीराम के पुत्र जिनको भीमनाथ ने संरक्षण प्रदान किया था और जो उसके विश्वासभाजन थे, कैद कर लिए गए।

९९. टारेंट का सदरलैंड को पत्र ४ जुलाई १८३९, कान्स १४ अगस्त १८३९ संख्या १९ एफ एस, सदरलैंड का मैडाक को पत्र २४ जुलाई १८३९ संख्या ३८ एफ पी, हकीकत बही बीकानेर वि० सं० १८९५ एफ ८४

१००. सदरलैंड का मैडाक को पत्र २७ जुलाई १८३९, कान्स ९ अक्टूबर १८३९ संख्या ३१ एफ एस, हकीकत बही बीकानेर वि० सं० १८९६ एफ ८९

१०१. लडलो का मानसिंह को पत्र १२ जून १८४०, खरीता बही संख्या १३ एफ ४२३, हकीकत बही बीकानेर वि० सं० १८९६ एफ ९२

नाथों का निष्कासन :

महामंदिर का कामदार जसरूप जिसे अपने पद से हटा दिया गया था और जोधपुर के बाहर भेज दिया गया था, वापस आ गया और एक बार पुनः राज्य के प्रशासनिक मामलों में हस्तक्षेप करने लगा। इसी प्रकार लक्ष्मीनाथ का शासन में हस्तक्षेप भी समाप्त नहीं हुआ और वह फिर भी पर्याप्त प्रभाव और शक्ति का प्रयोग करता रहा। नए शासनतंत्र में जो दीवान और उच्च अधिकारी नियुक्त किए गए उन्हें नाथों के हस्तक्षेप के कारण अपने कर्तव्यों का भलीभाँति पालन करने में कठिनाई अनुभव होने लगी।[१०२] जसरूप और लक्ष्मीनाथ ने ब्रिटिश सरकार के पास मारवाड़ के वकील राव रिधमल को हटाने का प्रयत्न किया और उसके स्थान पर अपनी पसंद के व्यक्ति को नियुक्त करने का षडयंत्र किया। उन्होंने उसको गिरफ्तार करने की भी कोशिश की।[१०३] मानसिंह ने भी उसको अनदेखा कर दिया, क्योंकि वह नाथों को हटाना नहीं चाहता था। एक प्रकार से नाथों ने नई व्यवस्था में प्रशासन का कार्य सुचारु रूप से चलना कठिन बना दिया।[१०४] लडलो ने बार-बार महाराजा को लिखा कि वह नाथों को राज्य के प्रशासन में हस्तक्षेप करने से रोके। परन्तु मानसिंह ने उसके लिखने पर कोई ध्यान नहीं दिया। अन्त में लडलो ने मंगलपाऊ और बरनीपाऊ को कैद करने की धमकी दी। इससे[१०५] मानसिंह की स्थिति अत्यन्त कठिन हो गई। एक ओर ब्रिटिश सरकार मारवाड़ में नाथों के प्रभुत्व को समाप्त कर देने पर तुली हुई थी, दूसरी ओर वह (मानसिंह) उस सम्प्रदाय का ऐसा कट्टर भक्त था कि वह उनको तनिक भी नाराज करने की बात स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था।[१०६] जहाँ ब्रिटिश सरकार दृढ़तापूर्वक इस बात का हठ कर

---

१०२. लडलो का मानसिंह को खरीता, २१ जून १८४० और जुलाई १८४०, खरीता बही, संख्या १३, एफ ४२४–३४

१०३. लडलो का सदरलैंड को पत्र, १ जनवरी १८४१, सूची संख्या १२२, १४ ए, जोधपुर भाग ७, १८४१ आर० ए० आर०; लडलो का मानसिंह को खरीता, आषाढ शुक्ल पक्ष की दसवीं (६ जुलाई १८४०), खरीता बही, संख्या १३, एफ० ४२३

१०४. लडलो का मानसिंह को खरीता, २६ दिसम्बर १८४०, खरीता बही, संख्या १३, एफ ४२५–४२६

१०५. लडलो का मानसिंह को खरीता, वि० सं० १८६८ वैशाख शुक्ल पक्ष की चौथ, खरीता बही, संख्या १३, एफ ४३०

१०६. नीचे लिखे उदाहरण से उसकी (मानसिंह) व्याकुलता की गहनता का पता सरलता से चल जाता है।

रही थी कि नाथों ने जो जागीरें अनुचित ढंग से प्राप्त करली हैं वे उनसे छीन ली जाएँ वहाँ मानसिंह अपने धार्मिक गुरुओं को नाराज करने के लिए भी तैयार नहीं था। अतः वह उनको राजी करने में समय नष्ट करता रहा।

सदरलैंड का नाथों और उनके अधिकार तथा कर्तव्यों के संबंध में मानसिंह से लम्बा पत्रव्यवहार हुआ, किन्तु वह निष्फल गया। स्वयं नाथों में उस जायदाद तथा आय को लेकर गम्भीर विरोध था जिस पर वे दावा करते थे। यहाँ तक कि उनके रखरखाव के लिए जो ४५०००० रु० की भारी रकम निर्धारित थी वह एक ही दिन में बाँट दी गई। इसके अतिरिक्त, उनके पास एक लाख पचास हजार रुपये की

[पिछले पृष्ठ का शेष]

मंगलीपाव ने विरोध स्वरूप अपने दावे का शीघ्रतापूर्वक निबटारा करने के लिए उपवास किया। मानसिंह स्वयं उसे भोजन करने के लिए राजी करने हेतु पासवान बाग गया और उसको आश्वासन दिया कि उसके दावे का निबटारा शीघ्र किया जायेगा। इसके अतिरिक्त उसने मंगलीपाव से यह भी कहा कि यदि वह भोजन नहीं करेगा तो वह भी (मानसिंह) भोजन नहीं करेगा। महाराजा की व्यक्तिगत प्रार्थना से भी मंगलीपाव नहीं माना और विरोध स्वरूप उसने जोधपुर छोड़ देने का निश्चय कर लिया। मंगलीपाव के जोधपुर छोड़कर चले जाने के समाचार से महाराजा इतना व्यथित हुआ कि वह स्वयं उसे रोकने के लिए गया। जब महाराजा मंगलीपाव के समीप पहुँचा तब वह घोड़े से उतर गया और फिर उसने कटार से अपनी हत्या कर लेने की धमकी दी। लक्ष्मीनाथ ने मंगलीपाव के हाथ से कटार छीन ली और उसको न जाने के लिए मना लिया। सायंकाल जब मंगलीपाव ने भोजन किया तब महाराजा ने भी उसका अनुसरण किया और वह सम्पूर्ण रात्रि पासवान बाग में ही रहा, जहाँ मंगलीपाव ठहरा हुआ था।

उसी समय सोढ़ीजी भीमनाथ की विधवा पत्नी ने पंचायत के निर्णय को अस्वीकार कर उदय मंदिर को अपने छोटे लड़के लघुनाथ के लिए माँगा और उसके दावे के स्वीकार न होने की दशा में जालौर चले जाने की धमकी दी। (वि० सं० १८९८) वैशाख शुक्लपक्ष की दसवीं का लडलो का मानसिंह को खरीता (३० अप्रेल १८४१); खरीता बही, संख्या १३, एफ ४३१; जोधपुर पोलीटिकल एजेंट की डायरी का सारांश १७, १८ मार्च १८४१ तथा २६ अप्रेल से ३ मई १८४१ तक; राजपूताना एजेंसी रेकार्ड, १४ ए, जोधपुर २१८४१, भाग–२, रानी देऊदी का महाराजा मानसिंह को खरीता (तिथि नहीं); जनानी चिट्ठियों की फाइल, संख्या १४/ए, ढ़ोलिया का कोठार।

जो अधिक रकम पड़ी हुई थी वह उसके अलावा थी।[१०७]

यद्यपि नाथों तथा उनके अधीनस्थ निजी कर्मचारियों के निर्वाह के लिए ४५०००० रु० की रकम निर्धारित कर दी गई थी तथापि लक्ष्मीनाथ राज्य के व्यय में से एक बड़ी सैनिक टुकड़ी रखता था और उसने उन सौ अश्वारोहियों के निर्वाह के लिए खालसा के गाँवों को अपने अधिकार में ले लिया था।[१०८]

मानसिंह के अन्तिम वर्ष और नाथों के अत्याचार :

महाराजा की व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए ऐसे सभी व्यक्तियों को, जो उमके हितों और प्रशासन में महामदिर के प्रभुत्व के विरोधी थे, दूर रखने के लिए लक्ष्मीनाथ ने उस घेरे के प्रवेशद्वार पर जहाँ महाराजा का निवास था पचास योगी नियुक्त कर दिए थे। महामंदिर के चालीस परदेशी सैनिक ड्योढ़ी (पोच) की चौकसी के लिए रक्खे गए थे। साठ परदेशी खास चौकी पर नियुक्त किए गए थे और उसके विश्वास-पात्र नौकर महाराजा के आसपास उनकी चाकरी के लिए रक्खे गए थे।[१०९]

यद्यपि नाथों ने स्वयं महाराजा तथा उसके अधिकारों की सुरक्षा के लिए अधि॰ कतम प्रयत्न किया तथापि उनके आपस के कलह तथा झगड़ों के कारण महाराजा मानसिंह का चित्त अशान्त हो गया। रोगग्रस्त होने तथा चिन्ताओं के कारण वह राज्यकार्य को बिलकुल भी नहीं देखता था। क्योंकि नाथों की समस्या हल नहीं हो सकी, अत: सदरलैंड अगस्त १८४१ में पुन: जोधपुर आया, जिससे कि उनके प्रभाव तथा शक्ति को समाप्त किया जा सके।[११०]

जनवरी १८४२ में नाथों की जागीरें अंग्रेजों द्वारा जब्त करली गईं। लक्ष्मीनाथ, रघुनाथ और प्रागनाथ को उनके ऊँचे पदों से हटा दिया गया। उनका मारवाड़ से निष्कासन कर दिया गया। वे बिना अंग्रेजों की आज्ञा के मारवाड़ की भूमि में पुन: प्रवेश नहीं कर सकते थे। पोकरण के ठाकुर भभूतसिंह को प्रधान नियुक्त किया गया। सदरलैंड ने नाथों के निर्वाह के लिए तीन लाख रुपयों की जागीर देने का

---

१०७. सदरलैंड का मैडाक को पत्र, २८ जून १८४१, कान्स २६ जुलाई १८४१, संख्या २८/२९, एफ पी

१०८. लडलो का सदरलैंड को पत्र, १९ जनवरी १८४१, कान्स २६ जुलाई १८४१, संख्या २८/२९, एफ पी

१०९. लडलो का सदरलैंड को पत्र, ९ जनवरी १८४१, सूची १/२२, संख्या १, जोधपुर भाग ८, १८४१

११०. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८९१–१९००), संख्या १२, एफ ३९८–४०७

प्रस्ताव रक्खा जिसे नाथों ने अस्वीकार कर दिया ।[111]

नाथों की जागीरों से कुल मिलाकर ४५०००० रुपये की वार्षिक आय होती थी । उन गाँवों को छोड़कर जो उन्हें ताम्रपत्रों के द्वारा बख्शीश में दिए गए थे अन्य सारी भूमि उनसे ले ली गई । उन गाँवों की व्यवस्था अन्य गाँवों के साथ, सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी करते थे । नाथों को उनके निर्वाह के लिए प्रति वर्ष तीन लाख रुपये दिए जाते थे और एक लाख रुपये उनके नाबालिगों के लिए सुरक्षित थे ।[112]

ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा नाथों की गिरफ्तारी :

२ सितम्बर १८४२ को पोलीटिकल एजेंट की सिफारिश पर सिंघवी सुखराज को दीवान नियुक्त किया गया । किन्तु वह भी नाथों को वश में नहीं कर सका । पहले की भाँति ही वे खजाने से बड़ी रकमें उठाते रहे ।[113] यद्यपि प्रमुख नाथों को मारवाड़ से निष्कासित कर दिया गया था तथापि उनको गुप्त रूप से राज्य के खजाने से रुपया दिया जाता था । नाथों के प्रभुत्व को समाप्त करने के सभी प्रयत्न विफल हो गए । तत्कालीन दीवान सुखराज ने त्यागपत्र दे दिया और राज्य की मुहर महाराजा को दे दी । यद्यपि लक्ष्मीनाथ, प्रागनाथ तथा अन्य प्रमुख नाथ जोधपुर से जा चुके थे तथापि उनके कम महत्त्वपूर्ण अनुयायी अब शक्तिशाली होने लगे थे । नाथ सम्प्रदाय में नए अनुयायियों का भर्ती होना जारी रहा । बाहर से बहुत बड़ी संख्या में लोग आते और वे अपने कानों को चिरवाते । इस प्रकार नाथ साधुओं की संख्या बेहद बढ़ गई । नाथ सम्प्रदाय में इन नए भर्ती होने वालों के भोजन और निवास की व्यवस्था नागौरी फाटक के बाहर एक बहुत बड़े खेमे 'दल-बादल' में राज्य के व्यय पर की गई थी ।[114]

नाथों की इन कार्यवाहियों से अंग्रेज चौंके । उनको भय हुआ कि इन सब कार्यवाहियों से महाराजा के हाथ मजबूत होंगे और वह राजनीतिक विद्रोह कर सकेगा । अतएव पोलीटिकल एजेंट ने ऐसे समय में जबकि आर्थिक कठिनाई के कारण सरकार अपने दिन-प्रतिदिन के खर्चों को पूरा करने में कठिनाई अनुभव कर रही थी, इस प्रकार के खर्चे पर आपत्ति उठाई । नाथों की इस नई भर्ती की कार्यवाही से राज्य

---

१११. थामसन का सदरलैंड को पत्र, १८ मई १८४३, कान्स ४ जून १८४३, संख्या २६/१०५, एफ पी

११२. सदरलैंड का मैडाक को पत्र, १ अप्रेल १८४२, कान्स १५ जून १८४२, संख्या १८, एफ पी

११३. लडलो का मानसिंह को पत्र, १६ मई १८४२

११४. तवारीख मानसिंह, एफ ३२६–२७

परिषद् (स्टेट काउंसिल) के सदस्य इतने अधिक आतंकित हो गए कि उन्होंने कार्य करना बन्द कर दिया। अन्त में पोलीटिकल एजेन्ट को अजमेर से सैनिक सहायता माँगनी पड़ी। उसने वहाँ से डेढ़ सौ सवार बुलाए; और ११ तथा २२ अप्रेल को गोरखमंडी के मेहरनाथ और होशियारनाथ के शिष्य शीतलनाथ को गिरफ्तार कर लिया गया।[११५] नाथों को छुड़वाने के लिए महाराजा ने अपने वकील राव रिखमल को पोलीटिकल एजेन्ट के पास भेजा परन्तु उसके प्रयत्न विफल हुए। नाथों की गिरफ्तारी से वह इतना व्याकुल हो गया कि उसने न केवल सभी राज्यकार्यों में भाग लेना छोड़ दिया वरन् उसने २३ अप्रेल १८४३ को गेरुए रंग के संन्यासी वस्त्र धारण कर लिए और अपने शरीर पर भभूत (भस्म) मलली। जिस दिन उसने साधु के वस्त्र धारण किए उस दिन से उसने नियमित भोजन करना छोड़ दिया और वह केवल एक पेड़ा तथा थोड़ा दही लेने लगा।[११६]

मानसिंह ने नाथ साधुओं की गिरफ्तारी पर अपने को न केवल अपमानित अनुभव किया वरन् उसको गहरा धक्का भी लगा। उसकी मान्यता थी कि नाथों के प्रति उसकी श्रद्धा और भक्ति, उसका व्यक्तिगत विषय होने के कारण, अंग्रेजों के हस्तक्षेप के क्षेत्र के नितान्त बाहर थी। इसके अतिरिक्त अंग्रेजों को मारवाड़ के किसी भी नागरिक को जब तक कि महाराजा स्वयं उनसे वैसा करने की प्रार्थना न करे, गिरफ्तार करने का कोई अधिकार नहीं था। क्योंकि उसने अंग्रेजों के विरुद्ध अपने को नितान्त असहाय पाया, अतएव उसने इस निम्न कोटि के अपमान और अधीनता की अपेक्षा एक संन्यासी के एकाकी जीवन को पसन्द किया।

मानसिंह और नाथ :

मानसिंह की नाथ गुरुओं में अंधभक्ति की बहुधा आलोचना की गई है। उसके मित्रों को भी उसके आधार या उसके मूलभूत स्वरूप की प्रशंसा करना कठिन प्रतीत होता था। उसके समकालीन लोगों में अधिकांश व्यक्ति नाथों के प्रति उसकी अंध भक्ति को आयसदेवनाथ की भविष्यवाणी के प्रति उसकी कृतज्ञता का प्रतीक मानते थे, यद्यपि कुछ लोग उसे उसके एक ऐसे साधु के साथ दीर्घकालीन सम्बन्ध का परिणाम मानते थे जो केवल उसका गुरु ही नहीं था वरन् उसका राजनीतिक और प्रशासनिक मामलों में निरन्तर मार्गदर्शक भी था।

---

११५. लडलो का सदरलैंड को पत्र, ३ मई १८४३, कान्स १४ जून १८४३, संख्या ९२–१०५, एफ पी, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८९१–१९००), संख्या १२, एफ ४९४

११६. वि० सं० १९१२ वैशाख शुक्ल पक्ष की पंचमी का शिलालेख, मंडोर के पंच कुण्ड में मानसिंह की शंख ढ़ाल की छतरी।

आलोचना करते समय उसके अधिकांश आलोचक आयसदेवनाथ द्वारा उसके पक्ष में की गई सहायता के स्वरूप और सीमा को ध्यान में नहीं रखते हैं। मारवाड़ की गद्दी पर बैठने से पूर्व और पश्चात् मानसिंह को सहायता और मार्गदर्शन की बहुत अधिक आवश्यकता थी। उसको चारों ओर से शत्रु घेरे हुए थे, उसके चारों ओर षडयन्त्रों का एक जाल फैला हुआ था और अविश्वास तथा असुरक्षा का वातावरण उत्पन्न कर दिया गया था। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए भी उसे निरन्तर प्रयत्न करना पड़ता था। वह अपने उन सगे-सम्बन्धियों द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया जिनमें से प्रत्येक ने उसको अपनी उस पैतृक जायदाद से जिस पर वह वैध रूप से दावा कर सकता था, वंचित करने का सतत प्रयत्न किया और उसको एक गृह विहीन विचरण करने वाला बना दिया। उसे जालौर के एकान्त दुर्ग में घेर लिया गया जहाँ उसके लिए एक मात्र विकल्प या तो भूख से मरना था या शर्तरहित आत्मसमर्पण करना था। इस निराशाजनक स्थिति में वह मारवाड़ का शासक बना। गद्दी पर बैठने के उपरान्त भी मानसिंह ने मारवाड़ की गद्दी को अपने लिए पुष्पशैय्या के समान नहीं पाया। जहाँ एक ओर असन्तुष्ट सरदार जो कुछ थोड़ा अधिकार मानसिंह के पास था उसे छीन लेना चाहते थे वहाँ दूसरी ओर मुत्सद्दियों और दरबारियों के षडयन्त्रों और कुचक्रों ने स्थिति को अत्यन्त दुरूह बना दिया था। उसको एक दिवालिया खजाने की व्यवस्था करनी पड़ी और एक विघटित वंश परम्परागत संगठन को विनाश के तट तक ले जाना पड़ा।

स्वर्गीय शासक के मरणोपरान्त उत्तराधिकारी के जन्म ने उसके सभी विरोधियों को एक सुविधाजनक साधन उपलब्ध कर दिया जिससे उन्होंने पड़ोसी नरेशों की सहायता और सार्वभौम सत्ता की जानबूझ कर उपेक्षा द्वारा उसके विरोधियों का एक शक्तिशाली गुट तैयार कर दिया।

उसके लगभग सभी सरदारों ने अपने स्वामी के विरुद्ध सभी प्रकार के अशोभनीय षडयन्त्रों में लज्जाजनक रूप से भाग लिया। उसके अत्यन्त विश्वासपात्र मुत्सद्दियों ने भी उसके शत्रुओं से साँठगाँठ कर ली थी। ऐसी दुविधा और घोर चिन्ताओं के मध्य मानसिंह ने अकेले आयसदेवनाथ में एक गुरु, मार्गदर्शक, और संरक्षक को पाया, जो असंदिग्ध रूप से विश्वसनीय था और जिसने उसके बहुत से शत्रुओं को निष्क्रिय कर देने का और उसके लिए जनता की श्रद्धा अर्जित करने का कठिन प्रयत्न किया था। उसका राजाओं और सर्वसाधारण पर समान प्रभाव था, जिसका उसने मानसिंह के हित में उपयोग किया। वह गाँव-गाँव घूमता था, पड़ोसी राज्यदरबारों में जाता था, जनसभाओं में भाषण देता, लोगों को तैयार करता, धन एकत्रित करता और एक ऐसे शासक के लिए सहायता माँगता जिसका अस्तित्व ही खतरे में था। केवल यही नहीं उसने मानसिंह के भाग्य रूपी जहाज का मार्गदर्शन भी किया, उसको परामर्श,

दिया, सुधारों के प्रस्ताव रखे, शत्रुओं का विरोध किया और उसके प्रति अटूट भक्ति और स्नेह रखा।[११७] यदि मानसिंह ऐसे गुरु और मार्गदर्शक के प्रति कृतज्ञता प्रकट नहीं करता तो आने वाली पीढियाँ उसको कृतघ्न कहकर उसकी निन्दा करतीं। अतएव अपने आध्यात्मिक गुरु आयसदेवनाथ के प्रति उसकी (मानसिंह की) श्रद्धा को सरलता से समझा जा सकता है।

मानसिंह द्वारा आयसदेवनाथ के पक्ष में शक्ति और प्रभाव को समर्पित कर दिए जाने से उसके मुत्सद्दी और सरदार क्षुब्ध नहीं हुए। यह १० दिसम्बर १८०९ के उस परवाने से स्पष्ट है जिसके द्वारा मानसिंह ने नाथ मठों को भूमि दान में दी और उनको बहुत सी सुविधाएँ दी और कुछ परगनों की गैर-कृषि आय में से एक भाग दिया। इस परवाने पर न केवल दीवान सिंघवी इन्द्रराज के हस्ताक्षर हैं वरन् नवाब अमीरखाँ के साथ महाराजा की मोहर भी है। उसमें सभी चंपावत, कुंपावत, उदावत, मेड़तिया, करनोत, जैतावत ठाकुरों और छब्बीस जोशियों तथा पुष्करणा ब्राह्मणों व मुत्सद्दियों के हस्ताक्षर सहित यह पावन प्रतिज्ञा थी कि वे सभी नाथ मंदिरों को दिए गए दान तथा सुविधाओं का सम्मान करेंगे। इस परवाने में, राठौड़ बख्तावरसिंह और उस समय प्रधान के पद पर आसीन माधोसिंह चंपावत की मुख वचन पर परवानगी भी है।[११८] अस्तु, मानसिंह ने जो श्रद्धा और आदर अपने नाथ गुरु को दिया उसको सभी प्रमुख सरदारों, मुत्सद्दियों और कतिपय अन्य धार्मिक संस्थाओं ने भी स्वीकार किया। ऐसा प्रतीत होता है कि आयसदेवनाथ को सभी लोग महाराजा का मार्गदर्शक और गुरु स्वीकार करते थे। जब मानसिंह ने महान आयसदेवनाथ के प्रति अपना तन, मन और धन सभी अर्पित कर दिया तब भी किसी ने आपत्ति नहीं की।

जब तक यह श्रद्धा-भक्ति आयसदेवनाथ के व्यक्तित्व के प्रति सीमित रही तब तक किसी ने भी आपत्ति नहीं की। लेकिन यह निश्चित था कि लोग यह पसन्द नहीं करते थे कि मानसिंह अपने आध्यात्मिक और भौतिक हितों को लाडूनाथ, भीमनाथ और लक्ष्मीनाथ के हाथ में दे दे। वे सभी उस पद के अयोग्य सिद्ध हुए जिस पद पर वे थे। उनके व्यक्तिगत गुण और दोषों के बावजूद, एक के बाद दूसरे गुरुओं के प्रति उसकी भक्ति और श्रद्धा ने लोगों को यह सोचने पर विवश कर दिया कि महाराजा मानसिंह के सम्पूर्ण राजत्वकाल में शासन की बागडोर नाथ गुट के हाथों में रहेगी और वह जनहित के

११७. वि० सं० १८८६ आश्विन कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी और वि० सं० १८८६ कार्तिक शुक्ल पक्ष की पंचमी की सुखसेजराय का मानसिंह को अर्ज़ी।

११८. परवाना, वि० सं० १८६६ मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की चतुर्थी; बस्ता नं० २/७६

लिए अहितकर होगी।[119] लाडूनाथ, भीमनाथ और लक्ष्मीनाथ—जैसे व्यक्तियों को अपना आराध्य मानकर मानसिंह जिस प्रकार श्रद्धा-भक्ति प्रदर्शित करता था, उसका सर्वसाधारण विरोधी था। मारवाड़ के प्रतिष्ठित व संभ्रान्त लोगों को उनके सामने नतमस्तक होना पड़ता था और उनकी अनुकम्पा के लिए उनकी हाजिरी में उपस्थित होना पड़ता था। लोगों को इस बात से उस समय बहुत धक्का पहुँचता था जब वे देखते थे कि उनका महाराजा शून्यमात्र है और नाथ योगी राज्य के वास्तविक स्वामी बने हुए हैं। उसकी साग्रह इस घोषणा ने कि उसने मारवाड़ का राज्य नाथ संप्रदाय को समर्पित कर दिया है, ब्रिटिश अधिकारियों को भी यह अनुभव करने पर विवश कर दिया कि महाराज ने अपने पूर्वजों के धर्म को तिलाञ्जलि दे दी है। यह भय उस समय और अधिक दृढ़ बन गया जब उन्होंने देखा कि मानसिंह नाथों के धर्म परिवर्तन के कार्यों का भी समर्थन करता है। उन्हें भय था कि इस नीति के कारण नाथ मारवाड़ में सर्वशक्तिमान हो जायेंगे।[120] इसके अतिरिक्त, मानसिंह देश के विभिन्न भागों में रहने वाले नाथ साधुओं से भी पत्रव्यवहार करता था। उनमें से कुछ धार्मिक कार्यों के अतिरिक्त अन्य प्रकार की गतिविधियों में भी रुचि रखते थे और मानसिंह को अन्य प्रान्तों में होने वाली ब्रिटिश विरोधी कार्यवाहियों से अवगत कराते रहते थे।[121] इसके कारण अंग्रेजों को यह भय होगया कि मानसिंह की इस सम्प्रदाय के उन साधुओं, जिनमें से कुछ पंजाब, सिन्ध, हैदराबाद तथा भारत के अन्य भागों में अंग्रेजों के इरादों का खुले आम विरोध करते थे की सहानुभूति और सहायता के फलस्वरूप कहीं ब्रिटिश विरोधी शक्तिशाली गुट न बन जाय। यही कारण था कि वे नाथों को सभी महत्त्वपूर्ण और सुविधाजनक स्थानों से हटाने पर बल देने लगे।[122]

लाडूनाथ, भीमनाथ और लक्ष्मीनाथ के मुत्सद्दियों ने मारवाड़ में नाथ सम्प्रदाय के प्रति साधारण रूप से और उसके सिद्धों के प्रति विशेष रूप से विरोध उत्पन्न कर दिया था। इसने अंग्रेजों को मारवाड़ में उन सरदारों और मुत्सद्दियों को, जिनको नाथों ने हानि पहुँचाई थी अथवा जिनको नाथों से हानि पहुँचने की संभावना थी,

---

११९. एल्विन का मैकनाटन को पत्र, २९ जनवरी १८३८, कान्स १२ मार्च १८३८, संख्या १११–११२, एफ० पी०

१२०. तवारीख मानसिंह, एफ २६–२७

१२१. सदरलैंड का मैडाक को पत्र, १७ अप्रेल १८३९, कान्स २४ जुलाई १८३९, संख्या ९८, एफ० पी०

१२२. सदरलैंड का मैडाक को पत्र, २७ जुलाई १८३९, कान्स ९, अक्टूबर १८३९, संख्या ३१, एफ० एस०

संगठित करने के लिए एक सुविधाजनक साधन उपलब्ध कर दिया। इसके कारण राजनीतिक दृष्टि से अंग्रेजों के हाथ भी मजबूत हो गये, जो अब मानसिंह के द्वारा नाथों को हटवा कर इस स्थिति को समाप्त करने या इसमें सुधार करने के लिए उसे विवश करने की स्थिति में थे; और यदि मानसिंह इसके लिए तैयार नहीं होता तो उसे गद्दी से हटना पड़ता। नाथों को असीमित प्रभुत्व प्राप्त करने की जो सुविधा उसने दी उसके कारणों को समझना कठिन नहीं है। वह चारों ओर से अपने भयंकर शत्रुओं से घिरा हुआ था और इस बात की बहुत संभावना थी कि वे उसको समाप्त कर दें। अपने विरोधियों के विरुद्ध शक्तिशाली अवरोध खड़ा करने की इच्छा के कारण उसको अपने पुराने साथियों का साथ दृढ़ता से रखना पड़ा, यद्यपि जो पद उन्हें प्राप्त थे उनके लिए वे सर्वथा अयोग्य थे। समय के अनुसार संभवत: यही वांछनीय था। संभवत: यह निर्दयतापूर्ण और कष्टदायक आवश्यकता थी जिसने उसे उन अवांछनीय लोगों के गुट से संबंधित रहने पर विवश कर दिया, जो अपने सभी दोषों के साथ उसके प्रति निष्ठावान थे, और उसके पक्ष का बिना किसी संकोच के समर्थन करने के लिए तैयार थे। हो सकता है, अपने स्वार्थ साधन के लिए वे ऐसा कर रहे थे।[१२३]

लडलो जैसे-जैसे नाथों को हटाने के प्रश्न पर अधिकाधिक बल देता गया वैसे-वैसे उसकी लडलो के पत्रों के प्रति उपेक्षा अधिक बढ़ती गई। अन्त में एक ऐसी स्थिति आ पहुँची जब मानसिंह इतना अधिक चिढ़ गया कि वह अंग्रेजों के निर्देशन की अवज्ञा करने में सुख अनुभव करने लगा। और यही कारण था कि वह नाथों से इतना अधिक दृढ़ता से संबंधित रहा, यद्यपि ऐसा करने में संभवत: कोई औचित्य नहीं था।

यह भी संभव है कि मानसिंह ने मझधार में अपने समर्थकों को बदलना खतरनाक समझा हो। यदि वह ऐसा करने के लिए राजी हो जाता तो भी उसका कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं होता। केवल नाथों से उसे जो कुछ समर्थन मिलता था वह भी समाप्त हो जाता। उनके धोखे, व्यभिचार, लिप्सा और खोखलेपन के होते हुए भी नाथ उसका समर्थन करने पर विवश थे। यदि वे उसके प्रति निष्ठा और नैतिक कारणों से नहीं, तो कम से कम उन दोनों में जो पूर्ण रूप से समान हित स्थापित होगये थे उनकी रक्षा के लिए उसका समर्थन करने पर विवश थे।

---

१२३. मानसिंह का सुखसेजराय को खरीता, वि० सं० १८८६ आश्विन शुक्ल पक्ष की छठ

६

प्रशासन भाग–१

शासक की स्थिति :

मारवाड़ का शासक, राज्य का वंश परम्परागत प्रधान होने के कारण राज्य के संस्थापक का सबसे नजदीक का वैध वंशज होता था।[१] मारवाड़ के शासक को राठौड़ गोत्र के राजपूतों का प्रमुख स्वीकार किया जाता था। इस कारण वह समस्त मारवाड़ में श्रद्धा का पात्र होने के अतिरिक्त समीपवर्ती राठौड़ राज्यों बीकानेर, किशनगढ, ईडर, रतलाम–में भी आदर की दृष्टि से देखा जाता था।[२] ज्येष्ठाधिकार के नियम का इतनी अधिक कड़ाई से पालन किया जाता था कि गद्दी के दावेदार में शासक बनने की योग्यता के अत्यन्त निम्न स्तर की योग्यता या क्षमता भी स्वीकार्य थी। यदि कोई सीधा उतराधिकारी नहीं होता था तो दत्तक लिया जा सकता था। परन्तु दत्तक तभी लिया जा सकता था जब कि सभी संबंधित व्यक्तियों को संतोष हो जाता था कि मृत महाराजा की किसी महारानी के मरणोत्तर पुत्र होने की संभावना नहीं है। मानसिंह के गद्दी पर बैठने का सामन्तों के एक दल ने केवल इसी आधार पर विरोध किया था, क्योंकि जब महाराजा की मृत्यु हुई तब उनकी (मृत महाराजा भीमसिंह की) रानी देरावरी गर्भवती थी, और इस बात की सम्भावना थी कि उसके मरणोत्तर पुत्र उत्पन्न होगा।[३]

---

१. ल्याल ऐलफ्रेड का एक लेख जो १८७६ के राजपूताना गजेटियर के लिए लिखा गया और बाद में "चीफ्स एण्ड लीडिंग फेमिलीज़ इन राजपूताना" की भूमिका के रूप में उद्धृत किया गया, पृष्ठ ५।

२. पेपर संख्या ७, मारवाड़ संबंधी। कान्स १४ अक्टूबर १८३०, संख्या ३–८ एफ एस; मैडाक को सदरलैंड का पत्र, २७ जुलाई १८३६, कान्स ६ अक्टूबर १६३६, संख्या ३१, एफ-एस

३. हकीकत बही, जोधपुर (वि० सं० १८५६–६०) संख्या ८, एफ ४३६; हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८६०, एफ २६७, टॉड : एनल्स भाग २, पृष्ठ १०७।

राज्य का सम्पूर्ण प्रशासनिक ढाँचा महाराजा के व्यक्तित्व के चारों ओर घूमता था। मारवाड़ के अधिकांश निवासी उसे दैवी प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार करते थे। हिन्दू परम्परा के अनुसार राजा में दैवी अंश स्वीकार किया जाता था। सिद्धान्त रूप में वह सर्वशक्तिमान राजा था। वह राज्य का सर्वोच्च प्रधान, सेना का सर्वोच्च सेनापति और सर्वोच्च प्रशासक भी था। विधान बनाने की सर्वोच्च शक्ति उसमें निहित थी। न्याय का आदिस्रोत होने के कारण, वह व्यक्तिगत रूप से सभी अभियोगों का निर्णय करता था और सभी झगड़ों को तय करता था, उसको अपनी प्रजा का संरक्षक और पिता स्वीकार किया जाता था। अतएव उसकी शक्ति और अधिकार विस्तृत थे।[४]

यद्यपि वहाँ किसी प्रकार की जनतांत्रिक पद्धति नहीं थी तथापि महाराजा नितान्त निरंकुश शासक की भाँति कार्य नहीं कर सकता था। उसके सामन्तों तथा अभिजात वर्ग की सैनिक भावना तथा श्रद्धास्पद संस्थाएँ उसके अधिकारों पर एक बहुत बड़े नियंत्रण का काम करती थीं। वह अपने सामन्तों, महाजनों और पंचायतों, को अप्रसन्न करने का साहस नहीं कर सकता था।[५] अनेक अवसरों पर दुर्भिक्ष पीड़ित क्षेत्रों के चौधरी और विभिन्न जातियों के प्रतिनिधि जोधपुर आए, महाराजा मानसिंह से मिले और उन्होंने उसे मालगुजारी तथा लागतों में छूट देने पर विवश किया। १८०८ में जालौर के चौधरियों ने 'घरबाब लागत' में २५ प्रतिशत की छूट प्राप्त की।[६] १४ अप्रेल १८१४ को जोधपुर, नागौर, मेड़ता सोजत, जैतारण आदि के लोगों ने शासक को 'घरगिनती लाग' में चार रुपये और 'हल लाग' में साढ़े चार रुपये की कमी करने पर विवश किया।[७] १८१३ में जोधपुर के नागरिक एक साथ मिलकर महलों के फाटक तक गए और महाराजा को व्यापारियों से अनाज को सस्ता बेचने के लिए कहना

---

४. सिलेनहम का बारलो को पत्र, हैदराबाद रेजीडेंसी रेकार्ड–भाग ३१, १३ जनवरी १८०५ से २ जनवरी १८०६ तक। ख्यात मुसद्दियान (दयालदास की डायरी), एफ ४२

५. सत्यनारायण पारीक : अठारहवीं शताब्दी के मारवाड़ में महाजन पंचायतों की कार्य-पद्धति (राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस, १९०६ की कार्यवाही पृष्ठ ८८–९६) सिंघवी धीरजमल की वि० सं० १८२७ के श्रावण मास शुक्ल पक्ष की दोज की मेड़ता नगर की महाजन पंचायत। फोर्स्टर का कैवेंडिश को २५ मार्च १८२६ का पत्र, रेजीडेंसी रेकार्ड जोधपुर, भाग १८२६

६. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ १२४

७. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ ४८३

पड़ा।[८] १८१५ में कतिपय व्यापारियों की गिरफ्तारी के विरोध में जनक्षोभ को अभिव्यक्त करने के लिए पाली के महाजनों ने सम्पूर्ण व्यापार बन्द कर दिया और दूकानें तथा मंडियाँ बन्द करदीं।[९] सहायता पाने में असफल होने पर मेड़ता और पाली के प्रमुख परिवारों ने १८३९ में सभी परिवारों द्वारा अजमेर को प्रवास करके अधिकारियों को तत्काल कार्यवाही करने पर विवश कर दिया।[१०] इस प्रकार जनता की सामूहिक इच्छा वांछित परिणाम प्राप्त कर सकती थी और महाराजा को निरंकुशता त्यागने पर विवश कर सकती थी।[११]

ग्राम निवासी भी शासक के अन्यायपूर्ण कार्यों के विरुद्ध पंचायतों के माध्यम से संगठित, अनुशासित और सुरक्षित थे। १८१७ में बालोतरा, जालौर और शिव के किसानों को जब प्रति घर आठ रुपये 'घरबाब' लाग देने पर विवश किया गया तब उन्होंने खेतों का जोतना, बोना और फसल काटना बन्द कर दिया।[१२] २६ अप्रेल १८१९ को नागौर के जाट महाराजा से मिले और वस्तुतः उसे अपनी पूर्व आज्ञा को संशोधित करने पर विवश कर दिया एवं उसने पहले 'घरबाब' लाग की जो दर निर्धारित की थी उसकी आधी दर से लाग वसूल करने की आज्ञा प्राप्त करली।[१३] जालौर के किसानों ने प्रति घर ४ रुपये की छूट उस लाग में से प्राप्त करली[१४] जिसको लागू करने की आज्ञा १८ मई १८३१ को निकाली गई थी।

इसके पतिरिक्त मारवाड़ के सामन्त राज्य के प्रशासन में एक प्रकार के साझीदार होने का दावा करते थे और सभी महत्त्वपूर्ण अवसरों पर उनसे परामर्श लिए जाने के अपने विशेषाधिकार का आग्रह करते थे।[१५] अपने नाथ गुरुओं को जागीर

---

८. वही, एफ ४९२

९. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या ९, एफ १२४

१०. लडलो का सदरलैंड को पत्र, १५, मई १८४१; जोधपुर पुराना ५ आर० ए०। महाराजा को मेड़ता के सेठों, साहूकारों, दूकानदारों की अर्जी, वि० सं० १८९६ आश्विन कृष्ण पक्ष की चौदहवीं की अर्जी बही, संख्या ३, एफ ४८

११. लोढ़ा ज्ञानमल को वि० सं० १८९८ मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की सप्तमी का परवाना, सनद परवाना बही; वि० सं० १८९८

१२. बुलाकीदास द्वारा सिंघवी फतहराज को जालौर की खबर, तिथि नहीं दी हुई है।

१३. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ २५६

१४. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८८१–९०), सं० ११, एफ २४५

१५. अलवेज का मैकनाटन को पत्र, २२ अक्टूबर १८३७, कान्स ४ नवम्बर १८३७, संख्या ४, ए, एफ० पी०

देते समय मानसिंह को न केवल अपने प्रधान—आउवा के ठाकुर बख्तावरसिंह की सहमति लेनी पड़ी वरन् सभी ताजीमी सरदारों, मुत्सद्दियों तथा विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के प्रतिनिधियों की भी सहमति प्राप्त करनी पड़ी।[१६] पोकरण का ठाकुर गर्व के साथ कहता था कि वह मारवाड़ का भाग्य अपनी तलवार की म्यान में लेकर चलता है।[१७] इसके अतिरिक्त उसको अपने राज्य का प्रशासन धर्मशास्त्रों में वर्णित सिद्धान्तों तथा प्रथागत नियमों के अनुसार चलाना पड़ता था।[१८] परन्तु १८१८ के उपरान्त मानसिंह सार्वभौम शक्ति के संरक्षात्मक अभिभावकत्व में एक अनुगत राजा की भाँति रहने लगा और धीरे-धीरे सार्वभौम सत्ता के दावे की छाया उस पर पड़ने लगी। इसके उपरान्त भी राजनीतिक जीवन की परम्परा राजतंत्री बनी रही, यद्यपि ब्रिटिश सत्ता के निरन्तर बढ़ते हुए हस्तक्षेप के कारण शासक के लिए अपने प्रभुत्व को अबाधित रूप से उपयोग में ला सकना कठिन हो गया था।[१९] अब वह वैदेशिक प्रभुसत्ता का उपयोग नहीं कर सकता था और धीरे-धीरे उसको ब्रिटिश सत्ता के आदेशों को मानने पर विवश होना पड़ता था।[२०] मानसिंह के अनुसार लडलो एक राजनीतिक अधिकारी (पोलीटिकल आफिसर) मात्र था, परन्तु उसका आचरण ऐसा था मानों वह परस्पर दो विरोधी पदों—एक रेजीडेंट और दूसरा दीवान—पर काम कर रहा हो।[२१]

अभिजात वर्ग :

मारवाड़ में परस्पर अधिकार और अधीनस्थता की शृंखला महाराजा से लेकर निम्नतम जागीरदार तक श्रेणीकरण की प्रणाली के आधार पर निर्धारित थी। मारवाड़ राज्य का सम्पूर्ण राज्यक्षेत्र मुख्यत: राठौड़ों की शाखाओं के वंशों में बंटा हुआ था। बड़ी जागीरें राठौड़ों की शाखाओं के वंशपरम्परागत प्रधानों

---

१६. वि० सं० १८६६ मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की चतुर्थी का परवाना, नक्शेजात भौम व पुराने राजाओं के शासन की विगत फाइल, संख्या ४/७६

१७. टॉड का मेटकाफ को ७ जुलाई १८२० का पत्र, कान्स १२ अगस्त १८२०, संख्या १०, एफ० पी०

१८. दशरथ शर्मा : दी कल्चरल हैरिटेज-राजस्थान ए सिम्पोजियम, पृ० ३०–३१

१९. जे० एम० व्यास : पोलीटिकल लाइफ ऑफ मारवाड़, पृष्ठ ११

२०. परसराज शाह : ब्रिटिश इम्पेक्ट ओवर दी ऐडमिनिस्ट्रेशन ऑफ मारवाड़। जोधपुर विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत, पी० एच० डी० का शोध ग्रन्थ, एफ २७

२१. मानसिंह द्वारा अलवेज को भेजा गया खरीता, २६ दिसम्बर १८२७, कान्स संख्या १/२४, एफ पी। मानसिंह का सदरलैंड को खरीता, ४ दिसम्बर १८४०, कान्स संख्या ११, सन् १८३९, एफ० पी०।

के पास उन्हीं शर्तों पर थीं, तथा उन्हीं परिस्थितियों में उनकी स्थापना हुई थी और उनके अधिकारों की परिभाषा निर्धारित की गई थी, जिन पर मारवाड़ का शासक मारवाड़ के राज्यक्षेत्र का शासन करता था। इस परिस्थिति विशेष में वे बहुत कुछ शासक (महाराजा) के समान ही थे। प्रथागत नियम तथा परम्परा ही इन जागीरदारों और महाराजा (शासक) के परस्पर संबंधों को नियंत्रित करती थी। अपनी जागीर के अन्दर वे पूर्ण रूप से अपने अधिकारों का उपयोग करते थे।[२२]

मारवाड़ के जागीरदार संख्या में अधिक और अत्यन्त शक्तिशाली थे। उनको राजपूताना के अन्य जागीरदारों की भाँति सैनिक सेवा के उपलक्ष में जागीरें मिली थीं। उनकी सहायता से जोधपुर का महाराजा समान खतरे के अवसर पर कम से कम सिद्धान्त रूप में उन भाडे के सैनिकों को जिन्हें वह नौकर रखता था, निकाल कर साठ हजार सैनिक रणक्षेत्र में ला सकता था।[२३] इस प्रकार मारवाड़ का राजनीतिक विधान जागीरदारों में भूमि वितरण के द्वारा बना था। क्योंकि भूमि का यह वितरण विभिन्न गोत्रों द्वारा भूमि अधिग्रहण से उत्पन्न हुआ था तथा उसकी मुख्य शक्ति राजतंत्र के विशेष अधिकारों और मूल विजेताओं तथा जागीरदारों से वंशानुक्रम की शुद्धता से प्राप्त होती थी, अतएव वे शासक (महाराजा) के साथ राज्य के शासन में साझेदारी का दावा करते थे।[२४] प्रत्येक गोत्र के सजातीय लोगों के पास भी भूमि होती थी, चाहे वह गोत्र के प्रधान द्वारा जागीर के रूप में दी गई हो अथवा उन्होंने स्वतंत्र रूप से प्राप्त की हो। विजातीय गोत्रों के कतिपय सदस्यों को, जिन्हें 'गनायत' कहा जाता था और जिन्हें राज्य में उँचा पद और स्थान प्राप्त था, शासक से विवाह संबंध स्थापित करने के कारण जागीरें मिली थीं अथवा उनके पूर्वजों ने आड़े समय में भयंकर युद्धों में जो वीरता प्रदर्शित की थी और शासक की सेवा की थी उसके उपलक्ष में मिली थीं।[२५] मारवाड़ के प्रमुख व्यक्ति तीन श्रेणियों में बँटे हुए थे—(१) शासक परिवार के लोग जिन्हें 'राजविस' कहते थे। (२) अभिजात

---

२२. अलवेज का मैकनाटन को १० जनवरी १८३८ का पत्र, कान्स सं० ११, एफ० पी०; सदरलैंड का लडलो को पत्र, २२ सितम्बर १८४१, कान्स ८ नवम्बर १८४१, सं० १२२, एफ० पी०

२३. पेपर सं० ७, मारवाड़ के बाबत, १४ अक्टूबर १८३०, संख्या ३–८, एफ० एस०; सदरलैंड का लडलो को पत्र, २२ सितम्बर १८४१, कान्स ८ नवम्बर १८४१ सं० १२२, एफ० पी०

२४. ऐलफ्रेड ल्याल, पूर्वोक्त, पृ० ६

२५. वही, पृष्ठ ६, पेपर सं० ७, मारवाड़ के बाबत, १४ अक्टूबर १८३०, संख्या ३–८, एफ० एस०

वर्ग अथवा सामन्त तथा सरदार (३) महत्त्वपूर्ण अधिकारी अथवा मुत्सद्दी। अभिजातवर्ग अर्थात् सरदारों की भी चार श्रेणियाँ थी—(१) दस सरायतें[२६] जो कि सभी राठौर थे। वे दरबार में पहली पंक्ति में बैठते थे और उन्हें दोहरी ताजीम[२७] और 'हाथ का कुरब' का सम्मान दिया जाता था।[२८] उन महाराजाओं के वंशज, जो राव जोधा[२९] (जोधपुर के संस्थापक) के पूर्व हुए थे, दरबार में शासक की दाहिनी ओर बैठते थे और राव जोधा के वंशज[३०] शासक की बायीं ओर बैठते थे।[३१]

उनके उपरान्त सामाजिक उच्चोच्च परम्परा के वे सरदार थे जिन्हें 'हाथ का कुरब' का सम्मान प्राप्त था। उनमें राठौर, गनायत तथा अन्य जातियों के वे सदस्य एवं राज्याधिकारी सम्मिलित थे जिन्हें वे श्रेणियाँ दी गई थीं।[३२] इस श्रेणी के सरदार भी दो वर्गों में बंटे हुए थे—(१) एक वे जिन्हें दोहरी ताजीम मिली हुई थी (२) दूसरे वे जिन्हें इकहरी ताजीम मिली हुई थी।[३३] चौथी श्रेणी के वे लोग थे जिन्हें केवल इकहरी ताजीम मिली हुई थी।[३४]

ये सरदार शासक को जो कुछ देय या अंशदान चुकाते थे वह उनकी जागीर की आय पर आधारित होता था। प्रारम्भ में उन्हें महाराजा को जितने घुड़सवार और

---

२६. वे कुम्पावत, चम्पावत, जैतावत, करनौत, करमसौत और मेड़तिया थे।

२७. दोहरी ताजीम—उनके आने और दरबार से जाने पर महाराजा उठकर खड़ा होता था।

२८. इस श्रेणी के सरदार के दरबार में आने पर महाराजा खड़ा हो जाता था, सरदार उसके सामने अपनी तलवार रख देता था, झुकता था और महाराजा के वस्त्र का किनारा छूता था। महाराजा सरदार के कंधे पर हाथ रखकर (बाँह पसाओ) हाथ को खींच कर अपनी छाती से लगाता था। इस प्रकार वह उसके अभिवादन को स्वीकार करता था।

२९. इस वंश के मुख्य गोत्र चम्पावत तथा कुम्पावत थे।

३०. इनमें मेड़तिया (रियाँ, आलनियावास) उदावत (रायपुर, निमाज, रास) और जोधा (खरवा और भादराजन) थे।

३१. महाराजा, रावराजा, सरदार इत्यादि और उनकी जागीरें (जोधपुर रेकार्ड) फाइल सं० ७०

३२. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७२), सं० ६, एफ० ४५

३३. इकहरी ताजीम : इस श्रेणी के सरदार के दरबार में आने पर महाराजा खड़ा होता था, पर जाने पर नहीं।

३४. महाराजा उनके आने पर ही केवल उठता था।

पैदल सैनिक देने पड़ते थे वह भी उस भूमि के मूल्य पर जो उन्हें जागीर में मिली थी, तथा उनकी श्रेणी एवं दर्जे पर आधारित था। जो सैनिक सेवाएँ करते थे उनकी मुग़ल साम्राज्य के पतन के उपरान्त आवश्यकता नहीं रही और कालान्तर में उन सेवाओं को नकद रकम में बदला जाने लगा, जिसे रेख कहते थे। प्रत्येक उस पट्टे में जो जागीरदार को दिया जाता था, प्रत्येक गाँव के आगे यह इंगित रहता था कि उस गाँव से कितनी आय की सम्भावना है और कुल रकम उस जागीर की 'पट्टा रेख' कहलाती थी। जागीरदार को उस रकम का एक भाग ही देना पड़ता था। जिस रकम पर राज्य का हिस्सा निर्धारित किया जाता था उसे 'भरतू रेख' कहते थे।[३५]

राज्य के हिस्से की रकम समय के अनुसार बदलती रहती थी। अमीरखाँ को सवार खर्च देने की आवश्यकता पड़ने पर सिंघवी इन्द्रराज ने १८०८ में उन सरदारों से जो दरबार के अनुकूल थे प्रति एक हजार रुपये की आय पर १३५ रुपये और उन सरदारों से जिनसे दरबार नाराज़ थे, प्रति हजार रुपए पर २०० रु० की दर से 'रेख' वसूल की थी।[३६] बीकानेर से लौटने पर उसने २०० रु० की दर से पुन: 'रेख' लगाई[३७] और मानसिंह की पुत्री के विवाह के समय उसने ३०० रु० की दर से भी 'रेख' वसूल की।[३८] १८३९ में जब जागीरदारों ने महाराजा के विरुद्ध विद्रोह किया तब ब्रिटिश रेजीडेंट के हस्तक्षेप करने पर यह प्रस्तावित किया गया कि प्रति एक हजार पर अस्सी रुपये 'रेख' निर्धारित करदी जाए।[३९] १८०८ के उपरान्त यह एक निश्चित सिद्धान्त बन गया कि जब भी राज्य कर्जदार हो जाए अथवा असाधारण व्यय करने का अवसर उपस्थित हो, तब प्रति एक हजार पर तीन सौ रुपए 'रेख' वसूल की जाए।[४०]

जागीरदारों को उत्तराधिकार-कर भी देना पड़ता था जिसे 'हुक्मनामा' कहते थे और जिसे आरम्भ में मोटा राजा उदयसिंह ने मुग़लों के पेशकशी के नमूने पर प्रचलित किया था। उसका नाम अजीतसिंह के राजत्वकाल में बदल कर 'हुक्मनामा' कर दिया गया और जागीर क्षेत्रों के निवासियों से एक नया कर 'तागीरात' नाम से

३५. मारवाड़ की प्रशासनिक रिपोर्ट (१८८३-८४)

३६. तवारीख मानसिंह, एफ० एफ० १७१-७२

३७. वही, एफ १८७

३८. ब्रिटिश सरकार तथा महाराजा मानसिंह के बीच ऐंगेजमेंट (१८३९), संख्या ७ एटचिसन : ट्रीटीज, ऐंगेजमेंट्स, एण्ड सनद्स भाग ७, पृष्ठ १३५-३७

३९. मारवाड़ की प्रशासनिक रिपोर्ट (१८८३-८४), पृष्ठ ४४०-४४१

४०. वही

वसूल किया जाने लगा।[४१] मानसिंह के शासनकाल में इन सब लागतों के साथ ५ रु० का मुत्सद्दी खर्च जोड़ देने पर वे लागतें इतनी अधिक ऊँची होगई कि प्रारंभिक लागत दुगनी होगई; और वह कभी-कभी तिगुनी भी होजाती थी। इसके अतिरिक्त उन्हें महाराजा के दरबार में विशेष समयों और अवसरों पर चाकरी देने के लिए उपस्थित होना पड़ता था।[४२]

वे बड़े और प्रमुख सामन्त जो राज्य के शासन में शासक के साथ साझेदारी का दावा करते थे, उनको उत्तराधिकार का और कठिन समय में महाराजा को परामर्श देने का विशेषाधिकार प्राप्त था। उनकी शक्ति अत्यधिक थी और बहुत कम शासक उनकी उपेक्षा करने का साहस करते थे। ऐसे उमराव और सरायत ये थे— पोकरण के ठाकुर, आउवा, निमाज, रियां, असोप, कुचामन, रास, खरवा, भद्राजुन और रायपुर के ठाकुर अथवा चम्पावत, ऊदावत, मेड़तिया, कुम्पावत, करनौल तथा करमसोत शाखाओं के प्रमुख।[४३] साधारणतया जो भूमि जागीरदार के अधिकार में होती थी उसको लिया नहीं जा सकता था, परन्तु यदि कोई जागीरदार शासक के विरुद्ध विद्रोह करता था अथवा उसके विरुद्ध षडयन्त्र में सम्मिलित होता था तो महाराजा उसकी जागीर को अस्थायी रूप से ले सकता था।

मानसिंह का अपने सामन्तों के साथ संबध :

यद्यपि जालौर की घेराबन्दी के समय मानसिंह भीमसिंह के समर्थक सामन्तों के द्वारा बहुत सताया गया था तथापि सिंहासनारूढ़ होने के तुरन्त बाद से उसने उनके साथ मित्रता के संबंध स्थापित करने और अपनी स्थिति को दृढ़ करने हेतु सतत प्रयत्न किए। उसने आउवा के माधोसिंह, असोप के केसरीसिंह, रास के जीवनसिंह और नीमाज के सुलतानसिंह को वापस मारवाड़ बुला भेजा और उन्हें पुनः अपने ठिकानों का स्वामी बनाया।[४४] यही नहीं, उसने उस सवाईसिंह को भी प्रसन्न करने की अथक चेष्टा की जिसने उसके सिंहासन पर बैठने का विरोध किया था।[४५]

---

४१. मारवाड़ की प्रशासनिक रिपोर्ट (१८८३–८४), पृष्ठ ४४०–४४१

४२. अमल की चिट्ठी, वि० सं० १८६६ पौष शुक्ल पक्ष की सप्तमी (ढ़ोलिया का कोठार); मेड़तिया की ख्यात—भाग २, बस्ता संख्या १०१, एफ १२४८; मालानी ख्यात बस्ता संख्या ४०, एफ १२

४३. ऐटचिसन पूर्वोक्त, पृष्ठ १४४

४४. जोधपुर राज्य की ख्यात—भाग ४, एफ १६, तवारीख मानसिंह, एफ १७–१८

४५. वि० सं० १८६० मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की ग्यारस का अनुबन्ध, आर० ए० सूची–१/४३, मारवाड़ १८३८, संख्या २४; हकीकत बही बीकानेर, संख्या १८, एफ० २६७

परन्तु सामन्तों के पारिवारिक मामलों में मानसिंह की हस्तक्षेप नीति ने कुछ को नाराज कर दिया। मारोठ के ठाकुर महेशदान को दिए गए उसके इस निर्देश ने कि वह अपनी पुत्री का विवाह खेतड़ी के राजा से न करे,[४६] और सवाईसिंह को अपनी पौत्री का विवाह जयपुर में न करने के आदेश ने जागीरदारों में बहुत अधिक क्षोभ और हलचल मचा दी थी।[४७]

आर्थिक कठिनाई से बहुत अधिक त्रस्त होने के कारण उसने बलपूर्वक छोटे ठिकानों से दंड वसूल किया और सम्पूर्ण मारवाड़ पर नई लागतें लगादीं।[४८] 'घाने-राव' के दुर्जनसिंह मेड़तिया ने जालौर की घेराबन्दी के समय मानसिंह के प्रति विद्वेष प्रकट किया था। उसके (दुर्जनसिंह के) विरुद्ध चढ़ाई करने और उसके ठिकाने को खालसा कर लेने के कारण घानेराव चानोद और नरलाई के मेड़तियों को जंगलों में चले जाने और डाका डालने पर विवश होना पड़ा। उसके इस कदम से उसके विरुद्ध बहुत क्षोभ उत्पन्न हुआ[४९] इसके अतिरिक्त उसने अपने प्रशासन में अपने सिरायतों द्वारा दिए गए परामर्श को स्वीकार करने की कभी परवाह नहीं की। वह उन लोगों की सम्मति लेता था जिन्हें वह परामर्श देने के लिए बहुत योग्य मानता था। वह इस बात की चिन्ता नहीं करता था कि उसको परामर्श देने का अधिकार है या नहीं। इस प्रकार की नीति से प्रभावशाली सामन्तों का क्रुद्ध होना स्वाभाविक था।[५०] पोकरण के सवाईसिंह ने असंतुष्ट जागीरदारों का एक संघ बनाया, मारवाड़ के सिंहासन के दावेदार धौंकलसिंह को अपना अधीश्वर स्वीकार किया और महाराजा मानसिंह के विरुद्ध जिहाद शुरू कर दिया।[५१] गिंगोली के युद्ध में वह हरसोलाव, सेनानी पूनलू, सथालाना, चन्दावल, बगड़ी, खीमसर बैराई, देवलिया, रियां, मारोठ और बलूंदा के ठाकुरों को मानसिंह का साथ छोड़कर उसके (सवाईसिंह) द्वारा संगठित संघ में सम्मिलित होने के लिए राजी करने में सफल होगया।[५२] इसमें

---

४६. जोधपुर राज्य की ख्यात—भाग ४, एफ १६, हकीकत बही बीकानेर, संख्या १८६१, एफ १३

४७. तवारीख मानसिंह, एफ ३२

४८. पेपर संख्या ७, मारवाड़ की बाबत, १४ अक्टूबर १८३०, संख्या ३—८, एफ. एस.

४९. सिंघवी जीतमल की मानसिंह को अर्जी, वि० सं० १८६१ मार्गशीर्ष शुक्ला आठवीं, फाइल १/३, अर्जी फाइल सं० ७१ (ढोलिया का कोठार)।

५०. पेपर संख्या ७, मारवाड़ की बाबत, १४ अक्टूबर १८३०, संख्या ३—८, एफ० एस०

५१. हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८६२, एफ० ८४

५२. ख्यात भाटी—भाग २, बस्ता संख्या २३/१०, एफ० २८२, जागीरदारान की बन्दगी, बस्ता संख्या १६/६६

तनिक भी संदेह नहीं कि इस अलगाव के लिए आंशिक रूप से सवाईसिंह की चतुराई और षडयंत्र और आंशिक रूप से ठाकुरों की स्वार्थपरता उत्तरदायी थी, परन्तु मानसिंह के अत्यधिक हस्तक्षेप और बलपूर्वक नई लागतें वसूल करने के कारण भी उसके तथा सामन्तों के बीच खाई चौड़ी होगई।[५३]

इस झगड़े के कारण जो भयंकर संघर्ष छिड़ा उसने स्थिति को और भी अधिक विषम बना दिया; और जागीरदार शासक द्वारा सरदारों के अधिकारों को कम करके अपनी स्थिति को दृढ़ करने के सभी प्रयत्नों के प्रति सतर्क और सजग होगए। परन्तु आपस की इस रस्साकशी ने उस समय और भी भयंकर रूप धारण कर लिया जब भीमनाथ और लक्ष्मीनाथ ने उसको उन सरदारों की जागीरें छीन लेने के लिए उकसाया जिनके सम्बन्ध में उसको संदेह था कि वे धौंकलसिंह के साथ हैं। इसका अन्ततः परिणाम यह हुआ कि सतत संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गई और सम्पूर्ण मारवाड़ की शान्ति भंग होगई तथा जागीरदारों के विद्रोहों ने जो कुछ थोड़ा अधिकार या सत्ता महाराजा के पास थी उसको भी व्यर्थ कर दिया। राज्य की सेनाओं ने पहले जागीरदारों के गढ़ों तथा उनके छिपने के स्थानों की घेराबन्दी की जिससे बहुत अधिक दबाए जाने पर वे विद्रोही होगए। बड़ी संख्या में जागीरों के छीन लेने के परिणाम स्वरूप जागीरदार मानसिंह के विरुद्ध षडयन्त्र करने को विवश होगए। वे अंग्रेजों से हस्तक्षेप करवाने के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारियों से मिले, जिन्होंने अन्त में मारवाड़ के विरुद्ध चढ़ाई की। अन्त में छीनी हुई जागीरों को वापस करने हेतु अंग्रेजों द्वारा किए गए बार-बार आग्रह के कारण जागीरों के छीन लेने की नीति पर रोक लगी और अपनी इच्छा के विरुद्ध मानसिंह को जागीरदारों से समझौता करना पड़ा।[५४]

परन्तु इतनी बड़ी संख्या में जागीरों को वापस कर देने के कारण पुनः एक संकटपूर्ण स्थिति उत्पन्न होगई जिसका समाधान करना अंग्रेजों के लिए भी कठिन होगया। वास्तव में, पुराने जागीरदारों में शक्ति संतुलन का समाधान करने के लिए मानसिंह ने एक नया जागीरदार वर्ग उत्पन्न कर दिया था। जो भूमि (जागीर) अस्थायी रूप से पुराने जागीरदार से छीन ली गई थी वह दूसरे को दे दी गई थी। अन्त में, जब उन नए जागीरदारों को उसे छोड़ने पर विवश किया गया तब वे शोर मचाने लगे। जब सदरलैंड ने पुराने जागीरदारों के पुनर्स्थापन की अनिवार्य आवश्यकता पर बहुत

---

५३. सुल्तानसिंह ऊदावत की मानसिंह को अर्जी, वि० सं० १८७८ मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की चौथ। अर्जी बही, संख्या ३

५४. अनुबन्ध संख्या ७, ब्रिटिश और मानसिंह के मध्य (१८३९) ऐटचिसन में उद्धृत उल्लिखित भाग ३, पृष्ठ १३५–३७

बल दिया तब मानसिंह ने नए जागीरदारों से भूमि छीनने के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं को उसके समक्ष प्रस्तुत किया। उन जागीरदारों के पुनर्स्थापित होने के उपरान्त भी जिनका अंग्रेज समर्थन कर रहे थे, नए ठाकुर जिनकी जागीरों को ले लिया गया था, राज्य के विरुद्ध आन्दोलन करते रहे।[५५]

मुत्सद्दी :

मुत्सद्दी, जिनका मुखिया दीवान होता था, प्रशासन की धुरी थे। वे प्रशासनिक कार्य में दक्ष और दरबार की राजनीति में अत्यन्त निपुण थे। वे नागरिक तथा सैनिक मामलों में विस्तृत और अत्यधिक अधिकारों का उपयोग करते थे। उनका पद वंश परम्परागत नहीं था जैसा कि अन्य कुछ राज्यों में होता था और एकमात्र शासक ही उनको नियुक्त करने वाला अधिकारी था। वह ऐसे लोगों की नियुक्ति करता था जो स्पंज की भाँति लोगों के धन को सोख कर उसके खज़ाने में निचोड़ सकते थे। उसे इस बात की चिन्ता नहीं थी कि वे किस प्रकार के साधनों का उपयोग करते हैं। साधारणतया जो इन पदों के अभ्यर्थी होते थे वे अपने पद की प्राप्ति के लिए दरबार को एक बहुत बड़ी रकम भेंट करते थे।[५६]

मानसिंह के राजत्वकाल में जोधपुर के मुत्सद्दी परस्पर विरोधी दलों में बँटे हुए थे। वे अपनी नियुक्ति के लिए कठिन संघर्ष और षडयन्त्र करते थे। राज्य में दो विरोधी गुट थे। उनकी परस्पर प्रतिस्पर्द्धा और विद्वेष भावना ने समस्त प्रशासन को कुप्रभावित कर दिया था।

मेहता अखयचंद और मेहता ज्ञानमल ने जालौर की घेराबन्दी के समय मानसिंह के पक्ष का समर्थन किया था। परन्तु परिस्थितियों की दुरभिसंधि के कारण सिंहासनारूढ़ होने पर उसको (मानसिंह को) ५ नवम्बर १८०३ के दिन सवाईसिंह को प्रधान, भंडारी गंगाराम को दीवान, और सिंघवी इन्द्रराज को मुसाहिब नियुक्त करना पड़ा। जालौर और सोजत दो सबसे महत्त्वपूर्ण परगनों की हाकिमी सिंघवी कुशलराज और सुखराज को दी गई। ये सभी उच्च अधिकारी उस गुट के थे जो उस गुट का घोर शत्रु था जिसके नेता अखयचन्द और ज्ञानमल थे।[५७] यद्यपि सवाईसिंह को छोड़कर अन्य सभी अधिकारी मानसिंह के प्रति स्वामिभक्त रहे, उन्होंने शासनतंत्र का पुनर्संगठन किया, विद्रोहों को दबाया और पूर्ण अव्यवस्था से व्यवस्था

---

५५. केप्टेन लडलो गवर्नर जनरल के असिस्टेंट का मेमोरेंडम, संख्या ५, ८ मई १८३९, कान्स जुलाई २४, १८३९ संख्या ३८, एफ० पी०

५६. आई० ओ० आर फाइल संख्या ५०६ ए, और ६२६–४१; १७८१ और १८३० के बीच अनेक संधियाँ हुई।

५७. ख्यात मुत्सद्दियान (दयालदास की डायरी), एफ ८२

की स्थापना की तथापि अखयचन्द उसका विरोधी बना रहा। सिंघवी गुलराज और भंडारी गंगाराम १८०४ में सिरोही की ओर गए। वहाँ की स्थिति पर उन्होंने नियंत्रण किया और प्रशासन में सुधार किया। भंडारी ज्ञानमल और भंडारी बख्तावरमल ने घानेराव पर अधिकार कर लिया, वहाँ शान्ति स्थापित की और वहाँ फैली हुई अराजकता को दबाने के लिए प्रभावकारी कदम उठाए। उन्होंने मुरदावा में शान्तिभंग को ठीक किया, थाने स्थापित किए, और प्रशासन की शक्ति में वृद्धि की।[५८]

परन्तु ये समस्त उपलब्धियाँ मेहता अखयचन्द और मेहता ज्ञानमल के षडयंत्रों को व्यर्थ नहीं कर सकीं। अन्ततः वे मानसिंह के कानों में जहर उगलने में सफल हो गए और उन्होंने १८०६ में मानसिंह को सिंघवी इन्द्रराज, भंडारी गंगाराम, गुलराज, भंडारी बख्तावरमल इत्यादि को कैद कर लेने हेतु राजी कर लिया। प्रतिस्पर्द्धी गुटों में परस्पर इतनी भयंकर घृणा थी कि मेहता अखयचन्द ने तो यहाँ तक सुझाव दिया कि उनको मरवा दिया जाय। यद्यपि उनको मरवाने की आज्ञा भी निकाली जा चुकी थी तथापि मानसिंह ने अहोर ठाकुर के कहने पर उस आज्ञा को वापस ले लिया। अहोर ठाकुर ने मानसिंह को परामर्श दिया कि उसे उन लोगों के प्रति अकृतज्ञ नहीं होना चाहिए जिन्होंने उसे गद्दी पर बिठाया है।[५९]

मेहता अखयचन्द के नेतृत्व में उसका गुट सत्तारूढ़ हुआ, परन्तु वह १८०७ में जोधपुर के घेरे से उत्पन्न हुई स्थिति को सम्हालने में असफल रहा और मानसिंह ने उसके प्रतिद्वन्द्वियों को उच्च पदों पर नियुक्त करना आरम्भ कर दिया।[६०] जब मेहता अखयचन्द के सारे षडयन्त्र इन्द्रराज के गुट को अधिकारच्युत करने में असफल हो गए तब वह अमीर खाँ के पास पहुँचा और उसने उसे अपना समर्थन करने के लिए लालच दिया तथा १० अक्टूबर १८१५ को उसके द्वारा इन्द्रराज और आयसदेवनाथ को मरवा दिया। वह प्रसन्नतापूर्वक उसकी कीमत चुकाने के लिए तैयार हो गया। उसने नौ लाख रुपये की बकाया को चुका दिया और सम्पूर्ण प्रशासन को अपने हाथ में ले लिया।[६१] यह द्वेष और शत्रुता की भावना केवल मुत्सद्दियों के प्रतिस्पर्द्धी समूहों तक ही सीमित नहीं रही वरन् राज्य के सम्पूर्ण राजनीतिक तंत्र में गहरी जम गई। अपने प्रतिद्वन्द्वियों को दबाने के मोह में अखयचन्द ने उन सभी जागीरदारों की सहायता प्राप्त की जो सिंघवी इन्द्रराज के विरोधी थे। इन्द्रराज की

५८. आयसदेवनाथ का मानसिंह को पत्र, वि० सं० १८६३ फाल्गुन कृष्ण पक्ष
५९. जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग ४, एफ ३१
६०. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ ८१
६१. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ८६

१८१५ में हत्या के उपरान्त जो प्रतिस्पर्द्धी गुट सत्तारूढ हुआ उसमें अखयचन्द, चतुर्भुज और आउवा, नीमाज, असोप, चन्द्रावल तथा कन्तालिया के ठाकुर थे।[६२] सिंघवी गुलराज ने १७ जनवरी १८१६ को तत्परता से जो सैनिक कार्यवाही की वह अवश्य ही मानसिंह की सहमति से की गई थी। उसके परिणाम स्वरूप उस गुट का अल्पकालीन प्रभुत्व समाप्त हो गया।[६३]

अखयचन्द के कूटनीतिक शस्त्रागार में अगणित अन्य शस्त्र भी थे। अतः वह इस विनाशकारी पराजय के उपरान्त भी चुप नहीं बैठा। उसने मेहता उत्तमचन्द, जो कि महामंदिर का कामदार रह चुका था, की सेवाओं का उपयोग करके भीमनाथ को अपने पक्ष में कर लिया। उसने छतरसिंह और उसकी माता को भी अपने पक्ष में कर लिया। मानसिंह को अपनी कृत्रिम विक्षिप्तता के काल में छतरसिंह को प्रतिशासक (रिजेंट) नियुक्त करने के लिए तैयार कर लिया गया। इसके परिणाम स्वरूप १८१७ में गुलराज की हत्या हुई और १९ अप्रेल १८१७ को छतरसिंह की प्रतिशासक (रिजेंट) के रूप में, सालमसिंह की प्रधान के रूप में, अखयचन्द की मुख्तार, लक्ष्मीचन्द (अखयचन्द का पुत्र) की दीवान और भंडारी अगरचन्द की बख्शी के पद पर नियुक्ति हुई। इस गुट के सदस्यों ने अपनी विजय का समारोह सिंघवी चैनकरण को एक तोप से बंधवाकर और उसको तोप से उड़वाकर मनाया।[६४] यह गुट १८२० तक सत्तारूढ रहा।

प्रधान :

राज्य का प्रशासनिक कार्य सामान्यतः विभिन्न विभागों में बँटा हुआ था जो कि वंश परम्परागत अधिकारियों के अधीन थे। अधिकारी वर्ग के लगभग सभी सदस्य एक वर्ग विशेष के परिवारों से होते थे, परन्तु राजपूत जाति से विरले ही होते थे। मानसिंह के राजत्वकाल में राज्य का सर्वोच्च पद पैतृक रूप से पोकरण के ठाकुर का होता था जिसे 'प्रधान' कहते थे, और उसके उपरान्त आउवा का पद होता था।[६५] परन्तु यह पद बहुत करके अवैतनिक होता था और वास्तविक अधिकार उन व्यक्तियों के हाथ में रहता था जो महाराजा के कृपापात्र होते थे।[६६]

---

६२. वही, एफ ९१, हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८७३, एफ ४८
६३. हकीकत बही बीकानेर (वि० सं० १८७३), एफ ७८-८२
६४. कैवेन्डिश का कोलब्रुक को पत्र, २७ जून १८२८, कान्स २० जुलाई १८२८, एफ पी। हकीकत बही बीकानेर, वि० सं० १८७४, एफ २२
६५. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८५६-६०), संख्या ८, एफ ४३७-४५३
६६. सदरलैण्ड का मैडाक को पत्र, २६ दिसम्बर १८३९, कान्स १२ फरवरी १८४०, संख्या ७, एफ पी

दीवान :

मारवाड़ के प्रशासनिक तंत्र का मुखिया 'दीवान' होता था जो कि नागरिक प्रशासन के सर्वोच्च अधिकारी का काम करता था। वह परगनों के हाकिमों के कार्यों का पर्यवेक्षण करता था और राज्य का सर्वोच्च राजस्व अधिकारी होने के नाते 'हुजूर दफ्तर' का प्रशासन चलाता था। वह आन्तरिक प्रशासन की देखभाल रखता था और अनेक प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करता था जिनमें से अधिकांश राजस्व वसूल करने से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित होते थे। दीवान को शासक की दूसरी देह अर्थात् दूसरा शरीर माना जाता था। उसकी नियुक्ति के समय उसे महाराजा को एक अशर्फी और पाँच रुपये नजर (भेंट) में देने पड़ते थे और पाँच रुपये न्यौछावर करने पड़ते थे, तथा राजा उसको एक गुलाबी अथवा केसरी रंग का दुपट्टा भेंट करता था जो 'दुपट्टा दीवान जी' कहलाता था।[६७] जब कभी दीवान को हटाया जाता था, उसकी मुहर ले ली जाती थी और एक नई मुहर जिसे 'खालसा मुहर' कहते थे, तब तक काम में लाई जाती थी जब तक नए दीवान की नियुक्ति हो कर उसे अपनी मुहर रखने की आज्ञा नहीं दी जाती थी।[६८] उसको अपने कार्य में सहायता पहुँचाने के लिए दो नायब दीवान होते थे। उनमें से एक खज़ाने की देखभाल करता था और दूसरा हुजूर-दफ्तर को सम्हालता था जो कि किले के फतहपोल में स्थित था।[६९]

वित्त विभाग का भी प्रमुख होने के कारण दीवान दो नायबों की सहायता से राजस्व की वसूली के कार्य का पर्यवेक्षण करता था और राज्य के सम्पूर्ण व्यय को नियन्त्रित करता था। वही मालगुजारी की वसूली के सम्बन्ध में नियम तथा कायदे बनाता था और प्रत्येक आय के अन्य स्रोतों की दर निर्धारित करता था, जिनसे राज्य के खज़ाने को आय प्राप्त होती थी। सरकारी खज़ाने से विभिन्न प्रकार की रकमों के चुकारों और भुगतानों की वह जाँच करता था, और उन पर नियंत्रण करता था। लगभग सभी राजकीय अभिलेख उसके कार्यालय में उसके निरीक्षण

---

६७. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ३१० हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८८१–९०), संख्या ११, एफ २०७–२९२

६८. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ९१, १०७, ११९, ३०२; हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८८१–९०) सं० ११, एफ २१५, २१६

६९. अर्जी फाइल संख्या ५ (ढोलिया का कोठार), जोधपुर रेकार्ड, पृ० २७९, मुदियार ख्यात, एफ २२, २३, ११५, बस्ता संख्या ४०, मारवाड़ की प्रशासनिक रिपोर्ट (१८८३–८४), पृष्ठ २७९

और उसके नियंत्रण में हिफाजत से रखे जाने के लिए भेजे जाते थे। एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कर्तव्य जो दीवान को करना पड़ता था, सभी महत्त्वपूर्ण लेन-देन तथा भुगतान के संक्षिप्त लेखे की जाँच से संबंधित था।[७०] वह जागीरदारों से उनकी जानशीनी के समय उन्हें जो नज़राना देना पड़ता था वह वसूल करता था, सरकारी ऋणों को वसूल करता था और सरकारी दूकानों की व्यवस्था करता था।

दीवान ही परगनों में हाकिम नियुक्त करने के लिए उपयुक्त व्यक्तियों के नामों की सिफारिश करता था और उनके मार्गदर्शन के लिए उन्हें विस्तृत निर्देश देता था। वस्तु स्थिति यह थी कि नए दीवान की नियुक्ति होने पर अधिकांश हाकिमों के स्थान पर उसकी इच्छा के व्यक्तियों को रख दिया जाता था। जब १८१६ में सिंघवी फतहराज दीवान नियुक्त हुआ तब जालौर, पाली, परबतसर, मारौठ, नागौर, गोडवाड़, फलौदी, डीडवाना, नावा और पचभद्रा के हाकिमों के स्थान पर उसके आदमी नियुक्त किए गए।[७१] भूमि के अभिहस्तांकन तथा भूमि की बख्शीश सहित राजस्व संबंधी सभी महत्त्वपूर्ण लेनदेन तभी वैध माने जाते थे जब उसकी उन पर मुहर लग जाती थी। उसको स्वेच्छा से निर्णय करने के बहुत विस्तृत अधिकार प्राप्त थे। उसके नायबों को उनके काम में दूसरे अनेक अधिकारी सहायता करते थे जिन्हें 'दारोगा' कहते थे। विभिन्न कारखानों का हिसाब 'दारोगा कारखाने जात' के अधीन रहता था। खज़ाना 'मुशरफ' के अधीन कार्य करता था। 'सिकदार' जो राजधानी में नियुक्त होता था, जोधपुर नगर के पट्टों का काम देखता था। इन सभी दारोगों को आवश्यक कर्मचारी अर्थात् पोतेदार, रोकड़िया, अहलमद, मुन्शी, सवार और प्यादे दिए जाते थे। दीवान को एक हजार रुपये मासिक वेतन दिया जाता था और उसे जागीरदारों से एक हजार रुपये के पट्टे पर दो रुपये की दर से और हुक्मनामा के रूप में दिए गए एक हजार रुपये पर ३ रुपये की दर से दस्तूर लेने की आज्ञा थी।[७२]

मानसिंह का प्रथम मुसाहिब सिंघवी इन्द्रराज था, जिसके दीवान से भी अधिक

---

७०. हथबही, संख्या १, एफ १ जमाखर्च की फाइल संख्या ४३, ढोलिया का कोठार; आकरलोनी का ऐडम्स को पत्र, ७ जनवरी १८१६, कान्स ३० जनवरी १८१६, संख्या ५८, एफ

७१. जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग ६, एफ ६७–६८

७२. जोधपुर वकील द्वारा लडलो को २१ अक्टूबर १८४२ को दिया गया मेमोरंडम जिसे 'दस्तूर अमल राज मारवाड़' कहते थे, एफ ७, बस्ता संख्या ८४

अधिकार थे।[७३] १८२२ में एक के स्थान पर चार मुसाहिब होते थे। भाटी गजसिंह, छंगानी कचरदास, ढंढ़ाल गोवर्धन और नाजर इमरतराम की मुसाहिबों के रूप में नियुक्तियाँ की गई थीं। उसके राजत्वकाल के अन्तिम भाग में अधिकतर मुसाहिब नाथ गुरुओं की सिफारिश पर नियुक्त किए जाते थे जो कि सदैव उनके कामदार होते थे।[७४]

कभी-कभी मुसाहिब दीवान से भी अधिक अधिकारों का उपयोग करते थे। इसका कारण यह था कि शासक तथा दीवान में खाई निरन्तर बढ़ती जा रही थी। कालान्तर में दीवान का महत्त्व कम हो गया और मुसाहिब शासक के अधिक निकट होने के कारण अधिक महत्त्वपूर्ण हो गये। स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि शम्भूदत्त के हटाए जाने के उपरान्त नाथों द्वारा नियुक्त किए गए मुसाहिबों ने दीवान के सब अधिकारों को हथिया लिया और उसके अधिकारों को कम करके उसको महालेखापाल की स्थिति में पहुँचा दिया।[७५]

फौजबख्शी :

दीवान के बाद फौजबख्शी का पद था। वह एक रजिस्टर रखता था जिसमें सैनिक कर्मचारियों के नाम, पद और वेतन दर्ज किया जाता था। सैनिक विभाग का प्रमुख अधिकारी होने के कारण वह महाराजा के दरबार में उपस्थित होता था। वह उसकी दाहिनी ओर खड़ा होता था और राजकीय महल पर रक्षकों की नियुक्ति की आवश्यक व्यवस्था करता था। विभिन्न परगनों, किलों और समीपवर्ती राज्यों में खबरनवीसों और गुप्तचरों को नियुक्त करना उसका एक बहुत बड़ा कर्तव्य था। यद्यपि महाराजा मानसिंह के फौजबख्शियों का दर्जा प्रधान सेनापति के समान नहीं था तथापि किसी-किसी अवसर पर, विशेषकर जागीरदारों के संबंध में, वे दीवान से भी अधिक अधिकारों का उपयोग करते थे। सिंघवी इन्द्रराज, फौजराज, गुलराज इत्यादि जो कि फौजबख्शी थे और एक विशेष परिवार के सदस्य थे, बहुत अधिक शक्ति और अधिकारों का उपयोग करते थे।[७६]

फौजबख्शी को बहुत बड़ा दफ्तर रखना पड़ता था। उसके दो नायब होते थे, एक बख्शी जागीर और दूसरा बख्शी किलाजात। पहला बख्शी सैनिकों की उपस्थिति

---

७३. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८५६–६०), संख्या ८, एफ ४३७ तवारीख मानसिंह, एफ ६

७४. जोधपुर राज्य की ख्यात–भाग ४, एफ ६७–६८

७५. सदरलैण्ड का मेडाक को पत्र, १८३६ जोधपुर की बाबत रिपोर्ट।

७६. सुख सम्पतराय भंडारी : औसवाल जाति का इतिहास, पृष्ठ १३२, पेपर संख्या ७, मारवाड़ की बाबत, १४ अक्टूबर १८३०, संख्या ३–८, एफ

की देखभाल करता था और रक्षकों की नियुक्ति करता था और दूसरा किलों का अधिकारी था। मारवाड़ के जागीरदारों को संकटकाल में जो सैनिक राज्य को देने पड़ते थे उनके अतिरिक्त मानसिंह की स्वयं की अपनी एक स्थायी सेना थी। उसमें २२ हजार वेतनभोगी सैनिक थे। उनमें से अधिकांश रुहेला, अफगान, सिंधी और पुरबिया थे। वे अपने साथ स्वयं अपनी तोड़े वाली पुराने ढंग की बन्दूकें रखते थे।[७७] वहाँ साधुओं की भी एक सेना थी जिसमें मुख्यतः साधु, स्वामी और नाथ भर्ती होते थे।[७८]

अंग्रेजों के आने के उपरान्त राज्य की सेना को बहुत घटा दिया गया। उसका स्थान 'जोधपुर लिजन' ने ले लिया, जिसके व्यय के लिए जोधपुर सरकार १,१५,००० रु० वार्षिक देती थी। जब १८३४ में अंग्रेजों ने मानसिंह को धमकी दी और उसके विरुद्ध सैनिक तैयारियाँ आरम्भ की तब उसने भी सैनिकों को भर्ती करने के कार्य को बढ़ावा दिया और सिंधियों के अतिरिक्त बड़ी संख्या में पुरबियों को भी नौकर रक्खा।[७९]

मीर मुन्शी :

प्रशासनिक उच्चोच्च परम्परा में मीर मुन्शी का स्थान तीसरा था। उसका मुख्य कार्य उस विभाग का संचालन करना था जो पड़ोसी राजाओं, ब्रिटिश राजनीतिज्ञों और राज्य के भीतर तथा बाहर की एजेंसियों से कूटनीतिक पत्र-व्यवहार की देखभाल करता था। उसके इस कार्य में ढ़ोलिया के कोठार का दारोगा तथा दारोगा दफ्तरी सहायता करते थे। पड़ोसी राज्यों के दरबारों में जो अधिकारी नियुक्त किए जाते थे वे उसकी देखरेख में काम करते थे। मानसिंह के राजत्वकाल में मीर मुन्शी का कार्य दो स्वतंत्र खंडों या विभागों में बाँट दिया गया था और केवल फारसी का कूटनीतिक पत्र-व्यवहार ही उसके अधीन रह गया था। शेष कार्य की देखभाल उसका वकील करता था, जिसका मुख्य कार्य ब्रिटिश एजेंटों के समक्ष महाराजा का

---

७७. ज्ञानमल का निर्भयराम को पत्र, वि० सं० १८४२ फाल्गुन शुक्ल पक्ष की चतुर्थी, अर्जी बही–संख्या ४, एफ २७४

७८. विल्सन : भाग ८, पृष्ठ ३१४, ऐचिसन उल्लिखित भाग ८, पृष्ठ १३५, फुटकर बही, वि० सं० १८६३, एफ ३२; टॉड : आपसिट-भाग २, पृष्ठ १६५–६६

७९. जोधपुर के अखबार नवीस की अर्जी, ७ मई १८३८, हयबही संख्या ४, एफ २२९

प्रतिनिधित्व करना था।[८०] नवाजिसअली खाँ मीर मुन्शी के पद पर था और व्यास फतेहराम, अनूपराम, सवाईराम और असोप बिशनराम तत्संबंधी विभिन्न ब्रिटिश राजनीतिज्ञों के साथ थे और वकील का कर्तव्य निबाहते थे। मानसिंह के राजत्वकाल के अन्तिम भाग में राव रिधमल वकील की हैसियत से मीर मुन्शी से भी अधिक सत्तावान हो गया था। उसे अपने पद से हटा देने के लिए मानसिंह को प्रेरित करने में नाथ गुरुओं के आदेश भी असफल रहे।[८१]

प्याद बख्शी :

प्याद बख्शी का एक पृथक् पद था जो कि सर्व प्रथम बखतसिंह के राजत्वकाल में निर्मित किया गया था। जहाँ सैनिकों के वेतन बाँटने का कार्य फौज बख्शी करता था वहाँ नागरिक अधिकारियों जैसे, अहलकारों, मुत्सद्दियों, कारबारियों, पावितोसंदास आदि के वेतन बाँटने का उतरदायित्व प्याद बख्शी का था।[८२]

अन्य अधिकारी :

ऊपर वर्णित पदों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के अन्य अधिकारी थे जो कि या तो उपर्युक्त लिखे अधिकारियों के सामान्य पर्यवेक्षण में अथवा स्वतंत्र रूप से विभिन्न प्रकार के कार्य संपादित करते थे। एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अधिकारी वर्ग, जिसकी सच्चाई और ईमानदारी पर राज्य की प्रतिरक्षा निर्भर थी, किलेदारों का था। वे किलों की सुरक्षा के लिए उत्तरदायी होते थे। अत्यन्त विश्वसनीय व्यक्ति ही केवल किलेदार नियुक्त किए जाते थे।[८३]

मानसिंह अपने सभी किलेदारों से बहुत ऊँचे दर्जे की विश्वस्तता तथा सच्चाई की अपेक्षा रखता था। जब वह गिंगोली के युद्ध में सम्मिलित होने के लिए गया तब उसने किले का भार अपने सबसे अधिक विश्वस्त अधिकारी ठाकुर अनारसिंह को

---

८०. कर्नल शेक्सपियर के १२ अप्रेल १८५४ के संशोधन के बारे में राजपूताना ऐजेंसी फाइल-संख्या ३४; मारवाड़ की प्रशासनिक रिपोर्ट (१८८३–८४) पृ० ७७२ के अनुसार मीर मुन्शी का पद या स्थान सर्व प्रथम मालदेव के समय में निर्मित किया गया और मुग़ल साम्राज्य की समाप्ति तक उसका बहुत प्रभाव रहा।

८१. लडलो का मानसिंह को खरीता, वि० सं० १८९७ आषाढ शुक्ल पक्ष की दसवीं (९ जुलाई १८४०); खरीता बही-संख्या १३ एफ ४२३

८२. मुदियार ख्यात, बस्ता २० एफ १०

८३. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ ४१–४४ बयाय बही, वि० सं० १७७६ मुदियार ख्यात, बस्ता संख्या २० एफ १०

सौंपा ।[८४] उसके कुछ किलेदारों ने अपने दायित्व अथवा कार्यभार के प्रति अभूतपूर्व निष्ठा प्रदर्शित की थी । नथमल देवराजोत ने अनेक अवसरों पर प्रशंसनीय सेवा की थी ।[८५] भीमजी आसामी ने उस दशा में भी जबकि महाराजा ने किले को अंग्रेजों के सुपुर्द करना स्वीकार कर लिया था, किले को छोड़ देना अस्वीकार कर दिया और बिना युद्ध किए उसे (किले को) अंग्रेजों के अधिकार में जाने देना अनुचित समझा । उसे अनेक प्रकार के प्रलोभन दिए गए परन्तु वह अडिग रहा । उसने लडलो पर आक्रमण करने में संकोच नहीं किया और अपने प्राणों की आहुति दे दी ।[८६] तनिक भी संदेह होने पर मानसिंह ने अपने किलों के कतिपय अत्यन्त प्रभावशाली किलेदारों को मरवा दिया । नागजी किलेदार को केवल इस संदेह पर मरवा दिया गया कि वह अखयचन्द से मिला हुआ था । उसके द्वारा स्वामिभक्ति की दृढ़तापूर्वक शपथ खाने पर भी उसके जीवन की रक्षा नहीं हो सकी ।[८७]

ड्योढ़ीदार :

ड्योढ़ीदार भी किलेदारों के समान ही महत्त्वपूर्ण होते थे । वे महल की चौकसी करते थे और आगन्तुकों को महाराजा से मिलाते थे ।[८८] पुरोहित का कार्य भी कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं था । वह केवल राज्य के धार्मिक उत्सवों और समारोहों की ही देखभाल नहीं करता था, वरन् उसे बहुधा राज्य के महत्त्वपूर्ण संदेशों को लेकर पड़ोसी राज्यों में जाना पड़ता था ।[८९] जो लोग शासक के व्यक्तित्व से सम्बद्ध थे तथा 'धाभाई खास पासवान',[९०] और 'खानसामा'[९१] कहलाते थे और जिनके पास महाराजा के घरेलू कार्यों का दायित्व था, वे भी जिम्मेदार अधिकारी समझे जाते थे । इनसे अधिक प्रभावशाली और सम्मानित अधिकारी कोतवाल था जो कि जनता

८४. टॉड का मैटकाफ को पत्र, ७ जुलाई १८२०, अगस्त १८२०, कान्स अगस्त १८२०, संख्या १०, एफ पी ।

८५. वही ।

८६. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६१–१९००), संख्या १२, एफ २६३ तवारीख मानसिंह, एफ ३१४

८७. तवारीख मानसिंह, एफ २४८

८८. बयाय बही, वि० सं० १७७६

८९. मानसिंह का गोमाजी सिंधिया को खरीता, वि० सं० १८६८ आषाढ़ कृष्ण पक्ष की तेरहवीं । अर्जी बही-संख्या ५, एफ ५४, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ ११७

९०. हथ बही-संख्या ४, एफ २२५–२२६

९१. हथ बही, वि० सं० १७७६, मुदियार की ख्यात-बस्ता संख्या ४०, एफ १६१७,

के जान-माल की रक्षा के लिए जिम्मेदार था, नगर की चौकसी और पहरे का सारा प्रबंध करता था और नगर की चाबियाँ अपने पास रखता था।[९२] मानसिंह की अपने कोतवालों के बारे में बहुत ऊँची राय थी। सिंघवी बहादुरमल ने १८०६–७ में नगर की रक्षा करते हुए अपने प्राणों की आहुति दी और उसके उतराधिकारी गोपालदास ने भी १८०७ में जोधपुर के घेरे के समय सिंघवी बहादुरमल के समान ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया और उसकी नीति-चातुर्य से नगर लुटने से बच गया। उसका अपना कार्यालय कोतवाली के चबूतरे पर था, वह सड़कों पर रात्रि को गश्त लगवाता था, अपराधियों को दण्ड देता था, कानून और व्यवस्था का संचालन करता था और गुप्त रूप से किले में खाद्य सामग्री पहुँचाता था।[९३] इनके अतिरिक्त बहुत बड़ी संख्या में अहलकार, मुत्सद्दी, कारभारी और नवीसनदास होते थे जो कि अन्य दूसरे दफ्तरों से सम्बद्ध थे।[९४]

जोशी शम्भुदत्त द्वारा प्रशासन के पुनर्गठन का प्रयत्न :—

प्रशासन के ढंग में सुधार करने के विचार से जोशी शम्भुदत्त ने अनेक विभागों के पुनः अनुस्थापन का प्रयत्न किया। प्रत्येक विभाग निश्चित महत्त्वपूर्ण कार्य संपादित करता था। पहले केवल फतहपोल में एक ही दफ्तर था जहाँ अहलकार और दीवान के नवीसनदास, मीरमुन्शी इत्यादि बैठा करते थे और कार्य करते थे। अपने विरुद्ध किए गए अनेक षडयन्त्रों के कारण मानसिंह अपने अधिकारियों की परस्पर प्रतिद्वन्द्विता तथा दुरभिसंधि के प्रति सशंक था। अतः उसने १८२३ में शम्भुदत्त से दफ्तर को दो विभागों में विभक्त करके नियंत्रण और संतुलन की पद्धति का समावेश करने को कहा। उनमें से एक को 'हजूरी दफ्तर' कहते थे और दूसरे को 'दस्तरी'। पहला दफ्तर दीवान की प्रत्यक्ष और सीधी अधीनता में था, जबकि दूसरा एक प्रकार से मध्यस्थ विभाग था, जो कि शासक तथा विभिन्न पदाधिकारियों के मध्य कार्य करता था। पहले दफ्तर के अभिलेख (रेकार्ड) फतहपोल में दीवान की हिफाजत में रहते थे जबकि दूसरे दफ्तर के अभिलेख महलों में एक पृथक् दारोगा के पास रहते थे। इसके अतिरिक्त उसने इस बात की विशेष सावधानी बरती कि उसने 'ढोलिया का कोठार' को जिसमें सभी पत्रों तथा दस्तावेजों की मूल प्रतियाँ रहती थीं, इस दफ्तर से अलग कर दिया और उसे एक ऐसे अधिकारी के अधीन रखा जो शासक (महाराजा) से सीधा सम्बद्ध था। यह युक्ति इसलिए अपनाई गई कि दस्ता-

---

९२. बयाय बही, वि० सं० १७७६; ख्यात मुमुद्दियान (दयालदास की डायरी), एफ ५८

९३. तवारीख मानसिंह, एफ ६०

९४. मारवाड़ की प्रशासनिक रिपोर्ट (१८८३–८४), पृष्ठ ७७२–७७७

वेजों तथा पत्रों की मूल प्रतियाँ सुरक्षित रहें और उसकी प्रतियाँ ही दोनों दफ्तरों में रक्खी जाएँ।[९५]

अब 'ढ़ोलिया का कोठार' अभिलेखों का ऐसा संग्रहालय बन गया, जहाँ शासक को लिखे गए मूलपत्रों और उसके द्वारा भेजे गए उत्तरों की मूल प्रतियाँ रखी जाती थीं। जो पत्र, अर्जियाँ, खरीते, ज्ञापन इत्यादि शासक के पास आते थे और उनके जो उत्तर दिए जाते थे, जो राजाज्ञाएँ जारी की जाती थीं, जो नियम व उपनियम बनाए जाते थे, जो निर्देश दिए जाते थे एवं जिन अनुबन्धों पर हस्ताक्षर किए जाते थे, जो भेंट दी जाती थी और जो भेंट, उपहार तथा नज़राने महाराजा के लिए आते थे; उनसे सम्बन्धित पत्र आदि सभी की मूल प्रतियाँ अथवा उनके अभिलेख 'दस्तरी विभाग' में रखे जाते थे। इसके अतिरिक्त इस विभाग में स्थायी रूप से सुरक्षित रखने के लिए अनेक प्रकार की वे बहियाँ रक्खी जाती थीं जिनमें दस्तावेजों की प्रतियाँ होती थीं। इन बहियों का वर्गीकरण इस प्रकार था:—खरीता बहियाँ, अर्जी बहियाँ, पट्टा बहियाँ, सनद परवाना बहियाँ, ओहदा बहियाँ, हथ बहियाँ, दस्तूर बहियाँ इत्यादि। ढ़ोलिया के कोठार में उन सभी रुक्कों, खास-रुक्कों, परवानों, जपतियों, पट्टों, सनदों आदि की नकलें रखी जाती थीं जो शासक या दीवान दिया करता था। उनमें प्रतिदिन होने वाली महत्त्वपूर्ण कार्यवाहियों, समारोहों, महत्त्वपूर्ण पुरुषों के आगमन, घटनाओं, आज्ञाओं, उत्सवों, त्यौहारों या पर्वों, दरबारों इत्यादि का विवरण रखा जाता था।[९६] अब 'हज़ूरी दफ्तर' अथवा 'दफ्तर हज़ूर' का मुख्य कार्य विभिन्न विभागों से सभी वित्तीय लेनदेनों का समैकित (इकजाई) संक्षिप्त लेखा एकत्रित करना रह गया था। इस विषय से सम्बद्ध 'कारकुन' अथवा 'रिपोर्टर' राज्य के सभी परगनों में नियुक्त थे, जहाँ वे विभिन्न विभागों से विवरण और समैकित संक्षिप्त लेखा (हिसाब) एकत्रित करते थे। विभिन्न कारखानों के आय-व्यय के विवरण इस दफ्तर में आते थे। वह विभाग विभिन्न परगनों और कारखानों से आए हुए मासिक विवरण के आधार पर आय-व्यय का समैकित (इकजाई) लेखा तैयार करता था। वह जागीरदारों द्वारा 'रेख' और 'हुक्मनामा' की जमा रकम का सही हिसाब रखता था। दस्तरी बिभाग द्वारा जागीरदारों को दिए गए सभी पट्टों और सनदों की नकलें सदैव इसी विभाग में तैयार की जाती थीं और दफ्तर में सुरक्षित रखी जाती थी। इसके अतिरिक्त, यह दफ्तर इजारा सायर तथा अन्य प्रदायक

---

९५. शम्भुदत्त की मानसिंह को अर्जी, वि० सं० १८८२ भाद्रपद की दोयज, अर्जी बही, संख्या ३

९६. वि० सं० १८७६, ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष की तृतीया का पत्र, फाइल संख्या ३७, ढ़ोलिया का कोठार

विभागों की वसूली का हिसाब भी रखता था। राज्य द्वारा लिए हुए ऋण और उसके भुगतान का हिसाब भी यही विभाग रखता था।[९७]

बख्शी, मीरमुँशी और प्याद बख्शी के पृथक्-पृथक् दफ्तर नहीं होते थे। प्रथम अर्थात् बख्शी फारसी भाषा में कूटनीतिक पत्र-व्यवहार का नियंत्रण करता था और अन्य दो मुख्यत: वेतन बाँटने के कार्य में व्यस्त रहते थे।[९८]

महाराजा मानसिंह के राजत्वकाल में 'देवस्थान धरमपुरा' नामक एक पृथक् दफ्तर का प्रादुर्भाव हुआ। यद्यपि पूर्व शासकों के काल में भी एक विभाग 'षडदर्शन' नाम से था तथापि वह केवल एक परामर्शदाता विभाग था। उसका अपना कोई पृथक् कार्यालय भी नहीं था। मानसिंह ने शम्भुदत्त की प्रार्थना पर १८२३ में एक पृथक् दफ्तर स्थापित किया, जो विभिन्न धार्मिक स्थानों एवं मठों को दान की रकमों के आवंटन का कार्य करता था। मारवाड़ में एक हजार निन्यानवे मंदिर तथा धार्मिक स्थान थे। उनमें से पाँच सौ इकसठ की व्यवस्था पूर्णतया राज्य द्वारा होती थी, दो सौ साठ की व्यवस्था मुत्सद्दी करते थे और तीन सौ बत्तीस की व्यवस्था जनता करती थी। 'देवस्थान धरमपुरा' विभाग उपर्युक्त अंतिम दो प्रकार के मंदिरों को समय-समय पर वित्तीय सहायता देता था, जबकि प्रथम श्रेणी के मंदिरों का सम्पूर्ण व्यय राज्य के कोषागार से किया जाता था।[९९]

इन विभागों के अतिरिक्त, राज्य में बड़ी संख्या में कारखाने विद्यमान थे, जिनके नाम ये थे—जरगार कारखाना, जवाहरखाना, दवाखाना, तातेडखाना, खासा रसोड़ा, अबदारखाना, फर्राशखाना, जिलखाना, बागों का कोठार, कपड़ों का कोठार, सिलहखाना, गऊखाना, कबूतरखाना, शिकारखाना, तालीमखाना, नक्कारखाना, पेशेखाना और सुतारखाना। ये कारखाने दो समूहों में विभाजित किए जा सकते थे। एक समूह में वे कारखाने आते हैं जो मुख्यत: महाराजा के परिवार के लिए कार्य करते थे। दूसरे समूह में वे कारखाने आते हैं जो शासक के साथ-साथ प्रशासन की भी सेवा करते थे और जनता के कल्याण का भी कार्य करते थे।[१००] १८२३ में शम्भुदत्त ने इन अभिकर्त्ता संस्थाओं का इस प्रकार पुन: अनुस्थापन किया कि उनमें से प्रत्येक एक दरोगा के अधीन पृथक् इकाई के रूप में कार्य करने लगी। १८३१ में

---

९७. हथ बही, संख्या १ पी १ जमाखर्च की फाइल—संख्या ४३, मारवाड़ की प्रशासनिक रिपोर्ट (१८८३–८४), पृष्ठ २७६, २८५,२८७; आकरलोनी का ऐडम्स को पत्र, ७ जनवरी १८१६, कान्स ३० जनवरी १८१६, संख्या ५८, एफ० पी०

९८. जमाखर्च की फाइल—संख्या ४३, ढ़ोलिया का कोठार

९९. श्रीनाथ दर्शन (वि० सं० १८६२) महामंदिर

१००. मारवाड़ की प्रशासनिक रिपोर्ट (१८८३–८४), पृष्ठ ६०८,६०६,७७२,७७७

भीमनाथ ने अपने निजी कामदार मेहता हरखचन्द को मुंसरिम नियुक्त कर दिया, जो एक प्रकार से समस्त कारखानों का पर्यवेक्षण और नियंत्रण करता था।[101] शम्भुदत्त की प्रार्थना पर महाराजा मानसिंह ने १८३१ में एक 'किताब खाना' भी स्थापित किया जो 'पुस्तक प्रकाश' के नाम से प्रसिद्ध था।[102]

कानून और न्याय :

मारवाड़ में उस समय कोई पृथक् न्यायपालिका अथवा न्यायिक अदालत नहीं थी। लोगों को परगनों में हाकिम के पास अपने आरोपों को लेकर जाना पड़ता था और यदि उसके निर्णय से सतुष्ट नहीं होते थे तो वे दीवान के पास जा सकते थे, जो उस मामले की जाँच करता था। यदि दीवान भी ठीक न्याय नहीं दे पाता था, तो लोगों को शासक (महाराजा) से प्रार्थना करने का भी अधिकार था। परन्तु वैधानिक प्रावधानों से नियंत्रित कोई निश्चित कार्यप्रणाली प्रचलन में नहीं थी। पहली बार महाराजा मानसिंह के राजत्वकाल में हाकिमों के निर्णयों की जाँच करने के लिए एक पृथक् अदालत स्थापित की गई थी। इस अदालत में दो अन्य अधिकारी थे और एक पृथक् विभाग था जिसे खटदर्शन (षटदर्शन) कहते थे, जो चारणों और पुरोहितों के अभियोगों का निर्णय करता था। १८३९ में सूरसागर पर दो अदालतें स्थापित की गई, एक दीवानी के अभियोगों को और दूसरी फौजदारी के अभियोगों को सुनती थी। १८४३ में इन दोनों अदालतों का ड्योढ़ी में स्थान-परिवर्तन कर दिया गया और एक पृथक् 'अपील अदालत' भी महाराजा तख्तसिंह के राजत्वकाल में स्थापित करदी गई।[103]

शासक अपीलों को सुनता था। वह उनका निर्णय चार न्यायाधीशों, दीवान और बख्शी की सहायता से करता था। जिला स्तर पर न्याय-प्रशासन हाकिमों द्वारा कारकुन और इजलास नवीस की सहायता से किया जाता था। जिलों, नगरों, या जिला-कस्बों में कोतवाल न्याय-प्रशासन करता था। उसको न्याय-प्रशासन के कार्य में इजलास नवीस सहायता देता था। इन जिला-अदालतों के निर्णय के विरुद्ध अपील जोधपुर अदालत में की जा सकती थी। जो संन्यासी किसी अपराध के दोषी होते थे उनके मुकदमे के लिए पृथक् व्यवस्था थी। उनके अभियोग एक विशेष अदालत सुनती थी जिसका अध्यक्ष पुरोहित होता था। उसको इस कार्य में राजधानी में स्थित चार न्यायाधीश सहायता करते थे। नाथों के अभियोगों की सुनवाई महामंदिर

---

१०१. हथवही—संख्या ४, एफ ६३

१०२. मारवाड़ की प्रशासनिक रिपोर्ट (१८८३–८४), पृष्ठ ८०४

१०३. मारवाड़ की प्रशासनिक रिपोर्ट (१८८३–८४), पृष्ठ ६८७

के आयसजी करते थे,[१०४]

जागीरदारों को भी न्यायिक अधिकार थे परन्तु उनके निर्णय के विरुद्ध अपील जोधपुर अदालत में की जा सकती थी। किले में एक 'सलेमकोट' था जिसमें राजनीतिक कैदी रक्खे जाते थे।[१०५]

जिला प्रशासन :

महाराजा मानसिंह के राजत्वकाल में मारवाड़ तेईस परगनों में विभाजित था।[१०६] परगने का सम्पूर्ण प्रशासन हाकिम देखता था, जिसकी नियुक्ति महाराजा दीवान की सलाह से करता था। हाकिम को विभिन्न प्रकार के अनेक कार्य करने पड़ते थे, जिनके अन्तर्गत न्यायिक और सैनिक कार्य भी सम्मिलित थे।[१०७] जालौर के हाकिम भंडारी पृथ्वीराज को मानसिंह ने १८२३ में सिरोही पर चढ़ाई करने का आदेश दिया था।[१०८] इतने प्रकार के अधिकार जिस एक जिला अधिकारी में निहित कर दिए गए थे, उसके कार्यों के निर्देशन और नियंत्रण के लिए न तो कोई नियम या कानून थे और न मुख्यालय द्वारा उसका कोई प्रभावकारी पर्यवेक्षण ही होता था और तत्कालीन जो स्थिति थी उसमें वह व्यावहारिक या सम्भव भी नहीं था अतः यह स्वाभाविक था कि उस दशा में न्याय और सुशासन प्राप्त होने की सम्भावना नहीं हो सकती थी।

परगनों के लोग पूरी तरह से उस हाकिम की दया पर थे जो बिरलों को छोड़ कर अपने लाभ के लिए उनका शोषण करने से कभी नहीं चूकता था। नौकरी की कोई सुरक्षा या उसका स्थायित्व नहीं था। हाकिमों को दिया जाने वाला वेतन बहुत कम था। इसके साथ ही अतिरिक्त प्रलोभन विद्यमान थे, जो उसे अनैतिक कार्य करने के लिए लालायित करते थे।

हाकिम परगने के मुख्यालय पर रहता था। उसके कार्य नाना प्रकार के होते थे, क्योंकि वह अपने में दो प्रकार के कार्यों को समाहित करता था, न्यायिक और

१०४. लडलो की सदरलैंड को रिपोर्ट, तारीख ८ अप्रेल १८४३, रेजीडैंसी रेकार्ड, फाइल संख्या ११

१०५. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ९, एफ ८१, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८९१–१९००), संख्या १२, एफ १०, २०८, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८८१–१८९०), संख्या ११, एफ ४३५

१०६. हथबही-संख्या ४, एफ ५५–५७

१०७. सदरलैंड का लडलो को पत्र, २२ सितम्बर १८४१, कान्स ८ नवम्बर १८४१, संख्या १२२, एफ पी। बकाया बही, वि० सं० १७७६

१०८. ओझा : राजपूताने का इतिहास-भाग ४, खंड २, पृष्ठ ८४०

गैर-न्यायिक। गैर-न्यायिक पक्ष में वह कोषाध्यक्ष (खज़ाने का अधिकारी) भी था, जो अपने सामान्य कार्यों को करने के अतिरिक्त सैनिकों को वेतन देने का कार्य भी करता था। उसको मालगुजारी वसूल करने से लेकर जिला-भंडार की देखभाल करने तक के सभी कार्य करने पड़ते थे।

कुछ बड़े परगनों में हाकिम की सहायता के लिए नायब हाकिम होता था। प्रत्येक हुकूमत के दफ्तर में एक खज़ाने का पोतदार होता था और बड़े खज़ानों में उसका एक सहायक भी होता था। उसके (पोतदार के) पास निश्चित संख्या में लिपिक तथा कागज पहुँचाने वाले ऊँट-सवार होते थे, जो सभी प्रकार के प्रशासनिक तथा हुकूमत से सम्बद्ध वे विविध कार्य जो हाकिम उन्हें सौंपता था, करते थे।

पंचायतें :

मुसलमानों के आने के पूर्व मारवाड़ में 'महाजन' तथा 'पंचकुल' विद्यमान थे। वे क्रमशः नगरों और ग्रामों के स्थानीय प्रशासन की देखभाल करते थे। इन सभाओं में उच्च चरित्र और उच्च कोटि के लोग होते थे। ये स्थानीय करों और नगर-पालिका के उपकरों को वसूल करते थे, व्यापार पर नियंत्रण रखते थे, लोगों के जान-माल की रक्षा की व्यवस्था करते थे और सामाजिक तथा राजनीतिक महत्त्व के उन मामलों को तय करते थे जो समस्त समुदाय को प्रभावित करने वाले होते थे। वे सामाजिक और व्यवहार सम्बन्धी अनेक झगड़ों का पंच-निर्णय करते थे और चुपचाप तथा बिना आत्म-प्रदर्शन किए सरकार के बहुत से कार्य करते थे।[१०९]

मुसलमानों के प्रभुत्वकाल में इन आदरणीय संस्थाओं ने अपना प्रारंभिक तेज और बल बहुत कुछ खोदिया। १७५६ में जब मराठों ने अजमेर पर अधिकार किया तब से अंग्रेजों के आगमन तक राजपूताना भी भारत के सामान्य विसंगठन में उलझा रहा। इसके कारण वस्तुतः सम्पूर्ण नागरिक प्रशासन अस्तव्यस्त हो गया। अतएव ग्रामीण जनसंख्या को अपना पुनर्संगठन करना पड़ा और अपनी युगों पुरानी पंचायतों को पुनः सजीव करना पड़ा, जो उस अशान्त काल में जनसमुदाय के जीवन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य करने लगीं। ये प्राचीन सम्मानित संस्थाएँ प्रतिरक्षा की व्यवस्था, ग्रामीण जनता के जान-माल की रक्षा, व्यापार का नियंत्रण और न्याय की व्यवस्था करती थीं।[११०] ग्राम पंचायतों को अपना प्रभाव बढ़ाना पड़ा, और वे गाँव

१०९. नियम संहिता, नम्बर १८३९, राजपूताना रेकार्ड १४ ए, जोधपुर १८४१, जिल्द संख्या ७, डीडवाना से खबर, वि० सं० १८७३

११०. ल्याल एल्फ्रेड : इंट्रोडक्शन उल्लिखित, पृष्ठ ३; हैन्डले : मैडीवियल हिस्ट्री ऑफ राजपूताना, पृष्ठ ४२, बहादुरसिंह बीदावतों की ख्यात, एफ ७८; बसराव, शारदा, आरगैनीजेशन वर्किंग आफ म्युनिस्पैलटीज़ इन राजस्थान, अध्याय १ (एम एस)

स्तर पर समस्त प्रशासन की व्यवस्था करने लगीं। महाराजा मानसिंह के राजत्व काल में अधिकांश स्थानीय प्रशासन इन संस्थाओं के हाथ में था, क्योंकि हाकिमों और उनके अधीन कर्मचारियों के पास न तो इतना समय था और न इतना अवकाश ही था कि वे लोगो की शिकायतों और कठिनाइयों की ओर ध्यान देते[१११]

ग्रामीणों पर दोहरा नियंत्रण था, एक जाति का और दूसरा पंचायत का। १८२१ में कतिपय बदमाश लोगों ने मुडवा गाँव में रहने वाले विश्नोइयों के घास के ढ़ेरों में आग लगा दी और पोकरण के राजगारियों ने श्रीमालियों के खेतों में अपने पशुओं को चराया। जिन लोगों की हानि हुई वे पचों के पास पहुँचे। ग्राम-पंचों ने अपराधियों पर जुर्माना किया और उनको शारीरिक दंड भी दिया।[११२] १८२७ में जब जसवंनपुर के बवारियों न उम गाँव के गोदारसों की जलाने की लकड़ियाँ और सब्जियाँ चुराली तब पचायंत ने उनका बहिष्कार किया और उन्हें गाँव से चले जाने की आज्ञा दी।[११३] जब १८३७ में व्यास सुखला पर मंडौर की एक भंगिन से यौन-संबंध रखने का दोषारोपण किया गया तब उसकी जाति की पंचायत को उसका न्याय करने के लिए कहा गया। उसको कठोर दण्ड दिया गया। दण्डस्वरूप उसको ५१ रुपए देने पड़े और अस्थायी रूप से उसे जातिच्युत कर दिया गया।[११४] श्रीमाली रघुनाथ को जब एक नाबालिग साँसी लड़की के साथ बलात्कार करने का अपराधी पाया गया तब उसे सदा के लिए जाति से बाहर कर दिया गया और उसको फिर कभी जाति में नहीं लिया गया।[११५] पंचोली प्रयागदास १८३७ में एक सुनार की पत्नी को भगा ले गया। वह अपनी जाति में तभी लिया गया जब उसने शुद्धिकरण के लिए विधिपूर्वक प्रायश्चित्त किया, जाति की सभा के सामने खेद प्रगट किया और जाति को भोज दिया।[११६] सामान्यत: पंचायत व्यापार, नैतिकता तथा धर्म संबंधी सभी प्रश्नों को ले सकती थी। कभी-कभी वह अपनी जाति के लोगों को परम्परागत पेशों से कम प्रतिष्ठा वाले पेशों को करने की आज्ञा नहीं देती थी।[११७] १८१७ में फलौदी के मेघवालों ने अपने जाति वालों को मृत पशुओं को

---

१११. सबद परवाना बही, वि० सं० १८५८, एफ ३७२

११२. अर्जी बही संख्या २, एफ ५८

११३. जसवंतपुर से खबर, वि० सं० १८८४ फाल्गुन कृष्णपक्ष की चतुर्थी की।

११४. मंडौर से खबर (तिथि नहीं दी है) मार्गशीर्ष, वि० सं० १८९४

११५. कोतवाली चौतरा जोधपुर से वि० सं० १८८७ वैशाख कृष्ण पक्ष की चतुर्थी की खबर।

११६. कोतवाली चौतरा से वि० सं० १८९४ की खबर

११७. साही मुत्सद्दियाँ (बीकानेर), एफ २३२

उठाने की मनाही कर दी। ग्राम्य स्तर पर अन्तर्जातीय संबंध निकट के होने के कारण इन संस्थाओं (पचायतों) के लिए यह सम्भव था कि वे आर्थिक, रीति-रिवाज से संबंधित, राजनीतिक और नागरिकता संबंधी मामलों को तय करें।[११८]

शहरों और कस्बों में भी जाति-पचायतें लगभग इसी तरीके से काम करती थीं, परन्तु व्यापार और उद्योगों के लिए पेशेवर संघों की आवश्यकता पड़ती थी, जो कि पेशे के प्रति निष्ठाहीनता के मामलों में पंच-निर्णय करते थे। जोधपुर के हलवाइयों ने उन सभी हलवाइयों में से प्रत्येक पर ५१ रुपये जुर्माना किया जिन्होंने १८३५ में कंदोइयों की लाग के विरुद्ध अपनी दूकानें बन्द करना अस्वीकार कर दिया था।[११९] सभी पेशों के लोगों का जीवन इतना संगठित और अनुशासित था कि १८४१ में जोधपुर और पाली के किराना व्यापारियों ने नाथों द्वारा कुछ व्यापारियों को कैद कर लिए जाने के विरुद्ध जनक्षोभ प्रदर्शित करने के लिए सब कारोबार बन्द कर दिया और सब दूकानें और मंडियाँ भी बन्द कर दीं।[१२०] यद्यपि इन जनप्रिय संस्थाओं के पास कोई प्रशासनिक अथवा राजनीतिक अधिकार नहीं थे और न वे उनका उपयोग ही करती थीं तथापि जनता का बहुत बड़ा बहुमत अपनी शिकायतों और कठिनाइयों को दूर करवाने के लिए प्रशासन की ओर न देखकर उनकी ओर देखता था।[१२१]

मारवाड़ में कुशासन, उसके कारण और परिणाम :

ऊपर वर्णित प्रशासनिक संस्थाएँ १८३५ तक बाह्य रूप से थोड़ी-बहुत कुशलता

---

११८. वि० सं० १८७४ आश्विन कृष्ण पक्ष की पंचमी की कूँटालिया गाँव की अर्ज़ी। जालौर परगने में रहने वाले कुम्हारों की पंचायत ने दौला और महासिंह पर १०१ रुपये का गुनहगारी दंड किया, क्योंकि उन्होंने बलपूर्वक कुम्पा की पत्नी से विवाह कर लिया था। जोधपुर के कुम्हारों ने पूसिया कुम्हार पर २१ रुपये का जुर्माना किया, क्योंकि उसने शमा की पुत्री जिसकी सगाई उसके साथ हो चुकी थी, से विवाह करने से इन्कार कर दिया था (बही अदालत तनके की जमाखर्च री नावीं, वि० सं० १८८६), जोधपुर दफ्तर हजूरी, जोधपुर।

११९. कोतवाली जोधपुर से वि० सं० १८९२ फाल्गुन शुक्ल पक्ष की चतुर्थी की कैफियत।

१२०. सदरलैंड का मैडाक को पत्र, १८ जनवरी १८४३, कान्स १४ जून १८४३, संख्या ७३–८६, एफ पी; कोतवाली चौंतरा जोधपुर से खबर।

१२१. जोधपुर के सेठों और साहूकारों की अर्ज़ी, वि० सं० १८९२ कार्तिक शुक्ल पक्ष की ग्यारस।

से कार्य करती रहीं। जोधपुर की घेराबन्दी के समय अस्थायी रूप से, और छतर सिंह के अल्पकालीन प्रभुत्व के काल में पूर्ण रूप से उनका कार्य अस्तव्यस्त हो गया। उसके उपरान्त सिंघवी फतहराज और जोशी शम्भुदत्त ने प्रशासनिक कुशलता को पुनः लाने के लिए अथक प्रयत्न किया और कतिपय विभागों का पुनर्गठन किया। शम्भुदत्त को हटाने के उपरान्त प्रशासन में नाथों का प्राधान्य हो जाने के कारण प्रशासनिक तंत्र शनैः शनैः अस्तव्यस्त होने लगा और स्थिति तेजी से बिगड़ती गई। अपने राजत्वकाल के अंतिम दिनों में मानसिंह अपने मंत्रियों पर अविश्वास करने लगा था और सदैव अपने सलाहकारों की एक छोटी मंडली की ओर झुकने का प्रयत्न करता था, जिसमें अधिकतर नाथ गुरु थे। वह कभी एक को विश्वास में लेता था तो कभी दूसरे पर विश्वास करता था। यद्यपि वह (मानसिंह) उत्तम भावनाओं और इच्छाओं का व्यक्ति था तथापि उसके दुष्ट परामर्शदाताओं ने उसको दुर्बलता और असमर्थता की स्थिति में पहुँचा दिया।[१२२] नाथ गुरुओं के माध्यम से उसके पास पहुँचने वाली शिकायतों के अतिरिक्त वह अन्य शिकायतों के लिए अभिगम्य न था। अतएव प्रत्येक अधिकारी के लिए यह आवश्यक हो गया कि उसका महामंदिर में कोई मित्र हो। एक बार जो भी अधिकारी उसके कृपापात्र का विश्वास प्राप्त कर लेता था वह स्थिति का स्वामी बन जाता था। उसको नियुक्ति के समय केवल नज़राना और समय-समय पर भेंट देनी पड़ती थी जिससे कि वह उसका कृपापात्र बना रहे और अनुग्रह प्राप्त करता रहे। फिर उस दशा में अपराधों को दबा दिया जा सकता था अथवा उनको क्षमा कर दिया जा सकता था और झूठे आरोप गढ़े जा सकते थे। अपने मंत्रालय का हिसाब न देने और उसके अधिकार की अवहेलना करने पर भी वह फलफूल सकता था। वह मारवाड़ के किसी सुदूर कोने में निरापद हो कर रह सकता था और यदि वह चाहता तो अपने पद या स्थान पर न रह कर अपने किसी एजेंट (अभिकर्ता) के द्वारा उस क्षेत्र का प्रशासन कर सकता था। उसका स्थान कोई विशिष्ट संरक्षण प्राप्त व्यक्ति तभी ले सकता था जब वित्तीय अथवा राजनीतिक आधार पर परिवर्तन आवश्यक हो जाता था।[१२३]

उसका (मानसिंह का) नाथों में अंधविश्वास आलोचना का विषय बन गया और लडलो निरन्तर कहता रहा कि उन्हें जो दर्जा दिया गया है उसके वे सर्वथा अयोग्य हैं; और उनसे जितनी आशा की जाती थी उतने ऊँचे चरित्र के वे नहीं थे। कड़ी शब्दावली में लिखे गए और मानसिंह को भेजे गए लगभग सभी खरीतों का

---

१२२. ब्रिग्स की रिपोर्ट, २६ १८४१, संख्या ७७–७८, एफ पी

१२३. सदरलैंड का मैकनाटन को पत्र, १५ मार्च १८४३, कान्स ४ अप्रेल १८४४, संख्या १२, एफ पी

उसने मौन विरोध किया और पोलीटिकल एजेंट की सारी आपत्तियों और परामर्शों के होते हुए भी नाथ अपनी यथास्थिति में बने रहे। वे जितना द्रव्य पा सके उसको उन्होंने अपने पास रखने का प्रयत्न किया। उन्हें किसी भी वस्तु के लिए कोई मूल्य नहीं देना पड़ता था। महाराजा और नाथों में एक गुप्त समझौता था। उसका परिणाम यह होता था कि दीवान के इन ड्राफ्टों का भी, जो महाराजा के हस्ताक्षरों और नियमानुसार अधिकृत आज्ञा से निकाले जाते थे और जिन्हें अभागे राज्य कर्मचारी ले जाते थे, तब तक नकद भुगतान नहीं मिलता था जब तक कि वे अपने पक्ष में कोई विशेष प्रभाव न लाते अथवा खजांची से सौदा न कर लेते।[१२४] उनमें से बहुतों के पास अपनी निजी सम्पत्ति होती थी।

यद्यपि जहाँ मानसिंह ने दृढतापूर्वक बाहर से दिखते हुए समस्त अधिकार अपनी मुट्ठी में रख छोड़े थे और वह अपने मंत्रियों को अधिकार देना या उन पर विश्वास करना अस्वीकार कर देता था, वहाँ ठाकुरों का एक शक्तिशाली गुट, षडयंत्रकारी अधिकारियों का गिरोह, और अनुशासन रहित नाथों का एक बहुसंख्यक दल था। ये वर्ग पूरी तरह अनियंत्रित थे और दरबार की ओर से प्रति परिणाम के तनिक भी भयभीत हुए बिना स्वयं ज्यादतियाँ कर सकते थे अथवा दूसरों के कुकृत्यों को दृष्टि से ओझल कर सकते थे।

ऐसी स्थिति में, जो प्रदेश दुर्भिक्षों और अराजकता के कारण विघटित हो चुका था वहाँ यदि राजमार्गों पर लूटपाट और डाके बहुत पड़ने लगे हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। राजमार्ग के अजमेर से एरिनपुरा के उस टुकड़े को छोड़ कर जो गोडवाड़ हो कर जाता था, सभी राजमार्ग तथा छोटे मार्ग सम्पूर्ण प्रदेश में और विशेषकर जोधपुर के समीपवर्ती क्षेत्र में यात्रियों के लिए दिन या रात्रि में असुरक्षित थे। डाकू पकड़े जा सकें और लूटी हुई सम्पत्ति वापस मिल सके, ऐसा बहुत कम होता था। यहाँ तक कि विदेशियों की मारवाड़ में हुई डकैतियों की भी कोई सुनवाई नहीं होती थी।[१२५]

आवेदन पत्रों का पंजीकरण नहीं किया जाता था। सुदूर जिलों में रहने वाले लोग शिकायत ही नहीं करते थे, क्योंकि वे जानते थे कि उनका आवेदन पत्र व्यर्थ होगा। अनेक अभियोगों को क्षमा कर दिया जाता था अथवा दबा दिया जाता था और शेष 'कारखाना अदालत' में घिसटते रहते थे, तथा उनका कोई यथार्थ परिणाम

१२४. लडलो का सदरलैंड को पत्र, १८ अप्रेल १८४३, रेजीडेंसी जोधपुर, फाइल संख्या ९१

१२५. सदरलैंड का मैकनाटन को पत्र, २५ अप्रेल १८४३, कान्स ४ मई १८४३, संख्या १०, एफ पी

नहीं निकलता था। अदालत स्वयं एक नाटक की भाँति थी और अधिकांश मामलों में वह अपनी आज्ञा का पालन नहीं करा सकती थी, अथवा नहीं कराती थी। बहुत करके किसी डाकू का पकड़ा जाना एक अपवाद था। जालौर के समीप और साँचौर की सीमा पर जो स्थिति विद्यमान थी वह अराजकता की सीमा पर पहुँची हुई थी। दिन-प्रतिदिन स्थिति बिगड़ती जा रही थी। बरोतरा और बागसुरी की ठकुरायतें चोरों के अड्डे बन गई थीं। वे मारवाड़ व मालानी के समीपवर्ती भाग के दुश्चरित्रों और गुंडों का आश्रय-स्थल बन गई थीं।[१२६]

मुख्यत: इन कारणों को ध्यान में रख कर सदरलैंड ने १८३९ में सरदारों की एक कौंसिल, शासक को परामर्श देने और उन पाँच मुत्सद्दियों के नामों की सिफारिश करने के लिए जो दीवान, बख्शी आदि नियुक्त किए जा सकें, बनाई।[१२७] परन्तु यह काऊंसिल कुछ कर सकने में असमर्थ रही। नाथों की अधर्माचरण की कार्यवाहियों ने काऊंसिल के सदस्यों को इतना अधिक आतंकित कर दिया कि वे अपनी-अपनी जागीरों को वापस चले गए और सुखराज ने नितान्त निराश हो कर अपनी दीवानगिरी की मुहर वापस कर दी।[१२८] यह दुर्भाग्यपूर्ण अध्याय तभी समाप्त हुआ जब लडलो द्वारा नाथों की गिरफ्तारी ने मानसिंह को संसार-त्याग के कठोरतम उपाय को अपनाने हेतु विवश कर दिया और तदुपरान्त उसकी मृत्यु हो गई।

---

१२६. वही।

१२७. आचार संहिता, नवम्बर १८३९, राजपूताना एजेंसी रेकार्ड १४ ए, जोधपुर १८४१, जिल्द ७; सदरलैंड का हैमिल्टन को पत्र, ८ मार्च १८४०, राजपूताना एजेंसी सूची। जिल्द २-१-१८४० से २७-४-१८४१ तक, संख्या ५५

१२८. ओझा : राजपूताने का इतिहास, जिल्द ४, खण्ड २, पृष्ठ ८६८

७

मानसिंह के शासनकाल में मारवाड़ की वित्तीय स्थिति

महाराजा मानसिंह के शासनकाल में खालसा की साधारण आय सत्रह लाख से उन्नीस लाख रुपए वार्षिक के बीच थी। १८२१ में वह आय १६,२३,४१६ रु० और १८३८ में १६,२५,६०० रु० वार्षिक थी। आय की मुख्य मदें जिनके अन्तर्गत वह प्राप्त हुई, नीचे दी गई सारणी में सूचित कर दी गई हैं। उनके साथ ही प्रत्येक शीर्षक के अन्तर्गत जो आय क्रमशः १८२१ और १८३८ दोनों वर्षों में प्राप्त हुई वह

सारणी १

मारवाड़ की विभिन्न मदों में १८२१ और १८३८ में राजकोषीय आय

क्रम संख्या	आय के स्रोत या प्राप्ति की मद	१८२१ में आय	१८३८ में आय	अन्तर
१.	हवाला ग्राम और बाग	५८६६६६	२२७२००	३५६७६६
२.	कचहरी से लागती रकम	५०७१३१	२१२५००	२९४६३१
३.	सायर	४५४१०२	२८९६००	१६४५०२
४.	दरीबा	३१६८८६	४२५५००	१०५६१४
५.	कोतवाली चबूतरा	५३०८२	५००००	३०८२
६.	टकसालें	२२१६	९८००	७५८४
७.	जागीरदारों से रेख	शून्य	२२५०००	२२५०००
८.	जागीरदारों से हुक्मनामा	शून्य	११००००	११००००
९.	बेतलबी और तलबाना	शून्य	४५०००	४५०००
१०.	नज़र	शून्य	४०००	४०००
११.	ड्योढ़ी दस्तूर	शून्य	१२०००	१२०००
१२.	अदालतें	शून्य	१५०००	१५०००

भी दे दी गई है।[1] कई कारणों से १८३८ के आँकड़े १८२१ के आँकड़ों से भिन्न हैं। १८३८ का वर्ष दुर्भिक्ष का वर्ष था जिसके फलस्वरूप मालगुजारी केवल खाम की दर पर एकत्रित की जा सकी। इसके अतिरिक्त, मालगुजारी वसूल करने की कुशल व्यवस्था उपलब्ध नहीं थी। अतः यह स्पष्ट है कि हवाला, गाँव तथा उद्यानों और 'कचहरी से लागती रकम' शीर्षकों के अन्तर्गत प्राप्त रकम क्रमशः ३५९७९९ रु० और २९४६३१ रु० से कम हो गई। इसके अतिरिक्त, 'सायर' मद के अन्तर्गत १८२१ में ४५४१०२ रु० की आय व्यापार में सामान्य गिरावट के कारण घटकर १८३८ में केवल २८९६०० रु० रह गई। 'दरीबा' शीर्षक के अन्तर्गत आय में १०५६१४ रु० की वृद्धि हो गई। टकसालों की आय में नाममात्र का ही अन्तर है। शेष मदों से प्राप्त होने वाली आय में वृद्धि जागीरदारों को रेख, हुक्मनामा, तलबाना, नज़र, और ड्योढ़ी दस्तूर देने पर विवश करने के कारण हुई थी जिसे वे पहले या तो देते नहीं थे अथवा लगाया ही नहीं जाता था। अदालतों से १८३८ में १५००० रु० की प्राप्ति हुई और १८२१ में इस मद में कोई आय नहीं हुई। इसका कारण यह था कि मारवाड़ में प्रथम बार अदालतें १८३८ में स्थापित की गई थीं। ये सभी नई लागतें मिलकर भी हानि को पूरा नहीं कर सकीं और कुल आय में २९७८१६ रु० की कमी हो गई।

यद्यपि जागीरदारों की भूमि से समस्त आय पचास लाख रुपए की ऊँची रकम आँकी जाती थी तथापि वास्तव में उससे राज्य को नाममात्र की ही आय होती थी। इसका कारण यह था कि समस्त जागीरदार जिनके अधिकार में राज्य की ८३ प्रतिशत भूमि थी, प्रति हजार रुपये पर आठ रुपये भी रेख के रूप में देने का विरोध करते थे और उत्तराधिकार प्राप्त करने के समय हुक्मनामों की रकम के अतिरिक्त राज्य को अन्य कुछ देना यदा-कदा ही स्वीकार करते थे। जो सैनिक टुकड़ी वे भेजते थे वह कण्टक ही सिद्ध होती थी और महाराजा को अपनी स्वयं की सेना रखनी पड़ती थी। राज्य को कोई सारवान सैनिक सहायता प्राप्त नहीं होती थी और साथ ही जागीर की भूमि से होने वाली आय में उसका जो वैध भाग था उससे भी वह वंचित हो जाता था।[2]

उन दिनों बहुत से राज्य कर्मचारियों को भी नकदी में वेतन नहीं दिया जाता

---

१. वि० सं० १८९६ के माघ कृष्ण पक्ष की पंचमी को मानसिंह द्वारा सदरलैंड को भेजा गया आय का ब्यौरा (जो कि मारवाड़ की ख्यात में मानसिंह के शासन के सम्बन्ध में उद्धृत किया है और जो चौपासनी शोध संस्थान में उपलब्ध है)। वि० सं० १८७८ की खालसा खज़ाना की जमा खर्च बही।

२. पेपर संख्या ७, मारवाड़ की बाबत, १४ अक्टूबर १८३०, संख्या ३–८ एफ. एस.

था। उनके वेतन का खालसा की भूमि से प्रबंध किया जाता था।[3] इसके अतिरिक्त शेष खालसा भूमि की मालगुज़ारी वसूल करने के लिए कोई वैज्ञानिक तंत्र या व्यवस्था भी नहीं थी। अतएव शासक को मुख्यत: राज्य की गैर-मालगुज़ारी आय पर निर्भर रहना पड़ता था और उसकी व्यक्तिगत आय दस लाख रुपये से अधिक नहीं थी। फिर भी विजयसिंह के शासनकाल में राज्य को पूरे सोलह लाख रुपये की आय प्राप्त हुई जिसकी आधी केवल नमक की झीलों से प्राप्त हुई थी।[4] महाराजा मानसिंह के शासनकाल में सरकार की आय चार मुख्य स्रोतों से प्राप्त होती थी—'माल' अथवा मालगुज़ारी, जागीरदारों से मिलने वाला कर, अथवा उत्तराधिकारी बनने के समय जागीरदारों द्वारा दिया जाने वाला शुल्क, नमक की झीलों से प्राप्त होने वाली आय, अथवा सायर और गैर-कृषि आय जो बड़ी संख्या में लगाए गए करों और लागतों से प्राप्त होती थी।[5]

कृषि आय :

राज्य की कृषि आय, खालसा भूमि से वसूल की हुई मालगुज़ारी और जागीरदारों तथा अन्य लोगों, जिन्हें भूमि बख्शी गई थी, से मिलने वाले अधीन कर तथा उत्तराधिकार शुल्क के रूप में प्राप्त होती थी।[6]

महाराजा मानसिंह के शासनकाल में मारवाड़ में कुल ४३७६ गाँव थे। वे नीचे लिखे अनुसार बँटे हुए, अभिभाजित और अभिहस्तांकित थे।[7]

सारणी २

राज्य में विभिन्न अभिकरणों को किए गए भूमि के अभिहस्तांकन को बतलाने वाला विवरण

	(अ) खालसा :		
१.	हवाला खास के सीधे प्रबंध में	३६२	गाँव
२.	परगना कचहरियों और चबूतरों के अधीन	६७	"

३. मानसिंह के राज्य की ख्यात, एफ ४६८

४. बनर्जी : राजपूत स्टेट्स एण्ड ईस्ट इण्डिया कम्पनी, पृष्ठ १४३

५. कैवेन्डिश को राजनीति विभाग के सचिव का पत्र, १० अक्टूबर १८३१, आर० ए० फाइल, संख्या ३

६. विल्डर का आक्टरलोनी को, मालवा का रेंजीडेंट २३ जुलाई १८२० अजमेर रेकार्ड आर० ए० जोधपुर फाइल सं० २, १८१८ की

७. क्रासिस हाकिन्स का मैकेंजी को पत्र, ६ फरवरी, २२ फरवरी १८३०, संख्या ७४ एफ० पी० मानसिंहजी रे राज की ख्यात, एफ ४६८

१	२	३	४
३.	धार्मिक संस्थाओं जैसे, ठाकुरद्वारों, श्रीजी के मन्दिरों, गोस्वामियों के मंदिरों, नाथ स्वरूपों, और देवस्थान को उनके दिन-प्रतिदिन के व्यय को पूरा करने के लिए अभिभाजित	६०	गाँव
४.	ज़नानी ड्योढ़ी, बीकानेर राजविस, राजवंश की राजकुमारियों आदि के दिन-प्रतिदिन के व्यय के लिए अभिभाजित	८६	,,
५.	परदेशी सेना तथा उनके अफसरों के वेतन आदि के व्यय के लिए अभिभाजित	४०	,,
	(ब) जागीर और भोम :		
६.	जागीरदारों और भोमियों को अभिहस्तांकित किए गए	२६६७	,,
७.	मुत्सद्दियों को अभिहस्तांकित किए हुए	४६	,,
८.	खवासों और पासवानों को अभिहस्तांकित किए हुए	७६	,,
९.	रिसालदारों और शागिर्द पेशों को अभिहस्तांकित किए हुए	८९	,,
	(स) शासन और डोली :		
१०.	शासन के रूप में अथवा डोली के रूप में ब्राह्मणों, चारणों आदि को और 'खटदर्शन' में दिए गए	५१६	,,
	(द) अंग्रेजों के प्रबन्ध में :		
११.	मेरवाड़ा के गाँव जो अंग्रेजों द्वारा प्रशासित होने के लिए उन्हें हस्तांतरित कर दिए गए	७	,,
१२.	जो ब्रिटिश शासन को ट्रिब्यूट की रकम के बदले दे दिए गए	२२	,,
	कुल योग—	४३७६	गाँव

ऊपर की सारिणी से यह प्रकट होता है कि ४३७६ गाँवों में से केवल ६५० गाँव ही खालसा के अर्थात् सीधे दरबार के प्रबन्ध में थे और उनका क्षेत्रफल राज्य के सम्पूर्ण क्षेत्रफल का सातवाँ भाग था। उनमें से भी 'चौहत्तर गाँव' फिर भी मुश्तरका

थे। कहने का तात्पर्य यह है कि उनकी आय दरबार और कतिपय जागीरदारों द्वारा सम्मिलित रूप से ली जाती थी। शेष राज्य-क्षेत्र जिसमें ३६६७ गाँव थे, नीचे लिखी भूधृतियों के अधीन था—जागीर, जीविका, सनसन, डोली, भूम, इनाम, पसेता और नानकर। १८१८ में जब मानसिंह ने वास्तविक उत्पादन का आधा मालगुज़ारी अथवा भू-राजस्व के रूप में इस बहाने वसूल किया कि परदेशी सैनिकों का अवशिष्ट वेतन चुकाना है तब भी सम्पूर्ण राज्य की आय में केवल तीन लाख रुपये की वृद्धि हुई।[८] इस असाधारण वृद्धि को प्राप्त करने के लिए मानसिंह को निमाज, आउवा, चंदावल, असोप, खेजरला, कुचामन, रायपुर, पोकरण, भद्राजन इत्यादि के ठाकुरों को भी कह-सुन कर इस बात पर राजी करना पड़ा था कि वह उनके ठिकानों से प्रत्येक का एक गाँव ले ले।[९]

कचहरियों से लागती रकम :

क्योंकि राज्य द्वारा जो मालगुज़ारी या भू-राजस्व वसूल किया जाता था वह उसकी वित्तीय आवश्यकताओं के लिए नितान्त अपर्याप्त था अतः सरकार को कृषि तथा गैर-कृषि जनसंख्या पर अनेक प्रकार की विभिन्न फुटकर लागतें लगाने की आवश्यकता पड़ गई। पारिभाषिक शब्दावली में इस प्रकार की सभी लागतों को 'लाग' या 'कचहरियों की लागती रकम' कहा जाता था, जबकि कतिपय लागतों का प्रादुर्भाव सुदूर भूतकाल में छिपा हुआ था। बहुत-सी लागतों का प्रादुर्भाव अभी हाल में ही हुआ था, जो कि महाराजा अजीतसिंह के शासनकाल में लगाई गईं थीं। औरंगजेब के विरुद्ध जब मारवाड़ के लोगों ने युद्ध किया था तब उस स्वतंत्रता के युद्ध में अजीतसिंह की प्रजा ने स्वयं अपनी ओर से अपने अल्पवयस्क शासक को वित्तीय सहायता दी थी। कालान्तर में उस स्वेच्छया अंशदान ने जो कि मुख्यतः मुग़ल आक्रमणकारियों का प्रतिरोध करने के लिए किया गया था, लाग का रूप धारण कर लिया।[१०] अजीतसिंह के उत्तराधिकारियों ने जब भी आवश्यकता पड़ी अर्थात् या तो मराठों का प्रतिरोध करने अथवा आन्तरिक विद्रोह को दबाने के लिए तब उन्होंने नई लागतें लगाई जो कि प्रत्येक परगने में भिन्न-भिन्न होती थीं। यहाँ तक कि वे एक गाँव से दूसरे गाँव में, एक जाति से दूसरी जाति, और एक पेशे से दूसरे पेशे के

८. तवारीख मानसिंह, एफ २४२

९. जोधपुर राज्य की ख्यात—भाग ४, एफ० एस० ८६–६०

१०. वि० सं० १८४८ के भाद्रपद कृष्ण पक्ष की तेरस को विजयसिंह का महाराजा को लिखा खरीता, अर्जी बही—सं० ४, पृष्ठ ८७; विदेशी राजनीतिक, २८ फरवरी १८४२, संख्या २२, राठौर दानेश्वर वंशावली, एफ १७५

लिए परिस्थिति तथा लागत दाता की देने (भुगतान) की क्षमता के अनुसार भिन्न होती थी।[११]

गैर-खालसा भूमि का भूस्वामित्व :

मारवाड़ में गैर-खालसा भूमि विभिन्न भूस्वामित्व पद्धतियों के अन्तर्गत लोगों के अधिकार में थी। जिन राजपूतों के पूर्वज राठौड़ों की विजय के पूर्व मारवाड़ में आए थे उनका और मालानी के ठाकुरों का भूमि-चारा-भूस्वामित्व के अधीन अपनी जागीरों पर अधिकार था। उनको 'फौजबाब' और 'खिचरीलाग' देनी पड़ती थी। उनके अधिकार में जो जागीरें थीं वे उसी दशा में वापस ली जा सकती थीं जब वे राजद्रोह अथवा अपराध करते। उत्तराधिकार प्राप्त करने के समय पट्टा देने की आवश्यकता नहीं थी।[१२] 'भूमिया' पुलिस का कार्य करते थे और 'भूमबाब' देते थे। उनको भूमिस्वामित्व के आधार पर भूमि प्राप्त थी। वह (भूमि) केवल दरबार द्वारा उन गाँवों में भी बख्शी जा सकती थी जो जागीरदारों के अधिकार में होते थे।[१३] राजकुमार अथवा ठाकुर के छोटे पुत्रों को उनके निर्वाह के लिए भूमि (जीविका) भूघृति के आधार पर दी जाती थी। उसके अन्तर्गत, तीन पीढ़ियों के उपरान्त 'रेख' तथा 'उत्तराधिकार शुल्क' देना पड़ता था और जनपद सैन्य देनी पड़ती थी। यदि कोई पैतृक वंशज नहीं होता तो वह भूमि अनुदान देने वाले वंश को स्वतः लौट जाती थी।[१४]

जिन लोगों के पास भूधृति के अन्तर्गत भूमि होती थी वे 'रेख' देते थे और एक हजार रुपये की आय पर एक अश्वारोही, ७५० रु० की आय पर एक ऊंट सवार और ६०० रु० की आय पर एक पैदल सैनिक रखते थे। हुक्मनामा तागीरात और मुत्सद्दी खर्च के अतिरिक्त 'रेख' का पचहत्तर प्रतिशत देना पड़ता था। जिन लोगों के लिए यह रकम नकदी में देना कठिन होता था वे एक वर्ष के लिए अपने गाँवों को खालसा के सुपुर्द कर देते थे। मूल अनुदानग्रहीता के पुरुष वंशक्रम की परिसमाप्ति पर जागीर खालसा हो जाती थी। जागीर के समपहरण किए जाने पर

---

११. हथबही-संख्या ४, एफ एस ६४–६७, मेड़तिया ख्यात-भाग २, एफ एस १३५५–५६ बस्ता संख्या १०१, मारवाड़ के प्रशासन की रिपोर्ट (१८८३–८४), पृष्ठ ३५३–५५

१२. पट्टा खाता बही-संख्या ७, वि० सं० १८८२ की। दी रूलिंग प्रिंसेज, चीफ्स एण्ड लीडिंग परसोनेजेज् ऑफ राजपूताना एण्ड अजमेर, पृष्ठ १६

१३. हवाला बही-सं० १०, वि० सं० १८६४ की।

१४. दी रूलिंग प्रिंसेज, चीफ्स एण्ड लीडिंग परसोनेजेज् ऑफ राजपूताना एण्ड अजमेर, पृष्ठ १६

जागीरदार को कुछ खेत अपने पास रखने की आज्ञा दे दी जाती थी जिससे कि वह गृहविहीन होने से बच जाए। उसको 'जूनी जागीर' कहते थे। इस स्थिति में गम्भीर राजनीतिक अपराध करने पर उस भूमि को भी लिया जा सकता था।[१५] जब सेवाओं के बदले में भूमि दी जाती थी तब उसे 'पासायत भूस्वामित्त्व' कहते थे। जब इस प्रकार का भूधारक सेवा करना बन्द कर देता था तब उससे भूमि वापस ले ली जाती थी।[१६]

ब्राह्मणों और चारणों को दान में दी गई लगानमुक्त भूमि को 'शासन' और 'डोली' कहते थे। जब कभी मूल अनुदानग्रहीता के कोई वंशज नहीं रहता तो वह भूमि राज्य के पास लौट आती थी।[१७] जब भूमि राजपूतों के पास केवल उनके जीवन-निर्वाह के लिए होती थी तब उसे 'नानकर' कहते थे। उसकी शर्तें लगभग वे ही होती थीं जो जागीरों के साथ लागू थीं। केवल यह अपवाद था कि उन पर कोई उपकर नहीं लगाया जाता था, उनसे कोई सेवा नहीं ली जाती थी और केवल उत्तराधिकार-शुल्क देना पड़ता था। लगानमुक्त अनुदान जिन्हें तकनीकी भाषा में 'इनाम' कहते थे, राज्य के प्रति की गई सेवाओं के उपलक्ष में दिए जाते थे। मूल अनुदानग्रहीता के वंशक्रम-वंशज के न होने पर वह समाप्त हो जाती थी।[१८] लोग एक निश्चित लगान देकर दुम्वा भूमि पर स्थायी रूप से खेती कर सकते थे।[१९]

जागीर और जीविका की भू-सम्पत्ति में उत्तराधिकार ज्येष्ठाधिकार रीति के अनुसार होता था, जबकि अन्य भूस्वामित्वों में जीवित उत्तराधिकारियों में समान बँटवारे के आधार पर होता था। किसी भी प्रकार की भूमि को वेचा या आठ वर्ष से अधिक के लिए बंधक नहीं रखा जा सकता था।[२०]

---

१५. दी रूलिंग प्रिंसेज, चीफ्स एण्ड लीडिंग परसोनेजेज् ऑफ राजपूताना एण्ड अजमेर, पृष्ठ १६

१६. हथबही-संख्या ४, एफ ३७५, काउंसिल नेट संख्या २, मई ५, १८३२, जोधपुर काउंसिल आफिस फाइल संख्या ६७/२, मई ५, १८३२,

१७. हथबही-संख्या ४, एफ ३७६, मिमो संख्या १२१७,६ जून १८४१; स्टेट काउंसिल के सैक्रेटरी से रेवेन्यू मिनिस्टर को।

१८. हथबही-संख्या ४, एफ ३७६, मिमो संख्या १२१७, जून ६, १८४१; स्टेट काउंसिल के सैक्रेटरी से रेवेन्यू मिनिस्टर को।

१९. हथबही-संख्या ४, एफ ३८२, मिमो संख्या २०३, अप्रेल ८, १८३३, रेवेन्यू मेम्बर से सैक्रेटरी स्टेट काउंसिल को फाइल नं० ६७/२।

२०. दी रूलिंग प्रिंसेज, चीफ्स एण्ड लीडिंग परसोनेजेज् ऑफ राजपूताना एण्ड अजमेर, पृष्ठ १७

खालसा का भूस्वामित्व :

मारवाड़ में केवल दो प्रकार के किसान होते थे—बापीदार और गैर-बापीदार। लगभग सभी बापीदारों को मौरुसी काश्तकार के अधिकार प्राप्त थे। यद्यपि इन्हें मालगुजारी ऊँची दर पर देनी पड़ती थी तथापि उनको कुछ विशेषाधिकार और रियायतें प्राप्त थीं जो कि गैर-बापीदारों को प्राप्त नहीं थीं। वे किसी भी बहाने न केवल बटाई अथवा देय का भुगतान करने के समय बीस प्रतिशत की रियायत प्राप्त कर सकते थे, वरन् उनके खेतों में जो लकड़ी और घास होती थी उस पर उनका एक प्रकार का स्वामित्व अधिकार भी होता था। कुएँ खोद कर अथवा अन्य उपायों से अपनी जोतों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए वे जो भी प्रयत्न करते थे उनका लगान निर्धारित करते समय पूरा ध्यान रखा जाता था। जब भी वे कोई नया कुआँ खोदते थे और यदि वह कुआँ पक्का होता था तो राज्य इस प्रकार के प्रयत्नों को प्रोत्साहित करने के लिए दस वर्षों तक उस भूमि पर सूखी भूमि की दरों से लगान लेता था। यदि कुआँ कच्चा होता तो पाँच वर्ष तक सूखी भूमि की दर से मालगुजारी ली जाती थी। इस प्रकार वे जब उन सुधारों का पूरा लाभ उठा चुकते थे जो उन्होंने अपने प्रयत्नों से भूमि में किए थे, तब सिंचित दर से उनसे माल गुजारी ली जाती थी। इसके अतिरिक्त उनकी जोतों को उनसे उस दशा में भी वंचित नहीं किया जा सकता था जब वे दुर्भिक्ष के कारण अथवा अन्य किसी कारण-वश अपने गाँव को छोड़ कर चले गए होते और पाँच वर्ष तक बाहर रहे होते। जब वे वापस आते तब अपनी जोतों को वापस ले सकते थे। ऋणग्रस्तता से छुटकारा अथवा अन्य कठिनाइयों से निस्तार पाने के लिए उन्हें अपनी जोतों को बन्धक रखने का अधिकार था। उनकी स्थिति इस शर्त के कारण और भी अधिक मजबूत हो जाती थी कि दखली बन्धक में भी बन्धकी उस भूमि पर बन्धक रखने वाले किसान के अतिरिक्त अन्य किसी से खेती नहीं करवा सकता था। बापीदारों को ये सभी रियायतें और विशेषाधिकार प्राप्त थे जबकि गैर-बापीदार केवल शिकमी काश्तकार थे।

निर्धारण का तरीका :

मालगुज़ारी या भू-राजस्व केवल वस्तुओं के रूप में ली जाती थी। राज्य के भाग को वसूल करने के विभिन्न तरीके थे। 'लाटा' जिसे बटाई भी कहते थे, अधिक प्रचलित था। समस्त खेती की पैदावार को गाँव के समीप इकट्ठा कर लिया जाता था और हिस्से का बाँट हाकिम के अभिकर्ता, हवालेदारों, कनवारियों, धावादों, गाँव के चौधरियों, पटवारियों और कामदारों की उपस्थिति में होता था।[२१] सबसे पहले

२१. वि० सं० १८८४ की बही, जनानी सरकार के हिसाब की बाबत

एक भाम्भी इस प्रकार इकट्ठे किए हुए अनाज के ढ़ेर को एक रस्सी से जिसे डोरी कहते थे, चारों ओर घेर देता था और उसको नाप लेता था। उसके उपरान्त हिस्सा बाँट होता था। सामान्य रूप से राज्य का हिस्सा खेतों के मध्य भाग में उत्पन्न अनाज का एक चौथाई भाग और खेत की सीमा पर जो क्षेत्र स्थित होता उसकी उपज का एक पाँचवा भाग निश्चित किया जाता था। परन्तु कभी-कभी राज्य अथवा भूस्वामी द्वारा सूखी फसलों की पैदावार का पाँचवें भाग से आधे तक, सिंचित फसलों का छटवें भाग से एक तिहाई भाग तक भी लेने का दावा किया जाता था। सूखी अर्थात् बिना सिंचाई की फसलों पर राज्य का भाग अधिक होता था, क्योंकि उनको उत्पन्न करने में किसानों को कम श्रम करना पड़ता था और इस कारण से भी कि वे फसलें अच्छी होने के अतिरिक्त जो चारा उत्पन्न करती थीं उसका बहुधा हिसाब नहीं लगाया जाता था और उसमें राज्य अपना भाग नहीं लेता था।[२२]

साधारणतया राज्य वास्तविक उपज का एक चौथाई से छटा भाग तक वसूल करता था, परन्तु गंभीर आपद्काल में, उदाहरण के लिए जोधपुर के घेरे के समय तथा अपनी पुत्रियों का बूंदी और जयपुर के शासकों से विवाह होने के समय, मानसिंह ने पैदावार को राज्य और किसान के मध्य बराबर बाँटने में भी संकोच नहीं किया।[२३] किसान को मालगुजारी के अतिरिक्त 'मलबा' और 'चौथर बाब' भी देने पर विवश किया जाता था। 'मलबा' मुख्यतः इस उद्देश्य से लगाया जाता था कि उसकी आय से फसलों की रखवाली में होने वाले व्यय के चुकाने तथा उन व्यक्तियों को पारिश्रमिक देने की व्यवस्था थी जिन्होंने बटाई के समय किसानों तथा राज्य अधिकारियों की सहायता की थी। कनवारियों और शहनों को जो कि पैदावार की रखवाली करते थे, इसकी आय से चुकारा किया जाता था। औसतन राज्य के प्रत्येक दस मन के भाग पर वह दो रुपये होता था। कनवारियों और शहनों को चुका देने के उपरान्त जो शेष बचता था वह पटवारियों और तोलायतों में बाँट दिया जाता था। पटवारी को लगभग साढ़े तेरह छटाँक और तोलायत को केवल सात छटाँक प्रति मन मिलता था। चौधरियों को साधारणतया बचे हुए अतिरिक्त भाग का छटा भाग मिलता था। उसे पारिभाषिक भाषा में 'वाधोत्तर' कहते थे।

बटाई के समय किसानों को अनेक प्रकार के विभिन्न नेग देने पड़ते थे जो राज्य

२२. विल्डर का आक्टरलोनी को पत्र, २२ अप्रेल १८१८, आर० ए० रेकार्ड फाईल संख्या २, १८१८ की। बही वि० सं० १८८४ की, जनानी सरकार के हिसाब की बाबत।

२३. केवेन्डिश का हाकिन्स को पत्र, १२ मार्च १८३१, आर० ए० आर० १८१८ का अजमेर रेकार्ड, हवाला बही, वि० सं० १८८८ की।

के हिस्से या भोग के प्रतिमन पर इतने सेर के हिसाब से दिए जाते थे। ये नेग कमीनों को दिए जाते थे जैसे—खाती, लुहार, नाई, दर्जी, पुरोहित, नट, मेहतर, रेगर, धोबी, टिड्डीवाला, बार्थ, चमार आदि। उनमें से प्रत्येक को किसान से भोग के प्रतिमन पर कतिपय छटांक पैदावार मिलती थी, अथवा सिरोला (सम्मिलित ढ़ेर) से कुछ मुट्ठियाँ अनाज मिलता था, जबकि कुछ परगनों में ये लागतें राज्य के हिस्से का केवल २ प्रतिशत होती थी। कुछ अन्य परगनों में वे ४ प्रतिशत तक ली जाती थीं, परन्तु वे किसी भी दशा में उससे अधिक नहीं होती थीं।[२४]

राज्य या भू-स्वामी का हिस्सा पैदावार को वास्तव में तोल कर या नाप कर निश्चित न किया जा कर जब केवल अनुमान के आधार पर निश्चित किया जाता था तब उसे 'कूता' कहते थे। जब फसलें खेत में खड़ी होती थीं तभी सम्पूर्ण पैदावार का अनुमान लगा कर राज्य का भाग नकदी अथवा पैदावार में कितना होगा यह अनुमान लगा लिया जाता था।[२५] पैदावार के निर्धारण के इन तरीकों के अतिरिक्त तीन और तरीके भी प्रचलित थे जिन्हें 'मुकाता', 'डोरी' और 'घुघरी' कहते थे। 'मुकाता' में, राज्य यह निश्चित कर देता था कि नकदी या पैदावार के रूप में प्रत्येक खेत पर एकमुश्त कितना देना है। 'डोरी' में, नापे गए बीघे का हिस्सा निर्धारित करके मालगुजारी वसूल की जाती थी।[२६] उस दशा में जब प्रति कुआ अथवा प्रति खेत पैदावार की एक निश्चित मात्रा निर्धारित करदी जाती थी तब उसे 'घुघरी' कहते थे। जब राज्य अपने हिस्से के रूप में केवल उतना ही अनाज स्वीकार कर लेता था जितना केवल बोये गए बीज के बराबर होता था तब उसे 'बीज घुघरी' कहते थे।

यद्यपि मालगुजारी के निर्धारण के सात तरीके प्रचलित थे तथापि 'लाटा' की पद्धति सबसे अधिक लोक-प्रचलित थी। कुछ परगनों में 'आंक-बन्धी' के द्वारा भी मालगुजारी वसूल की जाती थी। उसका अर्थ होता था, राज्य अधिकारियों द्वारा

---

२४. केवेन्डिश का हाकिन्स को पत्र ६ जून १८३१, आर० ए० आर० १८१८ का अजमेर रेकार्ड, बही जनानी सरकार, वि० सं० १८८८, जनानी सरकार के हिसाब के बाबत।

२५. विल्डर का आक्टरलोनी को पत्र, २२ अप्रेल १८१८, आर० ए० आर० फाइल संख्या २, १८१८ की। वि० सं० १८८४ की बही, जनानी सरकार के हिसाब के बाबत।

२६. केवेन्डिश का हाकिन्स को पत्र, ४ फरवरी १८३१, १८१८ का सन डी. सी. अजमेर रेकार्ड। वि० सं० १८८७ की बही, हवाला उगाई की बाबत।

सम्भावित उत्पादन का अनुमान लगाया जाना।[२७] कभी-कभी मालगुजारी अथवा भू-राजस्व 'इजारा' देकर भी इकट्ठा किया जाता था। क्योंकि मारवाड़ में मालगुजारी अथवा भू-राजस्व के निर्धारण का कोई एक प्रकार का तरीका नहीं था, अतएव भू-राजस्व या मालगुजारी का प्रतिरूप प्रत्येक जिले में भिन्न था। 'खालसा' की मालगुजारी वसूल करने की कोई उत्तम एवं नियंत्रित विधि न होने के कारण, १८३८ में 'हवाला खास' से सम्पूर्ण आय केवल २,२६,००० रुपये हुई, जबकि १८२१ में 'खालसा' से होने वाली आय की रकम ५,८६,६६६ रु० थी।[२८] महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम के शासनकाल में हवाला गाँवों की आय १५ लाख रुपये के लगभग थी।[३०] मानसिंह को भी अनेक अवसरों पर, या तो धौंकलसिंह के सहायकों के विरुद्ध अथवा पड़ोसी जयपुर और बीकानेर के राजाओं और स्वयं अपने असंतुष्ट सामन्तों के विरुद्ध सैनिक तैयारियाँ करने अथवा अमीरखाँ, परदेशी सैनिक और अंग्रेजों की शेष रकम को चुकाने के लिए अतिरिक्त निधि इकट्ठी करने पर विवश होना पड़ा था। ऐसे सभी अवसरों पर या तो नई लागतें लगाने की आवश्यकता पड़ती थी अथवा पुरानी लागतों को बढ़ी हुई दरों से वसूल करना पड़ता था।[३१]

पहले से ही दुर्भिक्ष और लूटपाट के कारण आर्थिक दृष्टि से दबी हुई और निर्धन जनता पर ये सभी पुरानी और नई लागतें मिलकर इतना अधिक भारी बोझा बन जाती थीं कि मानसिंह के मुत्सद्दियों की सारी चतुराई और प्रतिभा भी उन सौ लागों में से जो उस समय प्रचलित थीं, केवल कुछ को ही वसूल करने में सफल हो पाती थी।[३२] वे इस प्रकार वसूल की जाती थीं कि वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर भिन्न हो जाती थीं,[३३] जबकि उनमें से कुछ लागें जैसे—तलबाना, हासिल, मुकाता, फारोई, चौधर, सुकराना, बत्ती पट्टा, घरु लागें और अनेक लागें जो सावतू-बाब आदि

---

२७. केवेन्डिश का हाकिन्स को पत्र, ४ फरवरी १८३१, १८१८ की आर० ए० फाइल संख्या २, अजमेर रेकार्ड।

२८. मानसिंह के राज की ख्यात, एफ० ४६८

२९. जमा खर्च बही, वि० सं० १८७८

३०. नैणसी मुहनौत : मारवाड़ के परगनों की विगत, भाग १, पृष्ठ १६

३१. वि० सं० १८६१ कार्तिक शुक्ल पक्ष की छट का, शम्भुदत्त का मैकनाटन को खरीता।

३२. २२ जुलाई १८२० का विल्डर का आक्टरलोनी को पत्र, आर० ए० फाइल संख्या १

३३. ८ अक्टूबर १८२६ का केवेन्डिश का हाकिन्स को पत्र, कान्स १५ नवम्बर १८२६, संख्या ६ एफ० पी०

के अन्तर्गत ली जाती थीं, लगभग सभी परगनों से वसूल की जाती थीं और शेष निर्धारित क्षेत्रों से निर्धारित उद्देश्यों के लिए भिन्न-भिन्न मदों और नामों से ली जाती थीं।[३४]

इन लोगों का विभिन्न मदों के अन्तर्गत वर्गीकरण किया जा सकता है। इनमें से कुछ को मकान और भूमि का लगान या किराये की श्रेणी में रखा जा सकता है। यह प्रति-वर्ष चार आने से लेकर दस रुपये तक होती थी। ऊँची दरें केवल धनी गैर काश्तकारों से ही ली जाती थी। उनमें बहुत छोटी-छोटी मकानों की लागें, जैसे—झुम्पी, लवाजमा, घुगरी, खरखार आदि सम्मिलित थीं जो कि कृषि में काम करने वाले कृषि-श्रमिकों एवं कमीनों से ली जाती थीं तथा 'खोलदी' और 'बराड़ धनी' गैर-काश्तकारों से ली जाती थीं। जो किसान अपने पशुओं के लिए बाड़े रखते थे उन्हें 'बाड़ा बराड़' लाग देनी पड़ती थी।[३५] उसको साधारण बोलचाल की भाषा में 'किवाड़ी' अथवा 'घरबाब' भी कहते थे। वह वास्तव में दरवाजों पर लगाया जाने वाला कर था जिसे सर्वप्रथम विजयसिंह ने उस भीमसिंह के विरुद्ध युद्ध में किए गए भयंकर व्यय को पूरा करने के लिए लगाया था, जो (भीमसिंह) उसकी अनुपस्थिति में गद्दी पर बिठा दिया गया था। क्योंकि वह लाग जोधपुर के उन फाटकों को जो विजयसिंह को न घुसने देने के लिए बंद कर लिए गए थे, बलपूर्वक खोलने के उद्देश्य से लगाई गई थी, अतः वह इस विशेष 'किवारी' के नाम से प्रसिद्ध हो गई। यद्यपि आरम्भ में वह लाग प्रति घर तीन रुपये की दर से लगाई गई थी, तथापि मानसिंह ने इसे बढ़ाकर दस रुपये प्रति घर की ऊँची दर से वसूल किया।[३६] फिर भी यह लाग सब पर बराबर-बराबर तथा साथ ही एक समान रूप से नहीं लगाई गई, क्योंकि गृह-स्वामी के चुकाने की क्षमता सदैव ध्यान में रखी जाती थी। जहाँ कम साधनों वाले नागरिक प्रति घर केवल दो रुपये देते थे वहाँ समृद्धिशाली समूह के लोगों को कभी-कभी प्रति मकान बीस रुपये भी देने पड़ते थे।[३७] १८ जुलाई १८३७ को बोरीदास इजारादार के द्वारा प्रतिघर ४ रुपये के हिसाब से 'घरबाब' के रूप में १,११,००१ रुपये बिलाड़ा के उस कस्बे से उगाहे गए जहाँ पिछले

---

३४. १० अक्टूबर १८२६ का केवेन्डिश का हाकिन्स को पत्र, कान्स १५ नवम्बर १८२६, ६ एफ० पी०

३५. वि० सं० १८६५ की बही जमा खर्च, वि० सं० १८६१ की बही, खासा खज़ाना रो मसवारो, वि० सं० १८७४ का जोधपुर कोतवाली चबूतरा रो मसवारो, पृ० सं० १

३६. तवारीख मानसिंह, एफ० १६७

३७. टॉड एनल्स, भाग २, पृष्ठ १६३

तीन वर्षों से बकाया रकम इकट्ठी हो गई थी।[३८]

कई प्रकार के चराई शुल्क जिन्हें 'घासमारी' कहते थे, भिन्न-भिन्न पशुओं पर विभिन्न दरों से लिए जाते थे।[३९] वहाँ पेशों पर ली जाने वाली कई प्रकार की लागतें भी प्रचलित थीं, जैसे—रेगरों से 'खांदी', खातियों से 'वसूला' या 'खरोद', मोचियों से 'पगरखी', मालियों से 'होद भराई', महाजनों से 'तिबारी', व्यापारियों से 'दवात पूजा', साधों से 'रखाली', कुम्हारों से 'आवा', रंगरेजों से 'रेजा रंगाई' और 'कोठा, नील', चमड़ा कमाने वालों से 'आना', दूकानदारों, बुनकरों और हलवाइयों से 'कंदोई की लाग' इत्यादि।[४०] 'बराड़' विभिन्न पेशों से इकट्ठी की जाती थी और व्यापार पर लगाई जाने वाली लागों की कोई कमी न थी। मानसिंह ने जौ की शराब की लगान तथा 'खेदालाग' लगाकर उन विविध प्रकारों में और वृद्धि करदी।[४१] उसने हलों पर भी कर लगाया जिसे हालमा, खरखार, कोनार आदि नामों से पुकारा जाता था। कुएँ भी नहीं छोड़े गए और कुओं के स्वामियों को कई लागें जैसे—खुरखुरी, खोर, सालावाज, कुर इत्यादि देनी पड़ती थीं।[४२] महाजनों को होली के एक दिन बाद लोगों को शिकार खेलने से रोकने के लिए 'अहेरा' लाग देनी पड़ती थी और जैनियों को वर्ष में कतिपय मंगलकारी शुभ अवसरों पर पशुओं का वध रुकवाने के लिए एक प्रकार की 'अहिंसा लाग' देनी पड़ती थी।[४३] राज-परिवार में जन्मोत्सव, विवाह तथा मृत्यु के अवसर शासक को प्रजा से कतिपय शुल्क उगाने का बहाना प्रदान करते थे। शासक के जन्मदिन पर सिंहासन पर बैठने तथा दरबार के अवसर पर अनेक प्रकार की नजरें शासक को भेंट करनी पड़ती थी।[४४] हाकिमों को खेतों की नाप के समय नज़र देनी पड़ती थी।[४५] मानसिंह ने सेवाओं

---

३८. वि० सं० १८६६ की, इजारेदारों की बही जमाखर्च के बाबत
३९. बही पाया तख्तगढ़, जोधपुर कोतवाली चबूतरा रो मसवारो, वि० सं० १८७४, टॉड एनल्स, भाग १, पृष्ठ १६३
४०. जमाखर्च बही डीडवाना चौंतरा, वि० सं० १८८५,
४१. फौज बही, वि० सं० १८६६, भंडारी मानमल और सिघवी कालूराम के हिसाब का जमा खर्च, जमा खर्च बही, वि० सं० १८९५
४२. वि० सं० १८६६ की फौज बही, फौज के हिसाब का रोजनामा,
४३. हथबही, संख्या ४, एफ० ६६
४४. हकीकत बही जोधपुर, वि० सं० १८६२–७० संख्या ६, एफ० २८, हकीकत बही जोधपुर, वि० सं० १८५६–६०, संख्या ८, एफ० ४५३
४५. नागौर, पाली, सोजत और डीडवाना की हकूमत की जमाखर्च बही, वि० सं० १८७४

के बदले उन कतिपय लागों को वसूल करने में संकोच नहीं किया जो पटेल, कामदार, शहना, रुखवाला, तोलायत आदि वसूल करते थे और लोगों को मापी, काँटा, बट्टी, उगाई, अन्नी, और सवाया लागें लगान के ऊपर उनका हिसाब तय होने के समय अधिभार के रूप में देनी पड़ती थी। राज्य खातों और रसीदें आदि देने पर भी शुल्क वसूल करता था। जागीरदारों को अपने हिसाब की राज्य अधिकारियों द्वारा जाँच करवाने के लिए 'दाता' लाग देनी पड़ती थी।[४६] सम्पूर्ण मारवाड़ में 'अन्गा' के नाम से स्त्रियों, पुरुषों और प्रौढ़ों पर एक रुपया प्रति व्यक्ति के हिसाब से कर लगाया जाता था।[४७] यहाँ तक कि बेगार भी जो पहले कुछ जातियों से ली जाती थी, मानसिंह के शासनकाल में नकदी लागतों में परिवर्तित की जाने लगी। जैसे—'बीर-घास' (घास को बैलगाड़ियों में पहुँचाने के बदले) 'खारखार' या 'हलसारा' (हल की बेगार के बदले) 'भाड़ा गाड़ी' (बैलगाड़ी की बेगार के बदले) 'सफाई गढ़ लाग बेगार' आदि।[४८] जल को व्यर्थ नष्ट करने, पशुओं के खेत में घुस जाने पर (बाड़ा) लाटे में देरी (अक्षराई) और घास, वृक्षों एवं तालाबों (नुकसान जरायत) को हानि पहुँचाने पर भारी जुर्माने किए जाने लगे और इजाफा वसूल किया जाने लगा।[४९]

चक्कियों, चूने के भट्टों, अथवा क्रिया भट्टी, तेलघानी (घानी कूंत या तेलपाली) इत्यादि पर राजकीय लाग के अतिरिक्त कतिपय मंदिर तथा धर्मादा लागें भी विभिन्न पेशों के लोग देते थे। तीर्थयात्रा, गोद लेने, उत्तराधिकार, पटेलों की नियुक्ति आदि के समय विभिन्न प्रकार की नजरें देनी पड़ती थीं।[५०]

'चंवरी लाग' नाम से एक नियमित व स्थायी विवाह कर भी था, जो कि आय का एक स्थायी साधन था। उसकी दर मोटे तौर पर चार आने से आठ आने के बीच में बदलती रहती थी।[५१] विधवा के पुर्नविवाह के अवसर पर सामान्यतया प्रति विवाह एक रुपया की दर से 'कागली' या 'नाता लाग' देनी पड़ती थी।[५२] लागों में सबसे अधिक 'प्रवाधी लाग' 'सवार खर्च' या 'फौजबाल' लागें थीं, जो कि सरकार द्वारा किसी क्षेत्र विशेष में अश्वारोही सेना की टुकड़ी रखने के लिए ली जाती

---

४६. फौजबही, वि० सं० १८७८, सिंघवी फौजराज से हिसाब का जमाखर्च।
४७. टॉड एनल्स, भाग २, पृष्ठ १६३
४८. बही जमाखर्च, वि० सं० १८६५, परगना पाली री लागती रकम रो गोसवारो।
४९. बही जमाखर्च, वि० सं० १८८५, सोजत चौंतरा रो जमाखर्च।
५०. बही जमाखर्च, वि० सं० १८८८, पाली चौंतरा रो जमाखर्च।
५१. बही जमाखर्च, वि० सं० १८९२, डीडवाना, नागौर, फलौदी और सोजत चौंतरा।
५२. बही जमाखर्च, वि० सं० १८८५, डीडवाना चौंतरा रो जमाखर्च

थीं ।[५३] जोधपुर के घेरे के समय १८०९ में मानसिंह को अमीरखाँ पिंडारी द्वारा दी गई सैनिक सहायता के बदले जब बहुत बड़ी रकम देनी पड़ी तब सिंघवी इन्द्रराज ने 'फौजबाल लागत' को बलपूर्वक वसूल किया और ३६७३६३/९/६ रु० एकत्रित कर लिए । सिरोही से ११५७६९–१–६ रु०, सांचोर से ३५६६१–२ रु०, जालौर से १८८५८ रु०, बाडमेर से ५९५१–१२ रु०, कोटड़ा से २००१ रु०, जैसलमेर के गाँवों से ९७५१ रु०, पोकरण से ४७८५ रु०, गढ़ जोधपुर के गाँवों से ७७२८ रु०, डीडवाना के गाँवों से ८२८६–६–९ रु०, ठिकानों से १२०५०२ रु०[५४] और १८३९ में 'घरबाब' लाग के रूप में अकेले गोडवाड़ के परगने से ७५०० रु० वसूल किए गए ।[५५]

प्रारम्भ में ये विभिन्न प्रकार की लागतें गाँव विशेष के स्वरूप और उसकी देय क्षमता को ध्यान में रखकर निश्चित की गई थीं । एक गाँव में खेती के विस्तार पर गाँव की अधिकांश आय निर्भर होती थी और वह विस्तार इस बात पर निर्भर करता था कि गाँव में कितने लोग निवास करते हैं । आरम्भ में, इस आधार पर ही गाँव को कितनी रकम देनी होगी, यह निर्धारित किया जाता था । ये लागें जाति या गाँव के चौधरियों द्वारा उस गाँव में बसने वाले परिवारों से वसूल की जाती थीं ।[५६]

बहुत से गाँवों में विविध लागतों का यह भार बहुत अधिक हो जाता था । दुर्भाग्यवश उनका भार मारवाड़ के उन भागों पर बहुत अधिक था जिनकी दशा बहुत बिगड़ गई थी । बहुत बार तो लागों का भुगतान ही नहीं किया जाता था, क्योंकि वे उनको चुका ही नहीं सकते थे । उनकी रकम वर्ष प्रतिवर्ष चढ़ती जाती थी और अन्त में देनदारों को बहुत अधिक परेशान कर लेने के उपरान्त उनकी वह रकम छोड़ दी जाती थी ।[५७] १८०८ में जब जालौर के चौधरी प्रार्थना लेकर आए

---

५३. हिसाब बही और ओलीवान बंडल सं० ३, पुस्तक प्रकाश जोधपुर । फौज बही, वि० सं० १८८६, जमाखर्च रो माल भंडारी मानलम और सिंघवी कालूराम के हिसाब की बाबत ।

५४. फौज बही, वि० सं १८६६, जमाखर्च का हिसाब भंडारी मानमल और सिंघवी कालूराम के पास ।

५५. मानसिंह रे राज की ख्यात, एफ ४६८

५६. हथबही-संख्या ४, एफ एस ९४–९७, मेड़तिया री ख्यात, भाग २, बस्ता संख्या १०१, एफ एस ३५५–५६; डी के ब्लाकमैन का नोट, ८ जून १९२६, फाइल संख्या २९/४, हवाला भाग १, मारवाड़ की प्रशासनिक रिपोर्ट, १८८३–८४, पृष्ठ ३५३–५५

५७. लडलो का सदरलैंड को पत्र, २८ अप्रेल १८४१, आर० ए० फाइल जोधपुर–५, अजमेर रेकाड ।

तब मानसिंह को 'घरबाब' लागत में २५ प्रतिशत की छूट करनी पड़ी थी।[५८] पुनः १८१४ में गढ़ जोधपुर, नागौर, मेड़ता, सोजत, जयतारण आदि के किसान जब मानसिंह के पास प्रार्थना लेकर आए तब 'घर गिनती' लाग में प्रति घर ४ रु० और 'हलबाब-लागत' में ४ रु० प्रति हल की छूट करनी पड़ी थी।[५९] इसी प्रकार, परगना नागौर में 'घरबाब-लाग' १८१६ में आधी दर से वसूल करनी पड़ी, क्योंकि उस क्षेत्र में रहने वाले जाट २६ अप्रेल १८१८ को जोधपुर आए और उन्होंने लाग में छूट के लिए बहुत जोर डाला।[६०] १८३० में जोधपुर, नागौर, मेड़ता आदि के किसानों ने 'घरबाग' लाग के विरुद्ध आन्दोलन किया और मानसिंह को उस लाग में २० प्रतिशत की छूट करने पर विवश होना पड़ा।[६१] १८३१ में जालौर के किसानों ने महाराजा से प्रति घर ४ रु० की विभिन्न लागों में छूट प्राप्त कर ली।[६२] प्रत्येक हुकूमत में दो प्रकार की बहियाँ रखी जाती थीं। एक में मुस्तकिल लागतों की माँग दर्ज की जाती थी और दूसरी में अस्थायी लागों की माँग। पहले प्रकार की लागें निश्चित थीं, जबकि दूसरे प्रकार की लागें परिवर्तनशील थी। परन्तु ऐसे उदाहरणों की भी कमी नहीं थी कि एक गाँव में जो 'गैर-मुस्तकिल लाग' थी वह दूसरे गाँव में 'मुस्तकिल लाग' बन गई थी।[६३] यहाँ तक कि 'घरबाब' जो मूलतः अस्थायी लाग के रूप में लगाई गई थी, बाद में एक स्थायी लाग हो गई।

क्योंकि किसी गाँव की निर्धारित रेख और उस गाँव में रहने वालों की संख्या में घनिष्ठ संबंध होता था अतः ये लागें साधारणतया तब तक नहीं लगाई जा सकती थीं जब तक कि उनका बिना कठिनाई के भुगतान किया जा सकता था। जहाँ तक पता चलता है, महाराजा विजयसिंह के राजत्वकाल में सभी परगनों की आर्थिक स्थिति समृद्ध थी। यह तो केवल भीमसिंह और विशेषकर मानसिंह के राजत्वकाल से प्रारम्भ हुआ कि आंशिक रूप से दुर्भिक्ष, दुष्काल, और उसके परिणाम स्वरूप होने वाले उत्प्रवास के कारण तथा आंशिक रूप से आन्तरिक संघर्ष तथा विक्षुब्ध परिस्थितियों के कारण परिस्थिति का बिगड़ना आरम्भ हो गया। यही कारण था कि

५८. हकीकत बही जोधपुर, वि० सं० १८६२–७०, संख्या ६, एफ १२४
५९. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६३–७०), संख्या ६, एफ १२४
६०. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ २५६
६१. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८८१–६०), संख्या ११, एफ ६५
६२. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८८१–६०), संख्या ११, एफ २४५
६३. २६ अप्रेल १८४१ का, लडलो का सदरलैंड को पत्र, आर० ए० संख्या १ जोधपुर ५, अजमेर रेकार्ड।

१८३८ में 'लागती रकम' की कुल आय कठिनाई से २१२५०० रु० हुई,[६४] जबकि १८२१ में उसकी आय ५०७१३१ रु० थी।

यदि वास्तविक 'खालसा' की आय और कचहरियों की लागती रकम से होने वाली आय का कचहरियों में कार्य करने वाले कर्मचारियों को ध्यान में रखकर निर्धारण किया जाय तो यह जान कर आश्चर्य होगा कि आय में से व्यय को घटा कर जो अतिरिक्त आय 'खालसा खजाने' में जाती थी वह नाममात्र की थी। मारवाड़ की बारह कचहरियों से प्राप्त होने वाली 'लागती रकम' की आय १८२१ में केवल ५०७१३१ रु० और १८३८ में २१२५०० रु० हुई। हवाला के गाँवों से कुल आय २२७२०० रु० हुई। वार्षिक ४३९७०० रु० की इस समस्त आय के विरुद्ध केवल उन लोगों के वेतन पर जिन्हें 'महीनादार' कहते थे, २,६०,२०६ रु० वार्षिक व्यय होता था। इसके अतिरिक्त, परगनों में अन्य विविध मदों पर ६२,१३६ रु० ६ आने वार्षिक व्यय होता था। इसके साथ परगनों में न्यायिक कर्मचारियों पर ८,८३७ रु० वार्षिक व्यय होता था। इसके अतिरिक्त, ७२१९५ रु० की रकम 'हवाला खास' के कर्मचारियों पर व्यय हो जाती थी। इस प्रकार परगना तथा कचहरी प्रशासन पर ४,३३,४०१ रु० वार्षिक व्यय हो जाता था। यदि हम इस रकम को 'हवाला खास' और कचहरियों की 'लागती रकम' की कुल आय में से घटा दें तो जो राजकोषीय प्राप्ति अतिरिक्त राजस्व के रूप में खालसा खजाना में पहुँचती थी वह केवल ६६९९ रु० थी। इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान देने की है कि ऊपर लिखे आय और व्यय के आँकड़ों में उन गाँवों की वह आय जिनसे अधिकांश मुत्सद्दियों को अर्थ प्रदान किया जाता था और वह व्यय जो उनके वेतन आदि पर किया जाता था सम्मिलित नहीं है।[६५]

जागीर क्षेत्र में लाग-बाग :

ज़ागीरदार उन लोगों पर जो उनके ठिकाने में रहते थे जो लागें लगाते थे उनकी तुलना में हकूमत की लागें नगण्य थीं। वे हकूमत की लागों से संख्या में बहुत अधिक होती थीं और उनका कृषि में लगी हुई जनसंख्या पर बहुत भारी भार था। कतिपय अत्यन्त क्षोभकारी लागें जो अत्यन्त अलोकप्रिय हो गई थीं, 'खारखार', 'काँसा', 'शुकराना', 'घुघरी', 'ल्हास', 'मापा', 'हल' और 'छवाली' थीं। 'खारखार लाग' के अनुसार जागीरदार को यह अधिकार था कि वह मोठ की फसल को बोने और

६४. ५ मार्च १८४१ का, लडलो का सदरलैंड को पत्र, आर० ए० जोधपुर फाइल, संख्या ५

६५. संवत् १८८२ वैशाख शुक्ल पक्ष की चौथ की शम्भुदत्त की अर्ज़ी : अर्ज़ी बही, संख्या ३

काटने के समय और 'जाड़ों' में घास काटने के लिए बिना कोई मजदूरी दिए किसानों से बेगार ले सकता था। यदि किसान बेगार की सेवा नहीं देता था तो उसे जागीरदार को एक मजदूर की मजदूरी के बराबर नकद क्षतिपूर्ति करनी पड़ती थी। जितने दिन वह काम करने नहीं आता था उतने दिन की मजदूरी, गाँव में प्रचलित दर से, हिसाब लगा कर, उसे नकदी में जागीरदार को चुकानी पड़ती थी। 'काँसा लाग' के अनुसार ठिकानेदार को अधिकार था कि उसके ठिकाने में रहने वाला व्यक्ति विवाह के समय उसे (ठिकानेदार को) तथा उसके अनुयायियों को या तो भोज के लिए निमंत्रित करे या निश्चित संख्या में पकवान के परोसे जिसे 'काँसा' कहते थे दे, अथवा 'काँसा' के बराबर नकदी भेंट करे। अन्य शब्दों में वह एक प्रकार से भोज के लिए अनिवार्य आमत्रंण का अधिकार था। मकानों में प्रकाश और हवा आने के लिए खिड़कियाँ और झरोखे निकालने के लिए 'शुकराना' लिया जाता था। 'घुघरी लाग' सिंचित खेतों के किसानों से भौमियों द्वारा खेतों की देखभाल तथा रखवाली करने के बदले में ली जाती थी। 'ल्हास लाग' के द्वारा जागीरदारों को एक अधिकार प्राप्त था जिससे वे आवश्यक संख्या में गाँववालों को बाध्य कर सकते थे कि वे सामूहिक रूप से ठिकाने के लाभ के लिए घास काटने, मोठ की फसल काटने, खेतों की मेंड बाँधने तथा इमारत का सामान आदि लाने के रूप में व्यक्तिगत सेवा करें। सेवा करने के दायित्व के साथ जागीरदार के व्यय पर भोजन-प्राप्ति का अधिकार जुड़ा हुआ था और जागीरदार द्वारा अपेक्षित सेवा के न कर सकने की दशा में उसको नकदी में क्षतिपूर्ति कराने का दायित्व भी था।[६६]

'मापा' के अन्तर्गत बिक्री पर लिए जाने वाले कर आ जाते थे। 'हल लाग' एक प्रकार से दण्डात्मक लाग थी। प्रदेश में पूर्व स्थापित प्रथा के अनुसार उन लोगों को जो खालसा की भूमि के विरुद्ध उस सूखी अर्थात् असिंचित भूमि पर खेती करना पसंद करते थे जो जागीर में थी या जिस पर कोई लगान नहीं देना पड़ता था अर्थात् जिस पर उनका लगान-मुक्त अधिकार था 'हललाग' देनी पड़ती थी। वह लाग प्रत्येक परिवार पर एक हल की दर से लगाई जाती थी, फिर चाहे परिवार के पास दो या उससे अधिक हल क्यों न हों। 'मवाली लाग' सिंचित भूमि पर एक जोड़ी हल से खेती करने पर लगाई जाती थी। जब खेती दो या अधिक बैलों की जोड़ी से की जाती थी तब 'मवाली लाग' जितने बैलों की जोड़ी से खेती की जाती थी उतने बैलों की जोड़ी के हिसाब से लगाई जाती थी। खरदा' प्रतिवर्ष निर्धारित एक वार्षिक कर था। प्रतिवर्ष ठिकाना गाँव के पंचों के परामर्श से कर की रकम

६६. विल्डर का आक्टरलोनी को पत्र, २२ जुलाई १८२२, आर० ए० फाइल, संख्या २

ठीक-ठीक निश्चित कर देता था। यह कर ढ़ोलियों और सरगरों-जैसी कुछ निम्न श्रेणी की जातियों को छोड़कर कृषि करने वालों तथा गैर-कृषि कर्म करने वालों दोनों पर उनकी हैसियत के आधार पर लगाया जाता था।[६७]

जागीर क्षेत्र में खेती करने वाले कृषकों को हासिल के अतिरिक्त चाकरी लागें और चुंगी लागें भी देनी पड़ती थीं। उन दोनों के लिए ठिकानेदार मापा या ठेका दे देते थे। ठिकाने के कोट के चाकर बलपूर्वक बिना गहाया हुआ या साफ किया हुआ अनाज का 'कोट्टा' या भार उठा ले जाते थे। इसके ऊपर धर्मादा और थाड़ा लागें थी। गैर-कृषि जनसंख्या को भी कुछ लागें देनी पड़ती थीं, यद्यपि वे भिन्न प्रकार की होती थीं। जैनियों को 'अहिंसा' लागें देनी पड़ती थीं। कुम्हारों को ठिकाने की सेवा में मिट्टी के बर्तन, खपरैल छाने के लिए केलू और दिवाली पर दीपक देने पड़ते थे। परन्तु उनको 'झुम्पी' और 'डंड' लागें देने से मुक्त कर दिया गया था, जिन्हें जाटिया तथा अन्य कारीगर सम्मिलित रूप से देते थे। कुछ गैर कृषक मजदूरों से उन्हें बिना कुछ पारिश्रमिक दिए हुए, संदेश तथा वस्तुएँ ले जाने का काम लिया जाता था। भाँभी, लुहार, खाती, सुनार, छींपा, खटीक, नाई, दर्जी और लगभग सभी कारीगरों तथा श्रमजीवियों को 'झुम्पी' और 'डंड' के अतिरिक्त किसी न किसी रूप में कोई बेगार देनी ही पड़ती थी।[६८]

जो लोग किराये पर सवारी चलाने का काम करते थे उन्हें प्रति गाड़ी अथवा ऊँट के बोझ पर एक आना की दर से 'छीला लाग' देनी पड़ती थी। घास मारी एक रुपये दस आना की दर से देनी पड़ती थी। बैलों की प्रति जोड़ी ६ पाई और प्रति भैंस ५ आना ६ पाई के हिसाब से कर लिया जाता था। 'मापा' के रूप में 'मापा-दान' वसूल करने के लिए एक 'मापायत' को ठेका दे दिया जाता था। वह आयात और निर्यात की वस्तुओं पर शुल्क वसूल करता था। कुछ ठिकानों में सभी वस्तुओं के मूल्य पर ४ रु० २ आने प्रति सौ रुपये की दर से 'मापा' वसूल किया जाता था, परन्तु ऊन पर वह ५ रु० २ आना सैंकड़े की दर से वसूल किया जाता था। 'मापा' की दर दो रु० दो आने 'मापा' के रूप में और एक रुपया रथ पर होने के कारण मिला कर ली जाती थी। वस्तुओं की बिक्री पर एक रुपया की दर से 'मापा' की लाग लगाई जाती थी जोकि परदेशी खरीदार से ली जाती थी। यह लाग उस माल की बिक्री पर भी ली जाती थी जो आढ़तियों द्वारा मारवाड़ के अन्दर या बाहर से

---

६७. विल्डर का आक्टरलोनी को पत्र २२ जुलाई १८२२ आर० ए० फाइल, संख्या २

६८. २४ अगस्त १८३१ का केवेन्डिश का मैकनाटन को पत्र, पुराना जोधपुर फाइल, संख्या ५, आर० ए० १

आयात किया जाता था।[६९]

गैर-कृषि आय :

गैर-कृषि आय मुख्यतः परिवहन शुल्क, जिसे पारिभाषिक भाषा में 'सायर' कहते थे, नमक की आय और अन्य विविध करों से होती थी। 'सायर' के अन्तर्गत कपास, तम्बाकू, अनाज, ताम्बूल आदि पर लगाए गए कर सम्मिलित होते थे। वस्त्र उत्पादन और उसकी बिक्री पर शुल्क, गाड़ियों पर कर, दूकानदारों पर कर, बाजार की उगाही, जुर्माना, भाँग, तथा अन्य मादक वस्तुओं की बिक्री के लायसेंस से मिलने वाली आय आदि सब 'सायर लागतें' संख्या में अनेक थीं और विभिन्न नामों से पुकारी जाती थीं। चार्ल्स ट्रैवीलियन ने इन करों का अध्ययन किया था। उसने इनके सम्बन्ध में कहा था, "प्रश्न यह नहीं था कि किस वस्तु पर कर था, वरन् प्रश्न यह था कि किस वस्तु पर कर नहीं था।"[७०]

नीचे दी हुई सारणी उन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कतिपय वस्तुओं का दिग्दर्शन कराती है जिन पर 'सायर' कर वसूल किया जाता था। जिस दर से कर लगाया जाता था वह (दर) भी प्रत्येक वस्तु के सामने अंकित कर दी गई है।[७१]

सारणी ३

सायर करों तथा परिवहन शुल्कों का विवरण

क्रम संख्या		पैसार प्रतिमन आयात कर रु० आ०	निसार प्रतिमन निर्यात कर रु० आ०	बहाती खान राज्य क्षेत्र से गुजरने वाले माल पर प्रति मन कर रु० आ०
	(अ) कृषि पदार्थ :			
१.	किराना जिसमें १५८ वस्तुएँ थी।	१—५	१—५	०—१४
२.	तेल :			

६९. वि० सं० १८८२ वैशाख शुक्ल पक्ष की नवमीं की शम्भुदत्त की मानसिंह को अर्ज़ी

७०. २४ मई १८२८ का ट्रैवीलियन का अलवेज को पत्र, जोधपुर ५, अजमेर रेकार्ड

७१. वही।

१	२	३	४	५
	(क) ३ वस्तुएँ	१—४	१—४	०—८
	(ख) ४ वस्तुएँ	१—५	१—५	०–१४
३.	तिल	०—५	०—५	०—५
४.	महुआ	०—८	०—८	०—८
५.	चावल	०–१०	०–१०	०–१०
६.	तम्बाकू	१—२	१—२	१—०
७.	सरसों	०—६	०—६	०—५
८.	नील	४—८	४—८	२—०
९.	सज्जी	०—६	०—६	०—५
१०.	अजवान	०–११	०–११	कुछ नहीं
११.	बिनौला	०—४	०—४	०—४
१२.	मेवा	१–१०	१–१०	१—०
	(ब) चीनी :			
१३.	गुड़	०–१२	०–१२	०—३
१४.	खांड चीनी	१—८	१—८	०—४
१५.	मींजा	०–१२	०–१२	०—३
१६.	खांड मुस्ती	०–१२	०–१२	०—३
	(क) मादक पदार्थ :			
१७.	गाँजा	४—८	४—८	३—०
१८.	चरस	४—८	४—८	३—०
१९.	अफीम	८०—०	८०—०	८०—०
	(ख) धातुएँ :			
२०.	धातुएँ ४ प्रकार की	१—४	२—४	०–१२
२१.	धातुएँ २ प्रकार की	१–१२	१–१२	०–१२
२२.	धातुएँ २ प्रकार की	१—४	०–१२	०–१२
	(ग) वस्त्र (भारतीय) :			
२३.	मोटा वस्त्र	२—०	२—०	१—०
२४.	देशी डोरा	२—०	२—०	१—०

१	२	३	४	५
२५.	ऊनी वस्त्र	२—०	२—०	२—०
	(घ) वस्त्र (विदेशी) :			
२६.	सूती वस्त्र	६—०	६—०	१—०
२७.	खरी जरी ६ वस्तुएँ	२०—०	२०—०	२०—०
२८.	खरी जरी ५ वस्तुएँ	१५—०	१५—०	१५—०
२९.	नकली जरी	१०—०	१०—०	१०—०
३०.	डोरा	६—०	६—०	६—०
	(ङ) पशुओं से उत्पन्न वस्तुएँ :			
३१.	हाथी के दाँत	१२—०	१२—०	१२—०
३२.	रंगी हुई खालें	१—१	१—१	०—१४
३३.	कच्ची खालें	०—१०	०—१०	०—८
३४.	घी	१—८	१—८	०—८
३५.	ऊन	१—४	१—४	१—०
	(च) विविध वस्तुएँ :			
३६.	करगोटा	१६०—०	१६०—०	४०—०
३७.	मोती लड़ी	८०—०	८०—०	२०—०
३८.	कलाबत्तू (नकली)	२०—०	२०—०	२०—०
	कलाबत्तू (असली)	४०—०	४०—०	४०—०
३९.	कबारा	०—४	०—४	०—३
४०.	कस्तूरी	८००—०	८००—०	८००—०
४१.	केसर	३००—०	३००—०	३००—०
४२.	बोरा	०—४	०—४	०—४
४३.	चंदन की लकड़ी	१०—०	१०—०	१०—०
४४.	४१ वस्तुएँ	१—५	१—५	०—१४
४५.	१० वस्तुएँ	०—५	०—५	०—५
४६.	६ वस्तुएँ	०—३	०—३	०—३
४७.	९ वस्तुएँ	०—२	०—२	०—२
४८.	एक वस्तु	०—१	०—१	०—१

१	२	३	४	५
	(छ) पशु और वाहन :			
४९.	हाथी	१५—०	१५—०	१५—०
५०.	घोड़ा	५—०	५—०	५—०
५१.	ऊंट	३—०	३—०	३—०
५२.	भैंसा	०—४	०—४	०—४
५३.	बैल	०—८	०—८	०—८
५४.	गदहा	०—३	०—३	०—३
५५.	गाय भैंस प्रति १०० पर	१०—०	१०—०	१०—०
५६.	रथ (प्रति रथ)	५—०	५—०	५—०
५७.	पीनस या पालकी	१—०	१—०	१—०
५८.	बैलगाड़ी (प्रति गाड़ी)	०–१२	०–१२	०–१२

इन शुल्कों में परिवर्तन हो सकता था विशेषकर उस समय जब लुटेरे शत्रु आक्रमण करते, नागरिक संघर्ष उमड़ पड़ता या दुर्भिक्ष पड़ जाता था। बाहर से आयात अथवा देश में उत्पन्न किए जाने वाले और एक जिले से दूसरे जिले में ले जाए जाने वाले अनाज पर लगने वाले सभी शुल्क इनमें सम्मिलित थे।

ब्राह्मण, चारण, भाट, जागीरदार, और राज्य-अधिकारी 'सायर' की लागतों के भुगतान से मुक्त थे। उनको (लागतों को) वसूल करने की कोई उचित व्यवस्था नहीं थी। साधारणतया उनको वसूल करने की व्यवस्था सबसे ऊँची बोली लगाने वाले को 'इजारा' की आज्ञा प्रदान करके की जाती थी। कानूनगो उन्हें वह सूची दे देते थे जिनमें यह लिखा रहता था कि विभिन्न वस्तुओं पर कितना कर लगाना चाहिए। इजारेदार किन वस्तुओं पर कितनी दर से कर वसूल करे इसके लिए न तो कोई निश्चित और प्रामाणिक दरों की अनुसूची ही विद्यमान थी और न कुल कर निर्धारण की रीति ही निश्चित थी। इस असंतोषजनक परिस्थिति के कारण १८२३ में अगणित उलझनें उत्पन्न हो गईं, जबकि अधिकांश इजारेदार निर्धारित रकम वसूल करने में असफल रहे। इस कारण वे दिवालिया हो गए और परिणामस्वरूप १८२४ में साठ इजारेदारों में से बियालीस इजारेदार भाग गए और छः ने अनुचित साधन अपनाए। सायर की लागतों की वसूली में गड़बड़ हो जाने के कारण १८२४ में राज्य के खजाने को चार लाख रुपये से अधिक का घाटा हुआ। इस खेदजनक

परिस्थिति के कारण १८३३ में दरबार को सायर शुल्कों की वसूली करने के लिए दारोगा और दाणियों को नियुक्त करने हेतु विवश होना पड़ा। परन्तु कर लगने वाली वस्तुओं की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती रहने पर भी 'सायर' से होने वाली आय तत्पश्चात् भी २८९६०० रु० तक ही सीमित रही।[७२] यह राशि १८२४ की वसूली से बहुत कम थी, जब ३४९००० रु० की वसूली हुई थी।[७३] १८२१ में सायर से होने वाली आय की रकम ४५४१०२ रु० थी, किन्तु वह १८३९ में गिरकर २८९६०० रु० रह गई। वह पिछले आँकड़ों को देखते हुए जो कि आगे सारणी संख्या चार में दिए गए हैं, अत्यन्त अपर्याप्त प्रतीत होती है।[७४]

सर्वप्रथम १८२३ में सिंघवी फतहराज ने और उसके उपरान्त १८३३ में शम्भुदत्त ने अपने राज्य क्षेत्र में से होकर गुजरने वाली वस्तु अथवा व्यापारिक माल पर लिए जाने वाले चुंगी कर को वसूल करने के तंत्र को व्यवस्थित करने का भरसक प्रयत्न किया।

सारणी ४

विभिन्न सायरों से होने वाली आय का विवरण

क्रम संख्या	सायर	आय रुपयों में
१.	जोधपुर	७६,०००
२.	नागौर	७५,०००
३.	डीडवाना	१०,०००
४.	परबतसर	४४,०००
५.	मेड़ता	११,०००
६.	कोलिया	५,०००
७.	जालौर	२५,०००
८.	पाली	७५,०००
९.	जसौल और बालोतरा के मेले	४१,०००
१०.	भीनमाल	२१,०००
११.	सांचोर	६,०००
१२.	फलौदी	४१,०००
	योग—	४३००००

७२. वि० सं० १८८२ भाद्रपद कृष्ण पक्ष की द्वितीया की शम्भुदत्त की अर्ज़ी। अर्ज़ी बही संख्या ३, मानसिंह के राज की ख्यात, एफ ४६८

७३. वि० सं० १८८१ की सायर की जमाखर्च बही,

७४. टॉड ऐनल्स, भाग २, पृष्ठ १३२

पारवाहन शुल्क की वसूली के लिए फतहचन्द ने प्रत्येक परगने को 'चकलों' में बाँट दिया और प्रत्येक चकले में अनेक चौकियाँ थीं। प्रत्येक बार जब कोई वस्तु एक चकले से दूसरे चकले में जाती थी तब उस पर पारवाहन शुल्क देना पड़ता था। प्रत्येक वस्तु जो चकले से होकर गुजरती थी दारोगा उसकी जाँच करता था और वह एक 'रवन्ना' दे देता था जिसको दिखाने पर माल शेष चौकियों से बिना पुन: कर दिए निकल सकता था। दूसरे चकले में प्रवेश करने पर व्यापारी को पुन: नया कर देकर दूसरे चकले के दारोगा से नया रवन्ना लेना पड़ता था। इस प्रकार जो पारवाहन शुल्क लिया जाता था उसे 'राहदारी' कहते थे।[७५] किन्तु जो सुधार शम्भुदत्त ने किए थे उनमें से बहुत से सुधारों को १८३५ के उपरान्त उस समय तिलांजली दे दी गई जब भीमनाथ और लक्ष्मीनाथ के अभिकर्त्ताओं (एजेंटों) ने पुन: उस इजारा पद्धति को प्रचलित किया जिसके परिणामस्वरूप गड़बड़ी और भ्रान्ति फैलना अवश्यम्भावी था।[७६]

रायपुर के समीप धान (चावल) की बड़ी मात्रा में खेती होती थी। कच्ची अफीम पाली भेजी जाती थी जहाँ वह शुद्ध की जाती थी और उसकी टिकियाँ बनाई जाती थीं। वे या तो बम्बई भेज दी जाती थीं अथवा मारवाड़ में उपभोग में लाई जाती थीं। निर्यात, पारवहन, तथा वांड शुल्क से दरबार को जो आय प्राप्त होती थी वह बहुत अधिक थी।[७७]

नमक की झीलों से प्राप्त होने वाली आय भी निस्संदेह राजस्व तथा व्यापारिक आय में गिरावट होने पर कम हो गई। मानसिंह के समय में नमक की आय को राजनीतिक कारणों ने भी बहुत अधिक प्रभावित किया था। फिर भी वह आय की सबसे अधिक निश्चित शाखा मानी जाती थी। मारवाड़ का नमक 'हिन्दुस्तान' के प्रत्येक प्रदेश को निर्यात होता था, अतएव उसकी बिक्री से जो आय होती थी वह अधिक होती थी।

किन्तु नमक से भूतकाल में जितनी आय प्राप्त होती थी उसका यदि उस आय से तुलनात्मक अध्ययन किया जाए जो मानसिंह के राजत्वकाल में वसूल की गई थी तो यह संदेह से परे प्रमाणित हो जाएगा कि अशान्ति और आन्तरिक संघर्ष तथा

---

७५. वि० सं० १८८४ के जमाखर्च के कागजात। फाइल संख्या १५/१ डी० के०

७६. २५ मार्च १८४१ का लडलो का सदरलैंड को पत्र, पुरानी जोधपुर फाइल, संख्या ५, आर० ए०

७७. १४ अक्टूबर १८३० का मारवाड़ के मामलों के बाबत कागज, संख्या ७, संख्या ३–८ एफ० एस०; सदरलैंड का लडलो को २२ सितम्बर १८४१ का पत्र, कान्स ८ नवम्बर १८४१, संख्या १२२ एफ० पी०

गड़बड़ी के कारण पहले जितनी नमक की आय वसूल की जाती थी उसकी आधी ही राज्य वसूल कर पाता था।[७८]

सारणी ५

दरीबा से होने वाली आय के तुलनात्मक विवेचन का विवरण

क्रम संख्या	नाम दरीबा	टॉड द्वारा दी गई पूर्व शासन-काल में प्राप्त आय	१८०० में आय जमा खर्च फाइल सं. ४३ डी. के.	१८३८ में आय ख्यात मानसिंह, एफ० ४६८
१.	सांभर	२००००००	७०००००	१००००००
२.	फलौदी	१००००००	प्राप्त नहीं	५०००
३.	डीडवाना	१५५०००	५००००	७०५००
४.	नावां	१००००००	७०००००	१५००००
५.	पचभद्रा	२००००००	१००००	१००००००
		७५५०००		४२५५००

'आबकारी' दरबार को कोई विश्वसनीय आय का स्रोत प्रदान नहीं करती थी, क्योंकि शराब पर या तो बहुत कम कर था या बिल्कुल नहीं था। महाराजा विजयसिंह ने शराब का बनाना बिल्कुल बन्द कर दिया था। परन्तु यह आज्ञा अधिक दिनों तक लागू नहीं रही। इसके उपरान्त भी शराब पर बहुत हल्का कर लगाया गया पर उस स्रोत से होने वाली आय केवल नाममात्र की थी।

मानसिंह के शासनकाल में राज्य में कोई राज्य का खजाना नहीं था। प्रचलन यह था कि अजमेर, जयपुर, डीडवाना, पाली, जोधपुर तथा अन्य स्थानों के बैंकरों (साहूकारों) से ऋण द्वारा प्राप्त होने वाली आय को पेशगी (पहले) व्यय कर दिया जाता था और विभिन्न स्रोतों से प्राप्त होने वाली वास्तविक आय उन साहूकारों को दे दी जाती थी। राज्य सरकार की ओर से व्यय करने वाले विभिन्न विभाग समय-समय पर इस अग्रिम धन के हिसाब में से व्यय पूर्ण करने के लिए रकम उठा लेते थे और इस प्रकार राज्य को ब्याज और बट्टा दोनों ही देने पड़ते थे।[७९] कभी कभी मानसिंह को दो रुपये प्रति सैकड़ा प्रति मास की अत्यन्त ऊँची दर से ब्याज देना

७८. मानसिंह के राज की ख्यात, एफ० ४६८

७९. वि० सं० १८८४ के जमा खर्च के कागज, फाइल संख्या १५/१ डी के, ११ जुलाई १८२८ का कैवेन्डिश का कोलब्रुक को पत्र, संख्या २५ एफ पी

पड़ता था।[८०] इस प्रकार की व्यवस्था से उत्पन्न होने वाली ऋणग्रस्तता का भार इतना अधिक हो जाता था कि बहुत से ऋण वित्तीय वर्ष के समाप्त होने पर भी नहीं चुक पाते थे; और जो शेष रह जाते थे वे हिसाब में जमा (आकलन) किए जाकर नए वर्ष के लिए नए ऋण के रूप में लिख लिए जाते थे और उनको चुकाने हेतु अतिरिक्त आय की प्राप्तियों के लिए साहूकारों को निर्दिष्ट करना पड़ता था। १८२६ में मानसिंह ने विभिन्न साहूकारों से ग्यारह लाख रुपये उधार लिए और आय की उन प्राप्तियों से जो पहले से ही साहूकारों को निर्दिष्ट कर दी गई थीं, १८२६ के अन्त तक केवल ६,२५,७०० रु० १० आने ही उस ऋण की मद में चुक पाये और ४७४२९९ रु० ६ आने का ऋण शेष रह गया।

सारणी ६

साहूकारों को विभिन्न स्रोतों से मिलने वाली आय का अभिहस्तांकन

क्रम संख्या	आय के वे स्रोत जिनकी वास्तविक आय अभिहस्तांकित की गई।	सन् १८२७–२८ (वि० सं० १८८४–८५) के वर्ष में रकम जो कि अभिहस्तांकित की गई। रु० आ० पा०
१.	बिसून्द	४६५८–६–३
२.	परगना और कचहरियाँ	१४४७६–१–३
३.	दरीबा	१५१७३४–०–०
४.	हवाला	४७०६८–१२–३
५.	नजर	४४३०–०–०
६.	हुक्मनामा	३७९०७–०–०
७.	नजराना	६८९५३–१४–९
८.	पेशकशी	७६३०७–०–६
९.	तागीरात	१०९५२–८–०
१०.	समाईजमा	४७८१–११–०
११.	बिना लागी जमा	५३०३०–०–०
		४७४२९९–६–०

८०. वि० सं० १८८८ आषाढ़ कृष्ण पक्ष की मानसिंह की आयसदेवनाथ को अर्जी, अर्जी बही, संख्या ३, एफ २८; वि० सं० १८९६ का बही फौज तालुकारो रोजनावोन।

उपर्युक्त जो ऋण शेष रह गए थे उनको चुकाने के लिए निम्नाङ्कित आय की मदों के सामने जो रकम लिखी हुई है उसकी वास्तविक प्राप्ति उन साहूकारों को १८२७–२८ के वर्ष में अभिहस्तांकित कर दी गई।[८१]

जिन साहूकारों से उसने १८३८ में ऋण लिया था उनकी संख्या बीस थी; और जिन ऋणों का २५ अक्टूबर १८२७ तक चुकाना शेष रह गया उनका विस्तृत विवरण उनकी रकम के साथ नीचे दिया गया है।[८२]

सारणी ७

उन साहूकारों की सूची जिन्हें आय अभिहस्तांकित की गई

क्रम संख्या	साहूकार का नाम	प्रत्येक को चुकाई जाने वाली रकम रु०	आ०	पा०
१.	पंडित बाजीराव	१०१५७६	४	०
२.	सेठ जोरावरमल दानमल	१७६६१०	३	६
३.	सिंघवी हमीरमल	५०८४८	६	३
४.	सेठ विशनचंद हरचंद	३५७८८	०	०
५.	सर्राफ बानेचंद	२५०००	०	०
६.	सेठ पूनमचन्द राजाराम	३३७६८	०	०
७.	सिंघवी कमलनयन ज्ञानचन्द	१०५०६	०	०
८.	तेरह अन्य	४०२०२	८	३
	योग	४७४२९९	६	०

सभी वित्तीय लेन-देन एक 'चलार्थ' के द्वारा होता था जिसमें भिन्न नाम और मूल्य के सिक्के होते थे। राज्य में दो टकसालें थीं, एक पाली में और दूसरी कुचामन में थी। वहाँ विजयशाही और इकतिसंदा रुपए ढ़ाले जाते थे। सिक्के सोने, चाँदी और ताँबे के होते थे। इकतिसंदा रुपये कुचामन की टकसाल में ढ़ाले जाते थे। मानसिंह के राजत्वकाल में पाली में १८०८ में, सोजत में १८०७ में और कुचामन में १८०८ में नई टकसालें स्थापित की गई। विजयशाही और इकतिसंदा रुपयों के अतिरिक्त अन्य राज्यों के आगे लिखे सिक्के भी मारवाड़ में उन्नीसवीं शताब्दी में चलन में थे—

८१. वि० सं० १८८४ के जमाखर्च के कागज, फाइल संख्या १५/१, डी के
८२. वही।

(१) जैसलमेर का 'अश्वैशाही' पश्चिमी जिलों में चलता था।
(२) जयपुर का 'झाड़शाही' उत्तरपूर्वी जिलों में चलता था।
(३) उदयपुर का 'चंदौड़ी' समारोहों के अवसर पर काम में आता था।
(४) उदयपुर का 'मिलाड़ी' दक्षिण और दक्षिण-पूर्व के पर्वतीय प्रदेश में चलता था।[८३]

टकसालों से महाराजा मानसिंह के राजत्वकाल में ९,८०० रु० की आय होती थी, जिसका विवरण निम्नलिखित है।[८४]

१. जोधपुर २००० रु०
२. मेड़ता ३०० रु०
३. नागौर ५०० रु०
४. पाली ६००० रु०
५. सोजत १००० रु०

कुल योग ९८०० रु०

विविध स्रोत :

अन्य लघु स्रोतों में 'ड्योढी दस्तूर' की प्राप्ति मुख्य थी, जिससे वर्ष में कुल आय बारह हजार रुपये होती थी और उद्यानों से दो हजार रुपये की वार्षिक आय होती थी। विविध स्रोतों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्रोत जागीरदारों से प्राप्त होने वाले कर तथा नज़राना से सम्बन्धित था। जागीरदारों को 'नजर', 'हुक्मनामा', 'तागीरात', 'रेख', 'पेशकशी', 'नज़राना' और 'बेतलबी' शुल्क तथा तलबाना देने पड़ते थे।[८५] वास्तविकता यह थी कि मारवाड़ की ८३ प्रतिशत भूमि जागीरदारों के द्वारा प्रशासित होती थी और जागीरदार अपने ठिकानों से प्रतिवर्ष जो सम्पूर्ण आय प्राप्त करते थे उसका अनुमान लगभग पचास लाख रुपये लगाया गया था। यद्यपि टॉड को इस अनुमान की यथार्थता में संदेह था तथापि जागीरों की सम्पूर्ण आय किसी भी प्रकार तीस लाख रु० वार्षिक से नीचे नहीं थी। यद्यपि जागीरदार कभी भी उगाही करने में, विशेषकर हासिल और अनेक प्रकार की विविध लागतों की वसूली में, अपने प्रयत्नों में शिथिलता नहीं आने देते थे तथापि वे दरबार को उपकर तथा अन्य लागतें देने में अत्यन्त अनिच्छुक थे।[८६] यही कारण था कि १८३९ में मानसिंह को

८३. ५ मई १८४१ का लडलो का सदरलैंड को पत्र, जोधपुर ५, अजमेर रेकार्ड आर० ए०। बही इजारेदारान री लेखा री विगत, वि० सं० १८९६
८४. मानसिंह जी के राज की ख्यात, एफ ४६८
८५. मानसिंह जी के राज की ख्यात, एफ ४६८
८६. टॉड, राजस्थान-भाग २, पृष्ठ १३२

'हुक्मनामों' से केवल ६० हजार रु०, 'गज़र' से चार हजार रु०, 'पेशकशी' और 'नजराना' से ५० हजार रु०, 'बेतलबी' शुल्क से २५ हजार रु०, और 'तलबाना' से २० हजार रु० प्राप्त हुए। इन कई प्रकार की वसूलियों से प्राप्त होने वाली आय कभी भी ढ़ाई लाख रुपयों से अधिक नहीं हुई।[८७] जागीरदारों की इन देयों को चुकाने की अनिच्छा के कारण दरबार और उसके सामन्तों में निरन्तर मनमुटाव बना रहता था। दरबार के अधिकारी बकाया की लम्बी सूची जिसमें वर्णित रकम का जागीरदारों को भुगतान करना चाहिए था, लिए घूमते फिरते थे, किन्तु जागीरदार अगणित बहाने बना कर उनका भुगतान करने से बचते रहते थे। जब उनको बहुत दबाया जाता था तब वे जंगल में भाग जाते थे और अविवेकतापूर्ण लूटपाट करने लगते थे। जब उनकी जागीर जब्त कर ली जाती थी तब वे ब्रिटिश सरकार से हस्तक्षेप करने की प्रार्थना करते थे और किसी-किसी अवसर पर असंतुष्ट जागीरदारों का प्रबल संगठन खड़ा कर लेते थे।[८८]

राज्य की राजकोषीय आय अनेक प्रकार की व्यय की मदों को पूरा करने के काम में आती थी, जिसका सुविधा की दृष्टि से नीचे दिए अनुसार वर्गीकरण किया जा सकता है—[८९]

(अ) राजकीय गृह का व्यय जिसके अन्तर्गत महाराजा का निजी व्यय और वह धन, जो ड्योढ़ियों की देखभाल और कारखानों पर व्यय किया जाता था, सम्मिलित थे।

(आ) राजधानी में चलने वाले विभिन्न दफ्तरों तथा अदालतों पर होने वाला व्यय।

(क) कार्यालयों की व्यवस्था पर अप्रत्याशित व्यय।

(ख) परगना खर्च अर्थात् जिलों के दफ्तरों पर होने वाला व्यय।

(ग) फौज खर्च—स्थायी सेना के रख-रखाव पर होने वाला व्यय।

व्यय के मदों की जो सूची ऊपर दी गई है वह समूचे व्यय के ढाँचे का प्रतिनिधित्व नहीं करती। व्यय दो भिन्न प्रकार से किया जाता था। ऊपर जो सूची दी गई है वह व्यय के केवल उन मदों को व्यक्त करती है जो खास खज़ाने से किए जाते थे। दूसरी पद्धति यह भी प्रचलित थी कि कुछ प्रशासनिक अभिकरणों और संस्थाओं

---

८७. मानसिंह जी के राज की ख्यात, एफ ४६८

८८. २६ जनवरी १८३९ का अलवेज का टारैंट को पत्र, कान्स २० फरवरी १८३९, संख्या ५३, एफ पी

८९. २५ मार्च १८४२ का सदरलैंड का गवर्नर जनरल को पत्र, जोधपुर ५, अजमेर रेकार्ड।

को खालसा से प्राप्त होने वाली आय सीधे ही प्रदान कर दी जाती थी। ये अभिकरण तथा संस्थाएँ ऊपर दी हुई सूची में सम्मिलित नहीं हैं। अतएव विभिन्न प्रकार की अनेक मदों पर होने वाला व्यय कचहरियों और हुकूमतों की आय से सीधा ही कर दिया जाता था। व्यय की इन मदों के सम्बन्ध में अधिकतर कचहरियों, हुकूमतों, सायरों, फौज आदि के कर्मचारियों के वेतन तथा अन्य उपलब्धियों से होता था। अन्य महत्त्वपूर्ण व्यय की मदें जिनका व्यय खालसा की आय के अभिहस्तांकन द्वारा होता था, देवस्थान, खटदर्शन (षट्दर्शन) ठाकुरद्वार आदि थीं।

समस्त नाथ चैत्यों या मठों को भूमि की मालगुजारी के सीधे अभिहस्तांकन द्वारा खालसा द्वारा व्यय के लिए धन प्रदान किया जाता था। धार्मिक विभागों अथवा संस्थाओं के पक्ष में किए गए अभिहस्तांकनों का सम्पूर्ण मूल्य लगभग पाँच लाख रुपये के था।[९०] इसी प्रकार ज़नानी ड्योढ़ी के रख-रखाव और व्यवस्था हेतु २,७०,००० रुपये के मूल्य के अभिहस्तांकन किए जाते थे। 'बैस' और 'शागिर्द-पेशा' के अभिहस्तांकन एक लाख रुपयों से अधिक के थे। इसी प्रकार सेना के अधिकारियों को मासिक वेतन जिस पर बहुत बड़ी रकम व्यय हो जाती थी, के अतिरिक्त १,२३,००० रुपयों के खालसा पर अभिहस्तांकन मिले हुए थे। मुत्सद्दियों को एक लाख रुपयों के मूल्य की भूमि पर, तथा चबूतरों और कचहरियों के कर्मचारियों को लगभग १,२०,००० रुपयों के मूल्य के अभिहस्तांकन मिले हुए थे। राजवियों तथा खास पासवानों को दिए गए अभिहस्तांकनों का मूल्य एक लाख रुपये था। इसी प्रकार धार्मिक संस्थाओं को खालसा भूमि पर पाँच लाख रुपयों से अधिक के अभिहस्तांकन मिले हुए थे। राजकीय परिवार या गृहस्थी जिसमें ज़नानी ड्योढ़ी, राजवी, बैस, शागिर्द पेशा और खास पासवान आते थे, को पाँच लाख रुपये से अधिक, नागरिक राज-कर्मचारियों को २,२५,००० रु० से अधिक और सेना को १,२५,००० रुपयों से अधिक मूल्य के अभिहस्तांकन प्राप्त थे। इस प्रकार साढ़े तेरह लाख रुपये की रकम खालसा से गाँवों के अभिहस्तांकन द्वारा व्यय कर दी जाती थी। अन्य मदों पर शेष व्यय राज्य के खज़ाने से किया जाता था।[९१]

यदि खालसा पर अभिहस्तांकन द्वारा तथा राजकीय खज़ाने से होने वाले दोनों प्रकार के खर्चों को एक साथ जोड़ दिया जाय तो राज्य का व्यय तीस लाख रुपयों से अधिक हो जाता है। उसमें से आधा व्यय दान, उत्सवों, समारोहों, राजकीय परिवार

---

९०. सदरलैंड का १० अक्टूबर १८४२ का मिमो, सैक्रेटरी टू गवर्नमेंट पोलीटिकल डिपार्टमेंट, जोधपुर ५, अजमेर रेकार्ड।

९१. सदरलैंड का १० अक्टूबर १८४२ का मिमो, सैक्रेटरी टू गवर्नमेंट पोलीटिकल डिपार्टमेंट, जोधपुर ५ अजमेर रेकार्ड।

के रख-रखाव और राजतंत्र की संस्था के पोषण पर होता था, शेष आधे में से अधिकांश भाग सेना पर व्यय किया जाता था और शेष नागरिक कर्मचारी वर्ग पर व्यय होता था।[९२]

राज्य का वित्तीय ढाँचा इतना अधिक दोषपूर्ण था कि कभी-कभी खालसा की समस्त आय सबसे अधिक बोली लगाने वाले को अभिहस्तांकित कर दी जाती थी और उसको वह रकम शासक को पेशगी चुकानी पड़ती थी और वह बाद में उसे वसूल करता था। बहुधा ऐसा होता था कि शासक को राज्य के दिन-प्रतिदिन के प्रशासन को चलाने के लिए अजमेर के धनी साहूकारों से द्रव्य उधार लेना पड़ता था और उसके बदले उन्हें विभिन्न सायरों, दरीबों, हुकूमतों और कचहरियों की आय समय-पूर्व ही अभिहस्तांकित कर दी जाती थी। इस कार्यप्रणाली में अनेक भूलें होती थीं। उनमें से कुछ अत्यन्त गंभीर प्रकृति की होती थीं जो कि राज्य की अर्थ-व्यवस्था के साथ-साथ लाखों व्यक्तियों के हितों को भी प्रभावित करती थीं। ऐसी दशा में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी कि मानसिंह ब्रिटिश सरकार को दिये जाने वाले वार्षिक कर की रकम तथा सेना के वेतन एवं अन्य उपलब्धियों को चुकाने की व्यवस्था नहीं कर सका और वे शेष रहती रहीं।[९३]

राज्य के प्रशासन की आवश्यकताओं और कर-प्रणाली में परस्पर कोई सम्बन्ध दृष्टिगोचर नहीं होता था। उस समय करों को, राज्य द्वारा जनता की जो सेवाएँ की जाती थीं उनके बदले जनता द्वारा भुगतान के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता था। उसके आधारभूत कारणों की न तो व्याख्या ही की जा सकती थी और न उन्हें उचित ही ठहराया जा सकता था। मारवाड़ में भूमि ही कराधान का मुख्य स्रोत थी और ऐसा माना जाता था कि समस्त कर भूमि पर अधिकार करने अथवा उस पर खेती करने के अधिकार से उत्पन्न होते हैं और वे मालगुजारी के ही अंश हैं। इन भूमि करों को कुछ लोग नकदी में चुकाते थे और कुछ लोग वस्तुओं और सेवाओं के रूप में। भूमिकर के अतिरिक्त, राज्य में अन्य सैकड़ों कर थे। उनमें से कतिपय कर पेशों और व्यक्तियों पर होते थे। जैसे, श्रमजीवियों और हस्त-शिल्पियों (कारीगरों), ढोरों, वेश्यालयों, विवाहों, जन्म-मृत्यु और दाहसंस्कार पर। विधवाओं द्वारा हाथ-चक्की से आटा पीसने—जैसे उस छोटे कारोबार पर भी कर था जो उन निर्धन स्त्रियों के जीवन-निर्वाह का एकमात्र साधन था।

---

९२. ४ मार्च १८४१ का लडलो का पत्र सदरलैंड को, पुराना जोधपुर ५, अजमेर रेकार्ड।

९३. मानसिंह का एजेंट टू दी गवर्नर जनरल को खरीता जो २५ जनवरी १८३८ को प्राप्त हुआ। कान्स ७ मार्च १८३८, सं० २७, एफ पी।

जहाँ तक बड़े करों का प्रश्न था उनमें से कुछ तो नगरपालिका के उपकर तथा मार्ग-कर या चुंगी कर आदि थे और कुछ आयात-निर्यात शुल्क थे। उनके लगाने का कोई भी तर्कसंगत सिद्धान्त नहीं था। वे पूर्णतया हाकिम की इच्छा और जनता की कर देने की क्षमता पर निर्भर थे। जनता की कर देने की क्षमता का भूखे मरने के बिन्दु तक शोषण किया जा सकता था।

सीमा शुल्कों के अतिरिक्त लगभग सभी अन्य आरोपण 'प्रत्यक्ष कराधान' शीर्षक के अन्तर्गत आते थे। जनता के अत्यल्प साधनों पर व्युत्पातिक कर सम्बन्धी ये माँगें उन्हें व्यवसायी महाजनों का ऋणी बनने पर विवश कर देती थीं। इस प्रकार मारवाड़ के किसान अत्यधिक कराधान की दुर्दशा में रहने के लिए विवश थे। यदि प्रकृति के प्रकोप के बावजूद वे अपने परिवार के लिए सौभाग्य से कुछ बचत कर लेते थे तो राजस्व अधिकारी सदैव उसे (बचत को) ले जाने के लिए तैयार रहते थे। यह स्वाभाविक ही था कि इस प्रकार की नीति के कारण मारवाड़ में सैकड़ों गाँव उजड़ गए।

८

समाज और संस्कृति

समाज की बनावट :

मारवाड़ में समाज का स्वरूप लगभग वैसा ही था जैसा कि उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में था, यद्यपि उसमें किंचित भेद मौजूद थे। उसके संगठन का हमें उन अंग्रेज अधिकारियों के लेखों में सुन्दर विवरण प्राप्त होता है जो या तो मानसिंह के दरबार में आए थे अथवा जिनके भारत से कुछ कूटनीतिक सम्बन्ध थे। उनके लेख अभिलेखागार के अभिलेखों और साहित्यिक स्रोतों से अनुपूरित हैं और अब बड़ी मात्रा में उपलब्ध हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम अर्द्ध भाग में मारवाड़ में समाज का ढाँचा एक स्तूप के समान था। राजनीतिक जीवन की परम्परा राजतांत्रिक बनी हुई थी। शासक के व्यक्तित्व और उसके जीवनयापन के तरीकों की समाज में बहुत अधिक प्रतिष्ठा थी। शासक द्वारा किसी को कोई आदर या मान दिया जाना, जैसे कि पैरों में सोने के कड़े पहिनने की आज्ञा अथवा अन्य कोई वैसा ही आदर दिया जाना समाज में विशेष वरेण्य माना जाता था।[1]

सामाजिक श्रेणी विभाजन और जाति संरचना :

अधिकांश में समस्त समाज साधारण हिन्दू जाति के परम्परागत तत्त्वों से बना हुआ था। जातिवाद से आक्रान्त होने के अतिरिक्त उसमें विभिन्न श्रेणियाँ भी थीं। ब्राह्मण समाज में सर्वोच्च स्थान पर थे और अछूत समाज में सबसे नीचे थे। फिर भी मानसिंह के समय में सामाजिक गतिशीलता की अनुमति थी, जिसके परिणाम स्वरूप कतिपय परिवार जो अपेक्षाकृत नीची जाति के थे, अपनी राजकीय प्रतिष्ठा के अनुरूप ऊपर उठ सकते थे।[2] मारवाड़ के ब्राह्मण जो कि जोधपुर, जालौर, मेड़ता और नागौर के परगनों में बड़ी संख्या में निवास करते थे, एक वंशपरम्परागत जाति के थे जिसकी सात उपजातियाँ थीं, जैसे—श्रीमाली, साँचोर, पोकरणा, नंदवाना,

---

१. पेपर संख्या ७, मारवाड़ के मामलों के सम्बन्ध में, १४ अक्टूबर १८३०, संख्या ३—८, एफ एस

२. जैकसन : रिपोर्ट ऑन वेस्टर्न राजपूताना स्टेट्स, पृष्ठ ४१

बोहरा, छिनायत पुरोहित और पालीवाल । यद्यपि उनमें से अधिकांश ज्योतिष, कर्मकाण्ड तथा अन्य समान धार्मिक पेशों के साथ खेती करते थे तथापि उनमें से कुछ प्रशासनिक उच्चोच्च परम्परा में महत्त्वपूर्ण स्थानों पर नियुक्त थे । साधारणतया अधिकांश वकीलों, इत्तलानवीसों, ड्योढ़ीदारों, पोतेदारों, मुशरफों इत्यादि का चयन पुरोहितों, व्यासों, दाहिमाओं तथा ब्राह्मणों की अन्य समान उपजातियों में से ही किया जाता था । यह चयन मुख्यत: उनकी निष्ठा, ईमानदारी, सादगी और शिक्षा के आधार पर होता था । जनानी ड्योढ़ी (रनिवास) का प्रबन्ध उन्हीं के अधिकार में रहता था । वैवाहिक सम्बन्धों की बातचीत वे ही करते थे । वे टीका-विहाहों एवं जन्म तथा मरण के अवसरों पर धार्मिक कृत्यों की व्यवस्था करते थे । वे ही विभिन्न प्रकार के रीति-रिवाजों को मनाने की व्यवस्था करते थे, नकदी को रखते थे तथा कूटनीतिक पत्र-व्यवहार करते थे ।[3]

राजपूत समस्त जनसंख्या का एक ग्यारहवाँ हिस्सा थे । जहाँ तक उनके जीवन-यापन के स्रोतों का सम्बन्ध था, उनमें भी बहुत महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आ गया था । राज्य की स्थायी सेना में मुख्यतः परदेशी, सिंधी, रुहेला, पुरबिया और वे लोग भी जो कि असैनिक जातियों के थे, भर्ती किए जाते थे । अस्तु, राजपूतों के पास खेती तथा अन्य पेशों को करने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं रहा था । उनमें जो अधिक खटपटी या अनियंत्रित होते थे, वे 'वरोड़िया' बन जाते थे और मुख्यतः लूट-पाट, अफीम और मद्य सेवन तथा अन्य अनैतिक कार्य करते थे । वे भूमिहीन राजपूत जिनके पास जीवनयापन का कोई ऐसा स्रोत नहीं था जिस पर निर्भर रहा जा सकता था, अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए अत्यन्त दयनीय अवस्था में रहते थे । उन पर अत्यन्त खर्चीले बाल विवाहों तथा अन्य सामाजिक कुरीतियों का भार था, जिसे अधिकांश में उन्होंने उस समय स्वीकार किया था जब उनको सैनिक श्रेष्ठता प्राप्त हुई थी ।[4]

बनियों का बहुत अधिक प्रभाव था । शासक उनमें से ही अपने मंत्री नियुक्त करते थे । उनको (वणिकों को) 'मुत्सद्दी' के नाम से पुकारा जाता था और वे ही आन्तरिक प्रशासन तथा विदेशी शक्तियों से राज्य के सम्बन्धों की व्यवस्था करते

३. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८५६–६०), संख्या ८, एफ ४२८, ४४०, ४४१, ४७२; हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ २७, ३१, ३२; हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ४२६

४. कैवेन्डिश का मैडाक को पत्र, २२ जनवरी १८३१, आर० ए० जोधपुर फाइल, संख्या २,

थे। उनमें से कतिपय को 'फौजबख्शी' भी नियुक्त किया जाता था। इस प्रकार अधिकांश हाकिम, दीवान, मुसाहिब, दारोगा, मुंसरिम, वकील और यहाँ तक कि कामदार भी इसी वर्ग से चुने जाते थे। जब कभी सेना युद्ध के लिए जाती थी तब कोई मुत्सद्दी ही उसका मुखिया या प्रधान होता था।[५]

मारवाड़ का व्यापारी वर्ग सम्पूर्ण भारत में विख्यात था।[६] मारवाड़ के बाहर भी उनकी बस्तियाँ नागपुर, औरंगाबाद, पूना, बम्बई आदि नगरों में थीं, जहाँ वे उल्लेखनीय कुशलता से व्यापार करते थे।[७]

सामाजिक उच्चोच्च परम्परा की सीढ़ी में ब्राह्मण, राजपूत और वणिकों के नीचे कृषक वर्ग का एक बहुत बड़ा समूह था। इस वर्ग में जाट, विश्नोई, माली इत्यादि थे। साधारणतया कभी-कभी शिल्पकार वर्ग को भी जिनमें लुहार, खाती, कुम्हार, भील इत्यादि थे, आंशिक रूप में खेती पर निर्भर रहना पड़ता था, यद्यपि सामाजिक उच्चोच्च परम्परा के स्तूप में उनका स्थान और भी अधिक नीचा था।[८]

मारवाड़ में कुशल पशुपालकों के समूह निवास करते थे, जो गोवंश को चराते और पालते थे, ऊँटों की नस्ल पैदा करते थे और भेड़-बकरियों के बड़े झुंड रखते थे। ये 'रेबारी' थे जो मुख्यतः बाली और देसूरी परगनों में निवास करते थे। चारणों को राजपूत अत्यन्त श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे और उनकी इज्जत करते थे। उनको भी पशुपालन और खेती पर निर्भर रहना पड़ता था।[९]

शिल्पी वर्ग के लोग भी थे, जो कि हस्तशिल्प तथा कुटीर उद्योगों में लगे हुए थे। उनमें से कुछ, जैसे—खाती, लुहार, सुनार, छीपा इत्यादि का समाज में ऊँचा स्थान था, जो लगभग जाटों के समान था। अन्य लोगों का, उदाहरण के लिए, मोची खटीक, भांभी इत्यादि का स्थान जाटों और अछूतों के मध्य था।[१०]

---

५. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ९, एफ ११७, ३७२ तवारीख मानसिंह, एफ ३३, १८०

६. पेपर संख्या ७, मारवाड़ के मामलों के बारे में, १४ अक्टूबर १८३०, संख्या ३०८, एफ एस, टॉड उल्लिखित-भाग २, पृष्ठ १२७

७. ब्रुक्स : दुर्भिक्ष की रिपोर्ट, पृष्ठ ४९

८. हैन्डले : जनरल मैडीवल हिस्ट्री ऑफ राजपूताना (कलकत्ता–१९००), पृष्ठ १५३

९. पेपर संख्या ७ उल्लिखित, सदरलैंड का लडलो को पत्र, ५ मई १८४२, कान्स २२ जून १८४२, संख्या ४०, एफ पी

१०. वाल्टर सी० के० एम० : गजेटियर मारवाड़ एण्ड मालानी, पृष्ठ २४

मारवाड़ में एक वर्ग वंशपरम्परागत घरेलू नौकरों का था, जिन्हें 'चाकर' या 'गोला' कहते थे। वह वर्ग मुख्यत: राजपूतों की अवैध सन्तानों से बना था। उसमें से जो शासकीय परिवारों से सम्बन्धित थे उनका सामाजिक दर्जा ऊँचा था और वे कभी-कभी किलेदार या दारोगा नियुक्त किए जाने के भी अधिकारी होते थे। परन्तु उनमें से अधिकांश को अत्यन्त अपमानजनक जीवन व्यतीत करना पड़ता था। वे राजपूतों की जूठन पर निर्वाह करते थे। उनकी स्त्रियों को सम्भ्रांत राजपूत और ठिकानेदार अपने जनाने (निवास) में रखेल या पासवान के रूप में रखते थे। यद्यपि वे अवैध सन्तान होते थे तथापि उनका दर्जा अछूतों से निश्चित रूप में ऊँचा होता था, परन्तु उनमें से अधिकांश की स्थिति दासों से अच्छी नहीं होती थी और उन्हें अत्यन्त अपमानजनक पशुवत् जीवन व्यतीत करना पड़ता था।[११] सीढ़ी के सबसे नीचे डंडों में विभिन्न प्रकार के अछूत थे, जैसे—थोरी, मेघवाल, बलाई, भंगी, चमार इत्यादि जो कि समाज के मलफेन के समान थे और अत्यन्त कष्टमय जीवन व्यतीत करते थे। अछूतों की श्रेणी में एकरूपता नहीं थी। चमड़े का काम करने वाले थोरी और मेघवाल अपने को भंगियों से श्रेष्ठ मानते थे।[१२]

दूषितकरण और कलुषीकरण :

अन्य जाति वालों द्वारा पकाए हुए भोजन और जल को ग्रहण करने के सम्बन्ध में व्यापक नियम थे। घी, दूध या मक्खन से तैयार किया हुआ भोजन 'पक्का' कहलाता था और उसे नीची जाति से ग्रहण किया जा सकता था। 'कच्चा भोजन' अर्थात् पानी से बना हुआ भोजन साधारणतया स्वयं अपनी ही जाति अथवा बराबर या अपने से श्रेष्ठ जाति से ही ग्रहण किया जा सकता था। किन्तु भोज अथवा पेय जो मंदिर में देवता पर चढ़ने से पवित्र हो गया हो, चाहे वह नीची जाति के सदस्य द्वारा ही पकाया गया हो, अस्वीकार नहीं किया जा सकता था। मारवाड़ में हुक्का पीने से भी जाति के दर्जे का निर्देशन होता था।[१३]

अशुद्ध हो जाने अथवा कलुषीकरण की भावना का विभिन्न जातियों में आवश्यक दूरी बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भाग था। एक ऊँची जाति का व्यक्ति नीची जाति के व्यक्ति को नहीं छूता था। नीची जाति वाले के लिए अपने तथा ऊँची जाति वाले के बीच एक न्यूनतम दूरी रखना आवश्यक था। गाँव के नाई और धोबी अछूतों की

---

११. शम्भुदत्त की मानसिंह को अर्जी, वि० सं० १८८८ कार्तिक कृष्णपक्ष की चतुर्थी, अर्जी बही-संख्या. ३, जनसंख्या रिपोर्ट मारवाड़ १८६१, पृष्ठ २३५–२४५

१२. वाल्टर सी० के० एम०, उल्लिखित, पृष्ठ २५

१३. कैवेंडिश का मैडाक को पत्र, २२ जनवरी १८३१, आर० ए० जोधपुर, पुरानी फाइल, संख्या २

सेवा नहीं करते थे और उन्हें (अछूतों को) ये सेवाएँ अपने आप करनी पड़ती थीं। एक अछूत केवल नदी के निचले सिरे से ही जल ले सकता था, वह ऊँची जाति के हिन्दुओं के कुएँ का उपयोग नहीं कर सकता था। अशुद्ध होने के नियमों का उल्लंघन करने का परिणाम यह होता था कि ऊँची जाति वाला अशुद्ध हो जाता था और उन्हें अपने सामान्य दर्जे को सुरक्षित रखने के लिए शुद्धिकरण के कृत्य करने पड़ते थे।[१४]

सामाजिक जीवन का सहकारी आधार :

इन जातिभेदों के होते हुए भी मारवाड़ में सामाजिक जीवन सहकारिता के आधार पर संगठित था। समुदाय के जीवन में कुछ ऐसे अवसर आते थे जब जीवन चक्र सम्बन्धी समारोहों, उत्सवों एवं मेलों पर अनेक जातियों के सहयोग की आवश्यकता पड़ती थी। ब्राह्मण जन्मपत्री बनाता था और नाई संदेशवाहक का काम करता था तथा भोज में पुरस्कारी करता था। अछूत लकड़ी चीरते, मकान को लीपते-पोतते तथा अनाज को साफ करते थे। कुम्हार मिट्टी के बर्तन-भाँडे तथा पूजा घट इत्यादि बनाते थे। बढ़ई या खाती विवाह के लिए पंडाल खड़ा करते थे। सुनार आभूषण बनाते थे और तेली तेल देते थे। ब्राह्मण पुरोहित का कार्य करते थे। वार्षिक पर्वों और ग्राम देवताओं के उत्सवों पर भी अनेक जाति वालों को परस्पर सहयोग करना पड़ता था। मंदिर की व्यवस्था के लिए भी अनेक जाति वालों के लिए एक दूसरे से मिल कर काम करना आवश्यक हो जाता था।[१५]

सामाजिक आदतें—भोजन :

क्योंकि सामाजिक दर्जे में बहुत भेद था, अतएव सामाजिक आदतों में भी विभिन्नता होना एक मूल नियम था। मोठ के साथ ज्वार, बाजरा मारवाड़ में रहने वालों का सामान्य भोजन था। अन्य किसी अनाज की अपेक्षा बाजरा का उपभोग बहुत अधिक किया जाता था। निर्धन अधिकतर बाजरा पर निर्वाह करते थे, क्योंकि गेहूँ का उपयोग करने की सामर्थ्य केवल धनी व्यक्ति ही रखते थे। खाद्य पदार्थ के रूप में साधारणतया न तो चावल और न मांस का उपयोग होता था और राजपूत तथा कुछ हिन्दू तभी मांस खाते थे जब उनकी सामर्थ्य होती थी। मूली और प्याज (काँदा) मुख्य सब्जियाँ थीं, यद्यपि कभी-कभी पश्चिमी मारवाड़ में रहने वाले नीचे स्तर के लोगों का अधिकांश भाग खेजड़े की पत्ती और बीज का उपयोग करता था। उनका मुख्य मसाला मिर्च था। सूखे और दुर्भिक्ष के समय बहुत से लोग घास की जड़ों और बीजों पर निर्वाह करते थे। तरबूज बहुत अधिक खाए जाते थे। उसके

१४. पेपर संख्या ७, मारवाड़ के मामलों के बारे में, १४ अक्टूबर १८३०, संख्या ३-८, एफ एस

१५. जैक्सन उल्लिखित, पृष्ठ ५१

गूदे को ताजा रूप में खाया जाता था और बीज सुखा कर तथा पीस कर आटे में मिला कर खाये जाते थे। तम्बाकू और अफीम पीने-खाने का आम चलन वैसा ही था जैसाकि कुछ धनी लोगों में शराब पीने का आम चलन था। दूध प्राप्त करने के लिए लोग स्वयं अपने पशु रखते थे।[16]

धनी और निर्धन के भोजन में बहुत अधिक अन्तर था। साधारण व्यक्ति घाटा, खीच, राब, स्कोन, घुगरी, दलिया, केर, खेजड़ा, फोग इत्यादि की फलियों और खिचड़ी पर साधारण दिनों में निर्वाह करता था और विवाह तथा अन्य धार्मिक कृत्यों पर लापसी-जो, गेहूँ, घी और गुड़ से बनाई जाती थी—परोसता था, जबकि धनी व्यक्ति कई प्रकार के शाकाहारी तरल भोजन लेते थे जिन्हें इत्र से सुगंधित किया जाता था और जिनमें मेवे पड़े होते थे। इनके अतिरिक्त फेनी, घेवर, खाजा और चावल तथा गेहूँ से बने अन्य कई प्रकार के भोजन, पकाई हुई सब्जियाँ, दालें, आचार, मुरब्बा, पापड़[17] आदि होते थे। विवाह तथा जन्मोत्सवों और मोसर तथा अन्य समारोहों के अवसर पर वे बड़ी संख्या में लोगों को आमंत्रित करते थे और उन्हें लड्डू, शीरा, जलेबी, पूड़ी आदि परसी जाती थीं। अखयचन्द ने अपने पुत्र के विवाह के समय जोधपुर नगर के समस्त निवासियों को आमंत्रित किया था और उन्हें शीरा और पूरी परोसे थे।[18] शम्भुदत्त ने समस्त पोकरणवासियों को लड्डू खिलाए थे[19] और इन्द्रराज सिंघवी की माता की मृत्यु के अवसर पर सम्पूर्ण जोधपुर नगर को शीरा और पूरी खिलाई गई थी।[20]

वस्त्र (पोशाक) :

पोशाक में सामाजिक दर्जे तथा यौन-भेद के अनुसार विभिन्नता थी। प्रौढ़ हिन्दू पुरुष धोती, बन्डियाँ (अंगरखा) और पोतिया धारण करते थे। शीतकाल में, वे कंधों पर 'खेसला' ओढ़ते थे। सम्पन्न लोग कर्घे पर बुनी हुई पाँच गज लम्बी तथा एक गज

---

१६. पेपर संख्या ७, मारवाड़ के मामलों के बारे में, १४ अक्टूबर १८३० संख्या ३–८, एफ एस

१७. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ ६०, हकीकत बही जोधपुर (१८७१–८०) संख्या १०, एफ १०५, ३३७, ३६५, ४२१; हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८८१–६०), संख्या ११, एफ १५

१८. तवारीख़ मानसिंह, एफ १६४

१६. वही, एफ २२८

२०. तवारीख़ मानसिंह, एफ १६५

चौड़ी धोती जिसका किनारा रंगीन होता था, पहिनते थे। राज्य कर्मचारी जब सर्वसाधारण के सामने जाते थे तब चूड़ीदार पायजामा और कुर्ता पहिन कर जाते थे।[२१]

अभिजातवर्गीय और सम्पन्न लोग पोतिया के स्थान पर 'साफा' बाँधते थे जिसे वे पेचा, पाग या पगड़ी कहते थे। वह अट्ठारह गज लम्बी और नौ इंच चौड़ी बारीक कपड़े की एक लम्बी पट्टी होती थी जिसके दोनों सिरों पर जरी का काम होता था और जो सर पर भिन्न-भिन्न प्रकार और रूप से बाँधी जाती थी। प्रत्येक जाति की पाग का रूप भिन्न-भिन्न होता था। विभिन्न रंगों की इन पगड़ियों को एक सादी उपरनी अथवा लेस लगी हुई बालाबन्दी अलंकृत करती थी। काली और सादी अथवा सफेद पगड़ी शोक के अवसर पर बाँधी जाती थी।[२२] गहरे नीले और हरे रंग की पगड़ियाँ भी शोक सूचक मानी जाती थीं। ऊँची जाति के लोग एक 'डुपट्टा' धारण करते थे। राजपूत 'जादिया' और 'मुछपट्टी' बाँधते थे, जिससे कि दाढ़ी ठीक रक्खी जा सके और मूंछों को उमेठा जा सके।[२३]

हिन्दू स्त्रियाँ घाघरा और काँचली धारण करती थीं। ऊँचे वर्ग की स्त्रियाँ जब घर के बाहर जाती थीं तब अपने घाघरे के ऊपर एक फेरिया ओढ़ती थीं। कायस्थ और ओसवाल महिलाएँ जब बाहर जाती थीं एक सफेद चादर जिसे थिरमा कहते थे, सबसे बाह्य परिधान के रूप में ओढ़ती थीं, जबकि अन्य जातियों की स्त्रियाँ, विशेषकर शीतकाल में एक ऊनी पेष्टन लपेटती थीं, जिसे 'लूनकर' कहते थे और जो अधिकतर लाल रंग का होता था।[२४]

मुसलमानों में, गाँवों तथा छोटे कस्बों की अपेक्षा राजधानी तथा कतिपय बड़े नगरों में, चूड़ीदार पायजामा अधिक प्रचलित था। जब वे बाहर जाते थे तब पगड़ी के ऊपर रूमाल बाँधते थे। 'खेसला' या 'डुपट्टा' के स्थान पर वे चेक बनावट की चादर का उपयोग करते थे। उनके कोट में सीधी ओर की अपेक्षा बायीं ओर बटन लगे होते थे।[२५] मुस्लिम स्त्रियाँ पायजामा, लम्बा कुर्ता और ओढ़ना पहिनती थीं और जब वे घर से बाहर जाती थीं तब 'तिलक' का उपयोग करती थीं।[२६]

धनवानों के वस्त्र किमख्वाब, टसर, छींट, पारचा, मसरु, चिक, इलायची, थिरमा

---

२१. जैक्सन उल्लिखित, पृष्ठ ३१
२२. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८५६–६०), संख्या ८, एफ ४३७, ४३८
२३. जैक्सन; उल्लिखित, पृष्ठ ३१
२४. राजपूताना गजेटियर-भाग १, पृष्ठ ६७
२५. एरस्किन उल्लिखित, पृष्ठ ६४–६५
२६. ब्रुक्स : दुर्भिक्ष की रिपोर्ट, पृष्ठ ३७

गंगाजमुनी आदि के बने होते थे।[२७] वे धोती जामा, फगा, गुडादी, पाग, चीरा और खंगा धारण करते थे। बनाती धोती और अस्तर लगा जामा उपयोग में लाया जाता था। जबकि ग्रीष्मकाल में सफेद रंग की धोती और चिकन का कानो अधिक पसंद किया जाता था। शीतकाल में शासक (राजा) अपनी पाग को तुर्रा, सरपेच, वाला-बन्दी, दुगदुगी, गोसपेच, लटकन, और फतेहपेच की सहायता से और अधिक आकर्षक बनाता था। धनिकों के वस्त्रों और विशेषकर स्त्रियों के वस्त्रों को मोतियों, रत्नों, सोने की लेसों, तारों, लप्पा, और जरी के फूलों और चिड़ियों के चित्रों से सजाया जाता था।[२८]

पुरुष और स्त्रियाँ दोनों ही बहुत प्रकार के आभूषण धारण करते थे। स्त्रियाँ शीशफूल, राखड़ी, बोरला, टीका, कर्णफूल, झुमका, अगोटया, निबोरी, तिमानिया, ठुम्सी, कंठी (रु० ५५०), कण्ठमाला, हार, चम्पाकली, बाजूबन्द, चूड़ी, औगुठी, बिनती, मुंदरी, हथफूल, नेवरी, बिछिया, छल्ला इत्यादि शौक से पहिनना पसंद करती थीं। धनी स्त्रियों के आभूषण सोने के बने होते थे और जिनमें मोती और रत्न जड़े रहते थे, किन्तु निर्धनों के आभूषण चाँदी के होते थे। साधारणतया, निर्धन स्त्रियाँ नथ (जिसका मूल्य लगभग १६ रुपये होता था), चूड़ी (जिसकी कीमत पाँच रुपये थी) और मुंदरी (जो डेढ़ रुपये के मूल्य की होती थी) पहिनती थीं। धनी स्त्रियों के आभूषण बहुत अधिक मूल्यवान होते थे और उनमें जो मोती और जवा-हरात जड़े होते थे उनके कारण उनका मूल्य बहुत अधिक हो जाता था। उनकी चूडियों का मूल्य दस रुपये से ३७५ रुपये तक होता था और उनके कंकण का मूल्य १२ रुपये से ३०० रुपये और तीन हजार रुपये तक के बीच होता था। जड़ाऊ आँबटा का मूल्य साधारणतया २५० रु० होता था।[२९]

रहने के मकान :

मकान तीन श्रेणी के होते थे। 'हवेलियाँ' अर्थात् पक्के मकान जिनमें सम्पन्न लोग निवास करते थे। 'ढूंढा' मिट्टी के बने कच्चे मकान होते थे, जिनमें निम्न मध्य श्रेणी के लोगों से लेकर निर्धन व्यक्ति तक रहते थे, और 'झुम्पी' या 'झोपड़ियाँ फोग' जड़ों तथा घास से बनाई जाती थीं जो कि लगभग सभी गाँवों में अन्य दोनों

---

२७. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १६५६–६०), संख्या ८, एफ ४४२; हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ४०६

२८. बयाय बही-संख्या १, एफ १२७, १२६, १३३; हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८५६–६०), संख्या ८, एफ ४३७, ४५०, ४५४, ४८४

२९. व्याय बही-संख्या १, एफ १२७, १२६, १३३; हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८५६–६०), सख्या ८, एफ ४३७, ४५०, ४५४, ४८४

प्रकारों की अपेक्षा कहीं अधिक संख्या में होती थीं। बहुधा केवल 'झुम्पी' ही रहने का एकमात्र स्थान होती थीं। वे गोल होती थीं और छोटी कोठरियों के समान दिखलाई देती थीं। उनके चारों ओर काँटों की बाढ़ (बाड़) होती थी। वास्तव में अधिकांश निवास स्थान इसी प्रकार के होते थे। गाँवों में अधिकांश व्यक्ति झोपड़ियों में रहते थे, जिनकी दीवारें मिट्टी की होती थीं, और छत मिट्टी की बनी हुई और चौरस होती थी तथा लकड़ी की धन्नियों (शहतीरों) पर छाई जाती थी। पाड़वा की दीवारें सूर्य की धूप में पकी हुई ईंटों और कम पकी भट्टी खपरेल की बनी होती थीं। वे मकान जिनकी छत चौरस-सायादार होती थी 'अकधालिया' कहलाते थे और जिनकी छत त्रिकोण के रूप में उठी होती थी, 'दूधालिया' कहे जाते थे।[३०]

वास्तुकला :

समस्त मारवाड़ में अनेक प्रकार की जो इमारतें पहले से ही विद्यमान थीं उनमें मानसिंह ने अनेक महत्त्वपूर्ण विशाल भवनों की वृद्धि की जिनकी विलक्षण भव्यता उनकी अपनी ही थी। वह एक महान निर्माणकर्त्ता था। जोधपुर के दुर्ग में 'जयपोल' का निर्माण उसने जयपुर की सेना पर अपनी विजय की स्मृति में करवाया था। १८०७ में जयपुर की सेना का आक्रमण भारी क्षति के साथ विफल कर दिया गया था और जयपुर की सेना को पीछे खदेड़ दिया गया था।[३१]

उसके राज्यकाल में अन्य महत्त्वपूर्ण इमारतें महामन्दिर के छोटे उपनगर में जो कि नागोरी फाटक के बाहर उत्तर-पूर्व की दिशा में है, बनवाई गईं। महामन्दिर का सम्पूर्ण उपनगर जिसमें पाँच सौ सत्तर मकान हैं और जिसके चारों ओर पत्थर का सवा मील परिधि का परकोटा है जिसमें बुर्ज बने हुए हैं, गोली चलाने और रक्षा करने के लिए सफील और झरोखे बने हुए हैं, उसने दस लाख रुपये की लागत से बनवाया था। उसने वहाँ अत्यन्त सुन्दर पत्थर के कटाव के दो महलों का निर्माण करवाया। उनमें से एक में नाथ जी रहते थे और दूसरा उनके महान पूर्वज की आत्मा के लिए आरक्षित था। उस उपनगर के चारों ओर नहर बनवाने और उसमें एक झालरा और कुएँ की व्यवस्था करने का भी श्रेय मानसिंह को ही है।[३२]

उसने श्रीनाथ जी का एक निजमंदिर गुलाब सागर के तट पर बनवाया।[३३] उदयमंदिर का देवालय, उसका झालरा तथा कस्बा एवं उसका परकोटा सभी

---

३०. जैक्सन उल्लिखित, पृष्ठ १२

३१. ऐडम्स—वैस्टर्न राजपूताना स्टेट्स, पृष्ठ ८३, दस्तूरी बही, एफ १५४

३२. दस्तूर री बही, एफ १५५, ऐडम्स उल्लिखित, पृष्ठ ८३

३३. दस्तूर री बही, एफ १५४

मानसिंह की ही देन थीं ।[३४] सोजती फाटक के बाहर चौरासी सिद्धों का मन्दिर तथा उसके भीतर नवनाथों का मन्दिर भी मानसिंह ने ही बनवाए थे ।[३५] जोधपुर में इन नाथ मन्दिरों को बनवाने के अतिरिक्त, उसने जालौर और विभिन्न बाईस परगनों में भी नाथ मन्दिर बनवाए । पद्मपुर और बालसमंद तालाबों के तट पर तथा मंडौर में भी उसने छोटे नाथ मंदिरों का निर्माण करवाया । मंडौर में जो देव-मूर्तियाँ बनी थीं उनमें उसने जलंधरनाथ तथा गोरखनाथ की मूर्तियों की वृद्धि की ।[३६]

धार्मिक विश्वास :

मारवाड़ के लोग दान स्वरूप बहुत अधिक द्रव्य देने में और लोगों को विभिन्न अवसरों—जैसे, चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण, भूकम्प के समय, दुर्भिक्ष में, श्राद्ध पर्व में एकादशी, अमावस्या और वर्ष में अन्य मंगलकारी दिनों पर भोजन कराने में विश्वास करते थे । सिंघवी इन्द्रराज ने पुष्कर की तीर्थयात्रा के समय दान में बहुत सा द्रव्य दिया, निर्धनों को भोजन कराया, उनमें वस्त्र बाँटे और माघ बदी ३० को अनेक धार्मिक कृत्य सूर्यग्रहण के बुरे प्रभाव को दूर करने के लिए सम्पन्न किए ।[३७] इसी अवसर पर मानसिंह ने बीस हजार से अधिक रुपये दान में बाँटे, 'सासन' में दो गाँव दान में दिए और एक हाथी, दो गाएँ और तीन कुओं का दान किया । उसने एक ब्राह्मण कन्या के विवाह और ब्राह्मण बालक के यज्ञोपवीत के समस्त व्यय को वहन किया ।[३८] यहाँ तक कि कुंवर छतरसिंह ने भी तुलादान में दस हजार रुपये और प्रत्येक ब्राह्मण को जिसने उस वर्ष अपनी पुत्री का विवाह किया, भंवरी में इक्यावन रुपये दिए ।[३९] वैशाख सुदी पूर्णिमा को जब चन्द्रग्रहण पड़ा तब मानसिंह ने ५४४४ रुपये तुलादान में दिए ।[४०] रानियाँ और महलों में रहने वाली महिलाएँ भी निर्धनों को दान देने में पीछे नहीं रहती थीं ।[४१] १६ जून १८१९ को जब भूकम्प आया तब मानसिंह ने कई प्रकार के तुलादानों में जो कुछ दान किया उसके अतिरिक्त २१

३४. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८८१–९०), संख्या ११, एफ ८८, दस्तूर री बही, एफ १५५

३५. दस्तूर री बही, एफ १५५

३६. दस्तूर री बही, एफ १५५, मुहनौत नैणसी, मारवाड़ रा परगना री विगत, परिशिष्ट ए, कामठा री विगत, पृष्ठ ५७३

३७. तवारीख मानसिंह, एफ १९८

३८. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ९, एफ ३७५

३९. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ १२३

४०. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ९, एफ ३५१

४१. बही महारानी लाड़ी तंवरजी री सरकार रो रोजनावों, वि० सं० १८८९–९०

हजार रुपये निर्धनों और जरूरतमन्दों में बाँट दिए।[४२]

इन विशेष अवसरों पर दान देने के अतिरिक्त, अकेले सिंघवी इन्द्रराज द्वारा बारह पवित्र तीर्थ स्थानों पर नियमित सदावर्त चलता था। मानसिंह भी द्वारिका, हरिद्वार, काशी, पुष्कर आदि तीर्थ स्थानों पर अपनी ओर से सदावर्त चलाता था।[४३] जब छतरसिंह चेचक रोग से ग्रस्त हुआ तब उसकी माँ 'कागा' गई और उसने शीतला माता, पथवारी माता और अन्य देवी-देवताओं को बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण, मोती इत्यादि भेंट किए और निर्धनों को भोजन कराया तथा उनमें वस्त्र बाँटे।[४४] उस समय संन्यासियों और फकीरों की कोई कमी नहीं थी, जो कि एकान्त स्थानों, मठों, गुफाओं और तीर्थ स्थानों में निवास करते थे और उनके भरण-पोषण का भार दानशील सम्भ्रांत लोगों पर पड़ता था। इनके अतिरिक्त, अधिकांश श्रीमाली और अनेक अन्य ब्राह्मण समूहों, स्वामियों, सेवकों, वैरागियों और विभिन्न सम्प्रदायों के धार्मिक गुरुओं को सार्वजनिक दान में से भोजन कराया जाता था और उनके लिए वस्त्रों की व्यवस्था की जाती थी।

अन्य विश्वास तथा शकुन :

लोग पक्षियों, पशुओं और स्वप्नों से अपने लिए अच्छे या बुरे भाग्य होने के शकुनों को मानते थे। १८१६ में सिंघवी गुलराज को किले की ओर आते हुए एक काना व्यक्ति मिला। इसलिए उसी दिन उसकी किले में हुई हत्या को लोग इस अपशकुन के कारण मानते थे।[४५] मानसिंह भी इस बात की पूरी सावधानी बरतता था कि जब कभी वह किसी महत्त्वपूर्ण कार्य से बाहर जाय तब उसको अच्छे शकुन ही हों। वह इस बात की व्यवस्था करता था कि उसकी यात्रा के आरम्भ में उसे एक मालिन अपने सर पर डलिया रक्खे या एक स्त्री जल का घड़ा सर पर रक्खे मिले। इस बात का भरसक प्रयत्न किया जाता था कि उसके मार्ग में से अनाज और

---

४२. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ २६१

४३. बालाबख्श की मानसिंह को अर्ज़ी, वि० सं० १८८७, फाल्गुन शुक्ल पक्ष, पोर्ट फोलियो फाइल-संख्या २५; मानसिंह की नन्दरावल को अर्ज़ी, वि० सं० १८८४, आश्विन कृष्णपक्ष की तृतीया; गुसाइयों के पत्र व अर्जियाँ, फाइल संख्या ७२, ढोलिया का कोठार; हुशियार नाथ की मानसिंह को अर्ज़ी, वि० सं० १८८८, वैशाख कृष्ण पक्ष की द्वितीया; अर्ज़ी बही-संख्या ६, एफ ३२; हुशियार नाथ की मानसिंह को अर्ज़ी, वि० सं० १८९०, पौष कृष्ण पक्ष की नवमी; अर्ज़ी बही-संख्या ६, एफ ४६०

४४. हकीकत बही जोधपुर, वि० सं० १८५६, संख्या ६, एफ ४६०

४५. तवारीख मानसिंह, एफ २१८

घी से भरे मिट्टी के बर्तनों से लदी सभी गाड़ियों को हटा दिया जाए और उस दिन उस सड़क पर किसी विधवा स्त्री को यात्रा नहीं करने दिया जाय।[४६]

मानसिंह १८१४ में फलौदी के हाकिम के विरुद्ध युद्ध करने केवल इसलिए नहीं गया कि उसकी यात्रा के आरम्भ होने के ठीक पहले किसी ने छींक दिया था।[४७]

मनोरंजन :

मनोरंजन सुखी जीवन का एक अंग था। घुड़सवारी, पतंग उड़ाने, कुश्ती लड़ने, शिकार खेलने और विभिन्न प्रकार के लोकप्रिय खेलों—जैसे, कबड्डी, मारदड़ी, सोटा-दादी, थियादादी, गुल्ली-डंडा इत्यादि के अतिरिक्त घरों के अन्दर खेले जाने वाले खेल भी थे जैसे चौसर, शतरंज, चिरनी इत्यादि जो कि लोगों को व्यायाम और मनोरंजन दोनों ही उपलब्ध कराते थे।[४८] मानसिंह गिर्दीकोट में कुश्तियों का दंगल, हाथियों की लड़ाई तथा घुड़दौड़ कराता था, जिसे देखने और उस दृश्य से सुख प्राप्त करने के लिए वहाँ हजारों की संख्या में लोग जाते थे। विजेताओं को अत्यन्त उदारता के साथ पारितोषिक दिए जाते थे।[४९]

समारोह :

उस समय लोगों के जीवन में समारोहों का एक बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान था। मारवाड़ में दो प्रकार के समारोहों का प्रचलन था। एक वे थे जो जीवन की बड़ी घटनाओं से सम्बन्धित होते थे और दूसरे वे थे जो महत्त्वपूर्ण पर्वों के समय होते थे।

---

४६. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८५६–६०), संख्या ८, एफ ४३७, खबर-कोतवाली गढ़ चौतरा से, वि० सं० १८६२

४७. खबर कोतवाली गढ़ चौतरा से, वि० सं० १८७१, कैप्टेन लडलो ने अपने पत्र में लिखा था—भावी गाँव के भौमिया के विरुद्ध एक स्त्री को जीवित जला देने और अनेक के माथों को दाग देने के (क्योंकि उनके विरुद्ध जादू-टोना करने का संदेह था) अपराध के विरुद्ध कार्यवाही को दरबार के विशेष आदेश से रोक दिया गया। लडलो का सदरलैंड को पत्र, २२ जुलाई १८४३, कान्स २३ सितम्बर १८४३, संख्या ६८, एफ पी।

४८. जोधपुर अखबार के सारांश, ९ जनवरी से १६ जनवरी १८३८ तक, कान्स ७ मार्च १८३८, संख्या २७, एफ पी; ऐडम्स उल्लिखित, पृष्ठ १०७–८; चित्रों का संग्रह पुस्तक प्रकाश जोधपुर।

४९. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८५६–६०), संख्या ८, एफ ४६२–४७६ हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ २९९, तवारीख मानसिंह, एफ २२१

प्रत्येक परिवार में लड़के के उत्पन्न होने पर उसकी सूचना काँसे की थाली को बजा कर और नारियल, मिठाई और गुड़ बाँट कर दी जाती थी। लाडूनाथ के जन्म की सूचना उसके पिता ने जोधपुर के प्रत्येक गृहस्थ को एक सेर गुड़ बाँट कर दी थी।[५०] प्रत्येक हिन्दू विवाह के पूर्व राजपूतों[५१] में चारणों और भाटों के द्वारा और अन्य जातियों में ब्राह्मणों और नाइयों के द्वारा प्रारम्भिक ठहरौनी होती थी। जब जन्मकुंडली मिल जाती थी तब टीके का दस्तूर होता था। वाग्दान के उपहार लोगों के साधनों और उनके सामाजिक दर्जे पर निर्भर थे। सामान्य लोग वाग्दान पर कठिनता से पचास-साठ रुपये व्यय करते थे, जबकि ऊँचे वर्ग के लोग और विशेषकर राजपूत सोने-चाँदी से मढ़े बहुमूल्य नारियल, सूखे मेवे, मोती, सोने के तार के साफे-धोती, बालाबन्दियाँ, धोसपेच, बहु-प्रकार और डिजाइन के बहुमूल्य वस्त्रों के थान, रत्नजड़ित आभूषण, घोड़े जिन पर मखमली जड़ाऊ काठी होती थी और हजारों रुपये भेंट करते थे।[५२] जब १६ फरवरी १६२३ को मानसिंह ने अपनी छोटी लड़की का टीका बूंदी के रावराजा को भेजा तब उसने अत्यन्त मूल्यवान तुर्रा के साथ पाग, पेटिया, एक हाथी (जिसका मूल्य एक हजार रुपये था), दो घोड़े, चार घोड़ियाँ और दो सौ सोने से मढ़े नारियल भेजे थे। वे बहुमूल्य आभूषण भी जिनमें तुर्रा और धोसपेच थे और जिनमें जवाहरात जड़े थे, भेजे गए थे। इन आभूषणों और जेवरों के अतिरिक्त, आठ बहुमूल्य पोशाकें और विपुल मात्रा में गुड़, सुपाड़ी, मिश्री, बादाम, पिश्ता, दाख और मेवा के साथ एक हजार रुपये नकद भेंट स्वरूप भेजे गए थे।[५३] इसके अतिरिक्त, कोटा के एक साहूकार को दो लाख रुपये देकर उससे उन्हें वह रुक्का लेना पड़ा जिससे रावराजा ने विवाह के व्यय के लिए ऋण लिया था और उसे उन्होंने रावराजा को हथलेवा में दे दिया।[५४] इन सब के ऊपर, उसको चार हजार व्यक्तियों की बारात को एक महीने तक खाना खिलाना पड़ा और अपनी पुत्री को २५ हजार रुपये की आय की जागीर देनी पड़ी। विवाह में उसने उन जवाहरात तथा आभूषणों को छोड़ कर जो राज्य के जवाहरखाने से लिए गए थे, दस लाख रुपये व्यय किये।[५५]

---

५०. तवारीख मानसिंह, एफ १६०
५१. रावराजा रिधमल का लडलो को पत्र (अनुवाद), ४ नवम्बर १८४१, कान्स २२ जून १८४२, संख्या ४०, एफ पी
५२. बाँकीदास ख्यात-भाग २, एफ २८५
५३. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ४२१
५४. तवारीख मानसिंह, एफ २६३
५५. वही, एफ २६४

टीका का व्यय और चारणों को जो नेग दिया जाता था वह इतना भारी हो गया था कि पुत्रियाँ माता-पिता पर एक भार मानी जाने लगी थीं जिसके कारण उनमें से कुछ अपनी पुत्रियों को जन्म लेते ही विष देकर मार डालने का अमानवीय कृत्य करने लगे थे।[५६]

कुछ नीची जातियों में जरूरतमन्द और निर्धन माता-पिता कभी-कभी अत्यन्त अनिच्छा से अपनी पुत्री के विवाह के बदले वर के पिता से द्रव्य स्वीकार करने लगे। सट्टा-विवाहों की प्रथा भी प्रचलित थी, जिसका अर्थ विनिमय के आधार पर विवाह होना था। वर का पिता अपनी पुत्री का विवाह अपनी वधू के भाई से कर देता था।[५७]

विवाह केवल अपनी जाति में ही होता था और जो विवाह सम्बन्ध जाति के बाहर होते थे उन सभी के विरुद्ध जाति की पंचायत कठोर दण्ड देती थी।[५८]

मृतक संस्कार :

साधारणतया हिन्दू अपने मृतकों का दाह-संस्कार करते थे, परन्तु संन्यासियों में अपने गुरुओं को समाधिस्थ करने और उनके अवशेषों पर बाद में समाधि खड़ी करने की प्रथा प्रचलित थी। इस प्रकार की समाधियाँ उन लोगों के लिए शरण-स्थल का काम देती थी जो अपने जीवन की रक्षा के लिए भाग कर वहाँ शरण लेते थे।[५९] मेहता अखयचन्द ने जनवरी १८१६ में किले के अन्दर आत्माराम की समाधि में शरण लेकर अपने जीवन की रक्षा की थी।[६०] मुसलमान सदैव अपने मुर्दों को गाड़ते थे और कब्रों पर स्मारक का पत्थर अथवा उस पर मकबरा खड़ा करते थे।[६१]

उत्सव या पर्व :

हिन्दुओं के मुख्य उत्सव अथवा पर्व फाल्गुन में होली, चैत्र में शीतला सप्तमी,

५६. राव रिघपाल द्वारा लडलो को प्रेषित पत्र का अनुवाद, ४ नवम्बर १८४१, लडलो का सदरलैंड को पत्र, २६ जनवरी १८४२, कान्स २८ दिसम्बर, १८४२, संख्या २६४ एफ पी, बाँकीदास ख्यात-भाग २, एफ ३६१, बात संग्रह, एफ २८३

५७. वैशाख वि० सं० १८८२ की खबर, कोतवाली गढ़ चौतरा जोधपुर से।

५८. खबर वैशाख महीने (वि० सं० १८८२) की, डीडवाना असिस्टैंट द्वारा एजेन्ट टू दी गवर्नर जनरल को तथा सदरलैंड को, ८ जून १८४०, कान्स ८ जून १८४०, संख्या ५५, एफ पी, परवाना, वि० सं० १८६६ में मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की चौथ का, बस्ता संख्या २/७६

५९. तवारीख़ मानसिंह, एफ २१४

६०. एडम्स उल्लिखित, पृष्ठ १५४

६१. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ २८

वैशाख में आखातीज, श्रावण में राखी, भाद्रपद में तीज, आश्विन में दशहरा, कार्तिक में दीवाली आदि थे। महाराजा मानसिंह का जन्मदिन माघ सुदी ग्यारस को बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था। इन अधिकांश पर्वों पर महाराजा ब्राह्मणों, सन्यासियों एवं नाथ साधुओं को अत्युत्तम उपहार पेटिया और मिठाई देता था और बहुत बड़े पैमाने पर लोगों को भोज दिया जाता तथा दरबार किया जाता था।

मारवाड़ के मेले :

मारवाड़ का सामाजिक जीवन कुछ सीमा तक उन उत्सवों के समारोहों में प्रतिबिम्बित होता था जो विभिन्न मेलों के साथ गिरदी कोट, धान मंडी, गुलाब सागर, चाँदपोल और मंडोर में वर्ष के निश्चित समयों पर सम्पन्न होते थे।[६२] 'भाद्रपद सुदी तेरस' जोधपुर के लोगों को अवसर प्रदान करती थी कि वे जोधपुर से आठ मील की दूरी पर एकत्रित हों और 'बरली भैरों' की पूजा करें।[६३] चैत्र के महीने में 'कागा' स्त्रियों की भारी भीड़ को आकर्षित करता था, जहाँ वे शीतला माता को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती थीं।[६४] गणेश चतुर्दशी पर रातानाड़ा में धूमधाम और अत्यधिक कोलाहल का दृश्य उपस्थित होता था, जबकि हजारों की संख्या में लोग बुद्धि के देवता की पूजा करने के लिए वहाँ जाते थे। भाद्रपद सुदी पंचमी और माघ सुदी पंचमी को मंडोर सक्रिय हो जाता था, जबकि वहाँ क्रमश: नागपंचमी और नाथपंचमी के उत्सव होते थे।[६५] २६ जुलाई १८०५ से (वि० सं० १८६२ के श्रावण की अमावस्या) मानसिंह की आज्ञा से महामन्दिर में प्रतिवर्ष जलंधरनाथ की प्रतिष्ठा में एक नया मेला लगता था। उस अवसर पर नगर के दूकानदार अपनी दुकानें वहाँ लगाते थे और एक सप्ताह तक उत्सव चलता रहता था। इस नए मेले में लोगों को आने के लिए उत्साहित करने हेतु महाराजा व्यापारियों को अपनी वस्तुएँ आधे मूल्य पर बेचने के लिए आदेश देता था।[६६] जोधपुर के बाहर राज्य के विभिन्न परगनों में अन्य बहुत से मेले लगते थे। मार्च के अन्त में मल्लीनाथ के सम्मान में बालोतरा में पशुओं का एक मेला लगता था जहाँ लोग बहुत अधिक संख्या में मारवाड़ और राजपूताना के अन्य भागो के अतिरिक्त गुजरात और सिंध से भी आते थे। उस मेले में घोड़े, बैल, ऊँट, खाल, कमाया हुआ चमड़ा,

---

६२. प्रशासनिक रिपोर्ट मारवाड़ (१८८३–८४), पृष्ठ ५३३–३४

६३. कोतवाली चौंतरा जोधपुर की वि० सं० १८८८ की खबरें

६४. मंडोर की वि० सं० १८९४ की खबर

६५. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ २९९, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ९, एफ़ २८, १३०–३१

६६. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ९, एफ ५

पीतल और टीन के बर्तन तथा पहिनने के कपड़ों की बिक्री के लिए बहुत अच्छा बाजार लगता था।[६७]

पशुओं के इसी प्रकार के पशु-मेले पौष[६८] के महीने में मुंडावा और भाद्रपद में परबतसर में लगते थे।[६९] भाद्रपद में रामदेवरा में भरने वाला मेला सभी धार्मिक मेलों में सर्वसम्मति से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होता था, क्योंकि उसमें भारत के सुदूर भागों और उसके सभी पड़ोसी क्षेत्रों से बहुत अधिक संख्या में लोग आकृष्ट होते थे।[७०]

साहित्य :

विद्वत्ता और ज्ञान को बढ़ावा देने के लिए महाराजा मानसिंह ने भारतवर्ष में फैले हुए अनेक प्रकार के विद्वानों से भारतीय पुरातत्व, दर्शन, धर्म, तंत्र, औषधि, और ज्योतिष के दुर्लभ ग्रन्थों को एकत्रित करने का सतत प्रयत्न किया और उसने उन लोगों से कतिपय अत्यन्त दुर्लभ हस्तलिखित ग्रन्थों तथा सर्वोत्तम अनुलिखित प्रतियों को प्राप्त किया। उसने इन ग्रन्थों को प्राप्त करने और खरीदने में अत्यधिक व्यय किया। १८३१ में उसने 'पुस्तक प्रकाश' नाम से इन अलभ्य ग्रन्थों की ठीक से साज-सम्हाल के लिए हस्तलिखित पुस्तकों का एक पुस्तकालय स्थापित किया।[७१]

केवल यही नहीं, उसने मारवाड़ तथा बाहर के विद्वानों को विभिन्न विषयों पर पुस्तकें लिखने के लिए कहा। यद्यपि उसकी रुचि मुख्यतः ऐसे ग्रन्थों के रचे जाने में थी जिनका या तो नाथ इतिहास अथवा नाथ दर्शन से सम्बन्ध हो, तथापि उसने अपना संरक्षण उन विद्वानों और कवियों को भी दिया जो नाथ सम्प्रदायें से सम्बन्धित विषयों के सिवाय अन्य शाखाओं के विशेषज्ञ थे। ऐसे व्यक्तियों को भी उसने संरक्षण दिया जिनकी रुचि वैष्णव मत, भक्ति, ज्योतिष और विधि के अध्ययन में थी।[७२]

---

६७. बालोतरा की खबर, वि० सं० १८७८ के फाल्गुन मास की

६८. नागौर की खबर माघ के महीने की (संवत नहीं दिया हुआ है)

६९. खबर परबतसर की, वि० सं० १८७३ भाद्रपद की।

७०. खबर फलौदी (रामदेवरा) भाद्रपद महीने की (संवत नहीं), मारवाड़ की प्रशासनिक रिपोर्ट (१८८३-८४), पृष्ठ ५३३-३४

७१. फैक्ट फाइंडिंग कमेटी रिपोर्ट भाग १, पृष्ठ ३८७, मारवाड़ की प्रशासनिक रिपोर्ट (१८८३-८४), पृष्ठ ८०४

७२. भीकम भट्ट अनन्ताचार्य का मानसिंह को पत्र, वि० सं० १८८२ आश्विन शुक्ल पक्ष की सप्तमी का, खरीता बही संख्या १२, एफ ३२६, हकीकत बही जोधपुर वि० सं० १८७१-८०, संख्या १०, एफ ३४७-४८, हकीकत बही जोधपुर वि०

इस काल में जिन ग्रन्थों की रचना हुई उनको सुविधा की दृष्टि से दो समूहों में बाँटा जा सकता है—वे ग्रन्थ जो नाथ सम्प्रदाय से सम्बन्धित थे और वे ग्रन्थ जो ज्ञान की अन्य शाखाओं पर लिखे गए। मानसिंह के संरक्षण में शम्भुदत्त ने 'राजकुमार प्रबोध' की रचना की, पंडित विश्वरूप ने 'अवधूत गीता' की टीका लिखी, भीष्म भट्ट ने 'विवेक मार्तण्ड' और मूलचन्द यती ने 'मान सागरी महिमा' और 'नायिका लक्षण' की रचना की। डिंगल और संस्कृत के प्रसिद्ध कवि बाँकीदास को महाराजा मानसिंह से बहुत अधिक आश्रय और संरक्षण प्राप्त हुआ। बाँकीदास कृत 'इतिहास वार्ता' तथा उनकी अन्य कविताएँ केवल मारवाड़ के इतिहास के लिए ही नहीं वरन् अन्य राज्यों के इतिहास के लिए भी अत्यन्त समृद्ध और विश्वसनीय सामग्री उपलब्ध कराती हैं। मानसिंह का विद्वत्ता के प्रति प्रेम इसी से स्पष्ट हो जाता है कि उसके अधीन बाँकीदास को जो महत्त्व और दर्जा प्राप्त था वह केवल शासक से ही नीचा था और उसकी पालकी को महाराजा मानसिंह की पालकी से आगे जाने दिया जाता था।[७३] इसके अतिरिक्त, मानसिंह के आश्रय में अन्य कवि भी बड़ी संख्या में उन्नति करते रहे और फले-फूले। बागीराम ने 'जसभूषण' और जादूराम ने 'जसरूप' की रचना की। यह मानसिंह के ही संरक्षण का परिणाम था कि मनोहरदास ने 'जसभूषण चन्द्रिका' और 'फूल चरित्र' की रचना की। उत्तमचन्द ने 'अलंकार आशय' लिखा और शम्भुदत्त के 'राजनीति उपदेश' पर महाराजा ने उसे पर्याप्त पारितोषिक प्रदान किया।[७४]

ऐसा प्रतीत होता है कि उस युग की भावना महल की चारदीवारी के अन्दर भी घुस गई थी और आश्चर्य की बात है कि हमें मानसिंह की पत्नियों और रखेलों में भी इस महान सांस्कृतिक परम्परा में योगदान देने की परस्पर होड़ देखने को

[पिछले पृष्ठ का शेष]

सं० १८८१–९०, संख्या ११, एफ २९३, ३९१–४२४, ४४७ हकीकत बही जोधपुर वि० सं० १८९१–१९००, संख्या १२, एफ ३७ बंदगियों का रजिस्टर-संख्या ९७, बन्दगी व विगत बस्ता संख्या १/७६; ओझा; राजपूताने का इतिहास भाग ४, खंड २, पृष्ठ ८७२–७४, दाधीच आर० पी; मानसिंह का व्यक्तित्व और कृतित्व, (शोधग्रन्थ जोधपुर विश्वविद्यालय की पीएच० डी० उपाधि के लिए), पृष्ठ ९०–९३

७३. बंदगी रजिस्टर-संख्या ९७,

७४. फैक्ट फाइंडिंग कमेटी रिपोर्ट, पृष्ठ ३८९, श्यामसुन्दर दास : हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण भाग १, पृष्ठ १४, ३४, ७०, ९८, ११६, ८२१, ८४७ व ८५२

मिलती है ।[७५]

उसकी (मानसिंह जी) सामान्य रूप से नाथों के प्रति और विशेष रूप से नाथ दर्शन के प्रति श्रद्धा और भक्ति का परिणाम यह हुआ कि उस पर बड़ी संख्या में पुस्तकें लिखीं गईं। सेवक दौलतराम ने 'जलंधरनाथजी रो गुण' और 'परिचय प्रकाश', उत्तमचन्द्र ने 'नाथ चन्द्रिका' और 'तारकनाथ पंथियों की महिमा' की रचना की। उसके शासनकाल में नाथ सम्प्रदाय से सम्बन्धित कुछ अन्य ग्रन्थ भी लिखे गए। उनमें से अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ थे—नाथ स्तुति (बाँकीदास), 'नाथ उत्सव माला' (सेवकराम), 'जलंधरजस वर्णन', 'जलंधर स्तुति', 'नाथों की प्रतिष्ठा', 'नाथ शतक', 'जलंधर शतक' इत्यादि। योग पर उसके काल में भीष्म भट्ट की 'योगितो शिवी' की टीका और सदानन्द त्रिपाठी की 'आत्मोदीप्ती' पुस्तकें लिखीं गईं।[७६] मानसिंह प्रसिद्ध विद्वानों को देश के अन्य भागों से आमंत्रित करता था, पंडित-सभाओं का आयोजन करता था, उनसे लम्बी चर्चाएँ करता था और उनको भरपूर पारितोषिक देता था। उस समय कई अवसरों पर कवि-सम्मेलन, वाद-विवाद, अखाड़ा इत्यादि होते थे, जिनमें प्रसिद्ध विद्वान भाग लेते थे।[७७]

प्रत्येक विद्वान, कवि और कलाकार जो दरबार में आता था और इन बैठकों में या सम्मेलनों में भाग लेता था, विदा होते समय भरपूर उपहार और भेंट प्राप्त करता था। मानसिंह के दरबार में विद्वानों का इतना अधिक सम्मान होता था कि महाराजा उनमें से अधिकतर के और विशेषकर जिन्हें 'कुरब पालागन' मिला हुआ होता था, उनके चरण स्पर्श करता था। नाथ योगियों से सम्बन्धित कतिपय महत्त्वपूर्ण विद्वत् केन्द्रों, भारती और अन्य कंठाओं को मानसिंह के दरबार से नियमित अनुदान, पेटिया और भरपूर भत्ता मिलता था।[७८]

---

७५. मिश्रबन्धु विनोद-भाग ३, पृष्ठ १०५–६; वही भाग २, पृष्ठ १०३५

७६. श्यामसुन्दर दास, हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण भाग १, पृष्ठ १२१

७७. वही, भाग २, पृष्ठ ६२१–२२, अनन्ताचार्य का मानसिंह को पत्र, वि० सं० १८८२ आश्विन शुक्लपक्ष की सप्तमी, खरीता बही संख्या १२, एफ ३२६, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ ५६, १४०; हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ४२६, ४४८, मानपंडित सम्वाद गुटका सं० ६७, ६८, ७१, ७३, ७५, ७६, ७७, पुस्तक प्रकाश जोधपुर

७८. कल्ला उदयराम • प्रसिद्ध ज्योतिषी था। उसे 'कुरब-पालागन' दिया गया था, (बंदगियों का रजिस्टर, बस्ता संख्या १/७६, भारतदान साईं पृथ्वीराज को कुरब, जबकि पंडित शीतलदान को कुरब पालागन दिया गया) हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६१–१६००) संख्या १२, एफ २, ८, १०, १२, १३

सबसे ऊपर, महाराजा स्वयं एक महान विद्वान और कवि था। नाथ सम्प्रदाय का निष्ठावान अनुयायी होने के अतिरिक्त उसे ज्ञान की अन्य शाखाओं—न्याय, साहित्य, संगीत इत्यादि—पर पूरा अधिकार था। उसका उपनिषदीय अध्ययन उसके द्वारा रचित मुंडकोपनिषद की टीका में प्रतिलक्षित होता है। उसकी काव्य प्रतिभा उसके काव्य-ग्रन्थों—नाथ चँद्रिका, नाथ स्रोत, नाथ शतक, नाथ चरित, नाथ पुराण, जलंधर नाथ चंद्रोदय और सिद्ध ज्ञान तथा जलंधर ज्ञान सार—में पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हुई है। उसका 'कृष्ण विलास' जो भागवत के दशम सर्ग का राजस्थानी में अनुवाद है, उसे अष्टछाप के कतिपय प्रसिद्ध कवियों के समकक्ष ठहरा सकता है।[७९]

चित्रकला :

महाराजा मानसिंह के राजत्वकाल में राजपूत शैली की चित्रकला की जोधपुर कलम को नया प्रोत्साहन मिला। 'ढ़ोला-मारू' की एक चित्रमय प्रति तैयार कराई गई। मिलन और विरह में दिन-प्रतिदिन के आवेगों को चित्रित करने के लिए चित्र-कला के माध्यम का उपयोग किया गया। उसके चित्रों का आकार १६ इंच लम्बा और ११ इंच चौड़ा है और वे संख्या में एक सौ बीस हैं। एक दूसरा महत्त्वपूर्ण चित्रित ग्रन्थ जो महाराजा मानसिंह के राजत्वकाल में तैयार किया गया, 'पंचतंत्र' है, जिसमें चार सौ चित्र हैं।[८०]

'सिद्ध सिद्धान्त पद्धति' नाथ पंथ के यौगिक पक्ष का अध्ययन कराती है। उसको चित्रित करने में एक अत्यन्त नवीन प्रणाली को अपनाया गया। ये चित्र देशी कागज पर जो कि चार इंच लम्बा और डेढ इंच चौड़ा है, जिसका किनारा आध इंच चौड़ा है, बनाए गए हैं। कलात्मक कुशलता का एक अत्यन्त सुन्दर नमूना होने के अतिरिक्त, इस संग्रह में जिन चित्रों का समावेश किया गया है उनमें उत्तम मनका के काम का वैभव-शाली प्रभूषित-करण है जिसके कारण उनकी शोभा और सौन्दर्य में वृद्धि हुई है। इसी प्रकार 'नाथ चरित' के सात चित्र जो कि मोटे कागज पर बनाए गए हैं, नाथ साधुओं की छवि को चित्रित करते हैं। उनमें सूक्ष्म से सूक्ष्म ब्यौरे को भी वास्तविकता के पुट के साथ प्रदर्शित किया गया है और साथ ही उनको महान उत्कृष्टता से स्वर्ण के रंग से अलंकृत किया गया है। 'शिव रहस्य' में जो चित्र समाविष्ट किए गए हैं उनमें हिम-आच्छादित पर्वतों को प्रदर्शित किया गया है वे हिन्दू पौराणिक कथाओं के दृश्यों का निरूपण करते हैं। रामायण की सचित्र प्रति में जिन इक्यानवे चित्रों का समावेश

---

७९. श्यामसुन्दरदास, उल्लिखित भाग १, पृष्ठ १२१ और भाग २, पृष्ठ ६२१, ६२२

८०. 'ढोला मारू' एक सचित्र हस्तलिखित पुस्तक है, जो 'पुस्तक प्रकाश' में सुरक्षित है।

किया गया है वे सादा किन्तु शोभामय तथा मोहक रीति से भगवान राम के जीवन की गाथा को चित्रित करते हैं। 'शिव पुराण' के एक सौ नौ चित्र जिनके किनारे पीले हैं, इस बात की साक्षी हैं कि उस समय तक जोधपुर कलम परिपक्व हो चुकी थी।[८१]

पुस्तक प्रकाश में हस्तलिखित पुस्तकों की जो सचित्र प्रतियाँ उपलब्ध हैं उनके अतिरिक्त चित्रकला का जिस प्रकार महाराजा मानसिंह के राजत्वकाल में विकास हुआ उसका निरूपण जोधपुर के किले में महलों की दीवारों पर सुरक्षित चित्रों द्वारा होता है।

दुर्भिक्ष और ताऊन (प्लेग)

मारवाड़ उस क्षेत्र में था जहाँ लगातार सूखा पड़ता था। १७९२ से वहाँ सोलह दुर्भिक्ष पड़ चुके थे। १७९२, १८०४, १८१२–१३, १८३३–३४, १८३७–३८, १८४८–४९ के दुर्भिक्ष अत्यन्त भयंकर थे।[८२] १८१२–१३ के दुर्भिक्ष के कारण उत्पन्न होने वाला संकट अत्यन्त उग्र था, क्योंकि उस वर्ष फसलें पूर्णतया नष्ट हो गई थीं और जल की अत्यधिक दुर्लभता हो गई थी। अनाज का भाव एक रुपये का तीन सेर हो गया था और मनुष्यों की मृत्यु-संख्या भयावह हो गई थी। केवल यही अच्छाई थी कि घास बहुतायत से उत्पन्न हुई थी। इस कारण कम से कम पशुओं के झुंडों को बचाया जा सका। ग्रामीण जनसंख्या का अधिकांश भाग गुजरात और मालवा को प्रवास कर गया, और क्योंकि वे भी कठिनाई में थे अतः वे उन दुर्भिक्ष पीड़ितों की सहायता करने में असफल रहे। अन्त में प्रवास करने वाले व्यक्ति उद्देश्य-हीन घुमक्कड़ बन गए और उनमें से हजारों की मृत्यु हो गई। १८३३–३४ और १८३७–३८ में लगभग उसी मात्रा में फिर वही कहानी दुहराई गई।[८३]

१८३५ के दुर्भिक्ष के पश्चात् भयंकर ताऊन (प्लेग) पड़ा जिसके परिणाम स्वरूप हजारों की संख्या में लोग मरे। जोधपुर और पाली के लोगों को सबसे अधिक हानि उठानी पड़ी।[८४] इन सभी दुर्भिक्षों में अनाज पर आयात-कर समाप्त कर दिया गया और विभिन्न स्थानों, रानियों, ठाकुरों और धनी नागरिकों ने भोजन

---

८१. नाथ चरित्र, सिद्ध सिद्धान्त पद्धति, शिव रहस्य, शिव पुराण आदि सचित्र हस्तलिखित पुस्तक प्रकाश में उपलब्ध हैं।

८२. एरस्किन; राजपूताना गजेटियर भाग ३, खंड १, पृष्ठ १४०–१४१

८३. विल्डर का आर्टरलोनी को पत्र, ७ अक्टूबर १८२२, रेजीडेंसी रेकार्ड, पुरानी जोधपुर फाइल संख्या ५, तवारीख मानसिंह, एफ १९५–१९६

८४. ओझा : राजपूताने का इतिहास भाग २, पृष्ठ ८५३

वितरण किया।[८५] महाराजा ने तुलादान के रूप में लाखों रुपये दान दिए। १८०४ के दुर्भिक्ष में उसने महामन्दिर के निर्माण में दुर्भिक्ष पीड़ित उन व्यक्तियों को काम देने के लिए, जो अपने-अपने गाँव छोड़कर हजारों की संख्या में राजधानी में आ गए थे, दस लाख रुपये व्यय किए।[८६] १८१३ के दुर्भिक्ष में जब मारवाड़ में 'अन्नकाल' और 'जलकाल' दोनों ही पड़े तब महाराजा ने महामन्दिर में और विभिन्न हुकूमतों के कई मंदिरों में नहर, झालरा तथा चारदीवारी के निर्माण में तीस लाख रुपये से अधिक व्यय किए। १८३४ और १८३७–३८ के दुर्भिक्षों के समय में धन का अभाव तथा अन्य परेशानियों और चिन्ताओं के होते हुए भी महाराजा ने लाखों रुपये दान में देने तथा निर्माण कार्य करवाने में संकोच नहीं किया।[८७]

१८१३ का दुर्भिक्ष पड़ा तब जोधपुर नगर में गेहूँ का मूल्य प्रति रुपया ३ सेर था। कई दिनों तक पाली और जोधपुर में गेहूँ तनिक भी उपलब्ध नहीं था। हैजा, ज्वर और भूख से ही केवल मारवाड़ की एक तिहाई जनसंख्या नष्ट हो गई और पशुओं की मृत्यु संख्या के बारे में ८५ प्रतिशत से कम का अनुमान नहीं किया जाता था। उस संकट के काल में आयसदेवनाथ ने गाँव-गाँव घूम कर लोगों को सदावर्त खोलने के लिए प्रोत्साहित किया और मानसिंह को हुकूमत की लागें वसूल न करने के लिए राजी किया। दुर्भिक्ष के वर्षों में विभिन्न परगनों से चौधरी लोग जोधपुर आये, महाराजा से मिले और मालगुजारी और लागती रकम की छूट के द्वारा उन्होंने कष्ट निवारण की व्यवस्था की।[८८]

मारवाड़ की कृषि सम्पत्ति

दुर्भिक्षों द्वारा उत्पन्न दुष्कालों के होने पर भी मारवाड़ के लोग मुख्यतः कृषि में ही लगे रहे। जहाँ तक खेती की पैदावार का प्रश्न था, मारवाड़ महत्त्वपूर्ण था। वह गेहूँ, जौ, चना, बाजरा, ज्वार, मक्का, मूंग, उड़द, अफीम और कपास उत्पन्न करता था। उत्तरी भाग में किसान एक ही खेत में गेहूँ और जौ तथा चना और जौ एक साथ बोते थे। पहले को 'गौजू' और दूसरे को 'बेझर' कहा जाता था। यद्यपि उनमें

---

८५. तवारीख़ मानसिंह, एफ १६५–६६

८६. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं १८५६–६०), संख्या ८, एफ ४८३, ख्यात मारवाड़ भाग ३, एफ २६, दस्तूरी री बही, एफ १५५

८७. दस्तूरी री बही, एफ १५५, हकीकत बही जोधपुर (वि० स० १८९१–१९००), संख्या १२, एफ १५४, ख्यात-शेखावत बस्ता संख्या २२/१०१, एफ ५२–५३

८८. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ९, एफ १२४–१४०, ४८३, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ ३१६; हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८८१–१९००), संख्या १२, एफ १५४

से कोई भी गेहूँ के समान प्रतिष्ठित नहीं था, तथापि खाद्य पदार्थ के रूप में वे सस्ते थे। मूंग और मोठ एक साथ पैदा किए जाते थे। यद्यपि मारवाड़ उन प्रदेशों से बहुत दूर था जहाँ नदियाँ बही हों, तथापि मारवाड़ के दक्षिण-पूर्वी भाग मे फसलें सामान्यतः अच्छी होती थीं। मानसिंह के काल में मारवाड़ का यह भाग उतना शुष्क और अनुपजाऊ नहीं था जितना शेष राज्य।[८९]

पूर्वी मारवाड़ के लगभग प्रत्येक भाग में बरसाती नाले थे जो अन्य मौसमों में सूख जाते थे, परन्तु वर्षाकाल में भीषण वेग से बहते थे। वे लूनी की उस बड़ी नदी से मिलते थे जो मारवाड़ को विकर्ण की आकृति में काटती थी। लूनी नदी इस अर्थ में अत्यन्त उल्लेखनीय थी कि वह मारवाड़ की उतनी सम्पत्ति को नष्ट कर देती थी जितनी वह अपने जल से भूमि को उर्वर बनाती थी। वर्षा ऋतु में उसमें बहुत अधिक जल बहता था और उसकी बाढ का पानी उसके तटों और उसकी सहायक नदियों और नालों के तटों के ऊपर उठकर इतने प्रभावकारी ढंग से क्षेत्र को जलप्लावित कर देता था कि पृथ्वी के धरातल के बहुत समीप वर्ष भर जल मिलता था। अजमेर से कच्छ की खाडी तक बिना किसी विघ्न के जौ-गेहूँ के विशाल खेत फैले हुए थे। उनकी सिंचाई के लिए उस जल को खींचा जा सकता था। सिंचाई के लिए जल उन रेहँटों के द्वारा खींचा जाता था जो यद्यपि भद्दी बनावट के होते थे तथापि निश्चित रूप से चरस की अपेक्षा अधिक सुविधाजनक थे। उस प्रदेश के समतल को ध्यान में रखकर एक मील से अधिक लम्बे जलसेतु अत्यन्त सावधानी और परिश्रम से बनाए जाते थे। वर्षा ऋतु के समाप्त होने पर गेहूँ की फसल के पकने के लिए छः सिंचाइयों से अधिक की आवश्यकता नहीं पड़ती थी।[९०]

यद्यपि मारवाड़ की मिट्टी अफीम उत्पन्न करने के लिए बहुत अधिक उपयुक्त नहीं थी, तथापि अहिपुष्प (अफीम पौधे के फूल) गोडवार के परगने में उन पहाड़ियों के नीचे जो उसे मेवाड़ से पृथक् करतीं थी, उत्पन्न किए जाते थे। वहाँ की अफीम घटिया किस्म की होने के कारण कच्ची ही बेच दी जाती थी। उसकी कीमत कम मिलती थी और जब उसको पानी में घोला जाता था तब वह मादक पेय बन जाता था, जिसे समाज के निम्न वर्ग के लोग काम में लाते थे। मारवाड़ के लोग अफीम के व्यसनी थे, जिसका प्रभाव उनकी सूजी हुई आँखों तथा समय के पूर्व वृद्ध होने में

---

८९. पेपर संख्या ७, मारवाड़ के मामलों के बारे में, १४ अक्टूबर १८३०, संख्या ३–८, एफ एस, बही अन्न का कोठार, परगनों और हुकूमत की, वि० सं० १८७९, खालसा के गाँवों की हवाला तलका बही, वि० सं० १८८१

९०. पेपर संख्या ७, मारवाड़ के मामलों के बारे में, १४ अक्टूबर १८३०, संख्या ३, ८, एफ एस

दृष्टिगोचर होता था। मारवाड़ के कुछ भागों में तम्बाकू उत्पन्न होती थी, परन्तु वह पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न नहीं होती थी, जिससे गुजरात से उसके आयात की आवश्यकता रहती थी।[९१]

उद्योग-धधे :

मारवाड़ का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उद्योग नमक बनाने से सम्बन्धित था, जो कि सांभर और पचभद्रा में बहुत अधिक मात्रा में मिलता था। पचभद्रा में घास द्वारा नमक बनाने की रीति उद्वाष्पन की उस सामान्य रीति से भिन्न थी जिसका सांभर, डीडवाना और नावां में उपयोग किया जाता था। पचभद्रा में लगभग एक सौ बीस फीट लम्बे, चालीस फीट चौड़े और लगभग दस फीट गहरे गड्ढे नमकीन मिट्टी में खोदे जाते थे और एक जंगली झाड़ी जिसे 'मरुई' कहते थे, नमकीन जल के ऊपर बिछा दी जाती थी और यह दो वर्ष के अन्दर उस जल को नमक के पिंड में परिवर्तित कर देती थी जो चार से पाँच फीट तक गहरा होता था। फलौदी में भी नमक बनाया जाता था। उनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उत्पादन सांभर में होता था।[९२] अन्य बडे उद्योगों में मारवाड़ केवल चर्म संस्करणी (टैनरी), आटे की चक्की, ऊन और कपास के पेंचों का विकास करने की बात सोच सकता था, परन्तु ये उपक्रम लम्बे समय के उपरान्त कहीं १८८६ के पश्चात् ही सम्भव हो सके।

हस्तशिल्प :

मारवाड़ में यथेष्ट संख्या में अपरिष्कृत शिल्प प्रचलित थे। उनमें से अधिकांश अत्यन्त अल्पविकसित (आद्य) केवल थोड़े से औजारों से चलाए जाते थे। लगभग ६६ प्रतिशत जनसंख्या गोचर तथा कृषि पर निर्वाह करती थी। अतएव ग्राम्य समुदाय का गैर कृषि सम्बन्धी अंश नगण्य था। औसत कृषक की आवश्यकताएँ बहुत थोड़ी और सरल थीं। उसको केवल बुनकर, कुम्हार, तेली, लुहार और मोची की सेवाओं की आवश्यकता होती थी। गाँव के ये छोटे निर्मातागण जो भूतकाल में

---

९१. विल्डर का आक्टरलोनी को पत्र, ११ अक्टूबर १८२२, आर० ए० पुरानी जोधपुर फाइल संख्या ५, खालसा हवाला रा चौपनियो, वि० सं० १८८६

९२. सदरलैंड का मैडाक को पत्र, १७ जुलाई १८३४, कान्स संख्या ७२, एफ० पी०, जमाखर्च बही-पाया, तख्तगढ़ जोधपुर दरीबा के बारे में, वि० सं० १८७८, रेस्काइन उल्लिखित, पृष्ठ १५१, ऐशटन एफ : दी साल्ट इंडस्ट्री ऑफ राजपूताना, दी जरनल ऑफ इंडिया आर्ट एण्ड इंडस्ट्रीज—भाग ४, लंदन १६००, पृष्ठ ५६; जनरल रिपोर्ट ऑन साल्ट प्रोड्यूसिंग कैपेबिलिटीज़ ऑफ जोधपुर स्टेट, कलकत्ता १८७७, पृष्ठ १२

ग्रामीण जनसंख्या की आवश्यकताओं को प्रशंसनीय ढंग से पूरा करते आए थे, अब बाहरी निर्माताओं विशेषकर अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् जब विदेशी प्रतिस्पर्द्धा ने उन लोगों को दबोचना और धक्का देकर उद्योग से बाहर निकालना शुरू कर दिया, तब प्रतिस्पर्द्धा करने में असफल प्रमाणित हो रहे थे। अतएव यह स्वाभाविक था कि उनमें से अधिकांश ने अधिकाधिक भूमि पर निर्भर रहना आरम्भ कर दिया।[९३]

महाराजा मानसिंह के राजत्वकाल में मारवाड़ की औद्योगिक शक्ति निम्नतर उतार पर रही, क्योंकि वह विशेषकर विशुद्ध आन्तरिक अशान्ति और लूटपाट का काल था। जो हस्तशिल्प पहले से ही पंगु थे उन्हें दुर्भिक्षों ने और भी अधिक अस्त-व्यस्त कर दिया। उन दिनों बुनाई ही एक मात्र महत्त्वपूर्ण उद्योग थी। केवल मोटा सूती-ऊनी कपड़ा जो अधिकांश में स्थानीय उत्पादित तन्तु से बनता था, तैयार किया जाता था। चमड़े का काम यद्यपि अपरिष्कृत प्रकार का होता था तथापि प्रचलित था, परन्तु वह या तो चमड़ा कमाने (चर्म संस्कार) या अधिक से अधिक कुप्पियों, पखालों, चरस, लाव, (रस्सी) चमड़े के केस, चमड़े के तकिए जो काठियों और पालनों के उपयोग में आते थे, बनाने तक सीमित था। जमदानियाँ अथवा जोधपुर के चमड़े के संदूक, नागौर के गिटार के तार, नमदे का लबादा और गलीचा, मेड़ता के खसखस के पंखे तथा सोजत की काठियाँ और लगामें प्रसिद्ध थीं। सूती वस्त्र मारवाड़ का अत्यधिक विशेषता प्राप्त उद्योग था। मारवाड़ के रंगरेज और छीपे रंगों के चाव की परितुष्टि अथवा रंगों के श्रेष्ठ रूपांकन के संयोजन के लिए प्रसिद्ध थे। चुपरिस, लुहारिया, पोमचा, मोलिया, पाग इत्यादि बहुत बड़ी संख्या में तैयार किए जाते थे। पुरुषों के लिए साफे और स्त्रियों के लिए ओढ़नियाँ छदवासों और खत्रियों द्वारा अत्यधिक परिश्रम से रगे और तैयार किए जाते थे।

पशुधन :

मारवाड़ की जलवायु और उत्पादन पशुओं के वर्धन के लिए अनुकूल थे। उसके ऊँट काले-भूरे रंग के होते थे जो बहुत अधिक थकावट को भी सहन कर सकने के योग्य थे। वे प्रति ऊँट पचास या साठ रुपये में खरीदे जा सकते थे, परन्तु जो सवारी अथवा संदेश को अति शीघ्र पहुँचाने के लिए काम में आते थे उनका मूल्य बहुत अधिक होता था। दो सौ मील के लिए ऊँट को आठ रुपये में किराए पर लिया जा सकता था। नमक और नारियल को छोड़ कर मारवाड़ का सम्पूर्ण व्यापार ऊँटों के द्वारा होता था, क्योंकि अधिकांश सड़कें (मार्ग) गाड़ियों द्वारा सुविधापूर्वक

---

९३. एरस्किन उल्लिखित, पृष्ठ ११७–१९

उपयोग के लिए उपयुक्त नहीं थीं।[६४]

मारवाड़ और विशेषकर नागौर के बैल समस्त पश्चिमी भारत में प्रसिद्ध थे। साँचौर के पशु भी श्रेष्ठ जाति के होते थे। वे मुख्यत: कच्छ और मारवाड़ के मध्य यातायात और पचभद्रा और साँभर के नमक को मंडियों में लाने के लिए रक्खे जाते थे तथा प्रति दिन हजारों की संख्या में उनको जाते देखा जा सकता था। साधारणतया इन पशुओं के स्वामी चारण होते थे, जिन्हें वाणिज्य करने वाला समुदाय इस दृष्टि से कि वे समस्त मारवाड़ में आदरित थे, अत्यधिक विश्वसनीय मानता था।[६५] सभी जगह उन पर विश्वास किया जाता था, क्योंकि वे जिस माल का परिवहन करते थे उसकी पूरी सद्भावना के साथ रक्षा भी करते थे। क्योंकि उनका बहुत अधिक सम्मान किया जाता था अत: राज्य अधिकारी भी उनके व्यापारिक माल पर जिसे वे ले जाते थे, हल्की चुंगी या 'दाण' लेते थे और डाकू जो अधिकतर राजपूत होते थे, उनके माल को छोड़ देते थे। नमक के यातायात के लिए गधों का उपयोग होता था। बकरे भोजन और भेड़ें ऊन उपलब्ध कराती थीं। मारवाड़ की ऊन बीकानेर तथा जैसलमेर की ऊन-जैसी बढ़िया नहीं मानी जाती थी। अछूत जातियों के लोग बहुत अधिक संख्या में सुअर पालते थे, यद्यपि उन सुअरों की सूरत पालतू सुअरों की अपेक्षा जंगली सुअरों से अधिक मिलती थी। यद्यपि मारवाड़ के घोड़े बढ़िया नस्ल के नहीं होते थे, तथापि काठियावाड़ी पशु के संसर्ग से जो मिश्रित नस्ल उत्पन्न होती थी वह अति उत्तम मानी जाती थी।[६६]

व्यापार और वाणिज्य :

मारवाड़ का व्यापार पुराने समय में बहुत विस्तृत था। उसका महान वाणिज्य स्थल पाली था जो कि पश्चिमी समुद्र तट और उत्तरी भारत के मध्य उस मार्ग पर स्थित था जिस मार्ग से मालवा की अफीम चीन और पश्चिमी एशिया को निर्यात की जाती थी। भारत के प्रत्येक स्थान के व्यापारी पाली में मिलते थे। उसका भारत के पश्चिम में स्थित देशों से भी यातायात होता था। टीन के संदूकों में बन्द किया हुआ योरोप का माल भावनगर और बम्बई के बन्दरगाहों पर उतारा जा कर पाली लाया जाता था। प्रति वर्ष दस लाख रुपये की छींट पाली पहुँचती थी। पाली का मुख्य व्यापार अफीम का था। प्रति वर्ष अफीम से लदे लगभग दो हजार ऊँट पाली से गुजरते थे। इस प्रकार प्रति वर्ष बीस से चौबीस हजार मन अफीम का इस मार्ग

६४. सिंघाराय दयालदास, महाजनो री बही, एफ ७८

६५. पेपर संख्या ७, मारवाड़ के मामलों के बारे में, १४ अक्टूबर १८३०, संख्या ३–८, एफ एस

६६. वही।

से निर्यात होता था।[९७]

अफीम पर मार्गस्थ शुल्क बहुत ऊँचा होने के बावजूद भी वह पाली के मार्ग से करांची ले जाई जाती थी। वहाँ से वह डामन तथा अन्य स्थानों को समुद्री जहाजों से भेजी जाती थी। जोधपुर, जैसलमेर और यहाँ तक कि सिंध के अमीर भी अपने अपने राज्य क्षेत्रों में से उसे निकलने देने के लिए अनाप-शनाप ऊँचा शुल्क माँगते थे। यही नहीं, कुछ जागीरदार भी अपने कर का दावा करते थे। अफीम पर लगने वाले शुल्कों का भार इतना अधिक हो गया था कि पाली के व्यापारी उसको ले जाने के लिए उन व्यक्तियों को सौंप देते थे जो एक ऊँट के भार की अफीम को तीन सौ रुपये में डामन सुरक्षित पहुँचा देना स्वीकार करते थे।

पेशे :

मारवाड़ में जीवन निर्वाह का मुख्य साधन कृषि करना था। आधे से अधिक जनसंख्या एक न एक प्रकार की कृषि से सम्बन्धित थी। उनमें से आधे या तो भू स्वामी या किसान थे, लगभग ५३००० खेत-मजदूर थे और बहुत थोड़े लगभग ३००० लोग फल और सब्जी उत्पन्न करते थे। इनके अतिरिक्त लगभग पचास हजार व्यक्तियों ने खेती को आंशिक रोजगार के रूप में स्वीकार कर रखा था और खेतों में काम के द्वारा उनका निर्वाह होता था। लगभग अस्सी हजार व्यक्ति कपास, चमड़े, भोजन और पेय पदार्थों से सम्बन्धित उद्योगों में लगे हुए थे। चालीस हजार पशु-पालन में लगे थे। निजी और घरेलू नौकर तीस हजार थे, जबकि सात हजार वाणिज्य में और नब्बे हजार ग्रामों के सेवा कार्यों में लगे थे। पेशेवर वर्गों में जिनके अन्तर्गत धर्म, चिकित्सा तथा अभिनेता, गायक और नृत्य करने वाले भी सम्मिलित थे, केवल दस हजार लोग थे। अस्सी हजार मारवाड़ियों के पास नाम लेने लायक कोई उपजीविका या धंधा नहीं था, क्योंकि उनमें से अधिकांश भिखारी, कैदी और साधु थे।[९८]

ग्रामीण अपनी फसल और पशुधन में रुचि लेते थे। प्रत्येक गाँव में खाती तथा लुहार रहते थे, जो गाड़ियों और हलों की मरम्मत करते थे और उनका निर्माण करते थे। मोची या चमार जूते बनाने के लिए और कुम्हार मिट्टी के बर्तन तथा रँहट के लिए ठिलियाँ बनाने के लिए प्रत्येक गाँव में थे। ग्रामीणों में बहुत कम लोग विद्या सम्बन्धी पेशे करते थे। जो लोग गुप्त उपचार करने की शक्ति रखने का दावा करते थे वे अपने ढंग से उन लोगों का उपचार करते थे जो बीमार होते थे। सामान्य

---

९७ सदरलैंड का मैडाक को पत्र, १८ जुलाई १८३९, संख्या ५४, एफ पी

९८. आक्टरलोनी का स्विन्टन को पत्र, २४ जुलाई १८२३, १५ अगस्त १८२३, कान्स १५ अगस्त १८२३, संख्या १३, एफ पी

रूप से रोग की चिकित्सा जादू के द्वारा या मंत्र पढ़कर की जाती थी। खून निकालने वालों, मालिश करने वालों, जड़ी-बूटियों से चिकित्सा करने वालों आदि की कोई कमी नहीं थी, जो कि पुश्तैनी हकीमों की तरह चिकित्सा का कार्य करते थे और कभी कभी नाई, लुहार, खाती तथा अन्य व्यक्ति अपने अपरिष्कृत और भौंडे तरीकों का उपयोग कर टूटी हड्डियों और हड्डी की चोटों को भी ठीक कर देते थे।[९९]

पद, स्थिति, और द्रव्य के लिए कोई संघर्ष न होने के कारण ग्रामीण जनसंख्या उस अशान्ति और गड़बड़ी की ओर तनिक भी ध्यान न देकर जो उनके चारों ओर हो रही थी, अपने दिन शान्ति से व्यतीत करती थी। टूट-फूट के जीवन के अभ्यस्त होने के कारण वे जो कुछ पा लेते थे उससे ही सुखी रहते थे और अपने भाग्य और जीवन में जो स्थान उन्हें प्राप्त था उससे समाधान कर लेते थे। साधारणतया एक गाँव का रहने वाला नगर में रहने वाले अपने प्रतिरूप की अपेक्षा बहुत अधिक साधु, सादा, और अपनी आदतों में नियमित होता था।

मजदूरी :

मारवाड़ के विभिन्न स्थानों में मजदूरी में बहुत अधिक भिन्नता रहती थी। वह माँग और पूर्ति पर निर्भर होती थी। कुशल कारीगर, जैसे—लुहार, खाती, बुनकर, राज मिस्त्री, संगतराश और दर्जी दो से चार आना तक प्रति दिन कमाते थे। चित्रकार तीन से चार आने, रंगरेज २ से ६ आने और सुनार ४ से ८ आना तक प्रतिदिन कमाते थे। मेड़ता में एक ऊँट या एक नौकर या हाँकने वाले सहित बैलगाड़ी ६ आने प्रतिदिन में किराये पर की जा सकती थी। एक कुली की दैनिक मज़दूरी एक आने से डेढ़ आने तक और भिश्ती की मज़दूरी एक आने से दो आने तक होती थी। खेत-मज़दूरों को मजदूरी अधिकतर वस्तुओं में दी जाती थी और बहुधा उनको वस्त्रों तथा अन्य छोटी आवश्यक वस्तुओं की भेंट से अनुपूरित किया जाता था। गाँव के कारीगरों और नौकरों को फसल काटने और गहाने के समय भी कुछ पारिश्रमिक दिया जाता था।[१००]

विभिन्न रोजगारों और नौकरियों में लगे हुए लोगों को जो मासिक वेतन दिया जाता था उसकी तुलना में ये दैनिक मज़दूरियाँ बिल्कुल युक्ति संगत थीं। नाइयों, मालियों, धोबियों, नगारियों, पालकी उठाने वालों, गाने वालों आदि को प्रति मास तीन रुपये वेतन दिया जाता था, जबकि एक रसोइये का वेतन पाँच रुपये, एक ताबीनदार का पौने चार रुपये और एक दर्जी और मशालची का चार रुपये मासिक

९९. पेपर संख्या ७, मारवाड़ के मामलों के बारे में, १४ अक्टूबर १८३०, संख्या ३–८, एफ एस

१००. सायर, जालौर की एकरोजा बही, वि० सं० १८९२

था। उन चरवादारों को जिन्हें वेतन के अतिरिक्त 'पेटिया' भी मिलता था प्रतिदिन एक आने की दर से मजदूरी दी जाती थी। फर्राश खाजू को उसके एक रुपये मासिक वेतन के अतिरिक्त प्रतिदिन पेटिया के वास्ते एक आना मिलता था। एक 'रायका' को केवल पाँच आना प्रतिदिन दिया जाता था जिसमें ऊँट का किराया भी सम्मिलित था, जबकि एक घोड़े वाले को प्रति मास केवल नौ रुपये मिलते थे।[१०१]

हाकिम को एक सौ रुपये मासिक की दर से वेतन दिया जाता था। कारकुन को २० रु०, पेशदास्त को ३० रु० और थनैत को १० रु०, पोतेदार और मुशरफ को आठ रुपये और लिपिक, जैसे—वाकिया नवीस, इत्तलानवीस, कागदनवीस, नवीसंदास, तबीनदार आदि में से प्रत्येक को सात रुपये मासिक वेतन दिया जाता था। चपरासियों में से जिनमें मशालची, चोबदार, निशानवरदार, नगाड़ची, प्यादा, पानीवाला, सवार इत्यादि सम्मिलित थे, प्रत्येक को ३ रुपये मासिक वेतन मिलता था।[१०२]

लोगों की आर्थिक दशा :

नगरों में रहने वाली जनसंख्या की आर्थिक दशा सब मिला कर संतोषप्रद थी, यद्यपि खेती में लगी हुई जनसंख्या की आर्थिक स्थिति बुरे समय में बिगड़ जाती थी।[११३] अधिकांश लिपिकों का वेतन कम होने के कारण, वे कम, मोटे और भद्दे वस्त्र पहिनते थे, जो कि मोटे रेजे के बने हुए होते थे। यद्यपि विवाह, उत्सवों और त्योहारों पर अक्सर बढ़िया चमकदार वस्त्र देखने को मिलते थे तथापि भूमिहीन दैनिक मजदूरों, पल्लेदारों, घरेलू नौकरों और पानी ले जाने वालों की दशा अत्यन्त दयनीय थी। किसान अपने पूर्वकालिक औजारों से जितनी अच्छी तरह हो सकता था उतनी अच्छी तरह काम करते थे। वे बहुधा ऋणी होते थे और उनका रहन-सहन का ढंग अत्यन्त निर्धनतापूर्ण होता था।[१०४]

---

१०१. रोजनामा बही, पाय तख्तगढ़ जोधपुर, वि० सं० १८८४,

१०२. जमा खर्च बही डीडवाना चबूतरा, वि० सं० १८८५, मसवारा बही सरकार जालौर, वि० सं० १८६६

१०३. सदरलैंड का लडलो को पत्र, २२ सितम्बर १८४१, संख्या १२५५, १८४१ एफ पी

१०४. हरनामदास और बालमुकुन्द : ऐ रिपोर्ट ऑन दी मॉरल एण्ड मैटीरियल प्रोग्रेस, पृष्ठ १४, राजपूताना एजेंसी फाइल संख्या ३२, १८६० की, जैक्सन : रिपोर्ट ऑन वेस्टर्न राजपूताना स्टेट, पृष्ठ २६

६

उपसंहार

मानसिंह के जीवन के अन्तिम दिन :

नाथ गुरुओं के प्रति गहन श्रद्धा और भक्ति ने मानसिंह को अपनी मृत्यु के कगार के सम्मुख ला खड़ा किया। अड़तीस लम्बे वर्षों तक उसने उनको संतुष्ट करने के लिए अपनी सम्पत्ति, शासकीय प्रसिद्धि, अपने निजी आराम आदि सभी का परित्याग कर दिया था।[1] किसी भी अन्य विचार अथवा कारण ने उसे अपने आचरण तथा व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिए प्रेरित नहीं किया। महाराजा मानसिंह द्वारा एक अत्यन्त अवांछित समूह को जिसके अधिकांश लोगों में शीलनिष्ठा और सच्चरित्रता का सर्वथा अभाव था, ऐसा एकनिष्ठ और अडिग समर्थन दिए जाने के कारण ब्रिटिश शासन को या तो उस स्थिति में सुधार करने अथवा उस स्थिति का अन्त करने की अनिवार्य आवश्यकता का अनुभव होने लगा। जब लडलो द्वारा कठोर भाषा में लिखे गए खरीतों का भी महाराजा पर कोई प्रभाव नहीं हुआ और मारवाड़ के प्रशासन में सुधार करने के उसके सभी प्रयत्न असफल हो गए[2] तब उसने अजमेर से सेना मँगा कर उन प्रमुख नाथ साधुओं को गिरफ्तार करने का निश्चय किया जो उस समय भी मारवाड़ में मौजूद थे और जिनका मारवाड़ के प्रतिदिन के प्रशासन में हस्तक्षेप अग्नि में ईंधन का काम कर रहा था।

तब तक मानसिंह ने मारवाड़ से निष्कासित साधुओं की पुनः वापसी के लिए दबाव डालना बन्द कर दिया था; परन्तु नाथ साधुओं को मिलने वाली वृत्ति के भुगतान के लिए उसके प्रयत्न निरन्तर जारी रहे। उसकी इच्छा थी कि नाथों को अनुदत्त गाँवों की मालगुजारी (आय) उनके सीधे प्रबन्ध में दे दी जाए। उस समय

१. सदरलैंड का मैडाक को पत्र, १८ जनवरी १८४३, कान्स १४ जून १८४३, संख्या ७३–८६, एफ पी।

२. मानसिंह का लडलो को खरीता, वि० सं० १८६८ वैशाख शुक्ल पक्ष की चतुर्थी; पोर्ट फोलियो फाइल संख्या १७, लडलो का मानसिंह को खरीता, वि० सं० १८६८, वैशाख कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, पोर्टफोलियो फाइल संख्या १७

जबकि वह नाथ गुरुओं के प्रति नरम रुख अपनाने के लिए अंग्रेजों पर भारी दबाव डाल रहा था, इस खबर ने कि उनके गिरफ्तार किये जाने की संभावना है, उसको पूर्णतया किंकर्तव्यविमूढ़ बना दिया और उसकी बढ़ती हुई उदासीनता को और अधिक बढ़ा दिया। इस खबर ने उसके पहले से ही जर्जर स्नायु संस्थान को गहरा आघात पहुँचाया और उसके लिए यह स्वाभाविक ही था कि वह चिन्तित हो उठता और नाथ साधुओं की गिरफ्तारी को रोकने का प्रयत्न करता।

२ अप्रेल १८४३ को वह पूर्णतया अचम्भित हो गया। उसने समस्त रात्रि गहरी उद्विग्नता में व्यतीत की और वह इस उद्देश्य से भटकता फिरा कि अपने जीवन को समाप्त करने के लिए कोई साधन प्राप्त कर सके। उसने इस बात की भी धमकी दी कि वह अपने शरीर के मांस को टुकड़े-टुकड़े करके काट डालेगा और अपने सर को दीवार से टकरा देगा।[३] ७ अप्रेल को जब लडलो उससे मिलने गया तब उसने लडलो से कहा कि वह स्वयं सब भूलों के लिए दोषी है और जोगेश्वरों का कोई दोष नहीं है। वह यह भी चाहता था कि वह जोधपुर से छत्तीस मील दूर चला जाए और वहाँ सभी नाथ साधुओं को एकत्रित कर उनसे मारवाड़ छोड़ कर अन्यत्र चले जाने के लिए कहे। वह किसी भी प्रकार से उनकी गिरफ्तारी को टालना चाहता था।[४] किन्तु जब ग्यारह अप्रेल को शान्तिनाथ वास्तव में गिरफ्तार कर लिया गया तब मानसिंह एजेंसी के निकट मांजी का बाग चला गया। उसकी वह रात्रि गहन क्षुब्ध अवस्था में कटी और वह अपने वकील के द्वारा लडलो से शान्तिनाथ को मुक्त कर देने के लिए बार-बार प्रार्थना करता रहा।[५]

१२ अप्रेल को वह स्वयं पैदल चलकर एजेंसी से दो सौ गज की दूरी पर पहुँच गया। लडलो जब बाहर निकल कर आया तब उसने पाया कि महाराजा मानसिंह अत्यन्त उत्तेजित अवस्था में है। लडलो ने उसकी व्यक्तिगत प्रार्थना पर भी ध्यान नहीं दिया और इस प्रकार जब वह अत्यन्त निराश हो गया तब वह नंगे पैर दुर्ग की ओर एक मील तक पैदल चल कर वहाँ से पालकी में 'पासवान के बाग' चला गया।[६] २२ अप्रेल को जब मेहरनाथ भी गिरफ्तार कर लिया गया तब महाराजा पासवान के मकान से नंगे पैर बाहर निकला। उसने अपने शरीर पर राख मल ली और महामंदिर चला गया। उसके उपरान्त वह राई का बाग पहुँचा जहाँ वह कई दिनों

---

३. लडलो का सदरलैंड को पत्र, ३ मई १८४३, कान्स १४ जून १८४३, संख्या ९२–१०५, पैरा १३

४. वही, पैरा १५ और १६

५. वही, पैरा १८

६. वही, पैरा २२

तक अपने प्रजा जन के क्षुब्ध कौतूहल का केन्द्र बना रहा।[७] जोधपुर के चौधरी ने लोगों से अपनी दूकानें बन्द करने का आह्वान किया और इस बात की सम्भावना दिखलाई देने लगी कि इस प्रश्न को लेकर कोई आन्दोलन प्रारम्भ हो जाएगा। महाराजा ने लाडनू के जोधा प्रतापसिंह से कहा कि वह बल का प्रयोग कर गिरफ्तार नाथों को छुड़ाले और इस प्रकार की गंभीर अफवाहें फैल गईं कि कुचामन से मेड़तिया तथा सेना जोधपुर की ओर आ रही है। परन्तु लडलो द्वारा जो तात्कालिक उपाय किए गए उनके फलस्वरूप इस प्रकार की कार्यवाही रुक गई। वह स्वयं २६ अप्रेल को घोड़े पर सवार हो कर शेखावत तालाब गया जहाँ महाराजा ने कनातें लगा कर रहना आरम्भ कर दिया था। वह बिना किसी आश्रय के कनातों के घेरे में रह रहा था। राव रिधमल ने भी महाराजा को अंग्रेजों के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही न करने के लिए समझाया।[८]

२ मई को महाराजा केवल एक शर्त पर कि लडलो उसको लिखित आश्वासन दे कि मेहरनाथ को एक पखवारे में मुक्त कर दिया जाएगा, दुर्ग में वापस जाने, अपना राज-कार्य पुनः करने और जो जीवन उसने उस समय स्वीकार कर लिया था उसे त्याग देने के लिए राजी हो गया। क्योंकि लडलो वैसा करने के लिए तैयार नहीं हुआ अतः मानसिंह शेखावत तालाब के किनारे एक योगी की भाँति रहता रहा।[९] अन्त में, जब उसको सफलता मिलने की सभी आशाएँ समाप्त हो गई तब १२ मई १८४३ को वह जोधपुर से ६ मील की दूरी पर स्थित पालग्राम को जलंधरनाथ की पूजा-अर्चना करने के लिए चल पड़ा।[१०]

लडलो भी उसके पीछे पालग्राम गया और उसने उससे जोधपुर लौटचलने के लिए आग्रह किया। महाराजा वहाँ एक वृक्ष के नीचे पालकी में रहता था। वहाँ वह लडलो से पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त शासक की भाँति न मिल कर एक वीतराग भिक्षुक की भाँति ही मिला। वह सर पर एक छींट की टोपी पहने था, जो उसके सर के लिए बहुत बड़ी थी। धूल और भस्म से उसका चेहरा विकृत था और केवल एक वस्तु से वह अपने शरीर को ढ़के हुए था। उसकी एक बाँह कंधे से नंगी दिख रही थी। उसने लडलो से कहा कि वह दीवाना हो गया है और उसका यह दृढ़ निश्चय है कि वह अपना शेष जीवन एक योगी की भाँति व्यतीत करेगा। अंग्रेज उसे उसके जीवन

---

७. लडलो को सदरलैण्ड का पत्र, ३ मई १८४३, कान्स १४ जून १८४३, संख्या ६२–१०५ पैरा २३

८. वही, पैरा २६

९. वही, पैरा २६, एफ पी

१०. वही, पैरा ३०

निर्वाह के लिए जो भी देना स्वीकार करेंगे वह ले लेगा और यदि वे उसे कुछ भी नहीं देना चाहेंगे तो वह भिक्षा पर भी जीवन निर्वाह करने के लिए तैयार होगा।[११] परन्तु किसी भी दशा में वह जोधपुर लौटना स्वीकार नहीं करेगा। जब उससे उसके उत्तराधिकारी के चुनाव के सम्बन्ध में उसकी इच्छा का संकेत करने के लिए कहा गया तब उसने अहमदनगर के तख्तसिंह के पक्ष में अपनी इच्छा प्रकट की।[१२] १६ जून को वह राई का बाग वापस आया, परन्तु उसका स्वास्थ्य तेजी से गिरता जा रहा था। २६ जुलाई को वह पालकी में मंडोर गया, जहाँ वह बीमार पड़ गया और वहीं ४ सितम्बर १८४३ को उसकी मृत्यु हो गई।[१३]

महाराजा मानसिंह द्वारा उस प्रकार की कष्ट-सहिष्णुता और दृढ़ निश्चयता के प्रदर्शन का सदरलैण्ड के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव हुआ। उसने महाराजा की मृत्यु के अवसर पर उसकी महानता की नीचे लिखे शब्दों में भूरि-भूरि प्रशंसा की।

"हम लोग हिज हाइनैस की दुर्भाग्यपूर्ण नाथभक्ति से चाहे कितने भी निराश क्यों न हो गए हों और प्रशासन तथा अन्य मामलों में हमने उनकी उपयोगिता को चाहे स्वीकार न किया हो फिर भी वे राजपूत संसार में एक महान व्यक्ति के रूप में माने जाते थे। वे एक ऐसे शासक थे जिन्होंने बहुत वर्षों तक राजपूताना की राजनीति में महत्त्वपूर्ण हिस्सा लिया था और राजपूताना की जनता के मस्तिष्क में जिनका बहुत ऊँचा स्थान था। ऐसा महान व्यक्ति इस अस्थायी दृश्य को छोड़कर चला गया।"[१४]

मानसिंह का व्यक्तित्व :

मानसिंह का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली था और वे प्रत्येक इंच एक नरेश लगते थे। जिन्हें उनको व्यक्तिगत रूप से जानने का अवसर मिला था, वे उनके असाधारण व्यक्तित्व से बिना प्रभावित हुए नहीं रहे। टॉड उनके रूप-रंग तथा चरित्र का नीचे लिखा रेखाचित्र देता है—"जहाँ तक शरीर का प्रश्न है, राजा

---

११. लडलो का सदरलैण्ड को पत्र, १२ जून १८४३, संख्या २०२, १८४३ की।

१२. लडलो का पत्र सदरलैण्ड को, १२ जून १८४३, संख्या २०२, १८४३, राजपूताना एजेंसी रेकार्ड १४ ए, जोधपुर भाग ६, १८४३, बंदगी व बिगत बस्ता संख्या ७६

१३. लडलो का सदरलैंड को पत्र, ५ सितम्बर १८४३, राजपूताना एजेन्सी फाइल संख्या ५२, जोधपुर (वि० सं० १८६०–१६००), संख्या १२, एफ ५०५, फुटकर ग्रन्थ संख्या ५, एफ ४५१

१४. सदरलैण्ड का लडलो को पत्र, ७ सितम्बर १८४३, कान्स २३ सितम्बर १८४३, सख्या ६६ एफ० पी०

सामान्य से अधिक ऊँचा है। उसमें शिष्टाचार की गरिमा विपुल मात्रा में विद्यमान है; यद्यपि उसमें स्वभावगत संयम है। उसकी चेष्टा तथा मुद्रा प्रभावशाली है और पूर्णतया राजकीय है। राजा मान की आकृति सुन्दर है और उसकी आँखों में बुद्धि का पूर्ण प्रकाश झलकता है। यद्यपि उसके चेहरे की बनावट उदारता व्यक्त करती है तथापि उसमें एक संशयात्मक अभिव्यक्ति है जो उसके विशेष प्रकार की बनावट के माथे के साथ उसके चेहरे को क्षणभर के लिए द्वेषपूर्ण बना देती है।"[१५] मुन्शी बरकतअली ने भी महाराजा मानसिंह के प्रभावशाली व्यक्तित्व, लुभावने शिष्टाचार तथा उनकी मैत्रीपूर्ण मनोवृत्ति से उसके प्रति अनुकूल धारणा बनाई थी। उसके अनुसार महाराजा मानसिंह अपने सैकड़ों आदमियों से अधिक बुद्धि का धनी था,[१६] उसक राजनीतिक चातुर्य, धैर्य और मूक रहकर कष्ट सहने की असीम क्षमता ने उन लोगों को उसका प्रशसक बना दिया था जिन्हें उसके निकट आने का अवसर मिला था।[१७]

उसके समकालीन व्यक्तियों की दृष्टि में उसकी प्रतिष्ठा बहुत ऊँची थी और उसने समस्त राजस्थान में अभूतपूर्व लोकप्रियता अर्जित की थी। निकट और सुदूर क्षेत्रों में यह मान्यता थी कि महाराजा आश्चर्यजनक तथा लगभग रहस्यमय प्रभाव का धनी है और वह अपनी प्रजा की श्रद्धा-भक्ति और निष्ठा बरबस प्राप्त कर लेता है। उसके असंतुष्ट सामन्त यद्यपि उसके द्वारा उनके प्रति किए गए कठोर व्यवहार से अत्यन्त निराश थे तथापि वे उसे अपना धनी और स्वामी मानते थे। अपने महाराजा की इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य करने का वे कभी साहस नहीं करते थे। यहाँ तक कि १८४२ में अंग्रेजों ने उन्हें अपने महाराजा का विरोध करने के लिए कहा तब उन्होंने वैसा करने से इन्कार कर दिया।[१८]

भोजन :

मानसिंह अपने भोजन में अत्यन्त संयत था। साठ वर्ष की अवस्था में भी उसका शरीर, आयु अथवा उसके अस्त-व्यस्त जीवन की कठोर परीक्षाओं के कारण खराब हुआ नहीं दिखलाई देता था। वह दिन में पाँच बार भोजन करता था परन्तु भोजन

---

१५. टॉड : ऐनल्स भाग १, पृष्ठ ५६०–६१

१६. मुन्शी बरकतअली की रिपोर्ट, २६ दिसम्बर १८१८, पृ० संख्या ५५–५६

१७. लडलो का सदरलैण्ड को पत्र, १ जनवरी १८४२, २८ फरवरी १८४२, संख्या २२, एफ० पी०

१८. विल्डर का मिशन, ३० अप्रेल १८२४, संख्या १९–२०, एफ० पी०

थोड़ी मात्रा में करता था।[१९] जिस समय उसने पागल होने का बहाना बना लिया था, उस काल में उसने अपने भोजन की मात्रा को घटा कर केवल दो चपाती कर लिया था।[२०] जब १९३७–३८ में वह रोगग्रस्त हुआ तब वह थोड़ी मात्रा में चावल और दाल पर ही निर्वाह करता था। जब वह संन्यासी हो गया तब वह केवल एक पेड़ा तथा दही खाकर ही रहता था।[२१] वह शराब पीने और अफीम खाने का अभ्यस्त था, परन्तु उसकी इच्छा-शक्ति इतनी बलवती थी कि जब अपने जीवन के अन्तिम समय में उसने दोनों को एक साथ छोड़ दिया तब चिकित्सकों के परामर्श देने पर भी उसने शराब अथवा अफीम लेना स्वीकार नहीं किया।[२२]

वस्त्र तथा आभूषण :

साधारणतया मानसिंह सफेद 'बागा' पहिनता था और कंधों पर थिरमा का दुशाला ओढ़ता था। कमर में 'कमरबंधा' और कमर के चारों ओर 'पटका' लपेटता था।[२३] उसको अनेक रंगों के साफे सर पर बाँधने का शौक था। वर्षा ऋतु में वह गहरे हरे रंग का, शीतकाल में कुसुम्बी रंग का और ग्रीष्म ऋतु में कुंकुम रंग का साफा बाँधता था।[२४] तीज के उत्सव पर वह अपने सर पर बहुरंगी साफा बाँध कर आता था।[२५] दशहरे के अवसर पर वह स्वर्ण के धागों से बना हुआ साफा जिस में फूल-पत्ती बने हुए होते थे, बाँधता था।[२६] होली के अवसर पर सफेद या पीले रंग का पेंचा धारण करता था।[२७] उसकी पाग में विभिन्न प्रकार की साज-सज्जा की वस्तुएँ अलकार के रूप में लगाई जाती थीं, जैसे—तुर्रा, सरपेच, बालाबन्दी, डुगडुगी, धोशपेच, लटकन इत्यादि। ये सभी वस्तुएँ सोने या चांदी के तारों से बनाई जाती

१९. ए० जी० जी० का मैकनाटन को पत्र, २९ जनवरी १८३८, कान्स २१ मार्च १८३८, संख्या १११–११२, एफ० पी०, जोधपुर के अखबार नवीस की अर्जी, १५ मई की, प्राप्त हुई १९ मई १८३८ को।

२०. तवारीख मानसिंह, एफ० २२६

२१. वही, एफ० ३३१

२२. लडलो का सदरलैंड को पत्र, ५ सितम्बर १८४३, राजपूताना एजेंसी फाइल संख्या ५२, जोधपुर फुटकर ग्रन्थ संख्या ५, एफ० ४५१

२३. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८५६–६०), संख्या ८, एफ० ४५२

२४. हकीकत बही जोधपुर, वि० सं० १८५६–६०, संख्या ८, एफ० ४३९, ४५०, ४५२–४५३

२५. हकीकत बही जोधपुर, वि० सं० १८६२–७०, संख्या एफ० ५५

२६. फाइल संख्या १३२, ढोलिया का कोठार

२७. हकीकत बही जोधपुर, वि० सं० १८५६–६०, संख्या ८, एफ० ४६०, ४६४, ४६५

थी तथा उनमें बहुमूल्य हीरे-जवाहरात टाँके जाते थे।[२८] कभी-कभी वह अपनी गर्दन में रूमाल या गुलूबन्द भी बाँधता था।

साधारणतया ये अलकृत पोशाकें विशेष समारोहों के अवसर पर जब मानसिंह जनता के मध्य अथवा दरबार में आता था, धारण करने के लिए थीं। साधारण दिनों में जब वह महलों में रहता था तब वह धोती और कुर्ता पहिनता था और कंधों पर दुपट्टा ओढ़ता था।[२९] साधारणतया मानसिंह को आभूषण पहिनने का चाव नहीं था और बिना आभूषण पहने ही वह आना-जाना पसंद करता था। फिर भी विशेष अवसरों पर वह मोतियों के चौकड़े, हीरों का सरपेच तथा मोती और पन्नों की माला, मोतियों के कंठे, पन्नों के भुजबन्द और हीरों-पन्नों से जड़ी अगूठियाँ धारण करता था। इन विशेष अवसरों पर उसकी कटारी की मूंठ में भी रत्न जड़े होते थे। वह एक कंठा पहनता था जिसमें चालीस मोती और पुखराज होते थे,[३०] परन्तु वह एकाकी परिधान और छींट की टोपी में तथा राख मले हुए चेहरे में भी महामहिम और भव्य प्रतीत होता था। बिना राजकीय परिधान और साज-सज्जा के भी वह प्रत्येक इंच नरेश प्रतीत होता था।[३१]

उसका साहस :

मानसिंह असाधारण साहस का व्यक्ति था। उसका असाधारण साहस शान्ति और युद्ध दोनों में ही समान रूप से प्रदर्शित हुआ। उसने जालौर दुर्ग के दीर्घकालीन घेरे की कठिनाइयों का निर्भीकता से सामना किया।[३२] वह जयपुर, बीकानेर, सिंधिया, अमीर खाँ और स्वयं अपने असन्तुष्ट सामन्तों की सम्मिलित सेनाओं के विरुद्ध युद्ध में वीरता से लड़ा।[३३] अपमानजनक पराजय की लांच्छना और उसके उपरान्त की घटनाओं से होने वाले अपयश तथा आने वाली कठिनाइयों के समक्ष वह जिस धैर्य और शान्त चित्त से खड़ा रहा वह उसके व्यक्तिगत शौर्य तथा अजेय साहस का ज्वलन्त प्रमाण था। उस समय भी जबकि अभूतपूर्व संकट उसको संतर्जित कर

---

२८. वही, एफ० ४५२

२९. मैटकाफ का मेकनाटन को पत्र, ९ अगस्त १८३२ (फुटकर संख्या २८७, ८३२ विदेशी विभाग—राजपूताना (अजमेर) में एजेंट से फुटकर पत्र-व्यवहार

३०. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८५६–६०) संख्या ८, एफ ४५२

३१. लडलो का सदरलैंड को पत्र, २१ जून १८४३, संख्या २०२–१८४३, राजपूताना एजेंसी रेकॉर्ड १४ ए, जोधपुर भाग ६, १८४३

३२. जालौर गढ़ घेरा री हाजरी री बही, वि० सं० १८६०

३३. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, ११ अप्रेल १८०७, कान्स ३० अप्रेल १८०७, संख्या २८

रहा था और वह अपने सभी शत्रुओं के भयंकर संयोजन के समक्ष खड़ा था, उसने हिम्मत नहीं हारी। जब उसने सुना कि शत्रु समीप आ रहा है तब उसने अपने सरदारों को बुला कर उनसे पूछा कि वे इस बात की स्पष्ट घोषणा करें कि क्या वे युद्ध में उसका साथ देने के लिए कृत संकल्प हैं। साथ ही उसने यह भी कहा कि यदि वे उसका साथ देने के लिए कृतसंकल्प नहीं हों तो वह राज्य को त्याग देगा, संसार को त्याग देगा और फकीर का जीवन व्यतीत करेगा। जो भी विपरीत स्थिति उसके समक्ष उपस्थित होती थी उसको वह तनिक भी विचलित हुए बिना हल करना जानता था।[३४]

विपरीत परिस्थिति के क्षणों में भी उसने अपने चरित्र की दृढ़ता और कार्य करने की लगन का जो परिचय दिया, उसने सदरलैंड को भी चकित कर दिया। मानसिंह ने हिम्मत नहीं हारी। अपने राज्य के सब भागों से उसने अपने सामन्तों को उसके झंडे के नीचे आ कर खड़ा होने के लिए आमन्त्रित किया, जोधपुर के दुर्ग में भोजन सामग्री और अस्त्र-शस्त्र एकत्रित किए और दुर्ग को अपने विश्वसनीय सरदारों के संरक्षण में छोड़ कर एक हजार सवार दुर्ग की रक्षा के लिए तथा और दो हजार सवार जोधपुर नगर की रक्षा के लिए छोड़ कर वह स्वयं आठ हजार सेना लेकर जोधपुर नगर से एक मील आगे मोर्चा लगा कर जम गया। अंग्रेजों से हुए समझौते के अन्तिम क्षण तक वह उन खतरों की ओर से तनिक भी असावधान नहीं हुआ जो उसके सामने थे।[३५]

वह अपने पर्वतीय दुर्ग से नीचे उतरा, उसने सैनिक शिविर का जीवन व्यतीत किया तथा ब्रिटिश तथा स्वयं अपने लोगों से वह इस प्रकार मिलता-जुलता और बात करता था मानों वह प्रतिदिन घटित होने वाली घटना हो। उसकी इस बौद्धिक चेतनता और परिस्थिति का सामना करने की क्षमता ने सदरलैंड को अत्यधिक प्रभावित किया और उसने अपनी नीति में परिवर्तन कर उसे जोधपुर राज्य का शासन करने दिया।

उसकी भयानकता तथा चतुराई :

मानसिंह के चरित्र के विषय में बहुधा यह दोषारोपण किया जाता है कि उसके चरित्र में चीते की भयानकता और उससे भी अधिक खतरनाक उस पशु की चतुराई

---

३४. सियेटन का ऐडमान्स्टन को पत्र, ११ अप्रेल १८०७, कान्स ३० अप्रेल १८०७, संख्या २८

३५. सदरलैंड का मैडाक को पत्र, २० अक्टूबर १८३९, राजपूताना एजेंसी सूची १, ११५, मारवाड़ संख्या २६

का मेल था।[३६] वास्तव में उसके चरित्र की यह विशेषता उसके दीर्घकाल तक यातना और कष्ट सहने तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा उसके साथ विश्वासघात किए जाने के कारण उत्पन्न हुई। उसका जीवन वास्तव में एक दुखान्त नाटक के समान था। आरम्भ से अन्त तक वह एक सच्चा नाटक था। इतिहास में ऐसे बहुत कम चरित्र होंगे जिन्हें उतने कष्टों और यातनाओं को भोगना पड़ा हो जितने उसको भोगने पड़े थे। ६ वर्ष की अल्पायु में उसकी माता की मृत्यु हो गई और जब वह केवल दस वर्ष का बालक था तब उसके पिता का भी स्वर्गवास हो गया। ग्यारह वर्ष की अल्प आयु में वह जालौर के दुर्ग में घेर लिया गया और दस लम्बे वर्षों तक उसको भयंकर अभावों का सामना करना पड़ा। १८०३ में जब वह मारवाड़ के सिंहासन पर बैठा तब उसके सामन्तों का एक शक्तिशाली संगठन उसके विरुद्ध उठ खड़ा हुआ, जिसने उसके सर पर सिंहासन का एक दावेदार खड़ा कर दिया और जो उसके विरुद्ध लम्बे तीस वर्षों तक संघर्ष और युद्ध चलाता रहा। मारवाड़ के पड़ोसी दो प्रभावशाली नरेश उनके (विरोधियों के) सहायक बन गए और कई साहसिक सैनिक नेता उनके साथ मिल गए।[३७] यहाँ तक कि महान होल्कर भी, जिसके परिवार को मानसिंह ने आश्रय दिया था, उसके आड़े समय में विश्वासघात कर गया[३८] और अमीर खाँ ने, जो सदैव उसका हितु और मित्र होने का प्रदर्शन करता था, उसको सबसे गहरा घाव लगाया।[३९]

आत्मरक्षा के लिए वह इस उन्माद को अपने में विकसित होने से नहीं रोक सका कि वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। फिर उन तीन वर्षों में उसके आसपास एक भयंकर संघर्ष छिड़ा हुआ था जिसमें उसका पुत्र, उसकी पत्नी और कतिपय उसके विश्वासपात्र मुत्सद्दी भी उसके विरुद्ध षडयंत्र में सम्मिलित थे और ऐसे अनेक अवसर आये जब उन्होंने विष तथा प्रत्येक प्रकार के षड्यंत्र या विश्वासघात के द्वारा,

---

३६. टॉड, एनल्स-भाग १, पृष्ठ ५६१

३७. लडलो का सदरलैंड को पत्र, २२ जुलाई १८४३, कान्स २३ सितम्बर १८४३, संख्या ६८, एफ पी

३८. सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, २६ जनवरी १८०७, कान्स १२ फरवरी १८०७, संख्या ६६ एफ पी; सियेटन का ऐडमान्सटन को पत्र, १० फरवरी १८०७, कान्स २६ फरवरी १८०७, संख्या २६, एफ पी

३९. तवारीख मानसिंह, एफ २१२–१३, मैमायर्स ऑफ अमीर खाँ, पृष्ठ ४३६

जिसकी कि कल्पना की जा सकती थी, उसको मार डालने का प्रयत्न किया।[४०] इस लम्बी यातना के कारण उसके अन्दर उन लोगों के विरुद्ध व्यक्तिगत प्रतिशोध की तीव्र भावना जागृत हो गई जिन्होंने उसके हेतु को हानि पहुँचाने का प्रयत्न किया।[४१] परन्तु इस चरम सीमा के प्रकोपन पर भी वह अपने आवेश को नियंत्रण में रख सका।

क्रमश: जैसे-जैसे उसके कष्टों और यातनाओं की संख्या तथा तीव्रता में वृद्धि होती गई वैसे-वैसे मानसिंह के लिए इसके अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रह गया कि वह अपने शत्रुओं से वैसा ही व्यवहार करे जैसा कि उन्होंने उसके साथ किया था। अवसर के लिए उसे दीर्घकाल तक प्रतीक्षा करनी पड़ी और जब उसका अवसर आया तब उसने भी भयंकर अत्याचार किए। जब उसके अत्याचार का दावानल फूट पड़ा तब उसमें अनेक की हत्या कर दी गई जिनमें कुछ निर्दोष भी थे।[४२] लम्बे समय तक उसके विरोधियों के अपने को शस्त्र-सज्जित करने के सारे प्रयत्न विफल हो गए, परन्तु धोखा देने की कला की भी सीमाएँ होती हैं। वह (मानसिंह) अपनी घटनाओं के प्रति सदैव के लिए पूर्ण उदासीन नहीं रह सकता था। अत: उस-जैसा अडिग भाग्यवादी भी अन्त में अपने द्वेष और आक्रोश का शिकार हो गया।

विद्वान और कला तथा विद्वत्ता के संरक्षक के रूप में :

मानसिंह वास्तव में विरोधी विचारों और प्रवृत्तियों का मिला-जुला रूप था। उसमें एक प्रतिभाशाली बुद्धिजीवी और चालाक षडयंत्रकारी के सभी गुण विद्यमान थे। उसने अपने कार्यों के द्वारा न केवल निर्दयता, विश्वासघात और द्वेष की भावना का ही परिचय दिया, वरन् उसने श्रेष्ठ बुद्धि, विस्तृत जानकारी, गहन ज्ञान तथा दुर्लभ राजनीतिक अन्तर्दृष्टि का भी परिचय दिया। उसने अपने कार्यकलापों द्वारा अपनी बुद्धिमत्ता और अतीत के सूक्ष्म ज्ञान का भी विशद परिचय दिया था।[४३] उसमें

४०. कैवेन्डिश का कोलब्रुक को पत्र, २७ जून १८२८, कान्स २९ जुलाई १८२८, संख्या २४ एफ पी तवारीख मानसिंह एफ २२६, राठौरां री ख्यात-भाग २, एफ ३२७

४१. टॉड का मेटकाफ को पत्र, ७ जुलाई १८२०, कान्स १२ अगस्त १८२० संख्या १०, एफ पी

४२. टॉड का मेटकाफ को पत्र, ७ जुलाई १८२०, कान्स १२ अगस्त १८२०, संख्या १०, एफ पी, कैवेन्डिश का कोलब्रुक को पत्र, ४ जुलाई १८२८, कान्स २९ जुलाई १८२८, संख्या २४, एफ पी; ख्यात मानसिंह (राठौड़ां री ख्यात) एफ ७०; तवारीख मानसिंह, एफ २४६–२५४

४३. टॉड, एनल्स-भाग २, पृष्ठ ८२३

मस्तिष्क तथा हृदय दोनों के गुण बड़ी मात्रा में विद्यमान थे। स्वयं में एक अत्यन्त महान कवि और साहित्यकार होने के अतिरिक्त, वह कला, साहित्य और विद्वत्ता का एक महान संरक्षक था।[४४] वह देश के विभिन्न भागों से विद्वानों को आमंत्रित करता, पंडित-सभाओं का आयोजन करता, उन्हें मुक्त हस्त से पारितोषिक देता था। उसने जोधपुर में एक प्रथम श्रेणी का हस्तलिखित पुस्तकों का पुस्तकालय स्थापित किया।[४५] उसके राज्य की तेजी से गिरती हुई वित्तीय स्थिति जब गिरावट की चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी तब भी वह कवियों और विद्वानों को पुरस्कृत करने में संकोच नहीं करता था। दर्शन और योग के प्रति उसकी गहन निष्ठा ने एक कहावत का रूप धारण कर लिया था। नाथ सम्प्रदाय के सिद्धान्तों में उसके अटूट विश्वास की किसी से तुलना ही नहीं की जा सकती।

ब्रिग के अनुसार मानसिंह श्रेष्ठ बुद्धि और असाधारण व्यावहारिक बुद्धि का व्यक्ति था।[४६] विल्डर भी उसको श्रेष्ठ अनुभूति तथा बुद्धि का व्यक्ति मानता था।[४७] राजस्थानी, डिंगल, तथा ब्रज भाषा का एक महान विद्वान होने के अतिरिक्त वह संस्कृत, उर्दू, फारसी तथा अन्य अनेक भाषाओं का जानकार था। वह दार्शनिक

---

४४. हकीकत बही जोधपुर, वि० सं० १८७१–८०, संख्या १०, एफ ३४७, ३४८, ३६६, ४०६, ४१८, ४६२, खरीता रामानुज सम्प्रदाय के अनन्ताचार्य को, वि० सं० १८८२ आश्विन शुक्ल पक्ष की नवमीं, खरीता बही संख्या १२, एफ २३६। मानसिंह का खरीता सूरतसिंह को, वि० सं० १८८१, माघ कृष्ण पक्ष की द्वादशी; खरीता बही संख्या ८, एफ १७८, मानसिंह का भीमसिंह को खरीता, वि० सं० १८७७ चैत्र शुक्ल पक्ष की तृतीया, खरीता बही संख्या ३, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८५६–६०), संख्या ८, एफ ४३८, ४५८, ४७१; खरीता ईश्वर चन्द का कोटकागार तथा मानसिंह को, वि० स० १८७८ ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की तृतीया, खरीता बही संख्या १२, एफ ३७५, मानसिंह का गोस्वामीजी को खरीता, वि० सं० १८७७, श्रावण शुक्ल पक्ष की द्वितीया, अर्ज़ी बही संख्या ३, एफ २५२, बंदगियों का रजिस्टर संख्या ६७, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८९१–१९००), संख्या १२, एफ २, ३७

४५. हकीकत बही जोधपुर, (वि० सं० १८७१-८०) संख्या १०, एफ ३४७–४८, मान पंडित संवाद गुटका, संख्या ३, मान विचार गुटका, संख्या २, मान पंडित संवाद गुटका १६, २३ (पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं।)

४६. ब्रिग्स रिपोर्ट, २६ अप्रेल १८४१, संख्या ७७–७८, एफ पी

४७. विल्डर मिशन, ३० अप्रेल १८२४, संख्या १९–२०, एफ पी

तथा साहित्यिक कई ग्रन्थों का रचयिता था।[४८] राजपूताना के नरेश तथा सर्वसाधारण जनता दोनों ही उसको श्रद्धा-भक्ति की दृष्टि से देखते थे। उसकी ईश्वर भक्ति और उसके अत्यन्त एकान्त जीवन के कारण उसके चारों ओर एक रहस्यमय प्रभामण्डल उत्पन्न हो गया था जिसके फलस्वरूप लोग ऐसा मानते थे कि उसका जीवन अभिमंत्रित है और उसको सिद्धियाँ प्राप्त हैं।[४९]

फिर भी वह एक दोषरहित व्यक्ति नहीं था। यद्यपि लडलो के पत्रों में उसके व्यभिचार और दुराचरण का जो अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन मिलता है वह उसके उर्वर मस्तिष्क की उपज मात्र है तथापि मानसिंह, जहाँ तक यौन सम्बन्धी आचरण का सम्बन्ध है, अपने समय से ऊँचा नहीं उठ सका। वह उस समय के अधिकांश नरेशों की अपेक्षा जो कि अपने राज्य के खजाने के अधिकांश भाग को सुन्दर स्त्रियों की खोज में लुटा देते थे, अधिक संयत था। मानसिंह ने कभी भी अपनी नीच प्रवृत्तियों को अपने बौद्धिक कार्यों पर हावी नहीं होने दिया।

बहुधा लोग उसको दोष देते हैं कि उसने कवियों, कलाकारों, चित्रकारों, लेखकों, ज्योतिषियों और धार्मिक गुरुओं[५०] को पुरस्कृत करके अपने राज्य को निर्धन बना दिया। किन्तु बौद्धिक कार्यों पर धन लुटाना निश्चय ही घृणित व्यभिचार पर सार्वजनिक कोष नष्ट करने की तुलना में छोटा अपराध है।

एक शासक के रूप में :

यद्यपि अंग्रेजों ने मानसिंह के प्रशासन की कठोर आलोचना की है तथापि यह कहना गलत है कि वह अपने राज्याधिकारियों के विरुद्ध शिकायतों पर ध्यान नहीं देता था और जनता की शिकायतों को दूर करने का प्रयत्न नहीं करता था। उसकी अपनी प्रजा के प्रति गहरी सहानुभूति थी और जब भी गाँवों के चौधरी उसके पास लगान में छूट के लिए प्रार्थना लेकर पहुँचते थे तब वह मालगुजारी में छूट देने में

---

४८. ओझा; राजपूताने का इतिहास भाग ४, खंड २, पृष्ठ ८७२

४९. सदरलैंड का हैमिल्टन को पत्र, २ मार्च १८४०, राजपूताना एजेंसी रेकार्ड, २–१–१८४० से २७–४–१८४१ तक

५०. रिध रावल की अर्जी मानसिंह को, वि० सं० १८८९, फाल्गुन कृष्ण पक्ष की पन्द्रह, पोर्ट फोलियो फाइल संख्या २५, मानसिंह की अर्जी हीरानाथ को, वि० सं० १८९४ पौष शुक्ल पक्ष की तृतीया, गोस्वामियों के पत्र व अर्जियाँ फाइल संख्या ७२, ढोलिया का कोठार; हकीकत बही, जोधपुर (वि० सं० १८५६–६०) संख्या ८, एफ ४५३–५८ बंदगियों का रजिस्टर संख्या ९७; बंदगी व विगत बस्ता संख्या १/७६

कभी संकोच नहीं करता था।[५१] उसने भीमनाथ और लक्ष्मीनाथ को उनकी मनमानी और उनके अत्याचार के कारण ताड़ना दी थी और जब लाडूनाथ ने कतिपय ठाकुरों[५२] को अधिकारच्युत करने के लिए उस (मानसिंह) पर बहुत जोर डाला तब उसने उसकी बात मानना अस्वीकार कर दिया।

फिर भी यह न तो सम्भव था और न व्यावहारिक ही कि प्रत्येक शिकायत जो उसके पास लडलो के द्वारा भेजी जाती थी, दूर की जा सकती, क्योंकि लडलो की भाषा अतिशयोक्तिपूर्ण होती थी और उसका प्रतिकूल दृष्टिकोण उसे क्षुब्ध कर देता था।[५३]

महाराजा मानसिंह के शासनकाल में मारवाड़ में कुशासन का मूल कारण शासक की इच्छा या उसके अभिप्राय में निहित नहीं था वरन् उसके अन्य विभिन्न कारण थे। अधिकारियों ने लूटपाट का पेशा अपना लिया था। दुर्भिक्ष तथा सूखे के कारण पूरी मालगुजारी नहीं उगाई जा सकती थी। एक ओर अंग्रेजों की माँग ने और दूसरी ओर परदेशी सैनिकों को नौकरी में रखने के कारण ने राज्य की गिरती हुई वित्तीय स्थिति को और भी चौपट कर दिया था। एक ओर जागीरदार 'रेख' का भुगतान नहीं करते थे और चाकरी करना अस्वीकार करते थे और दूसरी ओर अंग्रेजों ने जो सेना मालानी और ऐरिनपुरा में अपने स्वार्थों की सुरक्षा के लिए रख छोड़ी थी उसके व्यय को देने के लिए उन्होंने महाराजा को विवश कर दिया था।[५४]

इस प्रकार महाराजा के लिए आवश्यक हो गया था कि वह एक ओर अपनी एक पृथक् सेना रक्खे जिससे उन जागीरदारों के विद्रोह को दबाया जा सके जो अंग्रेजों के समर्थन और सहायता के कारण अधिक निडर हो गए थे और दूसरी ओर

---

५१. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ १२४–४८३, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या १०, एफ २५६, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८७१–८०), संख्या ११, एफ २५६, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६०–१८६१), संख्या ११, एफ २४५, हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६१–१६००). संख्या १२, एफ २४५

५२. कैवेन्डिश का कोलब्रुक को पत्र, १५ अक्टूबर १८२८, कान्स ८ नवम्बर, १८२८, संख्या १२, एफ पी

५३. खरीता मानसिंह का लडलो को, वि० सं० १८६६, आश्विन कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, खरीता बही संख्या ११, एफ ३५२–३५३

५४. वही, खरीता मानसिंह का लडलो को, २६ फरवरी १८४३ एनक्लोजर संख्या ३२, १८४३ का।

अंग्रेजों को अलग से सवार खर्च दे। इसके अतिरिक्त उसको दुर्भिक्ष सहायता के लिए भी व्यवस्था करनी पड़ती थी और चालीस लाख रुपये निर्माण कार्य पर व्यय करने पड़ते थे। उसके द्वारा नाथों, कवियों, विद्वानों तथा अन्यों को पुरस्कृत किए जाने के कारण भी राज्यकोष पर भारी बोझ पड़ता था। इन सब कारणों से राज्य का व्यय बहुत बढ़ गया और नए कर लगाने पड़े। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रशासन अलोकप्रिय हो गया। उसके शासन के प्रारम्भिक चरण में पिंडारियों की लूटपाट और अन्तिम चरण में ठाकुरों द्वारा लूट-खसोट ने जनता की अशांति में और भी अधिक वृद्धि कर दी।[५५]

मारवाड़ में जो कुशासन फैला हुआ था उसकी ओर से महाराजा मानसिंह उदासीन नहीं था। अंग्रेजों को उसने जो पत्र लिखे उनमें उसने स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया है कि वह अपने राज्य का ठीक प्रकार से शासन करने में असफल रहा है। परन्तु कुशासन के उस रोग को दूर करने के लिए उसके पास कोई औषधि नहीं थी, क्योंकि अधिकतर कुशासन एक कुचक्र के कारण था जो राज्य के वित्तीय संकट के कारण उत्पन्न हो गया था। मानसिंह ने इस बात पर विशेष ध्यान दिया कि आय-व्यय का हिसाब ठीक से रक्खा जाए और जब कोई शिकायत उसके पास आए तो उस पर शीघ्र कार्यवाही की जाए। किन्तु धनाभाव, योग्य और कुशल राज्याधिकारियों की कमी, सर्वाधिक जनता में व्याप्त नैतिकता के ह्रास तथा अन्य कारणों के कारण जो भी तंत्र राज्यकार्यों को करने के लिए उसने स्थापित किया वह सुचारु रूप से कार्य नहीं कर पाया।[५६]

इसमें सदेह नहीं कि वह अपने नाथ गुरुओं को अपने राज्य के दिन-प्रतिदिन के प्रशासन में असामान्य रूप से अनियंत्रित अधिकार देने का दोषी था। उनमें से अधिकांश भ्रष्ट, अत्यन्त लोभी और उस विश्वास के अयोग्य प्रमाणित हुए जो उसने उनमें रखा था। उन नाथ गुरुओं में से अधिकांश ने राज्य के द्रव्य को हड़प लिया, जनता से बलपूर्वक रिश्वतें लीं, राज्य के अधिकारियों को डराया और धमकाया, तथा उनके स्थान पर अपने पिट्ठुओं को नियुक्त करवाया। इसका परिणाम यह हुआ कि वास्तव में समस्त राज्य में आतंक का साम्राज्य छा गया। मानसिंह जानता था कि वे (नाथगुरु) मारवाड़ के सभी वर्गों के विनाश की आधार शिला पर अपने लिए

---

५५. अलवेज का मैकनाटन को पत्र, १५ जून १८३८, कान्स २६ सितम्बर १८३८, संख्या ६६, एफ.पी

५६. मानसिंह का लडलो को खरीता, वि० सं० १८९९, आश्विन कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, खरीता बही संख्या ११, एफ ३५२–३५३

धन-सम्पत्ति संचय कर रहे हैं।[५७] परन्तु क्योंकि उसको अनेक शत्रुओं से एक साथ मोर्चा लेना पड़ रहा था अतः उसको उनकी सहायता अपेक्षित थी और वह सहायता के लिए उनकी ओर देखता था। उनमें बहुत दोष होते हुए भी वे कम से कम अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय थे और अंग्रेजों के विरुद्ध उसके संघर्ष में उन्होंने उसका साथ भी दिया।

राजनीतिज्ञ के रूप में :

कहा जाता है कि मानसिंह ने भारत की राजनीति का गलत अनुमान लगाया और उसने ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी की सैनिक शक्ति को बहुत कम आँका। उस पर यह भी पर दोषारोपण किया जाता है कि उसने मराठों और भारत की अन्य शक्तियों की गिरती हुई ताकत पर अधिक भरोसा रक्खा जो कि लगभग विघटन के कगार पर खड़ी थीं। परन्तु आलोचक यह भूल जाते हैं कि जिस काल में उसको मारवाड़ का शासन मिला उस समय देश भर में पूर्ण अराजकता और अव्यवस्था फैली हुई थी। उस समय भारत में जो भी राज-शक्तियाँ थीं उनकी भौगोलिक सीमाएँ अनिश्चित अवस्था में थीं। यह स्वाभाविक था कि ऐसी अवस्था में कूटनीतिक संतुलन रख सकना असम्भव था। वह काल जिसमें भारत के राजनीतिक ढाँचे का निर्माण किया गया, वास्तव में अनिश्चितता का युग था। उस ऐसे युग का आरम्भ मैसूर के मुस्लिम राज्य के विनाश और मराठा प्रसन्धि के विघटन से हुआ, जो वास्तव में अत्यन्त राजनीतिक अनिश्चितता का युग था। १८१९ के वर्ष के अन्त में जाकर कहीं ईस्ट इंडिया कम्पनी भारत में शक्तिशाली हुई और उसकी सार्वभौमिकता प्रकट होने लगी।[५८] यद्यपि इस क्रमिक परिवर्तन और रूपान्तर से भारत का राजनीतिक मानचित्र पूर्ण हो गया तथापि अगले चालीस वर्षों में बहुत अधिक राजनीतिक उतार-चढ़ाव आए और कम्पनी को उत्तर-पश्चिम के प्रदेशों—अफगानिस्तान, सिंध, पंजाब और बर्मा—में भी युद्ध करना पड़ा। १८५७ में जाकर कहीं ईस्ट इंडिया कम्पनी भारत के बड़े भाग की स्वामिनी बन सकी। इस संक्रमण काल में भारत में राजनीतिक अस्थिरता का वातावरण बना रहा और किसी के लिए भी देश के भावी

---

५७. खरीता लडलो का मानसिंह को, वि० सं० १८९८, वैशाख शुक्ल पक्ष की चतुर्थी, पोर्ट फोलियो फाइल संख्या १७, खरीता लडलो का मानसिंह को, वि० सं० १८९७ वैशाख शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी का, खरीता वही संख्या १३, एफ ४२८।

५८. चोपरा; लॉ रिलेटिंग टू प्रोटेक्शन ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ स्टेट्स इन इंडिया, पृष्ठ ६

राजनीतिक स्वरूप का अनुमान लगा सकना कठिन ही रहा।[५९]

अतएव अपने शासन काल के आरम्भ में मानसिंह को सिंधिया, होल्कर और अंग्रेजों से अपने राजनीतिक संबंधों का सतुलन बिठाना पड़ा। उस समय यह निश्चय कर सकना बहुत कठिन था कि उनमें से अन्त में कौन सी शक्ति सार्वभौम-शक्ति के रूप में प्रकट होगी। इस प्रकार के अनिश्चित वातावरण में मानसिंह दुविधा में झूलता रहा और अपने राजनीतिक संबंधों के बारे में कोई निश्चित मार्ग न अपना सका। वह कभी सिंधिया और कभी होल्कर के चारों ओर चक्कर लगाता रहा और उन दोनों तथा अंग्रेजों के मध्य भी वह आँख-मिचौनी जैसा खेल खेलता रहा।

फिर भी उसके पक्ष में यह कहना होगा कि अंग्रेजों ने आगे चलकर जो मार्ग अपनाया उसका उसने स्पष्ट और सही अन्दाजा लगा लिया था। वह जानता था कि अंग्रेजों का अन्तिम लक्ष्य भारतीय नरेशों को अधीनस्थ पृथकता में रखना था। यही कारण था कि उसने १८०३ की सन्धि का अनुसमर्थन करना अस्वीकार कर दिया और अपने बाद के संधि प्रस्तावों में (जो उसने १८०५ और १८१४ में रक्खे) भी उसने ऐसा कोई खण्ड नहीं रक्खा जिसके परिणाम स्वरूप अंग्रेज उसके राज्य के आन्तरिक प्रशासन में कोई हस्तक्षेप कर सकते। उसने उनसे न कभी सैनिक सहायता माँगी और न कभी उनका अधीन संमित्र बनना ही स्वीकार किया। वह केवल यह चाहता था कि अंग्रेज उसके शत्रुओं के प्रति तटस्थ रहें।[६०] होल्कर ने उसके साथ विश्वासघात किया, सिंधिया ने उसके प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया और उसको स्वयं अपने उन सामन्तों के भीषण षड्यंत्रों का सामना करना पड़ा जिनको दो पड़ौसी राज्यों और एक सिद्धान्तहीन सैनिक साहसिक की सहायता प्राप्त थी। जबकि उसके सामन्तों ने १८२७ में बहाना करने वाले धौंकलसिंह को अपना नेता स्वीकार कर लिया और वे मिलकर उसके (मानसिंह) विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करने का विचार कर रहे थे तब भी उसने उनको अपने साथ लाने का भरसक प्रयत्न किया और एक विदेशी शक्ति के हस्तक्षेप के परिहार करने का प्रयत्न किया।[६१]

वह ब्रिटिश विरोधी रुख अपनाने के लिए विवश कर दिया गया, क्योंकि अंग्रेजों का रुख उसके प्रति अन्यायपूर्ण और अनुचित था। वे यद्यपि १८१८ की संधि के द्वारा आन्तरिक विद्रोह और विदेशी आक्रमण की अवस्था में मानसिंह की रक्षा करने

---

५९. थाम्पसन; मेकिंग ऑफ दी इंडियन प्रिंसेज-प्रिफेस, पृष्ठ ६

६०. मुन्शी बरकत अली की रिपोर्ट, २६ दिसम्बर १८१८, संख्या ५५–५६, एफ पी

६१. कोलब्रुक का स्विन्टन को पत्र, •६ अगस्त १८२८, कान्स २८ अगस्त, १८२८ संख्या १५, एफ पी, कैवेन्डिश का कोलब्रुक को पत्र, २४ जुलाई १८२८, कान्स १६ अगस्त १८२८, संख्या २१, एफ पी

के लिए बँधे हुए थे तथापि वे सदैव उसके असंतुष्ट सामन्तों की सहायता और कभी कभी धौंकलसिंह के व्यपदेश का भी समर्थन करते रहे। उन्होंने नीचे लिखा उत्तर मानसिंह को भेजकर उसके व्यवहार तथा नीति दोनों की ही भर्त्सना की और उसकी प्रशासनिक योग्यता में संदेह व्यक्त किया, "यदि विद्रोह इतना सर्वव्यापी हो कि उससे सामन्तों और साधारण जनता की यह इच्छा प्रकट होती हो कि वे राजा का पतन चाहते हैं तो ऐसा कोई कारण दिखलाई नहीं देता कि हम जोधपुर राज्य पर एक ऐसे शासक को थोपें जिसके आचरण और व्यवहार ने उसको अपनी प्रजा की भक्ति और सहायता से सर्वथा वंचित कर दिया है। अन्यायपूर्ण अनधिग्रहण तथा अनैतिक किन्तु शक्तिशाली विद्रोह की दशा में संरक्षित देशी राज्यों के नरेश हमसे सहायता की माँग कर सकते हैं, परन्तु स्वयं अपने अन्याय, अयोग्यता और कुशासन से उत्पन्न होने वाले असंतोष और विद्रोह के विरुद्ध हमसे सहायता नहीं माँग सकते। राजाओं से आशा की जाती है कि उनमें अपनी प्रजा का नियंत्रण करने की क्षमता होगी। यदि वे उसे विद्रोह करने पर विवश कर देते हैं तो उन्हें उसके परिणाम भुगतने चाहिए।"[६२]

उन्होंने (अंग्रेजों ने) उसके सिरोही पर दावे को बिना उस पर तनिक भी विचार किए अस्वीकार कर दिया और उसको तेरह लाख रुपये क्षतिपूर्ति के रूप में देने पर विवश कर दिया।[६३] उन्होंने मालानी में अपनी सेनाएँ इस उद्देश्य से रक्खी थीं कि वे उसको सिंध और पंजाब में सैनिक कार्यवाही के लिए सैनिक अड्डे के रूप में उपयोग कर सकें; परन्तु उन्होंने इस बात पर बहुत जोर दिया कि मानसिंह उन्हें एक लाख पन्द्रह हजार रु० सवार खर्च दे।[६४] यद्यपि १८३४ में उन्होंने उसके विरुद्ध सैनिक तैयारी का केवल दिखावा करके मानसिंह को धमकाया भर था, तथापि उन्होंने उससे पाँच लाख तीस हजार रुपये का हर्जाना वसूल कर लिया।[६५] जब मानसिंह को विश्वास हो गया कि अंग्रेज मारवाड़ में सैनिक अड्डा बनाने और उसे

६२. राजपूताना गजेटियर-भाग ३ ए, पृष्ठ ७२, ऐबयिसन ट्रीटीज, ऐन्गेजमेंट्स एण्ड सनद्स भाग ३, पृष्ठ ११५

६३. लाकेट का मैकनाटन को पत्र, २९ जून १८३३, कान्स १८ जुलाई १८३३, संख्या २२, एफ पी; मानसिंह का स्पियर्स को पत्र जो ९ दिसम्बर १८३३ को प्राप्त हुआ, कान्स १६ जनवरी १८३४, संख्या ६ एफ पी

६४. अलवेज का मानसिंह को खरीता (अनुवाद) २६ जनवरी १८३८, कान्स ७ मार्च १८३८, संख्या २७, एफ पी

६५. मैकनाटन का अलवेज को पत्र, २२ अगस्त १८३४, कान्स २२ अगस्त १८३४, संख्या १७-१८, एफ पी

(मानसिंह को) हटा कर उसके स्थान पर किसी नाबालिग या धौंकलसिंह को राजा बनाकर उसको अपने अधिकार में रखने के लिए आतुर हैं तब उसके लिए इसके अतिरिक्त दूसरा कोई विकल्प नहीं रहा कि वह उन सभी ब्रिटिश विरोधी तत्वों की सहायता ले जो उसे उपलब्ध हों, फिर चाहे वे मारवाड़ के हों या मारवाड़ के बाहर के।

मानसिंह को इस बात के लिए भी दोषी ठहराया जाता है कि उसने अपने सब शत्रुओं को, एक निर्दोष राजकुमारी से पाणिग्रहण के प्रश्न पर, अभिजात रहित अशोभनीय झगड़ा खड़ा करके मिल जाने का अवसर प्रदान कर दिया;[६६] और अपने सामन्तों का सतत सम्पीड़न करने तथा उनकी जागीरों को अस्थायी तौर पर हरण कर लेने की नीति का अनुसरण करने के कारण अपने विरुद्ध उसने एक शक्तिशाली संघ खड़ा कर लिया।[६७] यद्यपि इस दोषारोपण को स्वीकार करना होगा तथापि उसके फलस्वरूप जो दुष्परिणाम प्रकट हुए उन सबके लिए मानसिंह को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। उसने कोई धौंकलसिंह के व्यपदेश (बहाने) का आविष्कार नहीं किया और उसके असन्तुष्ट सामन्तों की कार्यवाहियों का सारा दोष उसके मत्थे नहीं मढ़ा जा सकता। उसने असंतुष्ट सामन्तों को तीन बार क्षमा कर दिया और अपने क्रोध पर पर्याप्त लम्बे समय तक संयम रखा।[६८] मारवाड़ के सामन्तों का यह स्वभाव बन गया था और वे दीर्घकाल से अपने शासक के विरुद्ध षड़यंत्र करते आ रहे थे। वहाँ वास्तव में राजा और उसके सामन्तों में वर्चस्व के लिए एक संघर्ष चल रहा था।[६९]

यह सत्य है कि मानसिंह ने निर्दयतापूर्ण अत्याचार किए और उसने अपने अनेक सामन्तों की या तो हत्या करवा दी अथवा उन्हें विष दिला दिया। परन्तु यदि उसने उनको खा न लिया होता तो या तो वे उसको मार देते अथवा उसको अपमानित कर देते। टॉड भी यह अनुभव करता है कि मानसिंह ने अपने सामन्तों से जो प्रतिशोध लिया वह बहुत हद तक उचित था। उसकी केवल यही आपत्ति थी कि

---

६६. हकीकत बही जोधपुर (वि० सं० १८६२–७०), संख्या ६, एफ २६६, वीर विनोद भाग २, पृष्ठ १७३८; पी० आर० सी० भाग १४, संख्या ३६

६७. कोलब्रुक का स्विन्टन को पत्र, ६ अगस्त १८२८, कान्स २६ अगस्त १८२८ संख्या ५, एफ पी, सदरलैंड को मारवाड़ के उन ठाकुरों के पत्र का अनुवाद, जो मारवाड़ से बाहर थे।

६८. मुन्शी बरकत अली की रिपोर्ट, २६ दिसम्बर १८१८, संख्या ५५–५६ एफ पी

६९. टॉड का मैटकाफ को पत्र, ७ जुलाई १८२०, कान्स १२ अगस्त १८२०, संख्या १०, एफ पी

उसे कम से कम उन लोगों को छोड़ देना चाहिए था जिन्होंने गिंगोली के युद्ध में उसकी सहायता की थी और उसके उपरान्त भी उसको शक्ति में बने रहने योग्य बनाया था।[७०]

मानसिंह की भूलें :

फिर भी मानसिंह ने अपने चालीस वर्ष के शासन काल में जो अनेक भूलें की उनके लिए उसे सर्वथा दोषमुक्त नहीं किया जा सकता। कृष्णाकुमारी के साथ पाणिग्रहण करने के लिए उसने जो युद्ध किया वह नितान्त अनावश्यक था और उस निर्दोष राजकुमारी की मृत्यु का कलंक सदैव उसके माथे पर अंकित रहेगा। उसकी इस भूल से न केवल वह जघन्य अपराध घटित हुआ वरन् उसके कारण उसके विरुद्ध कई नरेश मिल कर खड़े हो गए, जिन्होंने उसके सामन्तों के उस संघ को, जो पहले ही बहुत शक्तिशाली था; और धौंकलसिंह के दावे को मदद दी। बहुत सी जटिलताएँ (पेचीदगियाँ) जो १८०५ और १८१४ के मध्य उठ खड़ी हुईं, इस भयंकर भूल की उपज थीं। जिस निर्दयतापूर्ण अत्याचार के द्वारा उसने अपने अनेक मुत्सद्दियों और सामन्तों को मरवा डाला उससे भी उसके विरुद्ध साधारण तौर पर फैले हुए असंतोष में वृद्धि हुई : अपने सामन्तों की भूमि को अस्थायी रूप से अवाप्त करने की नीति ने, फिर चाहे उसमें सामन्तों से आज्ञा पालन करवाने की क्षमता थी या नहीं, जिस सर्वव्यापक असंतोष और विद्रोह को जन्म दिया वह इतना अधिक घातक सिद्ध हुआ कि उसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

उस समय जबकि उसका खजाना खाली था और मारवाड़ दुर्भिक्ष और सूखे की विभीषिका से त्रस्त था, उसको यह सावधानी रखनी चाहिए थी कि वह अन्य अतिरिक्त उलझनों में न फँसे। यदि उसने केवल अनावश्यक झंझटों से बचने का प्रयत्न किया होता तो उसके सामन्तों के षडयंत्र और धौंकलसिंह के दावे इतने खतरनाक सिद्ध नहीं होते। अपनी निज की सीमाओं और उसके चारों ओर जो घोर असंतोष व्याप्त था उसके प्रति पूर्ण रूप से जागृत होते हुए उसको ब्रिटिश विरोधी संघ से अपना सम्बन्ध स्थापित नहीं करना चाहिए था, जिसके कारण मारवाड़ के सभी वर्गों का विनाश हुआ।

एक विभाजित राजगृह के भाग्य का शासन करने के लिए उसको आमंत्रित किया गया और जब वह एक दिवालिए राजकोष का जिसका भविष्य अंधकारमय था, स्वामी बना तब उसे पहले अपनी स्थिति को दृढ़ करने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए था और स्थिति के दृढ़ हो जाने के उपरान्त ही तलवार को केवल म्यान में

---

७०. वही।

खड़खड़ाना चाहिए था। अपने राजकोष की स्थिति को ध्यान में रखते हुए, उसके लिए यह निश्चयपूर्वक शेखचिल्ली-जैसी बात थी कि उसने ब्रिटिश विरोधी संघ का नेतृत्व ऐसे समय में करने का विचार किया जब स्वयं उसके राज्य में उसका घोर विरोध हो रहा था और वह अत्यन्त धनहीन था। ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी ब्रिटिश विरोधी कार्यवाहियों ने किसी अच्छी तरह से सोची-समझी विचारधारा या सिद्धान्त का अनुसरण नहीं किया। वह बिना किसी ऐसे क्रिया-कलाप के मार्ग की ओर सम्मुख हुए जिस पर चिन्तन किया गया हो, केवल अंधकार में भटकता रहा और यह सदेहजनक है कि उसके किसी भी ब्रिटिश विरोधी साथी ने उसकी गलत धारणा की नीतियों को गम्भीरतापूर्वक स्वीकार करने के बारे में विचार भी किया हो।

इसमें कोई संदेह नहीं कि उसके मुत्सद्दी भ्रष्ट थे। परन्तु ऐसा प्रतीत नहीं होता कि उसने या तो उन्हें सुधारने या उनसे अपने को अलग रखने का प्रयत्न भी किया हो। ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि उसने कभी अपने राज्य में कुशासन को समाप्त करने अथवा उसमें सुधार करने का विचार भी किया, जिसे १८३५ के उपरान्त उसने पूर्णतया उन नाथों की दया पर छोड़ दिया जिन्होंने राज्य में विनाश की वह स्थिति पैदा कर दी जो मानसिंह के अपयश का कारण बनी। आयसदेव नाथ के प्रति उसकी भक्ति और निष्ठा का कुछ औचित्य था, परन्तु इसका कोई कारण नहीं था कि वह नाथों के अत्याचारों और उनके द्वारा दी जाने वाली यातनाओं का स थ देता। भावी संतति उसको सम्पूर्ण मारवाड़ को उन भेड़ियों के सामने फेंकने के लिए कभी क्षमा नहीं कर सकती जिनसे सभी वर्ग के लोग घृणा करते थे।

यद्यपि सभी बुराइयों के लिए मानसिंह को उत्तरदायी ठहराना उचित नहीं होगा, क्योंकि उनमें से अधिकांश कई प्रकार के कारणों के रहस्यमय संयोग से उत्पन्न हुई थीं, तथापि यह सत्य है कि मानसिंह या तो अपने राज्य का प्रशासन ठीक प्रकार से करने में या अव्यवस्था में से व्यवस्था उत्पन्न करने में नितान्त असफल रहा। इसके विपरीत उसने और अधिक गड़बड़ी और अव्यवस्था उत्पन्न कर दी।

इसमें संदेह नहीं कि वह मारवाड़ के जनसाधारण का एक महान नेता था; परन्तु उसकी महानता उसके शासन के साफल्य की अपेक्षा उसकी बहुमुखी प्रतिभा पर अधिक आधारित थी। यह वास्तव में दुर्भाग्यपूर्ण था कि इतनी अधिक प्रतिभा को षडयंत्रों पर व्यर्थ में नष्ट किया गया। अपने राज्य के प्रशासन में सुधार करने के लिए उसने अपनी बुद्धि का उचित प्रयोग करने का कभी भी प्रयत्न नहीं किया। वह एक बहुमूल्य रत्न था, इसमें कोई संदेह नहीं। परन्तु वह ऐसा रत्न था जो केवल अलंकृत करने के ही काम आता था। व्यक्तिगत सद्गुणों और प्रतिभा का तब तक कोई उपयोग नहीं है जब तक उनको सार्वजनिक हित के लिए उपयोग न किया जाए।

यदि वह आतंक पैदा करने वाले अपने कार्यों का राज्य प्रशासन की समस्याओं के सुलझाने में तथा अपनी बुद्धि और प्रतिभा के उचित उपयोग करने में सन्तुलन बनाए रखने का सतत प्रयत्न करता तो भावी संतान अपने को उसके प्रति बहुत अधिक ऋणी अनुभव करती ।

शब्दावली

ग्राबदार खाना	राजपरिवार के लिए पेयजल की व्यवस्था करने वाला विभाग ।
अडा	चमड़ा कमाने वालों से लिया जाने वाला कर ।
अहेरा	जैनियों से लिया जाने वाला एक कर । अगता के दिनों में कसाइयों को पशुओं को न मारने देने के लिए ।
अखराई	लाटा में देरी करने के दण्ड स्वरूप जुर्माना देना पड़ता था ।
अंगा	प्रत्येक नागरिक को राज्य द्वारा जो सुरक्षा प्रदान की जाती थी उसके उपलक्ष में दिया जाने वाला कर । मारवाड़ में यह कर पॉल टैक्स (व्यक्ति-कर) के बदले लिया जाता था ।
अंगरखा	एक लम्बा कोट जो घुटनों तक लम्बा होता था और जो गले और छाती पर डोरी से बाँधा जाता था ।
अनकाबन्दी	मालगुजारी निर्धारित करने का एक तरीका, जिसके अंतर्गत खड़ी हुई फसल का मोटा अन्दाजा करके राज्य का भाग निर्धारित कर दिया जाता था ।
अन्नी	हिसाब तय करने के लिए जो शुल्क देना पड़ता था ।
आवा	कर जो कुम्हारों से लिया जाता था ।
बाड़ा	दण्ड या जुर्माना जो पशुओं के खेत में घुस जाने पर उनके स्वामी को देना पड़ता था ।
बागा	मूल्यवान उत्तम वस्त्र का लम्बा कोट जो घुटने तक आता था, जो कि एक विशेष प्रकार से मध्ययुग के प्रचलित पहनावे के अनुरूप सिया जाता था और जो कि समाज के संभ्रान्त ऊँचे अधिकारी व्यक्ति पहनते थे ।
बराड़	एक कर जो विभिन्न पेशों पर लगाया जाता था ।
बसोला	एक कर जो बढ़इयों अर्थात् खातियों से लिया जाता था ।
बत्ती	एक कर जो कि किसानों से उनके हिसाब को तय करने के लिए लगान पर अतिरिक्त कर के रूप में लिया जाता था ।
बहती खान	वस्तुओं (माल) का पारगमन अथवा किसी प्रदेश से होकर माल का जाना ।

बेतलबी	भूमि का अनुदान जो कि मुख्यत: महाराजा के छोटे भाइयों को चिरस्थायी रूप से दी जाती थी परन्तु जो कभी-कभी प्रमुख सहभागी या संदायद को भी दी जाती थी। जिन्हें यह दी जाती थी उन्हें हुकूमत लागों, कचहरियों की लगती रकम और अन्य तलबाना शुल्कों से मुक्ति प्राप्त करने का अधिकार था।
भाड़ागाड़ी	जो बैलगाड़ी से घास ढ़ोने की बेगार से बचना चाहते थे उन्हें यह कर देना पड़ता था।
भलमंसी बराड़	सम्पन्न लोगों से लिया जाने वाला कर।
भंडारा	किसी धार्मिक गुरु या आचार्य के स्वर्गवासी होने के बारहवें दिन जो भोज दिया जाता था।
भरतू रेख	वह राशि जिस पर आठ प्रतिशत की दर से जागीरदार से राज्य को कितनी रकम वसूल करनी है इसका हिसाब लगाया जाता था।
मवाली लाग	यह एक कर था जो उन किसानों से लिया जाता था कि जो दो या उससे अधिक बैलजोड़ियों से खेती करते थे। जितनी जोड़ी बैल किसान काम में लाता था उन पर यह कर लगाया जाता था।
भेंट दशहरा	मराठों ने यह लाग दशहरे के अवसर पर लगाई थी।
भेंट गणेश चौथ	गणेश चौथ के अवसर पर मराठों ने यह लाग लगाई थी।
भेंट होली	होली के अवसर पर मराठों ने यह लाग लगाई थी।
भोग	देवता को भेंट की जाने वाली खाद्य वस्तु।
भोम	राज्य या शासक की सेवा के उपलक्ष में जागीरदार को दी गई भूमि।
भोमिया	वे जागीरदार जो पुलिस के कार्य करते थे।
बीघोरी	लगान निर्धारण का एक तरीका। नाप के उपरान्त प्रति बीघा, एक निश्चित दर से नकदी या पैदावार में लगान निश्चित करदी जाती थी। उसे बीघोरी कहते थे।
बिसून्द	खेती की पैदावार का बीसवाँ भाग।
बोलानी	चौकीदारी का कर
चाकरी	जागीरदारों को घोड़े और सवार दरबार की सेवा के लिए भेजने पड़ते थे। इसे चाकरी कहते थे।
छदामी	एक कर जो एक रुपए पर एक छदाम की दर से वसूल

किया जाता था ।

चीरा — १—एक पतली पट्टी जो घटिया किस्म की पगड़ी से फाड़ी जाती थी ।
२—लगान पर कर निर्धारण का हल्का ।

चिरायत — एक जागीर के विभिन्न हल्कों में लगान निर्धारित करने वाले अधिकारी ।

चंवरी — विवाह पर लगाया जाने वाला कर ।

दक्षिणा — भेंट जो कि शिष्य गुरु, आचार्य तथा धर्माचार्यों को देते थे । साधारण ब्राह्मणों, साधुओं और फकीरों को भी जो दान दिया जाता था वह 'दक्षिणा' कहलाता था ।

दरीबा — नमक उत्पन्न करने वाले क्षेत्र परन्तु वास्तव में केवल नमक की झीलों को ही दरीबा कहते थे ।

डावड़ी — दास लड़कियाँ या स्त्रियाँ ।

दरबार खर्च — दरबार की व्यवस्था के लिए लगाया जाने वाला कर ।

धरना — मालिक के कार्यालय पर या घर पर हड़ताल करके बैठना ।

डोली — शासक या जागीरदार द्वारा अपने राज्यक्षेत्र में ब्राह्मण को दी हुई भूमि, जो सभी प्रकार की लगान और करों से मुक्त होती थी ।

डोरी — लाटा के समय खेत में अनाज के ढ़ेर को घेरने वाली रस्सी, रस्सी से अनाज के ढ़ेर को नाप कर उसका निश्चित भाग राज्य लेता था ।

फारोज — दण्ड स्वरूप लागत लगाना ।

फौजबल — राज्य की सीमा पर स्थित गाँवों पर उनकी सुरक्षा के लिए लगाया जाने वाला कर ।

फौज खर्च — सेना को रखने के लिए किया जाने वाला खर्च ।

गऊखाना — राजा के परिवार की गायों को देखभाल करने वाला विभाग ।

घरबाब — गृह-कर ।

घाणी कुन्ता — तेल पेरने वाले तेलियों पर लगाया जाने वाला कर ।

घासमारी — पशुओं की चराई पर कर ।

घोड़ी-बराद — मराठों के घोड़ों को दूर रखने के लिए दिया जाने वाला कर । किसानों से प्रति बीघा चार आने और अन्यों से प्रति परिवार एक रुपया ।

गोला	जागीरदार का अवैध पुत्र ।
घरू लाग	हाकिम के घरेलू खर्चों को पूरा करने के लिए लगाए जाने वाले कर ।
घुघरी	जब पैदावार की एक निश्चित राशि लगान के रूप में अथवा कर के रूप में ली जाती थी तो उसे 'घुघरी' कहते थे ।
हकूमत	हाकिम का कार्यालय अथवा जिले का मुख्यालय ।
हलमा	हल जोतने वालों द्वारा दी जाने वाली बेगार । बाद में उससे बचने के लिए 'हलमा' नाम का कर दिया जा सकता था ।
हासियात	जागीरदारों के लिए एक तरह की अदालत ।
हाथी सरोपाय	शासक द्वारा चारण अथवा किसी विद्वान को दिया जाने वाला हाथी का पुरस्कार । शनैः शनैः बाद में हाथी के बदले नकदी दी जाने लगी ।
हलसारा	हल की बेगार के बदले दिया जाने वाला शुल्क ।
हवाला	खालसा भूमि का रैवेन्यू (माल) विभाग जो कि मालगुजारी वसूल करता और भूमि सम्बन्धी प्रशासन की व्यवस्था करता था ।
हवाला खास	खालसा भूमि जो कि प्रत्यक्ष रूप से शासक के अधिकार में हो ।
हद भराई	कर जो मालियों और बागवानों से लिया जाता था ।
हुक्मनामा	उत्तराधिकार कर (शुल्क) जो जागीरदारों को देना पड़ता था । जागीर की कुल वार्षिक लगान की आय अथवा रेख की तीन चौथाई राशि हुक्मनामा (उत्तराधिकार कर) के रूप में देनी पड़ती थी ।
हुंडी	देशी साहूकारों द्वारा लिखा गया देय पत्र ।
इजलास नवीस	न्याय अदालतों के पेशकार या रीडर ।
इकरारनामा	वचन-बन्ध ।
इत्तलानवीस	खबर या समाचार देने वाला ।
इजारा	अग्रिम भुगतान के बदले किसी क्षेत्रविशेष की मालगुजारी अस्थायी रूप से ठेके पर ठेकेदार को दे देना ।
जागेश्वर	स्वरूप (नाथ योगी)
जागीरदार	जागीर का स्वामी ।
जेलखाना	जेल या कारागार ।
जरगार खाना	शासक का हीरे-जवाहरात तथा आभूषणों का भण्डार ।

जटा	बढ़े हुए सर के बाल ।
झगा	ढ़ीला कुर्ता ।
झुम्पी	झोपड़ियों पर लगाया जाने वाला कर ।
कबूलायत	लिखित प्रतिज्ञा या आश्वासन ।
कबूतरखाना	कबूतरों को दाना डालने की व्यवस्था करने वाला विभाग ।
कचहरी	हाकिम अथवा उसके सहायक का कार्यालय ।
कामदार	मैनेजर अथवा प्रबन्धक ।
कंदोई की लाग	हलवाइयों पर लगाई जाने वाली लाइसेंस फीस या शुल्क ।
कानो	एक प्रकार की पगड़ी जिसकी नुकीली चोंच होती थी ।
कनफटा	नाथ साधू जिसके दोनों कान फटे होते थे, जिनमें कुण्डल अथवा विशेष प्रकार के छल्ले पहने जाते थे ।
कूंता	मालगुजारी इकट्ठा करने का एक तरीका । जबकि पैदावार को बिना तौले अन्दाज से राज्य का हिस्सा निर्धारित किया जाता था तो उसको कूंता कहा जाता था । राज्य अधिकारी खड़ी फसल को देखकर यह अंदाज कर लेते थे कि कुल पैदावार कितनी होगी और राज्य का हिस्सा निर्धारित कर देते थे ।
करवरिया	पैदावार के भारों और ढ़ेरों तथा अनाज की रखवाली करने के लिए रक्खे गए चौकीदार ।
कारकुन	लिपिक या लेखक कर्मचारी (क्लर्क)
कसारायत	फसलों को पशुओं द्वारा हानि पहुँचाने के बदले दिया जाने वाला कर ।
काटा	रसीद देने पर लिया जाने वाला अतिरिक्त कर ।
खांदी	राज-मिस्त्रियों से इकट्ठा किया जाने वाला कर ।
खातोद	बढ़इयों (खातियों) से इकट्ठा किया जाने वाला कर ।
खेदा लाग	नये बसे हुए गाँवों या ढाणियों से इकट्ठा किया जाने वाला कर ।
खरदा	बहुत लम्बा पत्र ।
खास खज़ाना	शासक का खज़ाना—राजकोषागार ।
खास रुक्का	शासक द्वारा भेजा गया पत्र ।
खेसला	मोटी सूती ओढ़ने की चादर ।
खिचड़ी लाग	जागीरदारों और उनके कर्मचारियों द्वारा अपनी जागीर में दौरा करते समय किसानों को उनके लिए जो खाद्य

	सामग्री उपलब्ध करनी पड़ती थी उसके बदले किसानों से लिया जाने वाला कर ।
कोठा नील	कर जो रंगरेजों से लिया जाता था ।
कोतवाली चौंतरा	वे निश्चित स्थान जहाँ कोतवाल अपना कार्यालय लगाते थे ।
खालसा	शासक के अधीन भूमि ।
खाम	जब मालगुजारी आधी दर मे वसूल की जाती थी ।
खप्पर	एक प्रकार का गहरा कटोरा ।
खारखर	हल का कर ।
खास रसोड़ा	राजा का रसोईघर ।
खासा सवारी	राजा के लिए आरक्षित सवारी ।
खेड़ा	छोटी ढाणी अथवा नया बसा हुआ गाँव ।
खोलदी	धनी गैर-कृषकों पर कर ।
खोर	कुओं के स्वामियों से लिया जाने वाला कर ।
खुरखुरी	रहँट के स्वामियों से लिया जाने वाला कर ।
किलेदार	किले का अधिकारी ।
किलीखाना	भण्डार जो कि औजारों की खरीद और उनकी मरम्मत आदि की व्यवस्था करता था ।
किराया भट्टी	चूने के भट्टों के स्वामियों से लिया जाने वाला कर ।
किताबखाना	पुस्तकालय ।
किवाड़ी	दरवाजों या मकान पर कर ।
कोनार	हल पर कर ।
कोठार	भण्डार ।
कुरब	जबकि कोई अधिकारी या जागीरदार महाराजा से मिलने जाता तो राजा हाथ उठाकर उसका सम्मान करता था । यह संकेत कुरब कहा जाता था । बहुत कम ऐसे अवसर होते थे कि जब कतिपय अधिकारी या जागीरदारों को यह सम्मान मिलता था ।
लाग	कर (सेवा, वस्तु या नकदी के रूप में)
लागती रकम	विभिन्न करों तथा लागों इत्यादि से मिलने वाली आय को लागती रकम कहते थे ।
लाटा	फसलों को बाँटना अर्थात् राज्य की मालगुजारी फसल के हिस्से के रूप में लेना ।

लहरिया	स्त्रियों की ओढ़नी जो एक विशेष प्रकार से रंगी जाती थी। उसमें विभिन्न रंगों की लहरों के समान धारियाँ होती थीं।
महाडोल	विशेष प्रकार की पालकी जिसमें सती होने वाली रानियों को श्मशान तक ले जाया जाता था।
मापती	किसानों से लिया जाने वाला एक कर जो कि उनके हिसाब को तय करने के लिए लगान पर अतिरिक्त कर के रूप में लिया जाता था।
मसनद	गद्दी या गाव तकिया।
मेखला	एक रस्सी जो कमर के चारों ओर बाँधी जाती थी। नाथ योगी मेखला बाँधते थे।
मोदीखाना	वह विभाग जो खाद्य पदार्थों की खरीद और उनके उपयोग की देखभाल और व्यवस्था करता था।
मोलिया	एक छोटी पाग (साफा या पगड़ी) जो कि लड़के सर पर बाँधते थे।
मुकाता	मालगुजारी निर्धारण करने का एक तरीका; जब प्रति बीघा एक निश्चित मालगुज़ारी की दर नकदी में निर्धारित की जाती थी तो उसे मुकाता कहते थे।
मुत्सद्दी खर्च	एक विशेष कर जो जागीरदारों पर प्रशासन के व्यय को पूरा करने के लिए महाराजा भीमसिंह ने लगाया था। वह पट्टे के मूल्य का पाँच प्रतिशत की दर से लिया जाता था।
नाता लाग	विधवा के विवाह पर कर। सभी प्रकार के पुनर्विवाह पर यह कर लगाया जाता था।
नज़र	भेंट। जागीरदार, मुत्सद्दी और राज्य अधिकारी दरबार के समय अथवा जब वे महाराजा से मिलते तो एक विशेष प्रकार से सम्मान के साथ निश्चित औपचारिक तरीके से कुछ द्रव्य उसे भेंट करते थे जिसे नज़र कहते थे।
निशान बरदार	झंडे को लेकर चलने वाला।
निसार	निर्यात।
नुकसान जरायत	घास, वृक्षों और तालाबों को हानि पहुँचाने पर दण्ड।
न्योछावर	जब कभी अधिकारी तथा जागीरदार महाराजा से मिलने आते तो वे कुछ द्रव्य मुट्ठी में लेकर उसके सर के चारों ओर घुमाते थे उसे न्योछावर कहा जाता था।

ओढ़नी	स्त्रियों का ओढ़ने का डुपट्टा ।
पाग	पगड़ी—एक प्रकार का साफा जो पाँच गज लम्बा और एक गज चौड़ा होता था ।
पगरखी	जूते बनाने वालों से लिया जाने वाला कर ।
परगना	जिला ।
पसाइता	राज्य अथवा जागीरदार के नौकरों को लगानमुक्त दी हुई भूमि ।
पासवान	वे स्त्रियाँ जिनका शासक से सम्बन्ध होता था और उसकी विश्वास-भाजन होती थीं अथवा उप-पत्नियाँ (रखैलें) होती थीं ।
पातर	नाचने वाली या वेश्याएँ ।
पोतेदार	खज़ाने का लिपिक (क्लर्क) ।
पोतिया	कपड़े का टुकड़ा जो निर्धन लोगों के द्वारा सर पर बाँधा जाता था ।
पट्टा	राज्य द्वारा जब किसी को भूमि दी जाती थी तो उसके प्रमाणस्वरूप एक प्रमाणपत्र दिया जाता था अथवा जब कोई भूमि खरीदता था तो उसको प्रमाणपत्र दिया जाता था । भूमि के स्वामित्व के उस प्रमाणपत्र को पट्टा कहते थे ।
पट्टेदार	जागीरदार ।
पैसर	आयात ।
पेशकशी	मुगलकाल में हुक्मनामें के लिए व्यवहार किया जाने वाला एक पुराना शब्द ।
पोमचा	एक विशेष प्रकार का डुपट्टा जो स्त्रियाँ ओढ़ती थीं अथवा उत्तम प्रकार की ओढ़नी जिसे स्त्रियाँ शुभ और मंगलकारी दिन पर ओढ़ती थीं ।
प्यादा	पैदल सैनिक ।
कौलनामा	करार या समझौता ।
राजवी	उस आनुषंगिक शाखा के सदस्य जिसका कि शासक हो ।
रिसालदार	अश्वारोही सेना का अधिकारी ।
रवन्ना	चुंगी अधिकारी द्वारा दिया हुआ प्रमाणपत्र जिसके द्वारा वह उक्त माल को परगने अथवा राज्य में से ले जाने की आज्ञा देता है ।

रेजा रंगाई	एक कर जो रंगरेजों से लिया जाता था।
रेख	जागीरदारों पर लगाया जाने वाला सैनिक कर जो कि रियासत की कुल आमदनी का ८ प्रतिशत होता था।
रोकड़िया	रोकड़ रखने वाला (कैशियर)।
सफाईगढ़	जो लोग गढ़ में सफाई करने की बेगार से बचना चाहते थे उन्हें यह कर देना पड़ता था।
सालाबाज	सिंचाई कर।
सनद	एक औपचारिक दस्तावेज जिससे भूमि के अनुदान की पुष्टि की जाती थी।
सासन	जागीर क्षेत्र की भूमि का एक भाग जिसका अनुदान शासक दान-धर्म के उद्देश्य से करता था और जो सभी प्रकार के करों से मुक्त होती थी।
सवार खर्च	अश्वारोही सेना को रखने का कर।
सवाया	लगान पर अतिरिक्त कर।
सायर	वह विभाग जो चुंगी कर, उत्पादन कर, तथा राहदारी की देखभाल करता था।
सेली	एक डोरा जो नाथ साधू अपने गले में लपेटते थे।
सिलहखाना	शस्त्रागार।
शृंगी	एक प्रकार की सीटी जो हिरन के सींग से बनाई जाती थी और नाथ साधू उसको रखते थे।
सिरायत	सहभागी अथवा संदायाद।
सिरोपाय	शासक द्वारा किसी को सिर से पैर तक पहिनने के पूरे वस्त्र देना।
सोटा	लकड़ी का डंडा जिसे नाथ साधू रखते थे।
सुकराना	खिड़कियों अथवा दरवाजों पर कर।
सुतरखाना	ऊँट सेना की देखभाल तथा उसकी व्यवस्था करने वाला विभाग।
स्वरूप	एक जोगेश्वर—नाथ सिद्ध अथवा नाथ सम्प्रदाय का धार्मिक उपदेशक या गुरु।
तागीरात	जागीर क्षेत्र में किसानों द्वारा स्वेच्छा से दिया जाने वाला कर या लाग। सर्वप्रथम लोगों ने औरंगजेब के विरुद्ध अपने नाबालिग महाराजा अजीतसिंह की सहायता के रूप में स्वेच्छा से यह कर दिया किन्तु बाद को उसने एक नियमित

	कर का रूप धारण कर लिया जिसे हुक्मनामें के साथ जागीरदारों को देना पड़ता था ।
तलबाना	सम्मान की फीस या शुल्क ।
तालीमखाना	वह विभाग जो पाठशालाओं और शिक्षण संस्थाओं की देखभाल करता था अथवा शिक्षण संस्थाओं को वित्तीय सहायता देता था ।
तातेड़खाना	भंडार
ताजीम	महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों (जागीरदारों) के आने पर शासक उठ खड़ा होता था और अगवानी करता था उसे ताजीम देना कहते थे ।
तेलपाल	घानी कूंत को कहते थे ।
ठेका	संविदा या सौदा
तिबारी	व्यापारियों से लिया जाने वाला कर ।
टीका	१—राजसिंहासन पर बैठने पर पड़ोसी राजाओं द्वारा बधाई संदेश । २—सगाई (विवाह सम्बन्धी) के समय किया जाने वाला दस्तूर ।
तिनका	नथनी ।
तोलायत	लाटा के समय जो सेवक अनाज को तौलते थे ।
थूली	गेहूँ, चीनी, घी और मक्का से बनाया गया खाद्य पदार्थ । उसे नौकरों तथा काम करने वालों को अथवा गायों और घोड़ों को भी खिलाया जाता था ।
उगाई	लगान पर अतिरिक्त कर ।

चुने हुए संदर्भ ग्रन्थों की सूची

१. अप्रकाशित प्रलेख

(अ) भारत का राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली

फारेन सीक्रेट कन्सलटेशन्स (१८०० से १८४५ तक)
फारेन पोलीटिकल कन्सलटेशन्स (१८०० से १८४५ तक)
राजपूताना एजेंसी की फाइलें (१८०० से १८४५ तक)
प्रोसीडिंग्स ग्राफ बोर्ड ग्राफ डायरेक्टर्स (१८०० से १८४५ तक)

(क) राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर

(अ) जोधपुर दस्तरी रेकॉर्ड—

हकीकत बही बहियाँ (संख्या ८, ६, १०, ११, १३)
खरीता बहियाँ (संख्या ३, ८, ६, १०, १२, १३)
अर्जी बहियाँ (संख्या ३, ४, ६)
हथबहियाँ (वि० सं० १८४८–१८६५) संख्या ३, ४
ब्याय बही संख्या १ वि० सं० १७७६ से आरम्भ
फुटकर बहियाँ-संख्या १ और २ वि० सं० १८६३ से १८६४ तक का विवरण (जोधपुर घेरा-री-हाजरी रो चौपनियो)
जालौरगढ़ घेरा-री-हाजरी री बही (वि० सं० १८६०)
खबरें।
पोर्ट फोलियो फाइलें जिनमें मूल खरीते हैं (संख्या ४, ६, १५, १७, २२, २७)

(ख) जोधपुर हजूर दफ्तर रेकॉर्ड

खासा खजाना बहियाँ (वि० सं० १८६०–१६००)
विभिन्न सायरों, दरीबों और चौंतरों के मसवारे (वि० सं० १८६० से १६००)
कुशक बहियाँ (वि० सं० १८६०–१६००)
जमाखर्च बहियाँ (वि० सं० १८६०–१६००)
जमा खर्च बहियाँ (वि० सं० १८३२)

(ग) जोधपुर ढोलिया का कोठार रेकर्ड

अर्ज़ियों की फाइलें संख्या ६८, ६२

दीवानी परवाना फाइलें (वि० सं० १८६०–१९००)

इजारा फाइलें (वि० सं० १८६०–१९००)

सीगा इन्तजामी की फाइलें (वि० सं० १८६०–१९००)

रेख, चाकरी और हुक्मनामें सम्बन्धी फाइलें (वि० सं० १८६०–१९००)

जमा खर्च फाइलें संख्या ४३, ४४

कागजात खतो किताबत की फाइलें संख्या ७२

गोस्वामियों के पत्र-फाइल संख्या ११

गोस्वामियों के पत्र व अर्ज़ियाँ, संख्या ७२

जनानी चिट्ठियों की फाइल-संख्या १४/१

(घ) जोधपुर मुहकमा खास की फाइलें

काऊंसिल सचिवालय, सैक्रेटेरियट (१८८६–१९३८)

हवाला विभाग (१८८६–१९३८)

राजस्व या माल विभाग (१८८६–१९३८)

(ङ) जयपुर रेकर्ड

खरीतेजात रियासत जोधपुर बण्डल संख्या ७

खरीतेजात रियासत इन्दौर, बण्डल १, ७

खरीता फाइल संख्या ३

कपटद्वारा प्रलेख या दस्तावेज

(च) बीकानेर रेकर्ड

हकीकत बहियाँ बीकानेर (वि० सं० १८५४–१९००)

फौज बही वि० सं० १८४७ और वि० सं० १८३७

जमा खर्च बही (वि० सं० १८३३)

आँकड़ा बही (वि० सं० १८४२) और वि० सं० १८३९

हासिल बही (वि० सं० १८२४)

सायर-रो-रोजनावों (वि० सं० १८५९)

(छ) उर्डरेक यरदपु

हिसाब दफ्तर का पड़ाका (वि० सं० १८३७)

(ज) कोटा रेकर्ड

सीगा मुतफर्रिका वि० सं० १८१७ बस्ता संख्या ५८ भंडार संख्या १
सीगा मुतफरकात बस्ता संख्या ६४ भंडार संख्या १६

(झ) किशनगढ़ रेकर्ड

जमा खर्च बही संख्या ७

(ञ) अजमेर रेकर्ड

रेजीडैन्सी फाइलें (१८१८ से १८४३)
राजपूताना एजेसी फाइलें (१८३६ से १८४३)

(त) जोधपुर इतिहास विभाग रेकर्ड

बंदगियों का रजिस्टर (नक्शेजात भोम व पुराने राजाओं के शासन की विगत) संख्या ७६, २१७६
विभिन्न ख्यातों के सार तथा संक्षिप्त का अनुवाद बस्ता संख्या १०१, विभिन्न ठिकानों से प्राप्त उत्तरों की फाइलें-महाराजा विजयसिंह, महाराजा भीमसिंह और महाराजा मानसिंह के सम्बन्ध में विवरण ।
सासन डोली अनुदानों का रजिस्टर, जागीरदारां-री-बन्दगी, बस्ता संख्या १६/६६

२. प्रकाशित प्रलेख

(अ) मराठी :

सरदेसाई, जी० एस० : सैलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर भाग १–५ (१९३०–३३) जोशी वी० वी०, सैलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर-न्यू सीरीज
फालके आनन्दराव, सिंधेशाही इतिहासान चे साधानेन, भाग १–४ पूना (१९२९–१९३७)
सरदेसाई जी० एस० : हिस्टारिकल पेपर्स रिगार्डिंग महादाजी सिंधिया, भाग १–५, ग्वालियर राज्य प्रकाशन (१९३७)
ठाकुर वी० वी०, होल्कर शाहिछया इतिहासांची साधानेन भाग १–२, पूना (१९४४–४५)
सरदेसाई, जी० एस० : हिन्गाने दफ्तर, भाग १–२, भारत इतिहास संशोधक मंडल, पूना ।
सरदेसाई, जी० एस०; कुलकर्णी के० पी० और काले वाई० एम०,

ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार, पूना (१९३३)

३. हस्तलिखित

(अ) फारसी :

बहार गुलजार-ई-शुजाई (इलियट एण्ड डासन भाग ८ में सारांश का अनुवाद) लेखक हरचरणदास ।

आलमगीरनामा—लेखक मिर्जा मुहम्मद कासिम (फारसी पाठ बिबलियोथेका इंडिका) ।

मआसिर-ए-आलमगीरी (हस्तलिखित ग्रन्थ सरस्वती भंडार पुस्तकालय-उदयपुर) और फारसी पाठ बिबलियोथेका इंडिका (१८७०-७५)

खफीखाँ एम० एच०, मुन्तखाबुल-लुबाब (फारसी पाठ, बिबलियोथेका इंडिका) १८६९

(क) राजस्थानी :

अजीत ग्रन्थ (पुस्तक प्रकाश पुस्तकालय, जोधपुर)

अजितोदय (आर० एस० ए० बी०) मूल संस्कृत में है

बारहट बिशनसिंह, विजय विलास, ग्रन्थ संख्या २५, बस्ता संख्या २८ (आर० एस० ए० बी०)

दयालदास ख्यात (अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर)

दयालदास ख्यात, मुत्सद्दियाँ (दयालदास की डायरी)

फुटकर ग्रन्थ संख्या ५ (चौपासनी शोध संस्थान, जोधपुर)

जलंधर चन्द्रोदय (पुस्तक प्रकाश जोधपुर)

जोधपुर-राजावां रा बडेरां री ख्यात, जोधपुर

मान पंडित संवाद, गुटका संख्या ६७, ६८, ७१, ७३, ७५, ७६, ७७ (पुस्तक प्रकाश जोधपुर)

मानसिंह जी के राज की ख्यात (चौपासनी शोध संस्थान, जोधपुर)

मानसिंह जी के राज की तवारीख (आर० एस० ए० बी०)

मारवाड़ ख्यात, भाग ३ (अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर)

मुदियार ख्यात, बस्ता संख्या २०, ४० (आर० एस० ए० बी०)

राठौर दनेश्वर वंशावली, ग्रन्थ संख्या १४ बस्ता संख्या २८ (आर० एस० ए० बी०) राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर

राठौरां री ख्यात, भाग २ (अनूप-संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर)

सिंघायच दयालदास, ख्यात देश दर्पण (अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर) बंदगी रजिस्टर, बस्ता संख्या १०१ जिसमें बहुत बड़ी

संख्या में ख्यात हैं जैसे—
आसियाचा-री-ख्यात
बाला-री-ख्यात
भाटी-रावलोता-री-ख्यात
मायालान-री-ख्यात
चम्पावतां-री-ख्यात
चौहानां-री-ख्यात
खाँप-धावेचा
ख्यात-भाटी
कुम्पावतां-री-ख्यात
मेड़तियां-री-ख्यात
शेखावतां-कछवाहां री ख्यात
सिसोदियां-री-ख्यात
विजय विलास

४. पुस्तकें तथा रिपोर्ट

(अ) अंग्रेजी :

ऐडम्स आर्किबोल्ड, दी वेस्टर्न राजपूताना स्टेट्स (लन्दन—१६००)
बैनर्जी ए० सी०, लेक्चर्स ऑन राजपूत हिस्ट्री, कलकत्ता (१६६२)
बैनर्जी ए० सी०, राजपूत स्टेट्स एण्ड दी ईस्ट इंडिया कम्पनी, कलकत्ता (१८५१)
बागची पी० सी०, स्टडीज इन तंत्र, भाग १, कलकत्ता १६३६
वसु बी० डी०, राइज ऑफ क्रिश्चियन पावर इन इंडिया, कलकत्ता १६३१
बेवरिज० एच०, कॉम्प्रिहैंसिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया सिविल, मिलिटरी एण्ड सोशल फ्राम दी फर्स्ट लैंडिंग ऑफ हिन्दुस्तान, भाग १—३ लंदन १८६७
ब्रिग्स जे० डब्लू, गोरखनाथ एण्ड कनफटा योगीज, कलकत्ता (१६३८)
ब्रुक्स, फेमीन रिपोर्ट, गवर्नमेंट पब्लिकेशन, कलकत्ता (१८७०)
चोपरा के० एन०, ला रिलेटिंग टू दी प्रोटेक्शन ऑफ ऐडमिनिस्ट्रेशन ऑफ स्टेट्स इन इंडिया, शिमला (१६३८)
डाडवैल एच० एच०, कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया भाग—५, ब्रिटिश इंडिया १७६७—१८५८

हाल, रिपोर्ट ऑफ दी मोरल एण्ड मैटीरियल कन्डिशन ऑफ दी पीपुल लिविंग इन साउथ ईस्टर्न मारवाड़, गवर्नमेंट पब्लिकेशन कलकत्ता (१८७५)

हैस्टिंग्स मारक्विस, प्राइवेट जरनल, भाग १-२ लंदन (१८५८)

इरविन-आर्मी ऑफ दी इंडियन मुगल्स, न्यू देहली (१९६२)

ं क्सन-रिपोर्ट आन वैस्टर्न राजपूताना स्टेट्स, गवर्नमेंट पब्लिकेशन कलकत्ता (१८४३)

ी वारनर, विलियम, नेटिव स्टेट्स इन इंडिया, लंदन (१९१०)

मैलकम जोन—मैमायर्स ऑफ सैन्ट्रल इंडिया, भाग १ लंदन (१८८०)

मेहता मोहनसिंह—हैस्टिंग्स एण्ड इंडियन स्टेट्स, लंदन (१९२५)

परिहार, जी० आर०—मारवाड़ एण्ड दी मराठाज़, जोधपुर (१९६८)

ि सेप, एच० टी०—मैमायर्स ऑफ अमीर खाँ, कलकत्ता (१८३२)

प्रिसेप, एच० टी०—हिस्ट्री ऑफ पोलीटिकल एण्ड मिलिटरी ट्रैंजेक्शन्स भाग १-२ (१८२५)

रुथनास्वामी—ब्रिटिश एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम इन इंडिया, मद्रास (१९३९)

सरकार जे० एन०-फाल ऑफ मुगल एम्पायर भाग १, कलकत्ता (१९४९)

सरकार जे० एन०-फाल ऑफ मुगल एम्पायर भाग २, कलकत्ता (१९५३)

सरकार जे० एन०-फाल ऑफ मुगल एम्पायर भाग ३, कलकत्ता (१९५२)

सरकार जे० एन०-फाल ऑफ मुगल एम्पायर भाग ४, कलकत्ता (१९५३)

शर्मा दशरथ, दी कल्चरल हेरिटेज ऑफ राजस्थान, ए सिम्पोजियम, राजस्थान सरकार प्रकाशन, जयपुर (१९५१)

दी रूलिग प्रिंसेज, चीफ्स एण्ड लीडिंग परसोनेजेज़ ऑफ राजपूताना एण्ड अजमेर, गवर्नमेंट पब्लिकेशन कलकत्ता (१९२४)

थाम्पसन एडवर्ड-मेकिंग ऑफ दी इंडियन प्रिंसेज (१९४३)

टाड० जे०—ऐनल्स एण्ड ऐन्टिक्युटीज ऑफ राजस्थान (१९१४)

वर्मा एस० पी०-ए स्टडी इन मराठा डिप्लोमेसी-आगरा (१९५६)

व्यास जे० एन०—पोलीटिकल लाइफ ऑफ मारवाड़, जोधपुर (१९४०)

विल्सन मिल्स हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया, भाग ९, लंदन (१८४४)

(क) हिन्दी तथा राजस्थानी :

राज मारवाड़ की प्रशासनिक रिपोर्ट (१८८३–८४)

'मजमूई हालात व इन्तजाम राज मारवाड़' जोधपुर राज्य प्रकाशन (वि० सं० १९४२)

असोपा आर० के०, मारवाड़ का मूल इतिहास, जोधपुर (१९३१)

बड़त्थवाल पी० डी०, युग प्रवाह, काशी वि० सं० २००३

बन्द्योपाध्याय ए० के०-गम्भीरनाथ प्रसंग (बंगला) नौआखली (१९३२

बागची पी० सी०, कौलज्ञान निर्णय, कलकत्ता संस्कृत सीरीज संख्या ३ (१९३४)

जनसंख्या रिपोर्ट मारवाड़ १८९१, जोधपुर सरकार का प्रकाशन (१९०४)

द्विवेदी हजारीप्रसाद, नाथ सम्प्रदाय, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तरप्रदेश (१९५०)

गहलौत जे० एस०, मारवाड़ का इतिहास, जोधपुर (१९२५)

इब्न बतूता की भारतयात्रा, बनारस (वि० सं० १९८८)

करनीदान-सूरज प्रकाश, ओरियन्टल रिसर्च इंस्टिट्यूट, जोधपुर (१९०२)

लक्ष्मीचन्द, तवारीख राज जैसलमेर, जैसलमेर राज्य प्रकाशन (१९०४)

मेघसिंह, तवारीख राज श्री बीकानेर, बीकानेर राज्य सरकार प्रकाशन (१९०४)

मुहनौत नैणसी, मारवाड़ रा परगना री बिगत भाग १ और २, जोधपुर (१९६८–६९)

मुन्शी हरदयाल, तवारीख जागीरदारान, जोधपुर राज्य सरकार का प्रकाशन (१९११)

ओझा, गौरीशंकर हीराचंद, राजपूताने का इतिहास भाग ४ खंड २, जोधपुर राज्य का इतिहास वैदिक संग्रहालय अजमेर (१९४१)

रघुवीरसिंह, पूर्व आधुनिक राजस्थान, उदयपुर (१९५७)

रेऊ विश्वेश्वरनाथ, मारवाड़ का इतिहास, जोधपुर सरकार का प्रकाशन (१९३८)

श्यामलदास, वीर विनोद, मेवाड़ सरकार का प्रकाशन (१८८६)

श्यामसुन्दरदास, हस्तलिखित पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग १ नागरी प्रचारिणी सभा काशी ।

सूर्यमल्ल मिश्रण, वंशभास्कर, भाग ४, रामकरण श्यामकरण प्रेस, जोधपुर (वि० सं० १९५६)

ताराचन्द, सिद्ध सिद्धान्त पद्धति और शक्ति संगम, तंत्र सीरीज धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोष भाग २ (वि० सं० २०२०)

वीरभान, राजरूपक, नागरी प्रचारणी सभा काशी (वि० सं० १९९८)

(ख) गजेटियर और पत्र-पत्रिकाएँ :

ऐशटन एफ०, दी साल्ट इन्डस्ट्री इन राजस्थान, जरनल ऑफ इंडियन आर्ट्स एण्ड इन्डस्ट्रीज भाग ९ लंदन (१९००)

एर्सकाइन के० डी०, राजपूताना गजेटियर भाग ३ ए, राजकीय प्रकाशन कलकत्ता (१९०९)

इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया, प्राविंशियल सीरीज राजपूताना (१९०८)

वाल्टर, गजेटियर ऑफ मारवाड़, मालानी और जैसलमेर (१८७७)

(ग) गृह पत्री :

जगदीशसिंह गहलौत, ऐतिहासिक तिथि पत्रक (वि० सं० १७०१–१९००) जोधपुर (१९६२)

परिशिष्ट

सावण सुद १ संवत १८८४ रा

कोलनावों अंगरेजी सिरकार सुं हुवो तिण री नकल

कोलनावों सिरकार कंपनी अंगरेज बहादुर और महाराजे मांनसिघ बाहदुर राजा जोधपुर का जोग राजे म्हाराजे कंवर छतरसिघ बहादुर कै आपस में तयार कीयो मिसतर च्यारलस साफल समट कलफ बहादुर सिरकार कंपनी अंगरेज बाहदुर की तरफ सुं माफक इखत्यार देनै जुंना व नवाब मुसतताब मोला अलकाब मारकवीस अफहूसटंग गवरनर जनरल बहादुर अर व्यास विसनराम व्यास अभैराम राजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराजा मानसिघ बहादुर की तरफ सु माफक इखतियार देणो म्हाराज मोसुफ और योगराज महाराज कंवार मोसुफ ।

१ दफै अवल दोसती हेतारथ एकता ईपणो सिरकार कंपनी अंगरेज बहादुर और महाराजे मानसिंघ बहादुर कै आपस मे अर ओलाद उनकी के हमेशे पीढ़ी-दर-पीढ़ी पुस्त-दर-पुस्त कायम रहसी और दोस्तो और दुस्मण एक तरफ का दोस्त दुसमण दोनु तरफ का होसी ।

१ दफै दूजो राज और मुलक जोधपुर का की रखवाली का जुम्मा सिरकार अंगरेजी का है ।

१ दफै तीजी महाराज मानसिंघ बहादुर और ओलाद उनकी पीढ़ी-दर-पीढ़ी पुस्त-दर-पुस्त बंदगी रिफाकत सिरकार कंपनी अंगरेज बहादुर की करसी और दूसरी सिरकारां सरदारां सु क्युही परोजन राखसी नही ।

१ दफै चौथी महाराज मोसुफ पीढ़ी-दर-पीढ़ी पुस्त-दर-पुस्त बिना मरजी और इत्तला सिरकार अंगरेजी के सवाल जवाब किसी सरकारां सिरदारां सुं नही करसी परन्त सरसतो कागदारो दोसती की तरै दोसती और भावां सु रहेसी ।

१ दफै पाँचवी १ महाराजा मोसुफ पीढ़ी-दर-पीढ़ी पुस्त-दर-पुस्त खलस किणी सुं खडै न करसी और जो कदास होणहार का राह सुं किणी तरह की तकदार किणी रे साथ वणै तो फैसला उसका सिरकार कंपनी अंगरेज की तजबीज माफक होसी ।

१ दफै छठों १ जो कुछ मामला आगे माफक फर्द दुजी कै जोधपुर का राज सुं सीध्या बाहादुर कै पहोंचतो थो सो अंगरेजी सिरकार में हमेस्यां प्होंचीया करसी मांमला बार सिध्या बहादुर सुं परोजंन न रहैसी ।

१ दफै सातवों १ महाराज मो सुफ जाहर करै है जोधपुर का राज सुं सिध्या बाहादुर ने मामलो पोंहचते ही इंग सवाय कदेई मामलो दुजा किणी नैं दीयो नही और पोंहचावणां मांमला का सिरकार अंगरेजी कै करार पाया जिणं सुं जो कौई तथा महाराजा सिध्या बहादुर या कौई दुसरो मामला के दावो करै तो जबाब देणां अकर सिरकार अंगरेजी का जमा है ।

१ दफै आठवो एक हजार पाँच सौ असवार माफक बुलाणे के राज जोधपुर के सौं सिरकार अगरेजी में हाजर होसी और जरूरत के बखत सगली फौज राज मोसुफ की राज का बंदोबसत कै चाही जै सिवाय होवै सु सिरकार की फौज सामल हुवै ।

१ दफै नवों महाराजा मोसुफ अर ओलाद उनकी पीढ़ी-दर-पीढ़ी पुसत-दर-पुसत मालक हकुमत मुलक अपणो के रहेंगे सिरकार अंगरेजी की अदालत का दखल उस राज मै न होगा ।

१ दफै दसवीं ये कोलनामा इण सुदा दस दफै की मिसतर चारलस साफल-समट कलफ बहादुर और व्यास बिसनराय और व्यास अभैराम की मोहर दसखतां सुं मुकाम दारुल खिलाफत शाहजहाँनाबाद कै मुकाम दुरूसत पायो है सु दोढ़ महीने में जनाब मौला अलकाब नवाब गवरनर जनरल बाहादुर और राज राजेश्वर महाराजे मानसिंघ बहादुर और जोगराज छतरसिंह बहादुर की मोहर दसखता सही होयकर अपस मै पहोंचसी लिख्यो गयो तारीख चठी जनवरी का महिना की सन् अठारह से अठारह ईसवी ।

दसखत मोहर — दसखत मोहर

दसखत मटकलफरा — दसखत व्यास विशन राम रा

बड़ा साहब गवरनर रा दसखत — दसखत व्यास अभैराम रा

(हकीकत बही जोधपुर—वि० सं० १८७१-८० संख्या १०, पृष्ठ ११८)
राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर

महाराजा मानसिंह का खरीता लडलो के नाम

खलीतो १ लडलो साहब रे नांवै अलकाब सरैजन अप्रंच हकीकत तो बहुत है लेकिन थोड़े में मुदाल्या के लिखने में आती है तुमने कहा कि काम की दुरुस्ती आखिर होती नही सो साहब इसका जवाब यह है बार-बार तुम जो राज काज चलाने की कहते हो, सो इसमें बुरा कहां कहते हो; जो बात हमारे कहने की है, सो तुम कहते हो. सब बात की जड़ यही है, बड़ी बात है, ताज्जुब ये है, कि ये छोटी बात है, इसमें बहुत मुश्किला है । अपणे घर का काम सब छोटा और बड़ा करते ही आये हैं । इस बखत सब रईस करते हैं, और हमने भी आज तलक जालोर से लेकर करते चले आये हैं, जैसा बना वैसा सु इसकी कोई तारीफ नहीं सब रईस तुम्हें सब लोग बहुत बखत मे रयासत सरसब्ज रखते हैं, किसी. बखत मे बिगड़ भी जाता है, रहट की घड़ी भरी और रीती वो आदम के हाथ नही है, फिर संवर जाता है. आप संवारता है, अपना दोस्त संवारता है, भाई, बेटा, नोकर, चाकर संवारता है, अपना घर वाला सब कोई करता ही है, सो इसका जवाब और करना सब हमारे घरबरिये जिनसे तो हम जा बेजा करले हो सकता है. इस बखत बहुत बिगड़ा है, लेकिन अजमाइश करलो, हमारे बराबर के साथ हम सब बात से हमारे कैसे कहना लाजम नही है, लेकिन तुम्हारे दोस्त नामर्द नहीं है, सब कुछ कर सकते है, लेकिन तुम बखत के हाकिम हो, इस बखत तुम्हारे हाथ है करना न करना इस वास्ते तुम से हमारी जिद नही है, और तुम कुछ बुरा कभी नही करने के तीन बरस में बहुत मिन्नत करी है, बणानें कुं चाहते हो. लेकिन न्याय बेन्याय को हो तो भी हम से बण आवे इस माफक हमकुं माना चाहिये हमने कहा बहुत से तो दुरसती होय गई है, सु तुम्हारे भी कहने में आती है, के आखर दुरुसती होती नही जब बहुत सी तो होई गई ये आंया और थोड़ी बाकी रही तो इसका सबब में है कि तुम बजा कहते है, आखिर दुरुस्ती हुवा चाहिये, लेकिन दुरुस्ती आखर नही होने का तो सबब और ही है, सो साहबान अँग्रेज सवाय दूसरा स्याणां नही अर हमारा ऐसा दोस्त भी भली चाहने वाला और मकदूर वाला नही सो तुम सब बाते जानते हो, लेकिन क्या जाने किस राह से काम की दुरुस्ती आखिर होने का सबब नही दुरुस्त होता है, क्या तुम हम सब रोशन जमीर को इन्ही सो तुमसे भी स्यायत छिपा होगा तो हमकुं खबर नही लेकिन काम आखर दुरुस्त नही होने का तुम्हारी जुबान से कहने मे तुम्हारी नारजा-बंधी हम खूब समझ के हमारे मे ही कसूर हमने ले के राज काज से हाथ उठाय किनारा लेने का खलीता लिख दियां किस वास्ते कि हम लोगों को राज बहुत प्यारा होता है, लेकिन उससे भी सरकार कम्पनी की दोस्ती ज्यादा समझ के और तुम्हारी रजामन्दी रहने में हमारा अच्छा समझ के तुम्हारे मोठे चश्मों में राज से किनारा

होय जाय तो खूब फिर खलीता सुपर्द किया दूसरे दिन तुमने कहां ये या ये बात तो नही करना और श्री सरुपा श्री जोगेश्वरां के तांई बिनती करनी सो अपने मुल्क की सरहद के बाहिर बिराजे सो साहेब तुम खूब समझते हो देह से जीव अलग नहीं हो सकता छोटे या बड़े सब पर मालुम है तो स्वरुपों कुं किस तरह बाहिर अलग रखें ये बात जहान जाणे लेकिन इन पर बोझा रहन के सबब से हमने ये ही बात कबूल करी सरुप बाहिर पधारे साड़ी लाख चार लाख की जायगा भेट थी उसमें तुम ने दो लाख सेतीस हजार की २३७,००० की रखणी कहीं सो सिर्फ तुमसे टूटे नही ये जाण सरुपां ने ही मंजूर करी और फिर भी रजामंदी का निभाव अवल आखिर तलक निजरुं में आवे नही और गरज के लोग बहकावते जाहिर करें ये ही करके सुं काम कबीलु के पास श्री आयसजी महाराज कुं किया हैं ये कहकर घड़े चढ़ाये सुं वा आप नही थे सवार तहकीक कर पीछे आ गये लेकिन इस बात की तकलीफ सवार पीछे नही आये जब तलक हमकुं होणे में कसर रही नही सो तुम लोक खूब इन्साफ करने वाले हो झंठ कहे उसकुं माकूल किया चहिये इसी तरह एक दिन पंचोली जसरुप के वास्त किसी ने वहां जाहिर किया मेवासे जसरुप है फिर सवार चढ़े उहां भी वो नही था सवार निगाह कर पीछा आया लेकिन श्री बड़े महाराज का गुरुद्वारा था कदाचित वहां होय तो भी मरजाद रहने का मामूल है सो तो बरजे पीछे वुं काहे कुं था लेकिन मकान वाकुं और हमकुं तकलीफ तो हुई सो ज्यादा क्या लिखें अब बन्दोबस्त ऐसा करो कि जिसमें हमारे बदन पर इस बखत दम दम की तकलीफ है और भी तकलीफ ज्यादा होय तो सहनी मुश्किल है सो बदन की तकलीफ हर दम की अब सही जाती नही है चोराणुवें की साल से बदन में बीमारी रहती है सो एक तो सिर्फ शरीर की बीमारी की तकलीफ इस हाल में दूसरी इन दिनों में इबादत की कसूर पड़ती है जिसकी तकलीफ तीसरी तुम नाराजमंद रहो तीन तरह की तकलीफ है नै चौथी राजधानी का काम दुरुस्त नै होय जिसकी दूसरी इबारत की थोड़ी सी लिखी जाती है जिससे बहुत होती है परगनों में भोग यूं जावे का रुपया यहां से भेजणा कोई ५० कोस कोई ६० कोस तो ये बात रस्ते की नही जहां सेवा रहती है वहां ही चार जुग से शिरस्ता है वहां ही से पूजा हुई जाता है सो इन बातों से हमकुं लघंन करना पड़ता दूध और दाल के पानी से दिन गुजरते है सो बहुत तंग हालत है और तीन बरस होने कुं हुवे जिसमें तोटे का राज था घर में बिखेरा था शरीर में बीमारी थी तो भी हमारी जानप में आज तलक तुम्हारी सलाह माफिक ही काम किया कोई काम देर से या जल्दी से जैसा बन्यू वैसा पन्द्रा बीसा तुम्हारे कहां माफिक ही किया और तुमने भी राज बनाने कुं चाहा तो अब पांच बीसा ही यहां का मालुम रहके काम होगा तो हमारा दिल रहके शरीर बचेगा नहीं तो जिन्दगी राह तो हम दरजबान तुम से करेंगे नही और हमारे तरफ कसूर बदखा

निकालता चला जायगा और तुम नारजामंद होवोगे और हमारे कुं फायदा तो है इसे भी बहुत तो हमकुं दिखता है इस वास्ते जो बात निभे सो जो कुछ कहो सो साथ रजामंदी के जिल्द कहो अवल तुम्हारा सवाल ये था मामला और सवारों का खर्च चढ़ा उसका और आइन्दा का सलिका लगे और पांच लाख का सरदारां कुं पट्टा और चोरी धाड़े का बन्दोबस्त सो ये सवाल सब होय गये और फौज खर्च का भी तुम्हारा कहना माफिक राह लग गया फिर मेड़तिये दरवाजे के डेरु जिन दिनों में तेरें कलमों का करारनामा लिखा गया उस माफिक सवाल सब बहाल है अर उठी की तरफ के सवाल बाकी है जिस सिवाय बाजे बदखाऊ ने तुम्हारे पास जाहिर करके बहुत उमराऊं कुं, कारन्दे कुं, नोकरु कुं निकाले तुमने चाहा हमारे कहने से कि जिनकुं निकालो उनकी कसूर तो साबित हुआ चाहिये लेकिन तुम्हारा हमारा वादा अलग रहा बदखाऊ ने अपना काम करा उहां था इनके गये पीछे काम दुरस्त होयगा सो तीन बरस होने कुं आया सदा तुम ही कहते हो काम दुरुस्त हुआ नही तो अब उनकुं पूछा चाहिये काम क्यों दुरुस्त नहीं होता फिर कहते हो हुकुम बर-करार नहीं है सो जाहिर इसकी सलाह घटेगी और बाजे आदमी बदखाऊ का ज्यादा कहना होयगा वहां हुकुम बरकरार किस तरह रहेगा अब सब बात का मुद्दा इसमें है जैसी बात करारनांवे में लिखी गई उस पर अमल रहके काम चला चाहिये ये न होय तो तुम बखत के हाकम हो तुम काम चलाने का मुद्दा बतलाओ सिर्फ उस माफिक हमारी सरकार कहे माफिक किये जायगा कोई बात नही बन आवे वै अलग बाकी बस तुम्हारी सलाह माफिक हुवा जायगा ऐ नही होय तो इहां के अहलकार उमराव खैरखाह होय जिन पर हमारी सलाह माफिक अखतियार रखों यकीन राखों तो ये काम होय सकता है लेकिन एक हुकुम एक सलाह बगर इस हाल में काम सब बर्बाद होयगा हमने सब लिख दिया है हमारे पर बोझा नही है तुम यहां के एजेन्ट हो दोसा (कार्यकर्त्ता) हो तुम को यहां की फिकर है जो कुछ करना होय सो अब करो। साहेबान सदर कुं बडे साहब कुं लिखना मुनासिब होय सो लिखो हमारा कहना लिखना तुम कुं सब तुम अच्छी तरह जानने वाले हो।

संवत १८९९ रा आसोज बद १४

खरीता बही संख्या, १०, पृष्ठ ३५२–३५४ राजस्थान राज्य-अभिलेखागार, बीकानेर।

महाराजा रणजीतसिंह का खरीता महाराजा मानसिंह के नाम

पोर्ट फोलियो फाइल—१६ (ल) लाहौर संख्या ८०/२
राजस्थान स्टेट आरकाइव्ज, बीकानेर

लाहोर का राजा रणजीतसिंहजी रो खरीतो आयो जिण बा० समाचार कुवंरजी का वाका सुण के सोचफिकर हुवो बा० सं० १८७९ रा मंगसर सुद १२

अप्रंच घड़ा दिन हुवा राज मिजाज के खैराफियत वा दिलके इरादा के समाचार लिखण सु प्रसन्न किया नही सु जाण बा में आयो कवंरजी का वाला सुराज के ताई कदूरत है सु श्रीजी जाणता मालम है इण बाका सुणबा सु इसो सोच फिकर हुवो सो लिखण में आवे नही सो श्रीजी इच्छा उपर सन्तोष कर उणरा फैज का उमेदवार रहसी सो श्रीजी राज के दौलत खानें में कुवंर बेगो प्रकट करसी। अठारो अहवाल इण भांत है मुलतान कश्मीर का सूबा मक्खर व मनकरा को किलो आदि तो बादशाह का इरादा काबूल का सूबा लेने का था फौज पेशावर के पास पहुँचीं जहाँ वजीर फतहखां का भाई अलीमखां नवाब का छोटा भाई समन्दखां बादशाहजी की हजूर में आयो सुदा गुजरान अर्ज करी नवाब अलीमखां सरकार की नौकरी बन्दगी में हाजिर रहने में है ३०,००० सवार बहादुर की चाकरी लेवे बादशाह कामरा से हमारे भाई फैतहखां के खून की बाबत दिल की दुशमनी पड़ी है और शुजाउल मुल्क आजमान मेरे तदारुक के लिये अंग्रेजो के पास बैठा है। जिणसे में तो माहको सरणो बादसाजी ने सुप्यों है सिर-सूधा नौकरी में हाजर है सु काबुल म्हांने काबुल फौज खर्च में माफ राखो जितरा में ही पेशवा को भरतपुर के राजा का वकील आया न कूच कूच का लाख लाख रुपया देणे के लिए सरकार की फौज का कूच दिल्ली की तरफ करो जो आप अच्छी तरह जानते है।

हिन्दुस्तान की खोटी दशा केवल उमरावों की बेइत्तफाकी से है। आपस में मेल नही है सो राज री जोत सिवाय दूजों हिन्दुस्तान में धर्म व जुबान की कायमी वालो जानियो नहीं जिणसू चोपदार छड़ो इण कागद समेत भेजा है। इसलिये हिन्दुस्तान का मुल्क के इन्तजाम बाबत जो कुछ नेक सलाह समझे वैसे हालात लिखें सो उसी मुजब हम करेंगे। किसी मातबर और समझदार आदमी को भेज देवें। बहुत से समाचार लिख नही सकते और चोपदार को भेज रहे है वह जुबानी अर्ज करेगा। उसकी अर्ज कबूल कर लेवे।

पोर्ट फोलियो फाइल—१६ (ल) लाहोर संख्या ८०/२ राजस्थान राज्य-अभिलेखागार बीकानेर।

सुखसेजराय (उप पत्नी) का महाराजा मानसिंह को पत्र

(श्री जलन्धरनाथजी सदा साय छैं)

राज श्री श्री १०८ श्री महला माय है सिद्ध श्री सर्वग्रोपमा बिराजमान ग्रनेक ग्रोपमा लायक सकल गुण निधान बहुजाण गंगाजल निर्मल गऊ ब्राह्मण के प्रतिपालक षटदर्शन पोषण माथारा मोड़ सिर रा सेवरा ग्रात्मा रा ग्राधार संसाररा सुख सेजा रा सवाटी महलारा मन हिवड़े रा हार उगता भाण समदा जिस्या ग्रथाह गसारी रा प्राण ग्राधार गोपीया बीच में कान तारा बीच में चन्द फूला बीच में गुलाब गौरिया बीच में श्री साहब जी जाणे उगता सूरज जाणे पूनम रो चांद ढ़लकती नथ रा मोती बड़ी बड़ी ग्रोपमा जितरी श्रीजी साहब ने सोवे राज रा तेज सु सारा दुश्मन दफे हो जासी श्री गुणराज श्री जसराज श्री हिन्दुपत-पातशाह छत्रपति महाराज सर्वजान सुख करण दु:ख भंजन जीव री जड़ी ग्रांख्या रा ग्रजन कपड़ा ग्रतूप गुणारां गायक मीठा बोला मोजारा बगसणहार श्री साहबजी बाड़ी रा भौंरा केतकी रा कन्थ फूला रा भारा बाव नोचण चतुर बुद्धरा जाण सोलह कला सुजान हीरा पन्ना री ग्रोपमा रत्न जड़ाव री चौसठ कला रा जाणन छै हीरा गारां जाण बो मीता गुण रा सागर धरती जड़ा धीमा भाखर जिस्या भारी क्षमा ग्रापरी तपस्या मारी श्री साहबजी सारी हतूर में ढ़ोलिया री खिदमतगार रो चरण धोक सुख सेजशय रो मुजरो मालुम हुवे । श्री साहबजी सा संसार में सूरज रो दर्शन नित हुवे तो गोरी रो मन घणो राजी खुशी रवे श्री साहबजी सा मै तो ग्राछी गवर पूजी छी ने घणी तपस्या की वी थी घणा दान पून्य किया जदा श्री साहबजी सरीखा खावन्द पाया ढोलीया "री चाकर उपर शुभ नजर रखायजे म्हांरे तो ग्राधार श्री खाविन्दा रो है राज रा चरणा लपतीं हू श्री साहब जिस्या दुहो ने देवे नदी घिया खड़ी की मकराऊ हजूर मुजरो म्हांरो मानजो निज उगते सूरज श्रीजी साहब ग्रापरी तपस्या भारी नै ग्रापरे श्री जलन्धर-नाथजी सहाय की वी नै राजस्थान में धीनि घनि किया श्री नाथजी ग्रापरे किले सामे जो वे जिणने श्री नाथजी भस्म कर देवे ग्राप री फतह हुई नै ग्राप गढ़ पधारिया जिण री खुशी रो पार लिखियो जाय नही हर्ष हिया में मावे नही हीरा मोतियां रो मेह उठयो श्रीजी साहब हमे तो खानाजादा ने दर्शन दिराय जे ने श्री नाथजी रा दर्शन करायने भेट करायजे ग्रापने राज श्री जलन्धरनाथजी दियो श्रीजी साहब एक बार तो फुरमाइश सुणाई होती ग्रापरी मर्जी तो चाकर माथे रखायजो इजे ग्रापरी फुरमाइश सुणी नही जिन सु चिन्ता हुवे है श्रीजी साहब चूक तो मोकलो पड़ियो है पण ग्रापरो बिरद विचारने फुरमाइश सुणाइजे श्रीजी साहब ग्रर्जी में व ऊचो निचो लिखियो हुवे तो गुणो माफ करवा सी हू काई जाणु हू राज छो चतर परवीण ।

राजस्थान राज्य ग्रभिलेखागार, बीकानेर.

चित्र-सूची

		प्रसंग पृष्ठ संख्या
१.	महाराजा मानसिंह	
२.	पोकरण का ठाकुर सवाईसिंह	२४
३.	जालोर का दुर्ग	६
४.	महामन्दिर	१४६
५.	महाराजा मानसिंह और उसका दरबार	२४
६.	सुखसेजराय की महाराजा मानसिंह को अर्जी	३०७
७.	,, ,, ,,	,,
८.	,, ,, ,,	,,
९.	महाराज मानसिंह कवियों का सम्मान करते हुए	२५१